इस पुस्तकमें

गांधीजीकी उन रचनाओंका संग्रह किया गया है जिनमें उन्होंने अपने समयके बड़े-से-बड़े नेतासे लेकर सामान्य जन-सेवक तककी सेवाओंका अत्यंत मार्मिक रूपमें स्मरण किया है। अपने बहुतसे सम्माननीय नेताओंके नामों और कार्योंसे हम सब परिचित हैं; लेकिन इसी दुनियामें ऐसे भी लोग हैं, जो चुपचाप अपने सेवा-कार्यमें संलग्न रहते हैं और जिनके नामका कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता। गांधीजीने ऐसे दर्जनों मूक सेवकोंको इस संग्रहके लेखोंमें वाणी प्रदान की है। जहां लोकमान्य तिलक, गोखले, मोतीलाल नेहरू आदि सुविख्यात नेताओंको उन्होंने अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है, वहां निरक्षर वलीअम्मा, मोतीलाल दर्जी, वेलप्पन आदि दर्जनों लोकसेवकोंकी महान सेवाओंको भी बड़े गर्व और गौरवके साथ याद किया है। इस दृष्टिसे यह संग्रह अद्वितीय है।

इसके कुछ संस्मरण इतने मार्मिक और हृदयस्पर्शी हैं कि पाठककी आंखें गीली हो जाती हैं।

गांधी-साहित्य—७

मेरे समकालीन

अपने समयके राजनीतिज्ञों तथा
सामान्य लोकसेवकोंके
महात्मा गांधी
द्वारा लिखित
संस्मरण

१९५१
सस्ता साहित्य मंडल • नई दिल्ली

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री
सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

पहली बार : १९५१

मूल्य
अजिल्द : साढ़े चार रुपये
सजिल्द : पाँच रुपये

मुद्रक
जे० के० शर्मा
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

प्रकाशकीय

प्रस्तुत पुस्तक गांधी-साहित्यका सातवां भाग है। इसमें गांधीजीकी उन रचनाओंका संग्रह किया गया है, जिनमें उन्होंने अपने समयके बड़े-से-बड़े नेतासे लेकर सामान्य जन-सेवक तककी सेवाओंका अत्यंत मार्मिक रूपमें स्मरण किया है। अपने बहुतसे सम्माननीय नेताओंके नामों और कार्योंसे हम सब परिचित हैं; लेकिन इसी दुनियामें ऐसे भी लोग हैं, जो चुपचाप अपने सेवा-कार्यमें संलग्न रहते हैं और जिनके नामका कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता। गांधीजीने ऐसे दर्जनों मूक सेवकोंको इस संग्रहके लेखोंमें वाणी प्रदान की है। जहां लोकमान्य तिलक, गोखले, मोतीलाल नेहरू आदि सुविख्यात नेताओंको उन्होंने अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है, वहां निरक्षर वालीअम्मा, मोतीलाल दरजी, केलप्पन आदि दर्जनों लोकसेवकोंकी महान सेवाओंको भी बड़े गर्व और गौरवके साथ याद किया है। इस प्रकार उन्होंने स्पष्ट कर दिया है कि जिन्हें छोटा मानकर प्राय: उपेक्षाकी दृष्टिसे देखा जाता है, वे वस्तुत: छोटे नहीं हैं और उनकी सेवाओंका भी उतना ही मूल्य है, जितना किसी भी महान नेताकी सेवाका। इस दृष्टिसे यह संग्रह अद्वितीय है।

पुस्तकका संकलन और संपादन हिन्दीके सुलेखक श्री विष्णु प्रभाकरने किया है। उनकी सावधानी और प्रयत्नके बावजूद यदि कुछ संगत सामग्री छूट गई हो अथवा कहीं कोई चूक रह गई हो तो पाठक कृपया उसकी सूचना हमें दे दें, जिससे अगले संस्करणमें उसका सुधार किया जा सके।

—मंत्री

संकेत-निर्देश

हि० न० हि० न० जी०	=	हिंदी नवजीवन
प्रा० प्र०	=	प्रार्थना प्रवचन
द० अ० स०	=	दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहका इतिहास
ह० से०	=	हरिजन सेवक
का० क०	=	बापूकी करावास-कहानी
म० डा०	=	महादेवभाईकी डायरी
यं० इं०	=	यंग इंडिया
आ० आ० क०	=	आत्म-कथा
य० म०	=	यरवदा मंदिरसे
दी० श्री०	=	दीनबंधु श्रीएंड्रूज
इं० ओ०	=	इंडियन ओपीनियन
ह०	=	हरिजन

(इनके अतिरिक्त जिन अन्य साधनोंसे सामग्री इकट्ठी की गई है, उनका उल्लेख यथास्थान कर दिया गया है।)

आमुख

प्रसिद्ध गायक श्रीदिलीपकुमार रायसे बातचीत करते हुए सन् १९३४ में गांधीजीने कहा था—"जीवन समस्त कलाओंसे श्रेष्ठ है। मैं तो समझता हूं कि जो अच्छी तरह जीना जानता है वही सच्चा कलाकार है। उत्तम जीवनकी भूमिकाके बिना कला किस प्रकार चित्रित की जा सकती है। कलाके मूल्यका आधार है जीवनको उन्नत बनाना। जीवन ही कला है।"[1] साहित्य-को इस दृष्टिसे कलासे अलग नहीं किया जा सकता। जीवनसे इतना अटूट संबंध हो जानेके बाद वह नितांत सरल और सुगम हो जाता है। कदाचित ऐसे ही साहित्यको दृष्टिमें रखकर गांधीजीने इन्हीं श्रीरायसे कहा था—"वही काव्य और वही साहित्य चिरंजीवी रहेगा जिसे लोग सुगमतासे पा सकेंगे, जिसे वे आसानीसे पचा सकेंगे।" ऐसे साहित्यका सृजन वही कर सकता है जिसने साहित्यके विषयसे साक्षात्कार कर लिया है अर्थात् जो उसे जीता है। इसीको गांधीजीकी भाषामें यों कह सकते हैं कि जो अच्छी तरह जीना जानता है वही साहित्यिक है। इस दृष्टिसे वे एक ऊंचे साहित्यिक थे। निस्संदेह वे एक साहित्यिकके नाते आगे नहीं आये और न उन्होंने कभी कवि, कथाकार या आलोचक होनेका दावा ही किया; परंतु फिर भी जहां तक जीवनी-साहित्य; आत्मकथा, शब्द-चित्र और संस्मरण आदिका संबंध है उनकी पूंजी सहज ही [illegible] ठाती है।

उनकी आत्मकथा [illegible] पूर्व ग्रंथ है। वह सभी दृष्टियोंसे इस क्षेत्र [illegible] ड-खंड करनेवाली क्रांतिकारी पुस्तक है। उनके घोर-से-घोर विरोधी भी उसकी महानता-को मुक्त कंठसे स्वीकार करते हैं।

---

[1] हिन्दी नवजीवन, १० फरवरी १९२४

वस्तुतः गांधीजीने सच्चे अर्थोंमें 'आत्मकथा' लिखी है। जीवनमें यदि कुछ गोपनीय रह जाता है तो आत्मकथा अधूरी है। सत्य और अहिंसा-के परीक्षण करनेवाला वैज्ञानिक अधूरी आत्मकथा नहीं लिख सकता। जिस प्रकार उन्होंने अपना विश्लेषण करते समय सत्यको नहीं छोड़ा है उसी तरह दूसरोंके बारेमें लिखते समय उन्होंने अहिंसाको अपना आधार बनाया है। इसलिए उनके साहित्यमें जहां उनकी पारदर्शिनी दृष्टिका चमत्कार है वहां वह मानवके सहज सौंदर्य सहानुभूतिसे भी आप्लावित है। जब कभी उन्होंने किसीके बारेमें लिखनेके लिए कलम उठाई है अपनी सरल, सुबोध और सुगठित भाषामें उस वर्ण्य व्यक्तिका बड़ा ही सहानुभूतिपूर्ण चित्र उतार कर रख दिया है।

वे कभी लिखनेके लिए ही किसीका जीवनवृत्त या संस्मरण लिखने बैठे हों, यह तो उनके लिए संभव नहीं था; परंतु अपने बहुधंधी सार्वजनिक जीवनमें उन्हें असंख्य छोटे और बड़े व्यक्तियोंके संपर्कमें आना पड़ा था। केवल भारत ही नहीं, दक्षिण अफ्रीकामें भी अनेकानेक देशी और विदेशी व्यक्तियोंसे उनका संबंध रहा था। बहुतोंसे वह संबंध अति प्रगाढ़ और आत्मीयतासे छलकता हुआ था। बहुतोंके साथ उन्होंने अपने संघर्षमय जीवनके अनेक वर्ष बिताए थे। कुछके साथ वे कुछ ही दिन रहे थे। उनमें अनेक उनसे बड़े थे, जिनसे उन्होंने बहुत-कुछ सीखा था। बहुतसे उनसे प्रेरणा लेते थे और उन्हें अपना आराध्यदेव मानते थे। बहुतसे उनके विरोधी भी थे, जिनसे उन्हें टक्कर लेनी पड़ती थी। ऐसे भी लोग थे जिनसे उनका कोई विशेष संबंध तो नहीं था, पर किन्हीं विशेष कारणोंसे गांधीजीको उन व्यक्तियोंमें रुचि थी। इन सब व्यक्तियोंमें जाति, लिंग, वर्ण या वर्गका कोई भेद नहीं था। उनमें राजनीतिके धुरंधर पंडित और साधारण स्वयं-सेवक, धर्माचार्य और श्रद्धालु भक्त, सम्राट और सेवक, पूंजीपति और मजदूर, विद्रोही और प्रतिक्रियावादी सभी थे। सभीके बारेमें उन्होंने समान भाव और समान रूपसे लिखा है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है लिखनेके ये अवसर कभी पूर्व योजनाके अनुसार नहीं आये। उस बहुधंधी व्यस्त जीवनमें न जाने कब किस पर लिखना पड़ जाए, यह कोई नहीं जानता था। फिर भी ऐसे अवसर बहुत आते थे और साधारणतया उनका वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है :

१—गांधीजी अपने सहयोगियों, समाजके मूक सेवकों या किसी रूपमें प्रख्यात व्यक्तियोंकी मृत्युपर समवेदना और श्रद्धांजलिके रूपमें लिखा करते थे।

२—जब उनके सहकर्मियों और सहयोगियोंपर आक्षेप होते थे तब उनका निराकरण और समाधान करनेके लिए उन्हें लिखना पड़ता था।

३—राष्ट्रीय महासभाके सभापति पदके लिए चुने जानेवाले व्यक्तिके बारेमें चुनावसे पूर्व या पश्चात् वे कभी-कभी लिखते थे।

४—अपने आंदोलनोंमें भाग लेनेवालों और उनके विरोधियोंके विषयमें उन आंदोलनोंके दौरानमें वे लिखते थे।

५—'आत्मकथा' और 'दक्षिण अफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास' आदि पुस्तकोंमें तत्संबंधी व्यक्तियोंका वर्णन आया है।

६—अनेक व्यक्तियोंके जन्म-दिन या जयंती आदिके अवसरपर पत्रोंको संदेश और शुभकामनाके रूपमें उन्होंने लिखा है।

७—कभी-कभी विशुद्ध संपादकीय कर्तव्यको निबाहनेके लिए लिखना पड़ता था।

८—निजी पत्रोंमें व्यक्तियोंकी चर्चा आ जाती थी।

यदि उनके साहित्यका काल-क्रमसे अध्ययन किया जाय तो एक बात ज्ञात होगी कि शुरूमें वे व्यक्तियोंके बारेमें अधिक लिखते थे, परंतु जैसे-जैसे समय बीतता गया यह लेखन कम होता गया। जबसे उन्होंने 'हरिजन' पत्रोंका प्रकाशन किया तबसे तो हरिजन सेवकोंको छोड़कर और किसीके बारेमें वे उन पत्रोंमें नहीं लिखते थे। इन पत्रोंको छोड़कर पुस्तकादि लिखनेका समय अब उनके पास नहीं रहा था।

फिर भी इस संबंधमें गांधीजीके एक गुणकी बात विशेष उल्लेखनीय है। वे प्रत्येक संपर्कमें आनेवाले व्यक्तिसे, चाहे वह छोटा हो या बड़ा, विरोधी हो या सहयोगी, अधिक-से-अधिक आत्मीयता स्थापित करनेकी चेष्टा करते थे। वे उसकी मानव-सुलभ भावनाओंको छू कर उससे बातें करते थे। सबसे पहले वे मानव थे और दूसरोंको भी मानव समझते थे। और यह सब था अहिंसाके कारण। इस दृष्टिसे उनके संस्मरण अध्ययन की वस्तु हैं।

प्रस्तुत संग्रह 'मेरे समकालीन' में गांधीजी द्वारा लिखे गये इसी प्रकारके संस्मरण—शब्द-चित्र और लेख—संकलित किये गए हैं। यह संकलन इस दृष्टिसे नई चीज है। अबतक गांधीजीके लेखों और भाषणों-के अनेकानेक संग्रह विभिन्न भाषाओंमें प्रकाशित हुए हैं। परंतु उन सबका विषय गांधीजीके विचारों और मान्यताओंसे संबंध रखता है। जिन असंख्य व्यक्तियोंके संपर्कमें वे आए उनके बारेमें गांधीजीके क्या विचार थे, यह जाननेकी अभीतक किसीने चेष्टा नहीं की। इस संकलन द्वारा उसी अभावको दूर करनेका प्रयत्न किया गया है।

जैसे वे सरल और सशक्त भाषा लिखनेमें लासानी थे वैसे ही वे शब्द-चित्र खींचनेमें भी बहुत कुशल थे। एक तो अपने जीवनके प्रति निर्दिष्ट वैज्ञानिक दृष्टिकोण (सत्य)के कारण, दूसरे विभिन्न विचार और व्यवहारके इतने अधिक व्यक्तियोंके संपर्क में आनेके तथा मानवता (अहिंसा) में अपनी आस्थाके कारण उनकी परख बड़ी सही और खरी हो गई थी, और जब दृष्टि पारदर्शी हो जाती है तो वर्णन स्वतः ही सजीव और मार्मिक हो जाता है।

सन् १९२९ में पं० जवाहरलाल नेहरूके लिए उन्होंने जो कुछ लिखा था वह शब्दोंमें एक अपूर्व चित्र है—"बहादुरीमें कोई उनसे बढ़ नहीं सकता और देशप्रेममें उनसे आगे कौन जा सकता है? कुछ लोग कहते हैं कि वह जल्दबाज और अधीर हैं। यह तो इस समय एक गुण है। फिर जहां उनमें एक वीर योद्धाकी तेजी और अधीरता है वहां एक राज-

नीतिज्ञका विवेक भी है ।...वह स्फटिक मणिकी भांति पवित्र हैं, उनकी सत्यशीलता संदेहसे परे है । वह अहिंसक और अनिंदनीय योद्धा हैं। राष्ट्र उनके हाथमें सुरक्षित है।"

दक्षिण अफ्रीकाके थी थम्बी नायडूका चित्र देखिये : "उनकी बुद्धि भी बड़ी तीव्र थी । नवीन प्रश्नोंको वे बड़ी फुर्तीके साथ समझ लेते थे । उनकी हाजिर-जवाबी आश्चर्यजनक थी । वे भारत कभी नहीं आये थे, फिर भी उसपर उनका अगाध प्रेम था । स्वदेशाभिमान उनकी नस-नसमें भरा हुआ था । उनकी दृढ़ता चेहरेपर ही चित्रित थी । उनका शरीर बड़ा मजबूत और कसा हुआ था । मेहनतसे कभी थकते ही न थे । कुर्सी पर बैठकर नेतापन करना हो तो उस पदकी भी शोभा बढ़ा दें, पर साथ ही हरकारेका काम भी उतनी ही स्वाभाविक रीतिसे वे कर सकते थे । शिर पर बोझा उठाकर बाजारसे निकलनेमें थम्बी नायडू जरा भी न शरमाते थे । मेहनतके समय न रात देखते, न दिन । कौमके लिए अपने सर्वस्व की आहुति देनेके लिए हर किसीके साथ प्रतिस्पर्धा कर सकते थे ।" (पृष्ठ ३२९)

पर इन शब्द-चित्रोंसे कोई यह न समझ ले कि गांधीजी विशेषणोंका ही प्रयोग करना जानते थे । वैसे वे जब विशेषणोंका प्रयोग करते थे तो दिल खोलकर करते थे । कुमारी श्लेजीन, नारणदास गांधी, मगनलाल गांधी, महादेव देसाई आदिके रेखा-चित्र इस बातके प्रमाण हैं। परंतु किसी भी व्यक्तिकी दुर्बलता उनसे छिपी नहीं रहती थी और अवसर आनेपर वे उसी स्पष्टतासे उसे प्रकट कर देते थे, जिस प्रकार उसके गुणोंपर प्रकाश डालते थे । सत्यका पुजारी व्यक्तित्वका अधूरा चित्रण कर ही नहीं सकता । ऊपर जिन थम्बी नायडूका शब्द-चित्र दिया गया है, उन्हींके बारेमें उसी चित्रमें गांधीजीने आगे लिखा है—"अगर थंबी नायडू हदसे ज्यादा साहसी न होते और उनमें क्रोध न होता तो आज वह वी [illegible] सानीसे कौमका

नेतृत्व ग्रहण कर सकता था। ट्रान्सवालके युद्धके अंत तक उनके क्रोधका कोई विपरीत परिणाम नहीं हुआ था, बल्कि तबतक उनके अमूल्य गुण जवाहिरोंके समान चमक रहे थे, पर बादमें मैंने देखा कि उनका क्रोध और साहस प्रबल शत्रु साबित हुए और उन्होंने उनके गुणोंको छिपा दिया. . . ।" (पृष्ठ ३२९)

सरोजिनी नायडूका चित्र उन्होंने एक ही वाक्यमें उतार दिया है:—
"सरोजिनी नायडू काम तो बहुत बढ़िया कर लेती हैं, मगर सच्ची संस्कृति-की कीमत देकर।" (पृष्ठ ३३५)

जिन महादेव भाईके लिए वे स्वप्नमें भी अधीर रहते थे, उनके बारेमें भी उन्होंने लिखा है:

"महादेवकी मैं भाटकी तरह स्तुति करता हूं मगर मेरा मन उसकी शिकायत भी करता है।" (पृष्ठ ३१५)

वस्तुतः किसी भी व्यक्तिका ठीक-ठीक विश्लेषण करनेमें उन्हें अद्-भुत कुशलता प्राप्त थी। कम-से-कम और नपे-तुले सार्थक शब्दोंमें वे वर्ण्य व्यक्तिके अंदर और बाहरका चित्र कागजपर उतार कर रख देते थे।

"सर फिरोजशाह तो मुझे हिमालय जैसे मालूम हुए, लोकमान्य समुद्रकी तरह। गोखले गंगाकी तरह। उसमें मैं नहा सकता था। हिमालय पर चढ़ना मुश्किल है, समुद्रमें डूबनेका भय रहता है; पर गंगाकी गोदीमें खेल सकते हैं, उसमें डोंगीपर चढ़कर तैर सकते हैं। (पृष्ठ १७८)

"शिष्य होना परम पवित्र, पर व्यक्तिगत् भाव है। मैंने १८८८ में दादाभाईके चरणोंमें अपनेको समर्पित किया, पर मेरे आदर्शोंसे वे बहुत दूर थे। मैं उनके पुत्रके स्थानपर हो सकता था, उनका शागिर्द नहीं हो सकता था। शिष्यका दर्जा पुत्रसे ऊंचा है। शिष्य, पुत्र रूपसे दूसरा जन्म ग्रहण करता है। शिष्य होना अपनी स्वकीय प्रेरणासे समर्पित करना है।. . .जस्टिस रानडेसे मुझे भय लगता था। उनके सामने मुझे बयान करनेका भी साहस नहीं होता था। बदरुद्दीन तैयबजी पिताकी

तरह प्रतीत हुए। उन्होंने मुझे सलाह दी कि फिरोजशाह मेहता और रानडेके परामर्शसे काम करो। सर फिरोजशाह तो हमारे संरक्षक बन गये। इसलिए उनकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य थी। जो कुछ वे कहते, मैं चुपचाप स्वीकार करता। बंबईके उस शेरने मुझे आज्ञापालनका मर्म सिखाया। उन्होंने मुझे अपना शागिर्द नहीं बनाया। उन्होंने आजमाइश भी नहीं की।

"जिस समय मैं उनसे (लोकमान्य तिलकसे) मिला, वे अपने साथियोंसे घिरे बैठे थे। उन्होंने मेरी बातें सुनीं और कहा—"आपका भाषण सार्वजनिक सभामें होना जरूरी है। पर आप जानते हैं कि यहां दलबंदी है। इससे ऐसा सभापति चाहिए जो किसी दल-विशेषका न हो। यदि इसके लिए आप डाक्टर भांडारकरसे मिलें तो उत्तम हो।" मैंने उनकी सलाह स्वीकार की और लौट आया। सिवा इसके कि स्नेहमय मिलापके भाव प्रदर्शित करके उन्होंने मेरी घबराहट दूर की, नहीं तो लोकमान्यका उस समय मुझपर कोई अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा।...डाक्टर भांडारकरने मेरा उसी तरह स्वागत किया जिस तरह गुरु शिष्यका करता है। उनके चेहरेसे विद्वत्ता टपक रही थी। मेरे हृदयमें श्रद्धाका ज्वार उमड़ आया, पर गुरु-भक्तिका भाव फिर भी न भरा। वह हृदय-सिंहासन उस समय भी खाली रह गया। मुझे अनेक धीर-वीर मिले, पर राजा-की पदवी तक कोई न पहुंच सका।

"पर जिस समय मैं श्रीयुत गोखलेसे मिलने गया, बातें एकदम बदल गईं।....यह मिलन ठीक उसी प्रकार हुआ था जैसे दो चिर बिछोही मित्रों या माता और पुत्रका होता है। उनकी नम्र आकृति देखकर मेरा हृदय शांत हुआ। दक्षिण अफ्रीका तथा मेरे संबंधमें उन्होंने जिस तरह पूछताछ की उससे मेरा हृदय श्रद्धासे भर गया। उनसे विदा होते समय मैंने अपने दिलमें कहा—"बस, मेरे मनका आदमी मिल गया।"...१९०१ में दूसरी बार दक्षिण अफ्रीकासे लौटा। इस बार

मेरी घनिष्टता और भी प्रगाढ़ हो गई। उन्होंने अपने हाथमें मेरा हाथ लेकर पूछना शुरू किया—"किस तरह रहते हो? क्या कपड़े पहनते हो? भोजन कैसा होता है?" मेरी माता भी इतनी तत्पर नहीं थी। मेरे और उनके बीचमें कोई अंतर नहीं था। यह चक्षुराग था, अर्थात् प्रथम दर्शनसे ही हृदयमें प्रगाढ़ प्रेमका अंकुर जम गया था। (पृष्ठ २०३)

इस उद्धरणमें गांधीजीने भारतके तत्कालीन नेताओंका जो सृजनात्मक चित्रण उपस्थित किया है वह उनकी पारदर्शिनी दृष्टि, उनकी विश्लेषण शक्ति, उनकी तीव्र और प्रखर अनुभूति को स्पष्ट करता है। गोखले-के चित्रमें कितनी आत्मीयता है। वह उनके अपने मानवताने छलकते हुए हृदयकी झांकी है। श्री जवाहरलाल नेहरूने अपने जीवन-चरितमें गांधीजीके विचारोंकी अच्छी खासी आलोचना की है; पर सब कुछ कहकर उन्होंने लिखा है—"लेकिन वे अपने भारतको अच्छी तरह जानते हैं।" इसी तरह और लोगोंको भी उनसे मत-भेद हो सकता है, पर वे मानेंगे कि गांधीजी व्यक्तिको पहचानते थे। गोखलेसे उनका बहुत-सी बातोंपर मतभेद था; परंतु उन्हींके शब्दोंमें "पर इससे हम लोगोंमें किसी तरहका अंतर नहीं आ सका।" आही नहीं सकता था, क्योंकि अहिंसाका पुजारी प्रेमके अतिरिक्त और कुछ नहीं कर सकता और प्रेमकी शर्त है मित्रता, दासता नहीं।

लोकमान्य तिलकसे उनके मतभेदकी बात सब जानते हैं। उनके जीवनकालमें और मृत्युके बाद गांधीजीने उन मतभेदोंको कभी कम करके बताने या भुलानेकी चेष्टा नहीं की, पर इसी कारण वे लोकमान्यका सही मूल्यांकन करनेमें नहीं झिझके। उनकी मृत्यु पर उन्होंने लिखा—

"लोकमान्य बालगंगाधर तिलक अब संसारमें नहीं हैं। यह विश्वास करना कठिन मालूम होता है कि वे संसारसे उठ गए। हम लोगोंके समयमें ऐसा दूसरा कोई नहीं जिसका जनतापर लोकमान्य जैसा प्रभाव हो। हजारों देश-वासियोंकी उनपर जो भक्ति और श्रद्धा थी वह

अपूर्व थी। यह अक्षरशः सत्य है कि वे जनता के आराध्यदेव थे, प्रतिमा थे, उनके वचन हजारों आदमियोंके लिए नियम और कानूनसे थे। पुरुषोंमें पुरुष-सिंह संसारसे उठ गया। केसरीकी घोर गर्जना विलीन हो गई।"

अनुभूतिकी तीव्रता और वास्तविकताका और भी सुंदर चित्रण उनके संस्मरणोंमें हुआ है। घटनाओं और वार्तालापके द्वारा उन्होंने वर्ण्य व्यक्तिकी बाहरी और आंतरिक सुंदरता-कुरूपताकी रेखाओंको इस प्रकार उभार दिया है कि इसके पूर्ण परिपाकके साथ-साथ व्यक्तिका संपूर्ण चित्र हृदयपर पत्थरकी लीक बन जाता है। कस्तूरबा गांधी, बाला-सुंदरम्, देशबंधुदास, घोषाल बाबू तथा बासंती देवी आदिके संस्मरण इस दृष्टिसे बहुत ही सुंदर बने हैं:

"मैं घोषालबाबूके पास गया। उन्होंने मुझे नीचेसे ऊपर तक देखा। कुछ मुस्कराये और बोले "मेरे पास कारकुनका काम है। करोगे?"

मैंने उत्तर दिया—"जरूर करूंगा। अपने बस भर सबकुछ करनेके लिए मैं आपके पास आया हूं।"

"नवयुवक, सच्चा सेवा-भाव इसीको कहते हैं।"

कुछ स्वयंसेवक उनके पास खड़े थे। उनकी ओर मुखातिब होकर कहा—"देखते हो, इस नवयुवकने क्या कहा?"

फिर मेरी ओर देखकर कहा, "तो लो यह चिट्ठियोंका ढेर... देखते हो न कि सैकड़ों आदमी मुझसे मिलने आया करते हैं। अब मैं उनसे मिलूं या जो लोग फालतू चिट्ठियां लिखा करते हैं उन्हें उत्तर दूं। इनमें बहुतेरी तो फिजूल होंगी, पर तुम सबको पढ़ जाना। जिनकी पहुंच लिखना जरूरी है उनकी पहुंच लिख देना और जिनके उत्तरके लिए मुझसे पूछना हो पूछ लेना।"

उनके इस विश्वाससे मुझे बड़ी खुशी हुई। श्री घोषाल मुझे पहचानते न थे।... मेरा इतिहास जाननेके बाद तो कारकुनका काम देनेमें उन्हें जरा शर्म मालूम हुई, पर मैंने उन्हें निश्चिन्त कर दिया—"कहां मैं

और कहां आप ! . . . . यह काम सौंपकर मुझपर तो आपने एहसान ही किया है; क्योंकि मुझे आगे चलकर कांग्रेसमें काम करना है ।"

घोषालबाबू बोले, "सच पूछो तो यही सच्ची मनोवृत्ति है, परंतु आजकलके नवयुवक ऐसा नहीं मानते । पर मैं तो कांग्रेसको उसके जन्मसे जानता हूं। उसकी स्थापना करनेमें मि० ह्यूमके साथ मेरा भी हाथ था ।"

हम दोनोंमें खासा संबंध हो गया । दोपहरके खानेके समय वह मुझे साथ रखते । घोषालबाबूके बटन भी 'बेरा' लगाता । यह देखकर 'बेरा' का काम खुद मैंने लिया । मुझे वह अच्छा लगता । बड़े-बूढ़ोंकी ओर मेरा बड़ा आदर रहता था । जब वह मेरे मनोभावोंसे परिचित हो गये तब अपना निजी सेवाका सारा काम मुझे करने देते थे । बटन लगवाते हुए मुंह पिचकाकर मुझसे कहते—"देखो न, कांग्रेसके सेवकको बटन लगाने तक की फुरसत नहीं मिलती, क्योंकि उस समय भी वे काममें लगे रहते हैं ।" इस भोलेपनपर मुझे मनमें हँसी तो आई; परंतु ऐसी सेवा-के लिए मनमें अरुचि बिलकुल न हुई ।"

बासंती देवीका देशबन्धुकी मृत्युके बाद, जो चित्र गांधीजीने खींचा है वह बहुत ही मानवीय, बहुत ही करुण और बहुत ही यथार्थ है :

"वैधव्यके बाद पहली मुलाकात उनके दामादके घर हुई । उनके आस-पास बहुतेरी बहनें बैठी थीं । पूर्वाश्रममें तो जब मैं उनके कमरेमें जाता तो खुद वही सामने आतीं और मुझे बुलातीं । वैधव्यमें मुझे क्या बुलातीं । पुतलीकी तरह स्तम्भित बैठी अनेक बहनोंमेंसे मुझे उन्हें पहचानना था । एक मिनिट तक तो मैं खोजता ही रहा । मांगमें सिंदूर, ललाटपर कुंकुम मुंहमें पान, हाथमें चूड़ियां और साड़ी पर लैस, हँस-मुख चेहरा इनमेंसे एक भी चिह्न मैं न देखूं तो बासन्ती देवीको किस तरह पहचानूं ? जहां मैंने अनुमान किया था कि वे होंगी वहां जाकर बैठ गया और गौरसे मुख-मुद्रा देखी । देखना असह्य हो गया । छातीको पत्थर बनाकर आश्वासन देना तो दूर ही रहा । उनके मुखपर सदा शोभित हास्य आज कहां था ?

मैंने उन्हें सांत्वना देने, रिझाने और बातचीत करानेकी अनेक कोशिशें कीं। बहुत समयके बाद मुझे कुछ सफलता मिली। देवी जरा हँसी। मुझे हिम्मत हुई और मैं बोला, "आप रो नहीं सकतीं। आप रोओगी तो सब लोग रोवेंगे। मोना (बड़ी लड़की) को बड़ी मुश्किलसे चुपकी रखा है। देवी (छोटी लड़की) की हालत तो आप जानती ही हैं। सुजाता (पुत्रवधू) फूट-फूटकर रोती थी, सो बड़े प्रयाससे शांत हुई है। आप दया रखियेगा। आपसे अब बहुत काम लेना है।"

"वीरांगनाने दृढ़तापूर्वक जबाब दिया—"मैं नहीं रोऊंगी। मुझे रोना आता ही नहीं।"

"मैं इसका मर्म समझा, मुझे संतोष हुआ। रोनेसे दुःखका भार हल्का हो जाता है। इस विधवा बहनको तो भार हल्का नहीं करना था, उठाना था। फिर रोती कैसे! अब मैं कैसे कह सकता हूं—"लो चलो, हम भाई-बहन पेटभर रो लें और दुःख कम कर लें।"

× × ×

"बासंती देवीने अबतक किसी के देखते, आंसूकी एक बूंद तक नहीं गिराई है। फिर भी उनके चेहरे पर तेज तो आ ही नहीं रहा है। उनकी मुखाकृति ऐसी हो गई है कि मानो भारी बीमारीसे उठी हों। यह हालत देखकर मैंने उनसे निवेदन किया कि थोड़ा समय बाहर निकलकर हवा खाने चलिए। मेरे साथ मोटरमें तो बैठीं; पर बोलने क्यों लगीं। मैंने कितनी ही बातें चलाईं—वे सुनती रहीं; पर खुद उसमें बरायनाम शरीक हुईं। हवा खोरीकी तो, पर पछताईं। सारी रात नींद न आई। "जो बात मेरे पतिको अतिशय प्रिय थी वह आज इस अभागिनीने की। यह क्या शोक है।" ऐसे विचारोंमें रात हो गई।

× × ×

"वैधव्य प्यारा लगता है, फिर भी असह्य मालूम होता है। सुधन्वा खौलते हुए तेलके कड़ाहमें भटकता था और मुझ जैसे दूर रहकर देखनेवाले

उसके दुःख की कल्पना करके कांपते थे। सती स्त्रियो, अपने दुःखको तुम संभालकर रखना। वह दुःख नहीं, सुख है। तुम्हारा नाम लेकर बहुतेरे पार उतर गए हैं और उतरेंगे। वासंती देवीकी जय हो!" (पृष्ठ ५५७)

भावनाकी अतिरंजनाने इस करुण चित्रको कितना सशक्त बना दिया है। लेकिन जहां उन्होंने अपने युगके महापुरुषोंपर लिखा, वहां लुटावन, फकीरी और चार निडर युवक जैसे अनेक साधारण व्यक्तियोंको भी नहीं छोड़ा है। ये कुछ बानगीके चित्र हैं। पुस्तक ऐसे चित्रोंसे भरी है। ये चित्र किसी उद्घोषित साहित्यिकके द्वारा नहीं लिखे गए; बल्कि एक ऐसे मानव द्वारा लिखे गये हैं जिसका समस्त जीवन 'जीनेकी कला'के, सत्यके प्रयोग करनेमें बीता था, जिसने जीना सीखते-सीखते जिलाना (अहिंसाको) सीख लिया था, जो सबसे पहले और सबसे पीछे मात्र मनुष्य था और ऐसा मनुष्य ही मनुष्यको नहीं पहचानेगा तो कौन पहचानेगा।

चित्र इतने ही नहीं हैं। प्रयत्न करनेपर जितनी सामग्री मिल सकी वह इस पुस्तकमें दे दी गई है, पर हम जानते हैं कि अभी बहुत शेष है। अपने पाठकोंसे हमारी प्रार्थना है कि यदि वे ऐसी किसी सामग्रीके बारेमें जानते हों तो हमें सूचना देनेकी कृपा करें। उनके सुझावोंका हम कृतज्ञता-पूर्वक स्वागत करेंगे।

इस पुस्तकके संकलनमें जिन मान्य व प्रिय बंधुओंने मुझे सहायता दी है, उनका मैं हृदयसे आभारी हूं। डा० युद्धवीर सिंह और जैन पुस्तकालय, दिल्लीका मैं विशेष रूपसे आभारी हूं। 'नवजीवन'के अनेक अलभ्य अंक उनके पास न मिल जाते तो संग्रह एकदम अधूरा रह जाता।

पो० बॉ० ११६७, दिल्ली
रवीन्द्र-जयंती, ९ मई १९५१

—विष्णु प्रभाकर

विषय-सूची

मेरे समकालीन

मेरे समकालीन

: १ :

हकीम अजमल खाँ

हकीम साहब अजमलखांके स्वर्गवाससे देशका एक सबसे सच्चा सेवक उठ गया। हकीम साहबकी विभूतियां अनेक थीं। वे महज कामिल हकीम ही नहीं थे जो गरीबों और धनियों, सबके रोगोंकी दवा करता हैं। वे थे एक दरबारी देशभक्त, यानी अगर्चे कि उनका वक्त राजों-महाराजोंके साथमें बीतता था, मगर थे वे पक्के प्रजावादी। वे बहुत बड़े मुसलमान थे और उतने ही बड़े हिन्दुस्तानी थे। हिन्दू और मुसलमान दोनोंसे ही वे एक-सा प्रेम करते थे। बदलेमें हिन्दू और मुसलमान दोनों ही एक समान उनसे मुहब्बत रखते थे, उनकी इज्जत करते थे। हिन्दू मुसलमान एकतापर वे जान देते थे। हमारे झगड़ोंके कारण उनके अन्तिम दिन कुछ दुःखजनक हो गए थे, मगर अपने देश और देश-बन्धुओंमें उनका विश्वास कभी नष्ट नहीं हुआ। उनका विचार था कि आखिर दोनों सम्प्रदायोंको मेल करना ही पड़ेगा। यह अटल विश्वास लेकर उन्होंने एकताके लिए प्रयत्न करना कभी नहीं छोड़ा। हालांकि उन्हें सोचनेमें कुछ समय लगा, लेकिन अन्तमें वे असहयोग आन्दोलनमें कूद ही पड़े, अपनी प्रियतम और सबसे बड़ी कृति तिब्बी कॉलेजको खतरेमें डालते वे झिझके नहीं। इस कॉलेजसे उनका इतना प्रबल अनुराग था, जिसका अन्दाजा सिर्फ वे ही लगा सकते हैं जो हकीमजीको भलीभांति जानते थे।

हकीमजीके स्वर्गवाससे मैंने न सिर्फ एक बुद्धिमान और दृढ़ साथी ही खोया है, बल्कि एक ऐसा मित्र खोया है जिसपर मैं आड़े अवसरोंपर भरोसा कर सकता था। हिन्दू-मुसलिम एकताके बारेमें वे हमेशा ही मेरे रहबर थे। उनकी निर्णय-शक्ति, गंभीरता और मनुष्य-प्रकृतिका ज्ञान ऐसे थे कि वे बहुत करके सही फैसला ही किया करते थे। ऐसा आदमी कभी मरता नहीं है। यद्यपि उनका शरीर अब नहीं रहा, मगर उनकी भावना तो हमारे साथ बराबर रहेगी और वह अब भी हमें अपना कर्तव्य पूरा करने-को बुला रही है। जबतक हम सच्ची हिन्दू-मुसलिम एकता पैदा नहीं कर लेते, उनकी याद बनाये रखनेके लिए हमारा बनाया कोई स्मारक पूरा हुआ नहीं कहा जा सकता। परमात्मा ऐसा करें कि जो काम हम उनके जीतेजी नहीं कर सके, वह उनकी मौतसे करना सीखें।

हकीमजी कोरे स्वप्नदृष्टा ही नहीं थे। उन्हें विश्वास था कि मेरा स्वप्न एक दिन पूरा होगा ही। जिस तरह तिब्बी कॉलेजके द्वारा उनका देशी चिकित्साका स्वप्न फला, उसी तरह अपना राजनैतिक स्वप्न भी उन्होंने जामिया मिलियाके जरिए पूरा करनेकी कोशिश की। जबकि जामिया मरणासन्न हो रही थी, उस समय हकीम साहबने प्रायः अकेले ही उसे अलीगढ़से दिल्ली लानेका सारा भार उठाया। मगर जामियाको हटानेसे खर्च भी बढ़ा। तबसे वे अपनेको जामियाकी आर्थिक स्थिरताके लिए खास तौरपर जिम्मेवार मानने लगे थे। उसके लिए धन जमा करनेमें सबसे मुख्य मनुष्य वे ही थे, चाहे वे अपने ही पाससे दें या अपने दोस्तोंसे चन्दे दिलवाएँ। इस समय जो स्मारक देश तुरंत ही बना सकता है, और जिसका बनाया जाना अनिवार्य है, वह है जामिया मिलियाकी आर्थिक स्थितिको पक्की कर देना। (हिं० न०, ५.१.२८)

\. . .   . .

एक जमाना था, शायद सन् १५की सालमें, जब मैं दिल्ली आया था, हकीम साहबसे मिला और डाक्टर अंसारीसे। मुझसे कहा गया कि

हमारे दिल्लीके बादशाह अंग्रेज नहीं हैं, बल्कि ये हकीम साहब हैं। डाक्टर अंसारी तो बड़े बुजुर्ग थे, बहुत बड़े सर्जन थे, वैद्य थे। वे भी हकीम साहबको जानते थे, उनके लिए उनके दिलमें बहुत कद्र थी। हकीम साहब भी मुसलमान थे, लेकिन वे तो बहुत बड़े विद्वान् थे, हकीम थे। यूनानी हकीम थे; लेकिन आयुर्वेदका उन्होंने कुछ अभ्यास किया था। उनके वहां हजारों मुसलमान आते थे और हजारों गरीब हिंदू भी आते थे। साहूकार, धनिक मुसलमान और हिंदू भी आते थे। एक दिनका एक हजार रुपया उनको देते थे। जहांतक मैं हकीम साहबको पहचानता था, उन्हें रुपएकी नहीं पड़ी थी, लेकिन सबकी खिदमतकी खातिर उनका पेशा था। वह तो बादशाह-जैसे थे। आखिरमें उनके बाप-दादा तो चीनमें रहते थे, चीनके मुसलमान थे, लेकिन बड़े शरीफ थे। जितने हिंदू लोग मेरे पास आए, उनसे पूछा कि आपके सरदार यहां कौन हैं? श्रद्धानंदजी? श्रद्धानंदजी यहां बड़ा काम करते थे। लेकिन नहीं, दिल्लीके सरदार तो हकीम साहब थे। क्यों थे? क्योंकि उन्होंने हिंदू-मुसलमान सबकी सेवा ही की। यह सन् '१५के सालकी बात मैंने कही। लेकिन बादमें मेरा ताल्लुक उनसे बहुत बढ़ गया और उनको और पहचाना। (प्रा० प्र०, १३.९.४७)

...   .

कल हकीम अजमल खां साहबकी वार्षिक तिथि थी। वह हिंदुस्तानके हिंदू, मुसलमान, सिख, क्रिस्टी, पारसी, यहूदी सबके प्रिय थे। वह पक्के मुसलमान थे, मगर वह इस खूबसूरत देशके रहनेवाले सब लोगोंकी समान सेवा करते थे। उनकी मेहनतकी सबसे बढ़िया यादगार दिल्लीका मशहूर तिब्बी कॉलेज और अस्पताल था। वहांपर हर श्रेणीके विद्यार्थी पढ़ते थे और वहां यूनानी, आयुर्वेदिक और पश्चिमी डाक्टरी सब सिखाई जाती थी। सांप्रदायिकताके जहरके कारण यह संस्था भी, जिसमें किसी तरह सांप्रदायिकताको स्थान न था, बंद

हो गई है। मेरी समझमें इसका कारण इतना ही हो सकता है कि इस कालेजको बनानेवाले हकीम साहब मुसलमान थे, फिर वे चाहे कितने ही महान् और भले क्यों न रहे हों, और भले ही उन्होंने सबका मान संपादन क्यों न किया हो। उस स्वर्गवासी देशभक्तकी स्मृति अगर हिंदु-मुस्लिम फिसादको दफन नहीं कर सकती तो कम-से-कम इस कालेजको तो नया जीवन दे ही दे। (प्रा० प्र०, २६.१२.४७)

: २ :

सोराबजी शापुरजी अडाजनिया

नवीन बस्तीवाला कानून भी सत्याग्रहमें शामिल कर लिया गया। ...इस कानूनमें एक यह भी धारा थी कि ट्रांसवालमें आनेवाले नवीन आदमीको यूरोपकी किसी भी एक भाषाका ज्ञान होना जरूरी है। इसलिए कमेटीने किसी ऐसे ही आदमीको ट्रांसवालमें लानेको सोचा, जो अंग्रेजी जानता हो, पर पहले कभी ट्रांसवालमें न रहा हो। कितने ही भारतीय उम्मीदवार खड़े हुए; पर कमेटीने उनमेंसे सोराबजी शापुरजी अडाज-नियाकी प्रार्थनाको ही बतौर कसौटी (टेस्ट केस)के मान्य किया।

सोराबजी पारसी थे। नामसे ही स्पष्ट है। सारे दक्षिण अफ्रीकामें पारसियोंकी जन-संख्या सौसे ज्यादा नहीं होगी। पारसियोंके विषयमें दक्षिण अफ्रीकामें भी मेरा वही मत था जो मैंने भारतवर्षमें प्रकट किया है। संसार भरमें एक लाखसे ज्यादा पारसी नहीं होंगे; परन्तु इतनी छोटी-सी जाति अपनी प्रतिष्ठाकी रक्षा कर रही है, अपने धर्मपर दृढ़ है और उदारतामें संसारकी एक भी जाति उसकी बराबरी नहीं कर सकती। इस जातिकी उच्चताके लिए इतना ही प्रमाण काफी होगा।

अनुभवसे ज्ञात हुआ कि सोराबजी उसमें भी रत्न थे। जब वह लड़ाईमें शामिल हुए तब मैं उनको वैसे ही मामूली तौरपर जानता था। लड़ाईमें शामिल होनेके लिए उन्होंने पत्र-व्यवहार किया था और उससे मेरा खयाल भी अच्छा हो गया था। मैं पारसी लोगोंके गुणोंका तो पुजारी हूं, परन्तु एक कौमकी हैसियतसे उनमें जो खामियां हैं उनसे मैं न तो अपरिचित था और न अब ही हूं। इसलिए मेरे दिलमें यह सन्देह जरूर मौजूद था कि शायद सोराबजी परीक्षामें उत्तीर्ण नहीं हो सकेंगे। पर मेरा यह नियम था कि सामनेवाला मनुष्य जब इसके विपरीत बात कर रहा हो तब ऐसे शकपर अधिक ध्यान नहीं देना चाहिए। इसलिए मैंने कमेटीसे यह सिफारिश की कि सोराबजी अपने पत्रमें जो दृढ़ता जाहिर कर रहे हैं उसपर हमें विश्वास कर लेना चाहिए। फल यह हुआ कि सोराबजी प्रथम श्रेणीके सत्याग्रही साबित हुए। लम्बी-से-लम्बी कैद भोगनेवाले सत्याग्रहियोंमें वह भी एक थे। इतना ही नहीं, बल्कि उन्होंने तो सत्याग्रहका इतना गहरा अध्ययन कर लिया था कि उसके विषयमें वह जो कुछ भी कहते, सबको सुनना पड़ता। उनकी सलाहमें हमेशा दृढ़ता, विवेक, उदारता, शान्ति आदि गुण प्रकट होते। विचार कायम करनेमें वह जल्दी तो कदापि नहीं करते थे और एक बार विचार कायम कर लेनेपर वह कभी उसे बदलते भी नहीं थे। जितने अंशोंमें उनमें पारसीपन था, और वह उनमें ठूंस-ठूंसकर भरा हुआ था, उतना ही भारतीयपन भी था। संकीर्ण जाति-अभिमान जैसी वस्तु तो उनमें किसी दिन भी नहीं पाई गई। लड़ाई खतम होनेपर डा० मेहताने अच्छे सत्याग्रहियोंमेंसे किसीको इंग्लैंड भेजकर बैरिस्टर बनानेके लिए एक छात्रवृत्ति दी थी। उसके लिए योग्य छात्र चुननेका काम मुझपर ही रक्खा गया था। दो तीन सुयोग्य भारतीय थे। पर समस्त मित्र-मंडलको, दृढ़ता तथा स्थिरतामें सोराबजीके मुकाबलेमें खड़ा होने योग्य, कोई नहीं मिला, इसलिए उन्हींको चुना गया। ऐसे एक भारतीयको इंग्लैंड भेजनेमें मुख्य उद्देश्य यही था कि वह लौटकर

दक्षिण अफ्रीकामें मेरे बाद मेरा स्थान ग्रहण कर जातिकी सेवा कर सकें। कौमका आशीर्वाद और सम्मान लेकर सोराबजी इंग्लैंड पहुंचे। बैरिस्टर हुए। गोखलेसे तो उनका परिचय दक्षिण अफ्रीकामें ही हो चुका था। पर इंग्लैंड जानेपर उनका संबंध और भी दृढ़ हो गया। सोराबजीने उनके मनको हर लिया। गोखलेने उनसे यह आग्रह भी किया कि जब कभी वह भारतमें आवें तब 'भारत-सेवक-समिति'के सभ्य जरूर होवें। विद्यार्थीवर्गमें वह बड़े प्रिय हो गए थे। प्रत्येक मनुष्यके दुखमें वह भाग लेते। इंग्लैंडके न तो आडम्बरकी उनपर जरा भी छाप पड़ी और न वहांके ऐशो-आरामकी। वह जब इंग्लैंड गये तब उनकी उम्र ३० सालसे ऊपर थी। उनका अंग्रेजीका अध्ययन ऊंचे दर्जेका न था। व्याकरण वगैरह सब भूलभाल गये थे। पर मनुष्यके उद्योगके सामने ये कठिनाइयां कब खड़ी रह सकी हैं? शुद्ध विद्यार्थी-जीवन व्यतीतकर, सोराबजी परीक्षाओंमें उत्तीर्ण होते गये। मेरे जमानेकी बैरिस्टरीकी परीक्षा आजकलकी परीक्षाकी तुलनामें कुछ आसान थी। इसलिए आजकलके बैरिस्टरोंको अधिक अभ्यास करना पड़ता है, पर सोराबजी पीछे नहीं हटे। इंग्लैंडमें जब एम्ब्युलैन्स कोरकी स्थापना हुई तब उसका आरंभ करनेवालोंमें वह भी थे और आखिर तक उसमें रहे। इस दलको भी सत्याग्रह करना पड़ा था। उसमेंसे कई फिसल गये थे; पर फिर भी जो अटल रहे, उनमें सोराबजी अग्रगण्य थे। यहांपर मुझे यह भी कह देना चाहिए कि इस दलको सत्याग्रहमें भी विजय ही मिली थी।

इंग्लैंडमें बैरिस्टर होकर सोराबजी जोहान्सबर्ग गये। वहांपर उन्होंने सेवा और वकालत दोनों साथ-ही-साथ शुरू कर दीं। दक्षिण अफ्रीकासे मुझे जो पत्र मिले उनमें सोराबजीकी तारीफ सभी करते थे। वह अब भी वैसे ही सादा मिजाज हैं, जैसे पहले थे, आडम्बर जरा भी नहीं है। छोटे-से-बड़ेतक सबसे हिल-मिलकर रहते हैं। मालूम होता है, परमात्मा जितना दयालु है, उतना ही शायद निठुर भी है। सोराबजीको

तीव्र क्षयने ग्रसा और कौमका नवीन प्रेम सम्पादनकर उसे दुखमें रोती हुई छोड़कर वह चल बसे। इस तरह परमात्माने कौमके दो पुरुष-रत्न छीन लिये---काछलिया[1] और सोराबजी !

पसन्दगी ही करनी हो तो मैं इन दोमेंसे किसे प्रथम पद दूं ? पर मैं तो इस तरहकी पसन्दगी ही नहीं कर सकता। दोनों अपने-अपने क्षेत्रमें अप्रतिम थे। काछलिया शुद्ध मुसलमान और उतने ही शुभ भारतीय भी थे, उसी प्रकार सोराबजी भी शुद्ध पारसी और साथ ही उतने ही शुद्ध भारतीय थे।

यही सोराबजी पहलेपहल सरकारको नोटिस देकर केवल 'टेस्ट' अर्थात् कसौटीके लिए ट्रांसवाल आये। सरकार इसके लिए जरा भी तैयार नहीं थी। इसलिए वह एकाएक यही निश्चय नहीं कर सकी कि सोराबजीके साथ क्या करना चाहिए। सोराबजी तो जाहिरा तौरपर सरहद लांघकर ट्रांसवालमें आ धमके। परवाने जांचनेवाले सरकारी अधिकारी उनको जानते थे। सोराबजीने कहा---"मैं केवल इसी हेतुसे ट्रांसवालमें प्रवेश कर रहा हूं कि देखूं, सरकार मेरा क्या करती है। यदि आप मेरी अंग्रेजीकी परीक्षा लेना चाहें तो सवाल कीजिए। और अगर गिरफ्तार करना हो तो यह खड़ा हूं, गिरफ्तार कर लीजिए।" अधिकारीने कहा, "मुझे यह मालूम है कि आप अंग्रेजी जानते हैं। इसलिए परीक्षा तो कुछ लेना-लिवाना है नहीं और न आपको गिरफ्तार करनेके लिए मेरे पास कोई हुक्म ही है। इसलिए जहां जाना हो, आप सुखपूर्वक जाइए। यदि आपको गिरफ्तार करना आवश्यक मालूम हुआ तो आप जहां कहीं जावेंगे, सरकार स्वयं आपको गिरफ्तार कर लेगी।"

इस तरह सोराबजी तो अकल्पित रूपसे और अचानक जोहान्सबर्ग तक आ पहुंचे। हम सबने उनका बड़े हर्षके साथ स्वागत किया। किसीको

---

[1] परिचय पृष्ठ ५३ पर देखिए।

यह आशातक नहीं थी कि सरकार सोराबजीको ट्रांसवालके सरहदी स्टेशन वाक्सरस्टसे जरा भी आगे बढ़ने देगी ।

सरकारकी गफलतके कारण कहिए या जान-बूझकर निश्चित की हुई उसकी पहली नीतिके अनुसार कहिए, सोराबजी जोहान्सबर्ग तक आ पहुंचे । इधर न तो स्थानीय अधिकारीको इस विषयमें कुछ खयाल था कि सोराबजीके जैसे मामलेमें क्या करना चाहिए और न ऊपरसे ही उसे कोई सूचना मिली थी । सोराबजीके इस तरह एकाएक जोहान्सबर्ग पहुंच जानेसे कौमका उत्साह खूब बढ़ गया । कितने ही युवक तो यही समझ गये कि सरकार हार गई और शीघ्र ही उसे सुलह भी करनी होगी । पर यह स्वप्न अधिक देरतक न टिका । शीघ्र ही उन्हें इस बातको ठीक विपरीत सिद्ध होते हुए देखना पड़ा; बल्कि उन्होंने तो यह भी देख लिया कि सुलह होनेसे पहले शायद अनेक युवकोंको अपना बलिदान देना होगा ।

सोराबजीने अपने पहुंचते ही आनेकी खबर वहांके पुलिस सुपरिंटेंडेंटको देकर लिखा—"नवीन बस्तीवाले कानूनके अनुसार मैं अपनेको ट्रांसवालमें रहनेका हकदार मानता हूं ।" इसका कारण बताते हुए उन्होंने अपना अंग्रेजी भाषाका ज्ञान लिखाया । यह भी लिखा कि यदि अधिकारी उनकी अंग्रेजीकी परीक्षा लेना चाहें तो उसके लिए भी वह तैयार हैं । इस पत्रका कोई उत्तर न मिला । पर इसके कई दिन बाद उन्हें एक समन मिला । मामला अदालतमें पेश हुआ । न्यायालय भारतीय दर्शकोंसे खचाखच भर गया था । मामला शुरू होनेसे पहले, न्यायालयमें आये हुए भारतीयोंको वहीं अहातेमें एकत्रकर उनकी एक सभा की गई, जिसमें सोराबजीने एक जोशीला भाषण दिया । भाषणके अंतमें उन्होंने यह प्रतिज्ञा की—"पूरी जीत होनेतक जितनी बार जेलमें जाना होगा, मैं जानेको तैयार हूं और जितने भी संकट आवेंगे उन सबको झेलनेको तैयार हूं ।" अबतक इतना समय गुजर चुका था कि मैं सोराबजीको

अच्छी तरह जानने लग गया था। मैंने अपने मनमें यह भी समझ लिया था कि अवश्य ही सोराबजी एक शुद्ध रत्न सिद्ध होंगे। मुकदमा शुरू हुआ। मैं वकीलकी हैसियतसे खड़ा हुआ। समनमें कितने ही दोष थे। उन्हें दिखाकर मैंने सोराबजीपरसे समन उठा लेनेके लिए अदालतसे प्रार्थना की। सरकारी वकीलने अपनी दलीलें पेश कीं; पर अदालतने मेरी दलीलोंको स्वीकार कर समन हटा लिया। कौम मारे हर्षके पागल हो गई। सच पूछा जाय तो उसके इस तरह पागल होनेके लिए कारण भी था। दूसरा समन निकालकर फौरन ही सोराबजीपर पुनः मुकदमा चलाने की हिम्मत तो सरकारको किस तरह हो सकती थी? और हुआ भी यही। इसलिए सोराबजी सार्वजनिक कामोंमें लग गये।

पर यह छुटकारा हमेशाके लिए नहीं था। . . .कौमने सरकारकी खामोशीका अंत देखनेके लिए एक ऐसा नवीन काम कर डाला जिससे उसे अपनी खामोशी अलग रखकर सोराबजीपर फिर मुकदमा चलाना पड़ा। (द० अ० स० १९२५)

: ३ :

माधव श्रीहरि अणे

ऊर्ध्वं बाहुर्विरोम्येषः नैव कश्चिच्छृणोति मे।
धर्मादर्थश्च कामश्च सधर्मः किं न सेव्यते॥

"मैं ऊंचा हाथ करके पुकारता हूं; पर मेरी कोई सुनता नहीं। धर्म में ही अर्थ और काम समाया हुआ है, ऐसे सरल धर्म का लोग क्यों सेवन नहीं करते?"

बापूजी अणे पिछले शनिवारको दिल्लीमें कुछ मिनटके लिए मेरे

पास आ गए थे। हम साथ-साथ काम कर रहे हों या देखनेमें विरोधी दिशामें जा रहे हों, बापूजी आणे मेरे प्रति हमेशा प्रेम-भाव रखते हैं, इसलिए जब कभी उन्हें समय मिलता है, राम-राम कर जाते हैं, विचारोंका विनिमय कर जाते हैं और कभी-कभी तो उनके पास श्लोकोंका जो भंडार भरा पड़ा है उसमेंसे कुछ बानगी भी दे जाते हैं। दिल्लीमें जब वे मुझसे मिलने आये तब कांग्रेसमेंसे मेरे एकदम निकल जानेका उन्होंने कुछ विरोध-सा किया, मगर दरअसल तो उन्होंने मुझे इसपर बधाई ही दी। "कांग्रेसको या किसीको भी अब आपको नाराज नहीं करना चाहिए। आप तो अपने रास्ते जाएं। आपने अंग्रेजोंके प्रति जो लिखा है, वह मैंने देखा है। वे लोग सुननेवाले नहीं, पर आपको इससे क्या पड़ी है? आपका काम तो जिसको आप धर्म मानते हैं, वह सबको सुनानेका ही है। देखो न, अड़ीके समय कांग्रेसने ही आपकी न सुनी। स्वयं व्यासकी किसीने नहीं सुनी तो किसी दूसरेकी तो बात ही क्या है! महाभारत जैसा ग्रंथ लिखकर अन्तमें उन्होंने एक श्लोक लिखा है, जो 'भारत-सावित्री'के नामसे प्रख्यात है।" यह कहकर ऊपर लिखा श्लोक मुझे सुनाया। यह श्लोक सुनाकर उन्होंने मेरी श्रद्धाको दृढ़ किया और बताया कि मैंने जो मार्ग पसन्द किया है वह दुर्गम है। (ह० से०, १३.७.४०)

: ४ :

डॉ० मुख्तार अहमद अंसारी

आगामी वर्षके लिए डा० अंसारीका महासभाके अध्यक्ष-स्थानके लिए चुनाव होना प्रायः निश्चित-सा है। राष्ट्रीय क्षितिजपर इस चुनावमें आपत्ति करनेवाला कोई नहीं है। डा० अंसारी जितने अच्छे मुसलमान

हैं, उतने ही अच्छे भारतीय भी हैं। उनमें धर्मोन्मादकी तो किसीने शंका ही नहीं की है। वर्षोंतक वे एक साथ महासभाके सहमंत्री रहे हैं। हाल हीमें एकताके लिए किये गए उनके प्रयत्नोंको तो सब कोई जानते हैं और सच्ची बात तो यह है कि अगर बेलगांवमें मैं, कानपुरमें श्रीमती सरोजिनी नायडू और गोहाटीमें श्रीयुत श्रीनिवास आयंगार मार्गमें न आते तो इनमेंसे किसी भी अधिवेशनके अध्यक्ष डा० अंसारी ही चुने जाते; क्योंकि जब ये चुनाव हो रहे थे तब उनका नाम प्रत्येक आदमीकी जबानपर था; परन्तु कुछ खास कारणोंसे डा० अंसारीका हक आगे बढ़ा दिया गया और अब ज्ञात होता है कि विधिने उनके चुनावको इसीलिए आगे ढकेल दिया था कि वे ऐसे मौकेपर आवें जब देशको उनकी सबसे अधिक जरूरत हो। अगर हिन्दू-मुसलिम एकताकी कोई योजना दोनों पक्षोंको ग्रहण करने योग्य मालूम हो तो निःसन्देह डा० अंसारी ही उसे महासभाके द्वारा कर ले जा सकते हैं।...अकेली यही बात (सर्व-सम्मतिसे और हृदयसे एक मुसलमानको अपना अध्यक्ष चुनना) हिन्दुओंकी ओरसे इस बातका साफ प्रमाण होगा कि हिन्दू एकताको दिलसे चाहते हैं, और राष्ट्रीय विचारोंवाले मुसलमानोंमें डा० अंसारीकी अपेक्षा साधारणतया मुसलमान जनतामें अधिक आदृत कोई नहीं है। इसलिए मेरे खयालसे तो यही अच्छा है कि अगले सालके लिए डा० अंसारी ही राष्ट्रीय महासभाके कर्णधार हों; क्योंकि केवल किसी योजनाको मंजूर कर लेना ही हमारे लिए काफी नहीं है। दोनों पक्षों द्वारा उसे मंजूर करानेकी बनिस्बत उसे कार्यमें परिणत करना शायद कहीं अधिक जरूरी है। और यदि हम मान लें कि दोनों पक्षोंका समाधान करनेवाली एक योजना मंजूर हो भी गई तो उसपर अमल करते समय बराबर सावधानीकी आवश्यकता होगी। डा० अंसारी ही ऐसे कामके लिए सबसे अधिक योग्य पुरुष हैं। इसलिए मैं आशा करता हूं कि सभी प्रान्त एकमतसे डा० अंसारीके नामको ही उस सर्वोच्च सम्मानके लिए

सूचित करेंगे जो कि राष्ट्रीय महासभाके अधीन है। (हि. न., २१.७.२७)

. . . .

'हरिजन'में उन सब महान् पुरुषोंकी मृत्युपर, जो इस संसारसे सिधार जाते हैं, साधारणतया मैं लिखता नहीं हूं। 'हरिजन' एक विशेष प्रवृत्तिसे संबंध रखनेवाला पत्र है। आम तौरपर उन्हीं व्यक्तियोंके स्वर्गवासके विषयमें इसमें लिखा जाता है जिनका कि हरिजनकार्यके साथ विशेष-रूपसे सम्बन्ध होता है। श्री कमला नेहरूके स्वर्गवासपर मैंने 'हरिजन'में जो नहीं लिखा उसमें मुझे खास तौरपर अपने ऊपर पाबंदी लगानी पड़ी। ऐसा करके मैंने करीब-करीब अपने साथ जुल्म किया। मगर डॉ० अंसारीके स्वर्गवासपर मुझे कोई ऐसा आत्मनिग्रह करनेकी जरूरत नहीं। कारण यह है कि वे निस्संदेह हकीम अजमल खांकी तरह ही हिंदू-मुस्लिम-ऐक्यके एक प्रतिरूप थे। कड़ी-से-कड़ी परीक्षाके समय भी वे अपने विश्वाससे कभी डिगे नहीं। वे एक पक्के मुसलमान थे। हजरत मुहम्मद साहबकी जिन लोगोंने जरूरतके वक्त मदद की थी, वे उनके वंशज थे और उन्हें इस बातका गर्व था। इस्लामके प्रति उनमें जो दृढ़ता थी और उसका उन्हें जो अगाढ़ ज्ञान था उस दृढ़ता और उस ज्ञानने ही उन्हें हिंदू-मुस्लिम-ऐक्यमें विश्वास करनेवाला बना दिया था। अगर यह कहा जाय कि जितने उनके मुसलमान मित्र थे उतने ही हिन्दू मित्र थे तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी। सारे हिन्दुस्तानके काबिल-से-काबिल डॉक्टरोंमें उनका नाम लिया जाता था। किसी भी कौमका गरीब आदमी उनसे सलाह लेने जाय, उसके लिए बेरोकटोक उनका दरवाजा खुला रहता था। उन्होंने राजा-महाराजाओं और अमीर घरानोंसे जो कमाया वह अपने जरूरतमंद दोस्तोंमें दोनों हाथोंसे खर्च किया। कोई उनसे कुछ मांगने गया तो कभी ऐसा नहीं हुआ कि वह उनकी जेब खाली किये बगैर लौटा हो। और उन्होंने जो दिया उसका कभी हिसाब नहीं रखा। सैकड़ों पुरुषों और स्त्रियोंके लिए वह एक भारी सहारा थे। मुझे इसमें

तनिक भी संदेह नहीं कि सचमुच वह अनेक लोगोंको रोते-बिलखते छोड़ गये हैं। उनकी पत्नी बेगम साहिबा तो ज्ञानपरायणा हैं, यद्यपि वह हमेशा बीमार-सी रहती हैं। वह इतनी बहादुर हैं और इस्लामपर उनकी इतनी ऊंची श्रद्धा है कि उन्होंने अपने प्रिय पतिकी मृत्युपर एक आंसू भी नहीं गिराया। पर जिन अनेक व्यक्तियोंकी मैं याद करता हूं वे ज्ञानी या फिलॉसफर नहीं हैं। ईश्वरमें तो उनका विश्वास हवाई है, पर डॉ० अंसारीमें उनका विश्वास जीवित विश्वास था। इसमें उनका कोई कसूर नहीं। डॉक्टर साहबकी मित्रताके उनके पास ऐसे अनेक प्रमाण थे कि ईश्वरने जब उन्हें छोड़ दिया तब डॉक्टर साहबने उन्हें सहायता पहुंचाई। पर उन्हें यह क्या मालूम था कि डॉक्टर साहब भी उनकी मदद तभीतक कर सके, जबतक कि सिरजनहारने उन्हें ऐसा करने दिया। जिस कामको वह जीवित अवस्थामें पूरा नहीं कर सके, ईश्वर करे, वह उनकी मृत्युके बाद पूरा हो जाय। (ह० से०, १६.५.३६)

: ५ :

ख्वाजा अब्दुल मजीद

ख्वाजा अब्दुलमजीद आज मुझसे मीठा झगड़ा करनेके लिए आए थे। वह अलीगढ़ यूनिवर्सिटीके ट्रस्टी हैं। उनके पास काफी बड़ी जायदाद है, फिर भी उनका मन तो फकीर है। मैं जब वहां जाता था उन्हींके यहां खाना खाता था। उस जमानेमें स्वामी सत्यदेव (परिव्राजक) मेरे साथ रहते थे। उन्होंने हिमालयकी यात्रा की थी। ईश्वरने आज उनकी आंखें छीन ली हैं। उस समय वह बहुत काम करनेवाले थे। उन्होंने मुझसे कहा, "मैं तेरे साथ भ्रमण करूंगा, पर तू

मुसलमानके साथ खाता है, तो मैं तो नहीं खाऊंगा ।" यह सुनकर ख्वाजा साहबने कहा, "अगर उनका धर्म ऐसा कहता है तो मैं उनके लिए अलग इंतजाम करूंगा ।" ख्वाजा साहबके दिलमें यह नहीं आया कि यह स्वामी गांधीके साथ आया है तो क्यों नहीं मेरे यहां खाया । पुराने दिन फिर वापस आएंगे, जब हिंदू-मुसलमानोंके दिलोंमें एकता थी । ख्वाजा साहब अब भी राष्ट्रीय मुसलमानोंके प्रेसीडेंट हैं । दूसरे भी जो राष्ट्रीय भावनावाले मुसलमान लड़के उन दिनोंमें अलीगढ़से निकले थे वे आज जामियाके अच्छे-अच्छे विद्यार्थी और काम करनेवाले बने हुए हैं । यह सब सहाराके रेगिस्तानमें द्वीप समान हैं । ख्वाजा साहब ऐसे हैं कि उनको कोई मार डालेगा तो भी उनके मुंहसे बद्दुआ न निकलेगी । ऐसे लोग भले ही थोड़े हों, पर हमें तो अपनापन कायम रखना ही चाहिए । (प्रा० प्र०, ६.४.४७)

... ...

आप लोग देख रहे हैं कि मेरी दाहिनी ओर ख्वाजा साहब बैठे हुए हैं । इनके बारेमें एक बार मैं आपको पहले सुना चुका हूं कि किस प्रकार मैं स्वामी सत्यदेवके साथ इनके घर पहुंचा था और सत्यदेवजी मुसलमानके हाथका पानीतक नहीं पी सकते थे । लेकिन तब भी ख्वाजा साहबने बुरा नहीं माना और उदार स्वागत किया । उस समय ये अलीगढ़ यूनि-वर्सिटीके ट्रस्टी थे । बादमें असहयोग आंदोलनमें शरीक होनेके लिए इन्होंने ट्रस्टीपन छोड़ दिया । जहांतक मुझे याद है, जब मैं वहां गया तब वहां लीगकी मीटिंग हो रही थी । मैंने वहां पूछा था कि यहां भी कोई सत्याग्रही मिलेगा या नहीं ? मौ० मुहम्मदअली और मौ० शौकत-अली तब नजरबंद थे और उनके कैद होनेके बारेमें वहां सब मायूस हो रहे थे । तब ख्वाजा साहबने मुझसे कहा था कि आपको ढाई सत्याग्रही मिल सकते हैं । उनमें एक तो थे श्वेब कुरेशी, जो काफी प्रख्यात और बहादुर जवान थे । दूसरे साहब भी जो वहां मौजूद थे, पक्के सत्याग्रही थे । एक बार लोगोंने उन्हें मारा और उनके हाथमें दो जगह चोटें आईं, तब

भी वे शांत रहे और ताकत होनेपर भी मार सहन की; लेकिन जवाबमें हमला नहीं किया। इन दोनोंका परिचय करानेके बाद ख्वाजा साहबने कहा था कि आधा सत्याग्रही मैं हूं। और तबसे ख्वाजा साहब मेरे सगे भाईकी तरह बनकर रहे हैं। (प्रा० प्र०, १२.६.४७)

: ६ :

शेख अब्दुल्ला

(काश्मीरमें) शेख अब्दुल्ला साहब हैं। 'शेरे-काश्मीर' उसको कहते हैं, याने बाघ हैं, सिंह हैं। वह बड़ा तगड़ा है। आपने उसका चित्र तो देखा ही होगा। मैं तो उसको पहचानता भी हूं। उसकी बेगमको भी पहचानता हूं। बेगम तो आज यहां पड़ी है। एक आदमीसे जितना हो सकता है वह वे कर रहे हैं। वे कोई लड़नेवाले तो हैं नहीं। यों तो काश्मीरमें तगड़े मुसलमान पड़े हैं, तगड़े हिंदू भी पड़े हैं, राजपूत और सिख भी पड़े हैं। तो उसने तय कर लिया है कि जितना हो सकता है वह करूंगा। वह तो मुसलमान है। काश्मीरमें मुसलमानोंकी बड़ी आबादी है। यहांसे तो ये लोग बंदूक लेकर जाते हैं, लेकिन वहांके मुसलमान क्या करें और क्या न करें। मानाकि हम तो यहां जाहिल बन गए हैं, यहां कहो या पाकिस्तानमें कहो, कोई पागलपन बाकी नहीं रखा है। क्या वहां वे लोग भी जाहिल बन जायं और जिनको काटना है उनको काटें, औरतोंको काटें, बच्चोंको काटें, इस बुरे हालसे मरें? यह हाल काश्मीरका हो तो पं० जवाहरलाल नेहरू और मंत्रिमंडलके सभी सदस्योंने सोचा कि कुछ-न-कुछ तो किया जाय, तो इतने आदमी भेज दिये। वे क्या करें? इतना ही करें कि आखिरी दमतक लड़ते रहें और लड़ते-लड़ते मर जायं। जो लड़नेवाले

या शस्त्रधारी होते हैं उनका यही काम होता है कि वे आगे बढ़ते हैं और हमला करनेवालोंको रोक लेते हैं। वे मर जाते हैं, लेकिन पीछे तो कभी हटते नहीं हैं। इसका क्या परिणाम होगा, वह तो ईश्वर ही जानता है। लेकिन पुरुषार्थ करना तो हमारा काम है। वह हम करें। तो इन १५०० आदमियोंने पुरुषार्थ किया। लेकिन कब, जब वे श्रीनगरके बचानेमें सारे-के-सारे कट जाते हैं। पीछे श्रीनगरके साथ काश्मीर भी बच जायगा। इसके बाद क्या होगा ?

यही होगा न, कि काश्मीर काश्मीरियोंका होगा। शेख अब्दुल्ला जो कहते हैं वह तो मैं संपूर्णतया मानता हूं कि काश्मीर काश्मीरियोंका है, महाराजाका नहीं। लेकिन महाराजाने इतना तो कर लिया है कि उन्होंने शेख अब्दुल्लाको सब कुछ दे दिया और कह दिया है कि तुमको जो कुछ करना है सो करो। काश्मीरको बचाना है तो बचाओ। आखिर महाराजा तो काश्मीरको बचा नहीं सकते। अगर काश्मीरको कोई बचा सकता है, तो वहां जो मुसलमान हैं, काश्मीरी पंडित हैं, राजपूत हैं और सिख हैं, वे ही बचा सकते हैं। उन सबके साथ शेख अब्दुल्लाकी मोहब्बत है, दोस्ती है। हो सकता है कि शेख अब्दुल्ला काश्मीरका बचाव करते-करते मर जाते हैं, उनकी जो बेगम है वह मर जाती है, उनकी लड़की भी मर जाती है और आखिरमें काश्मीरमें जितनी औरतें पड़ी हैं, वे सब मर जाती हैं, तो एक भी बूंद पानी मेरी आंखोंमेंसे आनेवाला नहीं है। अगर लड़ाई होना ही हमारे नसीब में है तो लड़ाई होगी। दोनोंको ही लड़ना है या किस-किसके बीच होगी, यह तो भगवान ही जानता है। हमला-वरोंकी पीठपर अगर पाकिस्तानका बल नहीं है या पाकिस्तानका उसमें कोई उत्तेजन नहीं है, तो वे वहां कैसे टिक सकते हैं, यह मैं नहीं जानता। लेकिन माना कि पाकिस्तानकी उत्तेजना नहीं है, तो नहीं होगी। जब काश्मीर-के लोग लड़ते-लड़ते सब मर जायंगे तो काश्मीरमें कौन रह जायगा ? शेख अब्दुल्ला भी चले गए, क्योंकि उनका सिंहपन, बाघपन तो इसीमें

है कि वे लड़ते-लड़ते मर जाते हैं और मरते दमतक उन्होंने काश्मीरको बचाया, वहांके मुसलमानोंको तो बचाया ही, उसके साथ वहांके सिख और हिंदुओंको भी। वे ठेठ मुसलमान हैं। उनकी बीबी भी नमाज पढ़ती है। उन्होंने मधुर कंठसे मुझे 'औज अबिल्ला' सुनाया था। मैं तो उनके घर पर भी गया हूं। वे मानते हैं कि जो हिंदू और सिख यहां हैं वे पहले मरें और मुसलमान पीछे, यह हो नहीं सकता। वहां हिंदू और सिखकी तादाद कम है, तो भी क्या हुआ। अगर शेख अब्दुल्ला ऐसे हैं और उनका असर मुसलमानोंपर है तो हमारा सबका क्षेम है। (प्रा० प्र०, २९.१०.४७)

... ...

आपने यह भी देख लिया होगा कि शेख अब्दुल्ला साहब भी यहां आ गए हैं। जितने काश्मीरके लोग हैं वे तो सब उनको 'शेरे-काश्मीर' कहते हैं। और वह हैं भी ऐसा ही। बहुत काम उन्होंने कर लिया है और सबसे आला दर्जेका काम तो उन्होंने यह किया कि काश्मीरमें जितने हिंदू, मुसलमान और सिख रहते हैं उन सबको अपने साथ ले लिया है। तादादमें तो मुसलमान बहुत अधिक हैं और हिंदू और सिख तो मुट्ठीभर हैं, ऐसा हम कह सकते हैं, लेकिन तो भी उनको अपने साथ लेकर वे चलते हैं। वे खुश न रहें ऐसा कोई काम वे नहीं करते। पीछे हमने देखा कि वे यहां आते हुए जम्मू भी चले गए थे। जम्मूमें हिंदुओंकी तरफसे ज्यादतियां हुई हैं और काफी ज्यादतियां हुई हैं। उनका पूरा-पूरा बयान तो हमारे अखबारोंमें नहीं आया। महाराजा साहब भी वहां चले गए थे और उनके नए प्रधान मंत्री भी। तब वहां दो प्रधान मंत्री हैं क्या, या कुछ और हैं, मजाकमें मैं उनसे पूछ रहा था। उन्होंने कहा कि मुझको भी यह पता नहीं, मगर इतना तो है कि मैं वहांका इंतजाम कर रहा हूं, दो हों या एक हो। तो वे भी जम्मूमें चले गए थे। जम्मूमें जो कुछ हुआ, वह महाराजाने करवाया या उनके जो नए प्रधान मंत्री हैं उन्होंने करवाया, इसका तो मुझको पता नहीं; लेकिन वहां हुआ और हमारे लिए यह बड़ी शर्मनाक

बात है कि हम ऐसा करें। शेख अब्दुल्लाने यह सब देखकर भी अपना दिमाग बिगड़ने नहीं दिया और जम्मूमें जो हिंदू पड़े हैं उन्होंने भी उनका साथ दिया। (प्रा० प्र०, २७.११.४७)

: ७ :

डा० भीमराव अम्बेडकर

डा० अम्बेडकरके प्रति और अछूतोंका उद्धार करनेकी उनकी इच्छाके प्रति मेरा सद्भाव और उनकी होशियारीके प्रति आदर होनेके बावजूद मुझे कहना चाहिए कि वे इस मामलेमें बड़ी भयंकर भूल कर रहे हैं। उन्हें कड़वे अनुभवोंमेंसे गुजरना पड़ा है, शायद इस कारण अभी उनकी विवेक-बुद्धि इस चीजको नहीं समझ पा रही है। ऐसे शब्द कहते हुए मुझे दुःख होता है। मगर यह न कहूं तो प्राणोंसे प्यारे इन 'अछूतों' के हितोंके प्रति मैं वफादार नहीं रह सकता। सारी दुनियाके राज्यके लिए भी मैं उनके हकोंकी कुरबानी नहीं करूंगा। डा० अम्बेडकर तमाम हिंदुस्तानके 'अछूतों' की तरफसे बोलनेका दावा करते हैं, मगर उनका यह दावा सही नहीं है, यह बात मैं पूरी जिम्मेदारीके साथ कहता हूं। उनके कहनेके अनुसार तो हिंदू-समाजमें फूट पड़ जायगी। इसे खातिरसे देखते रहना मेरे लिए संभव नहीं है। (१३.११.३१ को लंदनमें अल्पमत समिति-की आखिरी बैठकमें दिये गए भाषणसे)

. . . .

बातें उसने बहुत मीठी कीं। उसमें सिद्धांत तो नहीं है, मगर ये सारी बातें सीधे ढंगसे कीं। उसने यह भी कहा कि मुझे राजनैतिक सत्ता चाहिए थी सो मिल गई। अब मुझे तो राष्ट्रीय काम करना है। अब मैं आपको

काममें रोड़े नहीं अटकाऊंगा । एम० सी० राजा यहांसे जाकर आर्डिनेंस बिलका समर्थन करें, वैसा मुझसे नहीं हो सकता । मैंने तो अपने आदमियोंसे कह दिया—अब तुम मुझसे इस काममें बहुत आशा न रखना । अब मुझे अपनी शक्ति देशके काममें खर्च करनी होगी । मगर आप बाहर निकलकर देशका काम शुरू करें तब हो । योंही कुछ नहीं हो जायगा ।

अपने बारेमें कहा—कहा जाता है कि सरकार मुझे रुपया देती है । मेरे जैसा भिखारी कोई नहीं । तीन सालसे मेरी कुछ भी कमाई नहीं । यह काम करते हुए मुझे अपना रुपया खर्च करना पड़ता है और मेरे मुकदमोंका काम कम होता है । सार्वजनिक कामके लिए समय भी जाता है और रुपया भी खर्च होता है । थोड़े-थोड़े मुकदमे मिलते हैं, उनसे अपना गुजर चलाता हूं । आज भी सावंतवाड़ीमें एक मुकदमा है । वहां जाते हुए रास्तेमें उतर गया हूं । (म० डा०, भाग २, १७.१०.३२)

. . . .

इसमें (अम्बेडकरमें) त्यागशक्ति है । कुरबानी करनेकी शक्ति है । यह दावानल तो सुलगेगा ही । हम हिंदू यदि सच्चे होंगे तो यरवदा-समझौतेकी तो स्वर्णभस्म बना सकेंगे, नहीं तो चार करोड़ अस्पृश्य सारे हिंदुस्तानका भक्षण कर जायंगे । (म० डा०, भाग २, ३.१२.३२)

. . . .

गत मई मास (सन् १९३६) में लाहौरके 'जात-पांत-तोड़क मंडल' का वार्षिक अधिवेशन होनेवाला था और डा० अम्बेडकर उसके सभापति चुने गये थे । लेकिन डा० अम्बेडकरने उसके लिए जो भाषण तैयार किया वह स्वागत-समितिको अस्वीकार्य प्रतीत हुआ, जिसके कारण वह अधिवेशन ही नहीं किया गया । यह बात विचारणीय है कि स्वागत-समितिका अपने चुने हुए सभापतिको इसलिए अस्वीकार कर देना कहांतक उचित है कि उनका भाषण उन्हें आपत्तिजनक मालूम पड़ा । जाति-प्रथा और हिंदू-शास्त्रोंके विषयमें डा० अम्बेडकरके

जो विचार हैं उन्हें तो समिति पहलेसे ही जानती थी। यह भी उसे मालूम था कि वह हिंदू-धर्म छोड़नेका बिलकुल स्पष्ट निर्णय कर चुके हैं। डा० अम्बेडकरने जैसा भाषण तैयार किया उससे कमकी उनसे उम्मीद ही नहीं की जा सकती थी। लेकिन समितिने, ऐसा मालूम पड़ता है, एक ऐसे व्यक्तिके मौलिक विचार सुननेसे जनताको वंचित कर दिया, जिसने कि समाजमें अपना एक अद्वितीय स्थान बना लिया है। भविष्यमें वह कोई भी बाना क्यों न धारण करें, मगर डा० अम्बेडकर ऐसे आदमी नहीं हैं जो अपनेको भूल जाने देंगे।

डा० अम्बेडकर स्वागत-समितिसे यों हार जानेवाले नहीं थे। उसके इन्कार कर देनेपर, उसके जवाबमें उन्होंने उस भाषणको अपने ही खर्चसे प्रकाशित किया है। उन्होंने आठ आने उसकी कीमत रखी है; लेकिन मैं उनसे कहूंगा कि वह उसे घटाकर दो आना या कम-से-कम चार आना कर दें तो ठीक होगा।

यह भाषण ऐसा है कि कोई सुधारक इसकी उपेक्षा नहीं कर सकता। रुढ़िचुस्त लोग भी इसे पढ़कर लाभ ही उठायेंगे। लेकिन इससे यह नहीं समझना चाहिए कि भाषणमें ऐतराज करने लायक कोई बात नहीं है। इसे तो पढ़ना ही इसलिए चाहिए, क्योंकि इसमें गहरे ऐतराजकी गुंजाइश है। डा० अम्बेडकर तो हिन्दू-धर्मके लिए मानों एक चुनौती हैं। हिंदूकी तरह पलने और एक जबरदस्त हिंदू द्वारा शिक्षित किये जानेपर भी, सवर्ण कहे जानेवाले हिंदुओं द्वारा अपने और अपनी जातिवालोंके साथ होने-वाले व्यवहारसे वह इतने निराश हो गये हैं कि वह न केवल उन्हें, बल्कि उस धर्मको भी छोड़नेका विचार कर रहे हैं जो उनकी तथा और सबकी संयुक्त विरासत है। उस धर्मको माननेका दावा करनेवाले एक भागके कारण सारे धर्मसे ही वह निराश हो गये हैं।

लेकिन इसमें अचरजकी कोई बात नहीं है; क्योंकि किसी प्रथा या संस्थाका निर्णय कोई उसके प्रतिनिधियोंके व्यवहारसे ही तो कर सकता

है। अलावा इसके, डा० अम्बेडकरको मालूम पड़ा है कि सवर्ण हिंदुओंके विशाल बहुमतने अपने उन सहधर्मियोंके साथ, जिन्हें उन्होंने अस्पृश्य शुमार किया है, न केवल निर्दयता या अमानुषिकताका ही व्यवहार किया है, बल्कि अपने व्यवहारका आधार भी अपने शास्त्रोंके आदेशको बनाया है और जब उन्होंने शास्त्रोंको देखना शुरू किया तो उन्हें मालूम पड़ा कि सचमुच उनमें अस्पृश्यता और उसके लगाये जानेवाले तमाम अर्थोंकी काफी गुंजाइश है। शास्त्रोंके अध्याय और श्लोक उद्धृत कर-करके उन्होंने तिहेरा दोषारोप किया है: (१) उनमें निर्दय व्यवहार करनेका आदेश है, (२) ऐसा व्यवहार करनेवालोंके व्यवहारका धृष्टता-पूर्वक समर्थन किया गया है, और (३) परिणामस्वरूप यह अनुसंधान किया गया है कि यह समर्थन शास्त्र-विहित है।

ऐसा कोई भी हिंदू, जो अपने धर्मको अपने प्राणोंसे अधिक प्यारा समझता है, इस दोषारोपकी गंभीरताकी उपेक्षा नहीं कर सकता, और फिर इस तरह निराश होनेवाले अकेले डा० अम्बेडकर ही नहीं हैं। वह तो उनमेंके एक ऐसे व्यक्तिमात्र हैं जो इस बातके प्रतिपादनमें कोई समझौता नहीं करना चाहते और ऐसे लोगोंमें वे सबसे योग्य हैं। निश्चय ही इन लोगोंमें वह अत्यंत जिद्दी स्वभावके हैं। ईश्वरकी कृपा समझो जो बड़े नेताओंमें ऐसे विचारके वही अकेले हैं और अभी भी वह एक बहुत छोटे अल्पमतके ही प्रतिनिधि हैं। मगर जो कुछ वह कहते हैं, कम या ज्यादा जोशके साथ वही बातें दलित जातियोंके और नेता भी कहते हैं। फर्क सिर्फ इतना है कि दूसरे—जैसे, रावबहादुर एम० सी० राजा और दीवान-बहादुर श्रीनिवासन्—हिन्दू-धर्म छोड़नेकी धमकी नहीं देते, पर उसीमें इतनी गुंजाइश देखते हैं कि जिससे हरिजनोंके विशाल जन-समूहको जो शर्मनाक कष्ट भोगना पड़ रहा है उसकी क्षति-पूर्ति हो जायगी।

पर उनके अनेक नेता हिंदू-धर्मको नहीं छोड़ते, इसी बातसे हम डॉ० अम्बेडकरके कथनकी उपेक्षा नहीं कर सकते। सवर्णोंको अपने विश्वास

और आचरणमें सुधार करना ही पड़ेगा। इसके अलावा, सवर्णोंमें जो लोग अपने ज्ञान और अनुभवके आधारपर शास्त्रोंकी प्रामाणिक व्याख्या कर सकें उन्हें शास्त्रोंके यथार्थ आशयका भी स्पष्टीकरण करना होगा। डॉ० अम्बेडकरके दोषारोपसे जो प्रश्न उठते हैं, वे ये हैं :

(१) शास्त्र क्या है ?

(२) आज जो-कुछ छपा हुआ मिलता है वह सभी क्या शास्त्रोंका अभिन्न भाग है, या उनके किसी भागको अप्रामाणिक क्षेपक मानकर छोड़ देना चाहिए ?

(३) इस तरह काट-छांटकर जिस अंशको हम स्वीकार करें वह अस्पृश्यता, जाति-प्रथा, दर्जेकी समानता, सहभोज और अंतर्जातीय विवाहोंके संबंधमें क्या कहता है ? इन सब प्रश्नोंकी अपने निबंधमें डॉ० अम्बेडकरने योग्यतापूर्वक छानबीन की है। (ह० से०, ११.७.३६)

. . . .

....अम्बेडकर साहबसे तो दूसरी आशा ही नहीं थी। वह मेरा हमेशा विरोधी रहा है। वह मुझे मार भी डाले तो मुझे अफसोस... न होगा। (का० क०, २०.६.४२)

: ८ :

बी अम्मा

यह मानना मुश्किल है कि बी अम्माका देहांत हो गया है। बी अम्माकी उस राजसी मूर्त्तिको या सार्वजनिक सभाओंमें उनकी बुलंद आवाजको कौन नहीं जानता। बुढ़ापा होते हुए भी उनमें एक नवयुवककी

शक्ति थी। खिलाफत और स्वराज्यके लिए उन्होंने अथक यात्राएं कीं। इस्लामकी कट्टर अनुयायिनी होते हुए भी उन्होंने देख लिया था कि इस्लामका कार्य, जहांतक मनुष्यके बस की बात है, भारतकी आजादीपर आधारित है। इसी निश्चयके साथ उन्होंने यह भी महसूस कर लिया था कि हिन्दुस्तानकी आजादी हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य और खादीके बिना असम्भव है। इसलिए वे अविराम एकताका प्रचार करती थीं। यह उनके लिए एक अटल सिद्धांत हो गया था। उन्होंने अपने तमाम विदेशी और मिलके कपड़ोंका परित्याग कर दिया था और खादी इस्तेमाल करती थीं। मौलाना मुहम्मदअली मुझसे कहते हैं कि बी अम्माने उन्हें यह हुक्म दे रक्खा था कि मेरे जनाजेपर सिवा खादीके और कुछ न होना चाहिए। जब-जब मुझे उनके बिछौनेके नजदीक जानेका सौभाग्य प्राप्त होता तब-तब वे स्वराज्य और एकताकी बातें पूछतीं। उनके बाद ही प्रायः वे खुदातालासे दुआ करतीं—"या खुदा, हिंदुओं और मुसलमानोंको ऐसी अक्ल बख्श कि जिससे ये एकताकी जरूरतको समझें और रहम करके स्वराज्य देखनेके लिए मुझे जिंदा रहने दें।" इस बहादुर और भद्र आत्माकी यादगारको बनाए रखनेकी सबसे अच्छी रीति यही है कि हम सर्व-सामान्य कार्योंके प्रति उनके उत्साह और उमंगका अनुकरण करें। हिंदू धर्म भी बिना स्वराज्यके उतना ही संकटमें है जितना कि इस्लाम। परमात्मा करें कि हिंदुओं और मुसलमानोंको इस प्रारंभिक बातकी कदर करनेकी बी अम्मा जैसी बुद्धि दें। परमात्मा उनकी आत्माको शांति और अलीभाइयोंको उनके सौंपे कार्यको जारी रखनेकी शक्ति दें।

बी अम्माकी मृत्युकी रातके उस गंभीर और प्रभावकारी दृश्यका वर्णन किये बिना मैं नहीं रह सकता। उस समय [illegible] का सद्भाग्य प्राप्त हुआ था। यह सुनते ही कि [illegible] अन्तिम सांसें ले रही हैं मैं और सरोजिनी देवी वहां दौड़े गये। उनके कुटुंबके कितने ही लोग आसपास जमा थे। उनके डाक्टर और हितचिंतक

डा० अंसारी भी मौजूद थे। वहां रोनेकी आवाज नहीं सुनाई देती थी, अलबत्ते मौ० मुहम्मदअलीके गालोंपरसे आंसू जरूर टपक रहे थे। बड़े भाईने बड़ी कठिनाईसे अपने शोकावेगको रोक रक्खा था। हां, उनके चेहरेपर एक असाधारण गंभीरता अलबत्ते थी। सब लोग अल्लाका नामोच्चार कर रहे थे। एक सज्जन अंत समयकी प्रार्थना गा रहे थे। 'कामरेड प्रेस' बी अम्माके कमरेके इतना पास है कि आवाज सुनाई दे सकती है। परंतु एक मिनिटके लिए वहांके काममें गड़बड़ नहीं हुई और न मौलानाने ही अपने संपादकीय कर्तव्योंमें रुकावट आने दी। और सार्वजनिक काम तो कोई भी मुल्तवी नहीं किया गया। मौलाना शौकतअलीने तो सपने तकमें न सोचा था कि मैं अपना रामजस कालेज जाना मुल्तवी करूंगा। वे एक सच्चे सिपाहीकी तरह मुजफ्फरनगरके हिंदुओंको दिये गए निश्चित समयपर उनसे मिले हालांकि बी अम्माकी मृत्युके बाद उन्हें तुरंत ही वहांसे चला जाना पड़ा था। यह सब जैसा कि होना चाहिए था वैसा ही हुआ। जन्म और मरण, ये दो भिन्न-भिन्न दशाएं नहीं हैं, बल्कि एक ही दशाके दो भिन्न-भिन्न स्वरूप हैं। न मृत्युसे दुखी होनेकी जरूरत है, न जन्मसे खुशी मनानेकी। (हि० न०, २३.११.२४)

: ९ :

राजकुमारी अमृतकौर

आज मैं सोचता हूं और यह समझनेकी बात है कि एक क्रिस्टी बहन—उसे आप जानते हैं—राजकुमारी अमृतकौर, वह तो हेल्थ मिनिस्टर (स्वास्थ्य-मंत्री) है, जितने लोग कैंपोंमें पड़े हैं, हिंदू-मुसलमान, सबके लिए वह कुछ करना चाहती है। मगर उसे किसीका सहारा न मिले तो

वह क्या कर सकती है ? वह पक्षपात तो कर नहीं सकती। जो कुछ हो सकता है सबके लिए करती है। वह थोड़ी क्रिस्टी भी है, थोड़ी मुसलमान भी है, थोड़ी हिंदू भी, इसलिए उसके सामने सब धर्म एक समान हैं। वह चली गई और उसके साथ लड़कियां भी गईं, वे सब तो सेवाके लिए गई थीं। सेवामें डर क्या ? लेकिन उन्होंने मुझको सुनाया कि वहां जो हिंदू, सिख पड़े हैं वे कहते हैं कि खबरदार, तुम मुसलमानोंकी सेवा करनेके लिए जाती हो तो यहांसे भागना होगा। जब मैंने यह सुना तो हँस दिया। वह कहनेकी बात थी, कुछ करना थोड़े ही था। (प्रा० प्र० २७.९.४७)

: १० :

अरविन्द घोष

अरविन्दबाबूके बारेमें मैं कुछ भी कहनेमें असमर्थ हूं।... इतना तो अवश्य कबूल करना पड़ेगा कि अरविन्दबाबूकी छायाके नीचे रहनेवाले दो सौ आदमियोंमें ऐसे लोग हैं जिनके जीवनमें उनके सहवासके कारण बड़े परिवर्तन हुए हैं। प्रत्येक अपने-अपने स्वभावके अनुसार अनुकरण करता है। (२८.५.३५को बोरसदसे लिखे एक पत्रसे)

... ...

अरबिंदका आश्रम क्या चीज है यह भी तो आपको जानना चाहिए। यों तो वहां लोगोंकी एक धारा चल रही है। वहां हमेशा काफी लोग जाते हैं। उनके काफी भक्त हैं, हिंदू क्या, मुसलमान क्या, किसीके लिए वहां घृणा तो है ही नहीं। सर अकबर हैदरी, अब तो वह मर गए,

प्रतिवर्ष वहां जाते थे, उसका तो मैं गवाह हूं। श्रीअरविंद तो दीनभक्त हैं, किसीसे मिलते नहीं हैं। ऊपरसे उनका दर्शन हुआ तो हुआ, नहीं हुआ तो नहीं, लेकिन लोग जाते थे। उनके पास यह रहते हैं। इनके दिलमें भी ऐसी कोई घृणा नहीं है। तो इतना तो हम सीख लें कि हमारे दिलमें क्यों घृणा होनी चाहिए। (प्रा० प्र०, २९.१०.४७)

: ११ :

लार्ड अर्विन

आज अर्विनपर हॉर्निमैनका लेख है। इसने उसे चालाक मौकापरस्त बताया है।

["यह चालाक अवसरवादी है। अपनी असंगतताओं तथा सिद्धांतों और नीतिके परिवर्त्तनोंको सच्चेपनके आग्रह और सचाईके दंभी स्वांगके मोटे पर्देके नीचे ढंकना चाहता है।

"वह एक बार साइमन कमीशनके हिमायतीके रूपमें खड़ा हुआ, फिर नरम दलवालोंका विरोध देखकर झुक गया। एक बार उसने सविनयभंगकी लड़ाईको लाठी और ऑर्डिनेंससे कुचलनेकी कोशिश की। बादमें कांग्रेसका जोर देखा तो झुक गया। उसकी सचाईकी बातोंसे अरुचि होती है। अब ये बंद हो जायं तो ही अच्छा। अगर वह गोलमेज परिषदको फिर जिंदा करा दे तो जरूर उसकी सचाईके बारेमें विचार किया जायगा।"]

मैं इस विचारका नहीं। इस आदमीमें सचाई है, इस अर्थमें कि उसमें उखाड़-पछाड़ नहीं, दावपेंच नहीं। वह सीधी-सादी बात करनेवाला है। साइमनके समय उसे वह बात अच्छी नहीं लगती थी, मगर

उसने विचार कर लिया कि अनुदार दलके नाते जो नीति अपना ली गई है उसके खिलाफ न जाया जाय। उसके खरेपनकी भी हद है और वह हद यह है कि ब्रिटिश साम्राज्य अखण्ड रहे। उसे खतरा हो तो वह वचनभंगका भी विरोध नहीं करेगा। वह ब्रिटिश साम्राज्यको ईश्वरकी एक अद्भुत कृति माननेवाला है—जैसा कि हरएक अनुदार दलवाला मानता है—और उसी दृष्टिसे वह सब चीजोंको देखता है। मगर वह खरा हो या न हो इससे क्या सरोकार? हमारा तो वास्ता इस बातसे है कि हमें जो चाहिए वह मिलता है या नहीं। (म० डा०, भाग १, १९.७.३२)

: १२ :

अली-बन्धु

(मौलाना शौकत अली और मुहम्मद अली)

शौकतअली सरल और मिलनसार आदमी हैं, पर कट्टर हैं और किसीका उन्हें भय या दबाव नहीं है। (यं० इं०, २३.६.२०)

. . . . . .

मौ० शौकतअली तो बड़े-से-बड़े शूरवीरोंमेंसे एक हैं। उनमें बलिदानकी अद्भुत योग्यता है और उसी तरह खुदाके मामूली-से-मामूली जीवको चाहनेकी उनकी प्रेम-शक्ति भी अजीब है। वे खुद इस्लामपर फिदा हैं, पर दूसरे धर्मोंसे वे घृणा नहीं करते। मौ० मुहम्मदअली इनका दूसरा शरीर है। मौ० मुहम्मदअलीमें मैंने बड़े भाईके प्रति जितनी अनन्य निष्ठा देखी है उतनी कहीं नहीं देखी। उनकी बुद्धिने यह बात तय कर ली है कि हिंदू-मुसलमान एकताके सिवा हिंदुस्तानके छुटकारेका कोई रास्ता नहीं।

उनका 'पैन इस्लामवाद' हिंदू विरोधी नहीं है। इस्लाम भीतर और बाहरसे शुद्ध हो जाय और बाहरके हर किस्मके हमलोंसे संगठित होकर टक्करें ले सके ऐसी स्थिति देखनेकी तीव्र आकांक्षापर कोई कैसे आपत्ति कर सकता है ? कोकोनाडाके उनके भाषणका एक हिस्सा बहुत ही आपत्तिजनक बताकर मुझे दिखाया गया था। मैंने मौलानाका ध्यान उसपर खींचा। उन्होंने उसी दम स्वीकार किया कि हां, वास्तवमें यह भूल हुई। कुछ दोस्तोंने मुझे सूचना दी है कि मौ० शौकतअलीके खिलाफत-परिषद्वाले भाषणमें कितनी ही बातें आपत्तिजनक हैं। यह भाषण मेरे पास है, परंतु उसे पढ़नेका मुझे समय नहीं मिल पाया। यह मैं जरूर जानता हूं कि यदि उसमें सचमुच कोई ऐसी बात होगी जिससे किसीका दिल दुखी हो तो मौ० शौकतअली ऐसे लोगोंमें पहले व्यक्ति हैं जो उसको ठीक करनेके लिए तैयार रहते हैं।

यह बात नहीं कि अलीभाई दोषोंसे खाली हों। मैं खुद भी दोषोंसे भरपूर हूं। इससे इन भाइयोंकी दोस्तीकी खोज करने और उसकी कीमत समझनेमें हिचकिचाता नहीं। अगर उनके अंदर कुछ ऐब हैं तो उनसे ज्यादा गुण भी हैं और मैं उनके ऐबोंके रहते हुए भी उन्हें चाहता हूं।

यदि हममेंसे बहुतेरे लोग पूर्णताको पहुंचे हुए होते तो हमारे अंदर झगड़े होते ही क्यों ? पर हम सब अपूर्ण प्राणी हैं और इसीसे हम सबको एक दूसरेकी अनुकूल बातें खोजकर और ईश्वरपर भरोसा रखकर ध्येयके लिए मरना चाहिए। (हि० न०, १.६.२४)

. . . .

जिस समय खेड़ाका आंदोलन जारी था, उसी समय यूरोपका महा-समर भी चल रहा था। उसके सिलसिलेमें वायसरायने दिल्लीमें नेताओंको बुलवाया था। मुझे भी उसमें हाजिर रहनेका आग्रह किया था। मैं यह पहले ही लिख चुका हूं कि लार्ड चेम्सफोर्डके साथ मेरा मैत्री-संबंध था।

मैंने आमंत्रण मंजूर किया और दिल्ली गया; किंतु इस सभामें शामिल होनेमें मुझे एक संकोच था। इसका मुख्य कारण यह था कि उसमें अली-भाइयों, लोकमान्य तथा दूसरे नेताओंको नहीं बुलाया गया था। उस समय अली-भाई जेलमें थे। उनसे मैं एक-दो बार ही मिला था। सुना उनके बारेमें बहुत-कुछ था। उनके सेवा-भाव, बहादुरीकी स्तुति सभी कोई किया करते थे। हकीम साहबके साथ भी मेरा परिचय नहीं हुआ था। स्व० आचार्य रुद्र और दीनबंधु एंड्रूजके मुंहसे उनकी बहुत प्रशंसा सुनी थी। कलकत्तावाले मुस्लिम-लीगके अधिवेशनमें श्वेब कुरेशी और बैरिस्टर ख्वाजासे मेरी मुलाकात हुई थी। डाक्टर अंसारी और डाक्टर अब्दुर्रहमानसे भी परिचय हो चुका था। भले मुसलमानोंकी सोहबत में ढूंढ़ता था और उनमें जो पवित्र तथा देशभक्त समझे जाते थे उनके संपर्कमें आकर उनकी भावनाएं जाननेकी मुझे तीव्र इच्छा रहती थी। इसलिए मुझे वे अपने समाजमें जहां कहीं ले जाते, मैं बिना कोई खींच-तान कराए ही चला जाता था। यह तो मैं दक्षिण अफ्रीकामें ही समझ चुका था कि हिंदुस्तानके हिंदू-मुसलमानोंमें सच्चा मित्राचार नहीं है। दोनोंके मन-मुटावको मिटानेका एक भी मौका मैं योंही जाने नहीं देता था। झूठी खुशामद करके या स्वत्त्व गंवाकर किसीको खुश करना मैं जानता ही नहीं था; किंतु मैं वहींसे यह भी समझता आया था कि मेरी अहिंसाकी कसौटी और उसका विशाल प्रयोग इस ऐक्यके सिलसिलेमें ही होनेवाला है। अब भी मेरी यह राय कायम है। प्रतिक्षण मेरी कसौटी ईश्वर कर रहा है। मेरा प्रयोग आज भी जारी है।

इन विचारोंको साथ लेकर मैं बंबईके बंदर पर उतरा था। इसलिए इन भाइयोंका मिलाप मुझे अच्छा लगा। हमारा स्नेह बढ़ता गया। हमारा परिचय होनेके बाद तुरंत ही सरकारने अली-भाइयोंको जीते-जी ही दफन कर दिया था। मौलाना मुहम्मदअलीको जब-जब इजाजत मिलती, वह मुझे बैतूल जेलसे या छिंदवाड़ा जेलसे लंबे-लंबे पत्र लिखा

करते थे। मैंने उनसे मिलने जानेकी प्रार्थना सरकारसे की, मगर उसकी इजाजत न मिली।

अली-भाइयोंके जेल जानेके बाद मुस्लिम-लीगकी सभामें मुझे मुलसमान भाई ले गये थे। वहां मुझसे बोलनेके लिए कहा गया था। मैं बोला। अली-भाइयोंको छुड़ानेका धर्म मुसलमानोंको समझाया।

इसके बाद वे मुझे अलीगढ़ कालेजमें भी ले गये थे। वहां मैंने मुसल-मानोंको देशके लिए फकीरी लेनेका न्यौता दिया था।

अली-भाइयोंको छुड़ानेके लिए मैंने सरकारके साथ पत्र-व्यवहार चलाया। इस सिलसिलेमें इन भाइयोंकी खिलाफत-संबंधी हलचलका अध्ययन किया। मुसलमानोंके साथ भी चर्चा की। मुझे लगा कि अगर मैं मुसलमानोंका सच्चा मित्र बनना चाहूं तो मुझे अली-भाइयोंको छुड़ानेमें और खिलाफतका प्रश्न न्यायपूर्वक हल करनेमें पूरी मदद करनी चाहिए। खिलाफतका प्रश्न मेरे लिए सहल था। उसके स्वतंत्र गुण-दोष तो मुझे देखने भी नहीं थे। मुझे ऐसा लगा कि उस संबंधमें मुसल-मानोंकी मांग नीति-विरुद्ध न हो तो मुझे उसमें मदद देनी चाहिए। धर्म-के प्रश्नमें श्रद्धा सर्वोपरि होती है। सबकी श्रद्धा एक ही वस्तुके बारेमें एक ही-सी हो तो फिर जगत्में एक ही धर्म हो सकता है। खिलाफत-संबंधी मांग मुझे नीति-विरुद्ध नहीं जान पड़ी। इतना ही नहीं, बल्कि यही मांग इंग्लैंडके प्रधानमंत्री लॉयड जार्जने स्वीकार की थी, इसलिए मुझे तो उनसे अपने वचनका पालन कराने भरका ही प्रयत्न करना था। वचन ऐसे स्पष्ट शब्दोंमें थे कि मर्यादित गुण-दोषकी परीक्षा मुझे महज अपनी अंतरात्माको प्रसन्न करनेकी ही खातिर करनी थी। (आ० १९२७)

... ...

उन्हें (मौ० शौकतअलीको) उर्दू कवियोंके बढ़िया वचन जबानी याद । जब वे ये वचन सुनाते थे और उस जमानेमें जो बातें करते थे, उस

वक्त भी वे ईमानदार थे। आज भी ईमानदार हैं। मुझे कभी ऐसा नहीं लगा कि वे झूठ बोलते या धोखा देते थे। आज वे मानते हैं कि हिन्दू विश्वासपात्र नहीं हैं और उनके साथ लड़ लेनेमें ही कौमका भला है। यह मनोदशा बुरी है। मगर कौमकी सेवा उनके दिलमें है, उनका कोई स्वार्थी हेतु नहीं है। ऐसे ईमानदार आदमी बहुत मौजूद हैं।

(म० डा०, भाग १, ४.७.३२)

... ...

स्व० मौलाना शौकतअलीके स्मारकके बारेमें मैंने कई तजवीजें पढ़ी हैं। ज्योंही मुझे मौलानाकी मृत्युके बारेमें मालूम हुआ, जिसकी कि अभी बिल्कुल ही आशा नहीं थी, मैंने कुछ मुसलमान मित्रोंको उनके साथ अपने अन्तस्तलकी समवेदना प्रकट करते हुए लिखा। उनमेंसे एक मित्रने लिखा है :

"...मैं यह जानता हूं कि मौ० शौकतअली अपने खास ढंगसे सच्चा हिंदू-मुस्लिम समझौता करानेके लिए सचमुच चिंतित थे। स्वर्गमें उनकी आत्माको यह जानकर कि उनका एक जीवन उद्देश्य आखिरकार पूरा हो गया, जितनी शांति मिलेगी उतनी किसी दूसरे कामसे नहीं। ऐसे भी लोग हो सकते हैं, जिन्हें कि इसमें संदेह हो, लेकिन मौलानाको और उनका दिमाग किस तरह काम करता था इसको अच्छी तरह जानकर, जैसा कि मैं उन्हें जानता था, मैं भरोसेके साथ इस बातकी ताईद कर सकता हूं।"

कभी-कभी जो वे जोशमें आकर खिलाफ बोल जाते थे, उसके बावजूद मौलानाके दिलमें एकता और शांतिके लिए वही तमन्ना थी जिसके लिए कि वह खिलाफतके दिनोंमें बड़े मोहक ढंगसे बोलते व काम करते थे। मुझे इसमें कोई श[illegible] और मुसलमान दोनों ही कौमोंका [illegible] ही सबसे सच्चा स्मारक होगा। खाली कागजी एकताका निश्चय नहीं; बल्कि दिली एकता-

का, जिसका आधार शक और बेऐतबारी नहीं, बल्कि आपसका विश्वास होगा। कोई दूसरी एकता हमें नहीं चाहिए और इस एकताके बिना हिंदुस्तानके लिए सच्ची स्वतंत्रता प्राप्त नहीं हो सकती।

(ह० से०, १७.१२.३८)

. . . .

आप लोगोंने जो इतनी शांति रखी इसके लिए आपको धन्यवाद है। पहले इतनी शांति नहीं हुआ करती थी। इससे साफ है कि पिछले तीन दिन जो हुआ उससे हमने धर्म नहीं खोया है। यदि आदमी शांतिसे न रहे, कभी अपने विचारोंको भीतरसे न देखे, जीवनभर दौड़-दंगलमें ही रहे और हर वक्त गरम बना रहे तो वह उस शक्तिको पैदा नहीं कर सकता, जिसे शौकतअली साहब 'ठंडी ताकत' कहा करते थे। मुहम्मदअली साहब भी कहते थे कि हमें अंग्रेजोंसे लड़कर स्वराज्य लेना है और हमारी लड़ाई होगी तकलीकी तोपोंसे और कुकुड़ियोंके गोलोंसे। वह तो जितना विद्वान था, उतना ही कल्पनाएं दौड़ानेवाला था। (प्रा० प्र०, ५.४.४७)

: १३ :

हाजी वजीर अली

हाजी वजीर आधे मलायी कहे जा सकते हैं। उनके पिता भारतीय मुसलमान थे और माता मलायी थीं। उनकी मादरी जबानको डच कह सकते हैं; पर उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा भी यहाँतक प्राप्त कर ली थी कि वे अंग्रेजी और डच दोनों अच्छी तरह बोल सकते थे। अंग्रेजीमें भाषण करते वक्त उन्हें कहीं भी ठहरना नहीं पड़ता था। अखबारोंमें पत्र वगैरह लिखने-की आदत भी उन्होंने कर ली थी। ट्रान्सवाल ब्रिटिश एसोसियेशनके

के मेम्बर थे और बहुत दिनसे सार्वजनिक हलचलोंमें भाग लेते आए थे। हिंदुस्तानी भी अच्छी तरह बोल सकते थे। एक मलायी महिलाके साथ उनका विवाह हुआ था और उससे उनकी प्रजाका बड़ा विस्तार था।

(द० अ० स०, पृष्ठ १७१)

: १४ :

सी० पी० रामस्वामी अय्यर

मैंने अखबारोंमें सर सी० पी० रामस्वामीका ऐलान देखा। वे बड़े विद्वान व्यक्ति हैं। ऐनी बेसेंटके शिष्य रहे हैं। जब मैं हरिजन-यात्रामें था तब उनके निमंत्रणपर उनके यहां त्रावनकोरमें मेहमान बनकर गया था। लड़ने नहीं, पर मिलकर काम करनेको गया था। उनसे यह बात सुनकर अच्छी नहीं लगती। अगर अखबारमें गलती हो तो वे मुझे माफ करें, सही हो तो मेरी बातपर गौर करें। उन्होंने कहा है कि पंद्रह अगस्तसे जब हिंदुस्तान स्वतंत्र होगा तब त्रावनकोर आजाद हो जायगा। और उनकी वह आजादी ऐसी है कि आजसे ही त्रावनकोरकी स्टेट कांग्रेसके लिए सभाबंदी कर दी गई है! खबर यहांतक है कि सी० पी० रामस्वामीने उन लोगोंको त्रावनकोर छोड़कर चले जानेके लिए कहा है जो त्रावनकोरकी स्वतंत्रताकी मुखालफतमें हों। और यह आज्ञा वे सज्जन दे रहे हैं जो खुद त्रावनकोरके नहीं, बल्कि मद्रासके रहनेवाले हैं! वे किस तरह ऐसा कहते हैं!

ब्रिटिश राजमें आजतक त्रावनकोरको अंग्रेज शाहंशाहीको सलामी देनी पड़ती थी तो अब हिंदुस्तानके प्रजातंत्र संघमें वह मनमानी कैसे कर सकता है? वह अब हमारा राज्य है यानी भारतके प्रजाकीय राज्यको उसे (त्रावनकोरको) अपना ही राज्य समझना चाहिए। मैंने बताया है

कि प्रजाकीय राजमें राजा और मेहतरकी कीमत एक-सी रहनेवाली है। मनुष्यके नाते दोनोंकी कीमत एक ही रहेगी; पर दोनोंकी बुद्धिमत्तामें भेद हो सकता है। अगर त्रावनकोरके महाराजाके पास बड़ी अकल है तो उन्हें उसे लोगोंकी सेवामें लगाना चाहिए। अगर प्रजाको कुचलनेमें वे अपनी बुद्धि दौड़ाते हैं तो उनकी वह अकल फिजूलकी है। अपनी सारी रैयतको कुचलकर और मार डालकर क्या त्रावनकोर नरेश निरी जमीन-पर राज करेंगे? (प्रा० प्र०, १३.६.४७)

. . . .

कल मैंने त्रावनकोरके दीवान सर सी० पी० रामस्वामीकी बात आप लोगोंको सुनाई थी। आजकल तो तार और रेडियोका जमाना है। उनके कानोंतक मेरी वह बात पहुंच गई और उन्होंने एक लंबा-चौड़ा तार मेरे पास भेज दिया है। उन्होंने बहुतसे खुलासे किये हैं, पर त्रावनकोर-कांग्रेस-कमेटीको सभा करने और जुलूस निकालनेकी इजाजत नहीं दी है। उसके बारेमें वे कुछ नहीं बोले हैं। इसमें मुझे बुराई नजर आती है। यह लक्षण अच्छे नहीं हैं। वे कहते हैं कि त्रावनकोर तो सदासे आजाद रहा है।

सर सी० पी० रामस्वामी तो मेरे दोस्त रहे हैं, सब बात सही, लेकिन मेरा लड़का ही क्यों न हो, सही बात कहनेसे मैं क्यों रुकूं? हिंदुस्तान जब आजाद होता है तब अगर वे यही कहते हैं कि त्रावनकोर आजाद है तो इसका मतलब यह है कि वे आजाद हिंदसे लड़ना चाहते हैं।

मैं तो उनसे कहूंगा कि आप तख्तपरसे नीचे उतरिए और त्रावन-कोरके लोगोंके खादिम बनकर रहिए। जब अंग्रेजोंने आपसे एक बार राज्य छीन लिया और कुछ पैसे लेकर तथा अपनी रैयतको कुचलनेका आपको अधिकार देकर वह राज आपको लौटा दिया तो उसमें इतनी फख्रकी बात क्या थी? फख्रकी बात तब है जब आप जनताको अपना मालिक मानें। वैसे तो हिंदुस्तान गिरा नहीं है और अगर वह अपनी

परेशानीमें पड़ा है तो यह शराफतकी बात नहीं है कि आप जो आदमी गिर पड़ा है उसको ऊपरसे लात धर दें। हिंदुस्तानके एक-चौथाई और तीन-चौथाई ऐसे दो टुकड़े होते हैं तो उन टुकड़ोंकी बातसे आपका कोई संबंध नहीं। आप शरीफ बनें और समझें। (प्रा० प्र०, १४.६.४७)

आज फिर मेरे पास त्रावनकोरके दीवान सर रामस्वामीका लंबा-चौड़ा तार आया है, जिसमें मुझे समझानेकी कोशिश की गई है कि उनके साथ वहांके ईसाई आदि भी हैं। पर ऐसे तारसे मुझे बुरा लगता है। कड़वी चीजको मीठी बनानेसे वह मीठी नहीं बन जाती। मूलसे ही इनकी बात बुरी है। 'आ जाओ, हम तो आजाद हैं।' 'आप किससे आजाद हैं?' रैयतसे? लोग इस तरह भारतसे आजाद होकर करेंगे क्या? आप इस तरह घुमा-फिराकर बात न करें। सीधी बात करें कि हिंदुस्तानके साथ हम हैं, तब ही आप अपने राजाके प्रति सच्चे वफादार हैं, नहीं तो बेवफा हैं। (प्रा० प्र०, १७.६.४७)

... ...

सर सी० पी० कहते हैं कि गांधी और कांग्रेस सरहद्दी सूबेको तो आजादी देनेको तैयार हैं, परंतु त्रावनकोरको नहीं। इतना बड़ा विद्वान होकर भी वह कितनी गलत बात करता है। यदि त्रावनकोर अलग हुआ तो हैदराबाद, काश्मीर और इंदौर आदि सब अलग हो जायंगे। इस तरहसे तो हिंदुस्तानके अनेक टुकड़े हो जायंगे। इसके अलावा फ्रांटियरके खान हिंदुस्तानसे पृथक् नहीं होना चाहते। वे कहते हैं कि हम पाकिस्तानमें नहीं जायंगे। तब फिर क्या वे हिंदुस्तानमें हिंदुओंकी गुलामी करेंगे? उनपर कांग्रेससे पैसा खानेका इल्जाम लगाया जाता है। कांग्रेस यदि इस तरहसे किसीको पैसा देकर अपनी तरफ करे तो वह अबतक जिंदा नहीं रहती। बादशाह खानने हमें विश्वास दिलाया है कि हिंदुस्तान पहले अपना विधान बना ले। इस दौरानमें वह किसी फैसलेपर पहुंच जायंगे। मगर रामस्वामी जो कहते हैं वह बिल्कुल गलत है। फ्रांटियरमें

वहां रहनेवाली प्रजाकी आवाज है, जबकि त्रावनकोरमें तो एक राजा और उसका सचिव ही सारी प्रजाकी तरफसे बोल रहा है।

आजकी हालतमें राजा और प्रजा दोनोंका एक हक है, यह मेरा दावा है। फ्रांटियरकी मिसाल देकर सर सी० पी० लोगोंकी आंखोंमें धूल नहीं झोंक सकते। इस तरहसे न तो धर्म रहता है और न कर्म रहता है। मैं तो रामस्वामीसे यही कहूंगा कि सही चीज यही है कि त्रावनकोर राज्य विधान-परिषद्में आ जाए। (प्रा० प्र०, २४.६.४७)

. . . .

मुझसे यह पूछा गया है कि दक्षिण भारतमें तो हरिजनोंके लिए इतना काम हो गया और तामिलनाड तथा आंध्रके सब बड़े-बड़े मंदिर हरिजनोंके लिए खोल दिये गये, परंतु युक्तप्रांतका क्या हुआ? युक्त-प्रांतमें हरिद्वार पड़ा है। क्या हरिद्वारके मंदिरोंमें अछूत जा सकते हैं? दक्षिण भारतकी त्रावनकोर रियासतमें तो बहुत पहलेसे ही यह सब हो गया था। वहांके दीवान सर सी० पी० रामस्वामी अय्यर आज तो हमसे बिगड़े हुए हैं, और बिगड़े हुए हैं भी या नहीं, यह आज तो मैं नहीं जानता। मगर तब उन्होंने वहांके महाराजाको समझाकर सबसे बहुत पहले ही कानून द्वारा अपनी रियासतमें अछूतपनको मिटा दिया था। युक्तप्रांतमें हरिद्वारके अलावा काशी विश्वनाथ भी है जहां गंगाजीमें स्नान करनेसे मोक्ष मिलता बताया जाता है। वहांके मंदिरोंमें हरिजन जा सकते हैं, ऐसा मैं नहीं कह सकता; परंतु मैं तो यही कहूंगा कि जहां हरिजन नहीं जा सकते वे मंदिर नापाक हैं। (प्रा० प्र०, १६.७.४७)

: १५ :

जनरल यू आंग-सांग

ब्रह्मदेश भी हिंदुस्तानकी तरह आजाद हो रहा है। वहांके नेता जनरल यू आंग-सांगने आधुनिक बर्माको जन्म दिया और उसे आजादीके दरवाजेपर लाकर छोड़ दिया। वह सत्याग्रही नहीं था तो उससे क्या हुआ ? वह एक बहादुर लड़ाका था और उसीके फलस्वरूप आज बर्मा आजाद होने जा रहा है। एक सशस्त्र गिरोहने उनको और उनके चार अन्य साथियोंको कत्ल कर दिया, यह कोई छोटी बात नहीं है। हम चाहे उनसे कितनी ही दूर हों, मगर हमारे लिए यह बड़े रंजकी बात है। अगर ऐसी घटनाएं होती रहीं तो दुनियाका क्या हाल होगा ? हत्यारे सचमुच लुटेरे थे, ऐसा मुझे नहीं लगता। मैं बर्मामें काफी रहा हूं। रंगून और मांडले आदि स्थान सब मेरे देखे हुए हैं। वहां बुद्ध-धर्म चलता है। बर्माके लोग अधिकांश बुद्ध-धर्मको मानते हैं। जहां बुद्ध-धर्म प्रचलित है वहां ऐसा खून-खच्चर क्यों ? इन हत्याओंमें लुटेरूपन नहीं, बल्कि उनके पीछे कुछ पार्टीबाजी रही है। इस तरहकी लड़ाइयोंने दुनियाका सत्यानाश कर दिया है। इस तरहसे तो जो हमारे मुखालिफ हैं वे आकर हमारा खून करने लगें तो कैसे काम चलेगा। बर्मा जब आजादीके दरवाजेमें दाखिल हो गया है तब ऐसा होना बहुत दुःखदायी बात है। हम ऐसे जाहिल क्यों बन जाते हैं ?

मुझे आशा है कि हिंदुस्तान इससे सबक लेगा; क्योंकि यह न केवल बर्माके लिए, बल्कि सारे एशिया और संसारके लिए एक दुःखद घटना हुई है। हम सब यह प्रार्थना करें कि हे भगवान, बर्माके जो लोग हैं वे हमारी ही तरहसे आजादीके लिए तड़प रहे हैं, उनको तू इस दुःखमें सांत्वना दे और मृत व्यक्तियोंके परिवारोंको शोक सहन करनेकी शक्ति

दे ! जिन लोगोंने खून किया है उनके दिलोंकी भी तबदीली कर । (प्रा० प्र०, २०.७.४७)

: १६ :

मौलाना अबुलकलाम आजाद

कांग्रेसमें अनेक विचारक पड़े हुए हैं। मौलाना स्वयं एक महान् विचारक हैं। वह तीव्र बुद्धिके हैं। उनका अध्ययन विस्तृत है। अरबी, फारसीके अध्ययनमें उनके जोड़का विद्वान मिलना कठिन है। अनुभवने उन्हें सिखाया है कि अहिंसासे ही हिंदुस्तान आजाद होगा। (ह० से०, १०.८.४०)

: १७ :

श्रीनिवास आयंगर

श्री श्रीनिवास आयंगरके आगामी कांग्रेसके लिए सभापति चुने जानेकी बात पहलेसे ही पक्की थी। कांग्रेस कमेटियां एक कट्टर स्वराजीको ही चुननेके लिए बाध्य थीं। श्रीनिवास आयंगर एक लड़ैये हैं और साथ-ही-साथ वे आदर्शवादी भी हैं। वे बेसब्र हैं और उनका बेसब्रीसे भरा हुआ जोश उनको प्रायः बड़े गहरेमें ले उतारता है, जहांकि मामूली आदमीकी गति नहीं। वे किसी काममें बिना दुबारा सोचे ही कूद पड़ते हैं। ऐसे उत्तरदायित्वपूर्ण पदपर उनका चुना जाना ऐसे संकटके अवसरपर हुआ है कि जैसा उससे पहले कभी न आया होगा। लेकिन श्री आयंगर-

को अपनेमें तथा अपनी शक्तिमें विश्वास है। यह बात सर्वविदित है कि अपनेमें विश्वास रखनेवालोंकी ईश्वर सहायता करता है। हम आशा करें कि ईश्वर श्री आयंगरकी सहायता करेगा। श्री आयंगरको उस तमाम मददकी आवश्यकता है, जो कि कांग्रेसवाले उन्हें दे सकते हों। हमने निष्क्रिय भक्तिकी विद्या तो सीख ली है, लेकिन अब समय आ पहुंचा है, जबकि हमको सक्रिय भक्ति दिखाना सीखना चाहिए। अगर कांग्रेस-वाले अपनी नीति और अपने प्रस्तावोंका, जिनके स्वीकृत किये जानेमें उनका हाथ रहता है, पालन करेंगे तो श्री आयंगरका काम कठिन होते हुए भी आसान बन जायगा। जिस संस्थाको उन्नति करना है उसके सदस्योंको कम-से-कम इतना तो करना ही चाहिए। मैं श्री आयंगरको उस बड़ी प्रतिष्ठाके लिए बधाई देता हूं, जो कि उनको मिली है और मैं उन साधारण कठिनाइयोंपर उनके साथ अपनी सहानुभूति प्रकट करता हूं, जो कि उनके सामने हैं। मैं ईश्वरसे प्रार्थना करता हूं कि वह उन्हें उन कठिनाइयोंपर विजय पानेकी बुद्धि और बल दे। (हि० न०, १६.९.२६)

: १८ :

एस० रंगास्वामी आयंगर

'हिंदू'के भूतपूर्व संपादक श्री एस० रंगास्वामी आयंगरकी मृत्यु हो गई है। उनके कुटुंब तथा 'हिंदू'के कर्मचारियोंके साथ जो समवेदना प्रकट की जा चुकी है, उसमें मैं भी आदरपूर्वक शरीक होता हूं। उनकी मृत्यु श्री कस्तूरी रंगा आयंगरकी मृत्युके कुछ ही बाद होनेसे संपादक-संसारकी भारी क्षति हुई है। (हि० न०, २८.१०.२६)

: १९ :

मीर आलम

एक शख्स मीर आलम था। सरहदी गांधीके मुल्कका। जैसे ये पहाड़के-से हैं, वह उनसे भी ऊंचा था। पहले वह मेरा मित्र था। पर पठान तो भोले ही होते हैं। इसी कारण वे बादशाह हैं। उसको किसीने बहका दिया कि गांधीने पंद्रह हजार पौंड जनरल स्मट्ससे ले लिए हैं और कौमको बेच डाला है। बस, एक दिन वह मीर आलम मेरा दुश्मन बनकर आया। उसके हाथमें बड़ी-सी लाठी थी और उसपर सीसेकी मूठ लगी थी। उसने ठीक मेरी गर्दनपर वह लाठी मारी। मैं गिर पड़ा। नीचे पत्थरका फर्श था। मेरे दांत टूट गए। ईश्वरको मंजूर था, इसलिए मैं बच गया। मीर आलमको दो-तीन अंग्रेजोंने, जो उस रास्तेसे जा रहे थे, पकड़ लिया; लेकिन मैंने उसे यह कहकर छुड़वा दिया कि वह बेचारा दूसरेके धोखेमें आ गया कि मैं लालची हूं और इसपर फौजी पठानका खून खौल उठे और वह मारनेको उतारू हो जाय तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। इस तरहसे मीर आलमको मैंने कैद कर लिया। वह मेरा पक्का दोस्त बन गया। (प्रा० प्र०, ३१.५.४७)

: २० :

अरुणा आसफअली

श्रीमती अरुणा मेरी लड़की हैं, क्या हुआ कि उन्होंने मेरे घरमें जन्म नहीं लिया या कि वह विद्रोही बन गई हैं। जब वह छिपकर रहती थीं

तब भी मैं कई बार उनसे मिला हूं। मैंने उनकी बहादुरी, नये-नये रास्ते खोजनेकी शक्ति और गहरे देश-प्रेमकी सराहना की है। पर मेरी सराहना इससे आगे नहीं बढ़ी। मैंने उनके छिपकर काम करनेको पसंद नहीं किया। (ह० से०, ३.३.४६)

: २१ :

डॉ. मुहम्मद इक़बाल

इक़बालने कहा—"मजहब नहीं सिखाता आपसमें बैर करना।" इक़बालने ऐसा कहा, उस वक्त वह लंदनमें रहता था। वह बड़ा कवि था। उस वक्त वह गोलमेज कान्फ्रेंसमें आया हुआ था। वहां उसके लिए सबने एक खाना किया तो मुझको भी बुलाया गया। मैं चला गया। उसने कहा कि मैं तो ब्राह्मण हूं। क्यों ब्राह्मण हूं? क्योंकि मेरे बाप-दादे ब्राह्मण थे। कहांके? काश्मीरके। मैं तो काश्मीरका हूं। ब्राह्मण हूं और अब मैं इस्लाममें आया हूं। अभी नहीं, बहुत पीछे हम इस्लाममें आए। तो भी हममें ब्राह्मण खून पड़ा है और इस्लामका तमद्दुन (संस्कृति) हमारेमें पड़ा है। तो इक़बालने कहा—"मजहब नहीं सिखाता आपसमें बैर करना।" पीछे उसने दूसरा-तीसरा भी लिखा है। वह दूसरी बात है। इक़बाल तो चले गए, लेकिन हम इतना तो सीख लें कि हमको हमारा धर्म नहीं सिखाता है कि हम किसीसे बैर करें। इसलिए मैं कहूंगा कि हम इन्सान बनें। इन्सान बनें तो हम हिंदुस्तानको ऊंचा ले जाते हैं। (प्रा० प्र०, ३०.६.४७)

: २२ :

जयचंद्र इंद्रजी

'नवजीवन' के एक पाठक खबर देते हैं:

"गुजरातके प्रसिद्ध वनस्पतिशास्त्र-भक्त श्री जयकृष्ण इंद्रजीका ता० ३ को कच्छमें देहांत हो गया। वह अपने पीछे एक विधवा छोड़ गये हैं। उनका कोई उत्तराधिकारी नहीं है।"

पोरबंदरमें श्री जयकृष्णसे मेरा परिचय हुआ था और उसी समय अपने विषयमें सर्वोपरि बननेकी उनकी दृढ़ इच्छा और वैसी ही उनकी सादगी देखकर मैं आश्चर्यचकित बना था। वनस्पतियोंकी खोजमें वह पर्वतीय प्रदेशोंमें कई बार घूमे थे और अपने विशाल अनुभवके फलस्वरूप एक सुंदर पुस्तक भी लिख गये हैं। अपने घर हीमें उन्होंने अनेक प्रकारकी वनस्पतियोंका एक संग्रहालय बना रक्खा था, जिसे हर मिलनेवालेको वह अभिमानके साथ बताया करते थे। उन्हें वनस्पतिकी शोध-खोजके सिवा और कोई बात ही नहीं सूझती थी। अपनी इस धुनमें वह इस लोक और परलोकका श्रेय देखते थे। यही वजह थी कि मैं उन्हें एक आदर्श विद्यार्थी मानता था। कच्छकी यात्रामें मैं फिर उनसे मिला था। वहां भी उनपर वही धुन सवार थी। नये-नये पौधे लगानेका शौक बुढ़ापेमें घटनेके बदले और भी बढ़ गया था। इस तरह अपने विषयमें अनन्य भक्ति रखनेवाले मनुष्य दुर्लभ हैं। श्री जयकृष्ण इंद्रजी इनमेंसे एक थे। वह तो अपने कर्तव्यका पालन करते हुए निबटकर गये हैं, इसलिए उनकी आत्मा शांत ही है। आइए, हम सब उनकी एकाग्रता और उनके आत्मविश्वासका अनुकरण करें। (हि० न०, २६.१२.२९)

: २३ :

इमाम साहब

गिरफ्तार किये गए लोगोंमें हमारे इमाम साहब भी थे। उनकी कैदका आरंभ चार दिनसे हुआ था। वह फेरीमें पकड़े गये। उनका शरीर ऐसा नाजुक था कि लोग उन्हें जेल जाते हुए देखकर हँसते थे। कई लोग आकर मुझसे कहते—"भाई, इमाम साहबको इसमें शामिल न करो तो अच्छा हो। वह कौमको लज्जित करेंगे।" मैंने इस चेतावनी-पर जरा भी ध्यान नहीं दिया। इमाम साहबकी शक्तिकी नाप-जोख करनेवाला मैं कौन होता हूं? यह सब सत्य है कि इमाम साहब कभी नंगे पैर नहीं चलते थे। शौकीन थे। उनकी स्त्री मलायी महिला थी। घर बड़ा सजा हुआ रखते और बिना घोड़ा-गाड़ी लिये कहीं न जाते। पर उनके दिलको कौन जानता था? यही इमाम साहब चार दिनकी सजा भुगतकर फिर जेलमें गये। वहां एक आदर्श कैदीकी तरह रहे। पसीनेकी कमाई खाते, और उन्हीं नित्य नये पकवान खानेकी आदत रखने-वाले इमाम साहबने मक्काके आटेकी लपसी पीकर खुदाका एहसान माना! वह हारे तो जरा भी नहीं। हां, उन्होंने सादगी जरूर अख्तियार कर ली। कैदी बनकर पत्थर फोड़े, झाड़ू-बुहारी की और अन्य कैदियोंकी बराबरीमें एक कतारमें खड़े रहे। अंतमें फिनिक्समें पानी भरा और छापाखानेमें कंपोजिंग तक किया। फिनिक्स आश्रममें रहनेवालोंके लिए कंपोजिंग सीख लेना अनिवार्य कर्त्तव्य था। उसे इमाम साहबने पूरा किया। आजकल भारतवर्षमें भी वह अपना हिस्सा दे रहे हैं; पर ऐसे तो कई लोग जेलमें शुद्ध हो गये। (द० अ० स०, १९२५)

...   .

इमाम साहबका अकेला ही मुसलमान कुटुंब अनन्य भक्तिसे आश्रममें

बसा। उन्होंने मृत्युसे हमारे और मुसलमानोंके बीच न टूटनेवाली गांठ बांध दी है। इमाम साहब अपने आपको इस्लामका प्रतिनिधि मानते थे और इसी रूपमें आश्रममें आए। (य० म०, ३०.५.३२)

: २४ :

उर्मिला देवी

बंगालमें आज यह आग किसने सुलगाई ? श्रीमती बसंती देवी और उर्मिला देवीने। वे खुद गली-गली खादी बेचती फिरीं। यह उनकी गिरफ्तारीका प्रभाव है जो बंगालका ध्यान इस तरफ गया। देशबंधु-दासके प्रचंड आत्मत्यागने भी ऐसा चमत्कार नहीं दिखाया। मेरे पास एक पत्र वहांसे आया है। उससे यही मालूम होता है। यह बात गलत नहीं हो सकती; क्योंकि स्त्री क्या है, वह साक्षात त्यागमूर्ति है। जब कोई स्त्री किसी काममें जी-जानसे लग जाती है तो वह पहाड़को भी हिला देती है। हमने अपनी स्त्रियोंका बड़ा दुरुपयोग किया है। जहां तक हो सके हमने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया। लेकिन परमात्मन्, तुझे धन्यवाद ! यह चरखा उनके जीवनको बदल रहा है। जरा सरकार हमारे रहे-सहे तमाम नेताओंको जेलका सौभाग्य प्राप्त करा दे, फिर देखिए कि भारतकी देवियां किस तरह मैदानमें आती हैं और पुरुषोंके अधूरे कामको अपने हाथोंमें लेकर उनसे भी अधिक अच्छाई और खूबीके साथ उनका संचालन करती हैं ! (हिं० न०, २५.१२.२१)

: २५ :

सी० एफ० एंड्रूज

श्री एंड्रूजका स्वयंनिर्णित कार्य यह है कि उनसे जो कुछ भी बन पड़े वह सेवा करना और फिर उसे भूल जाना। उनकी सेवाका रूप अक्सर शांति स्थापित करना होता है। अभी उन्होंने उड़ीसामें दुःखी और पीड़ित मनुष्यों और ढोरोंके बीच और बंबईके कष्ट-पीड़ित मिल-मजदूरोंके संबंधमें अपना काम पूरा किया ही न था कि उन्हें दक्षिण अफ्रीकामें जाकर वहांके भारतीयोंकी, जो कष्टमें पड़े हुए हैं, मदद करनेकी आवश्यकता महसूस होने लगी है। लेकिन वे वहां केवल भारतीयोंकी ही मदद न करेंगे, यूरोपियनोंकी भी सहायता करेंगे। उनमें न द्वेष है, न क्रोध। वे हिंदुस्तानियोंके प्रति दया दिखानेको नहीं कहते हैं। वे तो सिर्फ न्याय ही चाहते हैं। श्री एंड्रूज दक्षिण अफ्रीकाके लिए कोई नये नहीं हैं। दक्षिण अफ्रीकाके राजनीतिज्ञ उन्हें जानते हैं और वे इस बातको स्वीकार करते हैं कि वे यूरोपियनोंके भी उतने ही मित्र हैं जितने कि हिंदुस्तानियोंके। भारतीयोंका प्रश्न बड़ी विकट समस्या हो गया है। दक्षिण अफ्रीकामें रहनेवाले भारतीयोंके लिए तो वह जीवन-मरणका प्रश्न है। ऐसे विकट प्रसंगपर श्री एंड्रूजके उनके पास होनेसे उन्हें बड़ी शांति मिलेगी। पहले जिस प्रकार इन भले मित्रके प्रयत्नोंका अच्छा फल हुआ है उसी प्रकार इस समय भी उनका प्रयत्न सफल हो। (हिं० न०, १२.११.२५)

. . . .

यूनियन सरकारके भारतीयोंके खिलाफ कानून बनानेके बिलका चाहे कुछ भी परिणाम क्यों न आवे, इस प्रश्नको हल करनेमें निःसंदेह श्री एंड्रूजका हिस्सा सबसे बढ़कर ही रहेगा। उनका श्रमहीन उत्साह, उनकी नित्य सावधानी और सुशील समझानेकी शक्तिने हमें सफलताकी आशा

दिलाई है। वे स्वयं यद्यपि आरंभमें बड़े निराश थे; परंतु अब उन्हें आशा बंधी है कि वह बिल, संभव है, कम-से-कम इस बैठकके लिए तो मुलतवी रहे। वे शांतिके साथ पत्र संपादकोंसे और सार्वजनिक कार्यकर्ताओंसे मुलाकात कर रहे हैं। वे पादरियोंकी सहानुभूति प्राप्त कर रहे हैं और इस नए कानूनका उनसे जोरदार शब्दोंमें विरोध करा रहे हैं। इस प्रकार उन्होंने दक्षिण अफ्रीकाके यूरोपियनोंकी रायको, जो इस कानूनके पक्षमें थी, हिला दिया है। इस प्रश्नका उनका अध्ययन गहरा होनेके कारण दक्षिण अफ्रीकाके कुछ नेताओंको संतोषकारक रीतिसे वे यह समझा सके हैं कि उस कानूनसे स्मट्स-गांधी समझौतेका स्पष्ट भंग होता है। उन्होंने बिखरी हुई भारतीय शक्तियोंको भी इस बिलपर आक्रमण करनेके लिए इकट्ठा किया है। इस प्रकार श्री एंड्रूजने भारतकी और मनुष्य-समाजकी सेवामें बड़ी अच्छी वृद्धि की है। अंग्रेज और भारतीयोंके संबंधको मधुर बनानेके लिए जितना प्रयत्न श्री एंड्रूजने किया है उतना आज किसी भी जीवित अंग्रेजने नहीं किया है। उनकी एक आशा इन दोनों राष्ट्रोंके लोगोंको एक ऐसे अभेद्य बंधनमें बांध देना है, जिसका आधार परस्परका आदर और स्वतंत्रता हो। उनका यह स्वप्न सच्चा हो। (हि० न०, ४.२.२६)

. . . .

कविवर, श्रद्धानंदजी और श्री सुशील रुद्रको मैं एंड्रूजकी 'त्रिमूर्ति' मानता था। दक्षिण अफ्रीकामें वह इन तीनोंकी स्तुति करते हुए थकते नहीं थे। दक्षिण अफ्रीकामें हमारे स्नेह-सम्मेलनकी बहुत-सी स्मृतियोंमें यह सदा मेरी आंखोंके सामने नाचा करती है कि इन तीन महापुरुषोंके नाम तो उनके हृदयमें और ओठोंपर रहते ही थे। सुशील रुद्रके परिचयमें भी एंड्रूजने मेरे बच्चोंको ला दिया था। रुद्रके पास कोई आश्रम नहीं था, उनका अपना घर ही था; परंतु उस घरका कब्जा उन्होंने मेरे इस परिवारको दे दिया था। उनके बाल-बच्चे इनके साथ

एक ही दिनमें इतने हिल-मिल गये थे कि ये फिनिक्सको भूल गये। (आ० १९२४)

. . . .

एंड्रूजको लेलो। यह बात नहीं कि दिल-ही-दिल में एंड्रूज भी यह न मानते हों कि अंग्रेजी राज्यने इस देशका कुछ-न-कुछ भला ही किया है। (म० डा०, भाग २, १.१.३३)

. . . .

यहां आनेपर मेरे जीमें जो सबसे प्रबल भावनाएं उठ रही हैं वे दीनबंधुके विषयमें हैं। शायद आप लोग न जानते होंगे कि कल सुबह गाड़ीसे उतरते ही कलकत्तेमें पहला काम मैंने यह किया कि उनसे अस्पतालमें जाकर मिला। गुरुदेव विश्वकवि हैं, पर दीनबंधुमें भी कवि की-सी भावना और प्रकृति है। वे आज यहां होते तो उन्हें कितनी खुशी होती और गुरुदेवके साथ इस मुलाकातके अवसरपर एक-एक शब्द, एक-एक संकेत और एक-एक हरकतका वे किस तरह रसपान करते और उन्हें अपने स्मृति-भंडारमें जमा करते। किंतु ईश्वरकी इच्छा और ही थी। आज वे कलकत्तेमें रोगशैय्यापर पड़े हैं—पूरी तरह बोल भी नहीं सकते। मैं चाहता हूं कि आप सब लोग मेरी इस प्रार्थनामें शामिल हों कि भगवान् उन्हें जल्दी ही हमें वापस देदें और हर हालतमें उनकी आत्माको शांति प्रदान करें। (ह० से०, ३०.३.४०)

. . . .

चार्ली एंड्रूजको जितना मैं जानता था उससे अधिक शायद और कोई नहीं जानता। गुरुदेव तो उनके लिए गुरु-तुल्य थे। पर हम जब दक्षिण अफ्रीकामें एक-दूसरेसे मिले तो भाई-भाईकी तरह मिले और अंत तक वैसे ही बने रहे। हमारा दोनोंमें कोई भेद नहीं था। हमारा संबंध एक [illegible] सत्यके दो जिज्ञा-[illegible]। लेकिन यहां मैं

एंड्रूजके संस्मरण नहीं लिख रहा हूं, जो कि बहुत पवित्र हैं।

ऐसे समय, जबकि एंड्रूजकी स्मृति ताजी है, भारतीयों और अंग्रेजोंका ध्यान मैं उस पवित्र विरासतकी ओर आकर्षित करता हूं जिसे वे छोड़ गये हैं। इंगलैण्डके प्रति किसी भी अंग्रेज देशभक्तसे कम प्रेम उनके हृदयमें नहीं था। इसी प्रकार किसी भारतीयके देश-प्रेमसे कम प्रेम भारतके प्रति उनके हृदयमें नहीं था। उन्होंने अपनी रुग्ण-शैय्यासे, जिसपर वे सदाके लिए सो गये, यह कहा था—"मोहन, स्वराज आ रहा है।" यदि अंग्रेज और भारतीय दोनों मिलकर चाहें तो वह जरूर आ सकता है। वर्तमान शासकों और जिनकी राय वजनदार मानी जाती है ऐसे अंग्रेजोंके लिए एंड्रूज कोई अजनबी नहीं थे। इसी प्रकार राजनीतिसे दिलचस्पी रखनेवाला कोई भारतीय ऐसा नहीं जो उन्हें न जानता हो। इस समय मैं अंग्रेजोंके उन बुरे कारनामोंको याद नहीं करना चाहता जो उन्होंने किए हैं। उन्हें हम भूल जा सकते हैं, पर एंड्रूजने जो वीरता-पूर्ण प्रयत्न किए हैं उन्हें जबतक इंगलैण्ड और भारत जीवित हैं भुलाया नहीं जा सकता। अगर हम एंड्रूजसे स्नेह करते हैं तो हम अपने हृदयमें उन अंग्रेजोंके प्रति घृणाका भाव न आने देंगे जिनमेंसे एंड्रूज महान् और सर्वोत्तम थे। भले अंग्रेजों और भले भारतीयोंके लिए यह संभव है कि वे एक-दूसरेसे मिलें और तबतक अलग न हों जबतक कि दोनोंके लिए संतोषजनक रास्ता न ढूंढ़ निकालें। एंड्रूज जो काम छोड़ गये हैं वह पूरा करनेके योग्य है। जब मैं एंड्रूजके दयापूर्ण चेहरे और उनके उन अगणित प्रेम-पूर्ण प्रयत्नोंकी याद करता हूं जो भारतको संसारके राष्ट्रोंके बीच स्वतंत्र पद पानेके लिए उन्होंने किये तो मेरे मनमें यही विचार रहा है।

(ह० से०, १३.४.४०)

सी० एफ० एंड्रूजकी मृत्युके रूपमें न केवल भारतने, बल्कि मानवताने अपनी एक सच्ची संतान और सेवकको खो दिया। फिर भी उनकी मृत्यु पीड़ासे छुटकारा और संसारमें जिस मिशनको लेकर वे आये थे, उसकी

पूर्ति ही कही जायगी। वे उन हजारों लोगोंके हृदयमें जीवित रहेंगे, जिन्होंने उनकी रचनाओंको पढ़कर या उनके वैयक्तिक संपर्कमें आकर कुछ भी लाभ उठाया है। मेरी रायमें तो चार्ली एंड्रूज महान् और सर्वोत्तम अंग्रेजोंमेंसे एक थे और चूंकि वे इंगलैण्डकी एक अच्छी संतान थे, भारतकी भी अच्छी संतान हुए। जो कुछ उन्होंने यहां किया, सब मानवता और प्रभु ईसामसीहके लिए ही। अबतक मुझे सी० एफ० एंड्रूजसे उत्तम मनुष्य या ईसाई नहीं मिला है। भारतने उन्हें 'दीनबंधु' की उपाधि दी, जिसके वे सभी तरहके दीन-दलितोंके सच्चे मित्र होनेके कारण पूर्ण अधिकारी थे। (दी० अ०, पृष्ठ १०२)

. . . .

जैसा सदा होता है, इस स्मारकके लिए भी अपने आप ही चंदा नहीं आयेगा। उसके लिए संगठनकी जरूरत पड़ेगी। सबसे वांछनीय तो यह है कि दीनबंधुके बहुसंख्यक भक्तोंको यह काम खुद अपने ऊपर उठा लेना चाहिए। इसलिए यह प्रकाशित करते हुए आनंद होता है कि आगरामें यह काम वहांके छात्र करने जा रहे हैं। इससे अच्छा और क्या हो सकता है? उन्हें इस संग्रहके लिए, जो आखिरकार एक छोटी-सी रकम है, सर्वत्र संगठन करना चाहिए। चार्ली एंड्रूज बहुत ऊंचे दर्जेके शिक्षा-शास्त्री थे। शिक्षाशास्त्रीके रूपमें ही वह अपने मित्र और प्रधान प्रिंसिपल रुद्रकी मदद करने आए थे। अपने अंतिम गृहके रूपमें उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिकी एक शिक्षण-संस्थाको चुना था। उसके निर्माणके लिए उन्होंने अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया। अगर एंड्रूजके घनिष्ट संपर्कका खयाल छोड़ दिया जाये तो भी शांतिनिकेतन खुद छात्र-संसारकी भक्ति पानेके योग्य है। इसलिए मैं आशा करता हूं कि हिंदुस्तानके छात्र चंदा इकट्ठा करनेके काममें अग्र भाग लेंगे। इनके बाद दीन जनोंकी बारी आती है जिन्होंने कि एंड्रूजकी सेवाओंसे विशेष रूपसे फायदा उठाया है। यदि यह पांच लाख, हजारों छात्रों और दीन जनोंकी भेंटोंसे पूरा हो जाए तो बहुत

बड़ी, बहुत उचित, बात होगी, बनिस्बत इसके कि दीनबंधुके कुछ ऐसे खास धनी मित्रोंके दानसे उसकी पूर्ति कर ली जाए, जो उनके निकट संपर्कमें आए थे और जिन्हें उनके महत्त्वकी पूरी जानकारी थी।

(ह० से०, १५.६.४०)

. . . .

आज एंड्रूज साहबकी सातवीं पुण्य-तिथि है। उनके गुणोंको हमें याद करना चाहिए। उनका जीवन बहुत सादा था। हम दोनों घने मित्र रहे हैं। उनकी चमड़ी गोरी थी, लेकिन वह इतने सादे थे और देहातियोंसे मिलते-जुलते थे कि वह अंग्रेज हैं, ऐसा पहिचानना कठिन हो जाता था। उनको कपड़े पहननेका भी शऊर न था। मोटेसे बदनपर ढीली-ढाली धोती किसी तरह लपेट लेते थे। उनको ऊपरके दिखावेसे काम न था। उनका दिल सोनेका था। (प्रा० प्र०, ५.४.४७)

: २६ :

वैद्यनाथ ऐयर

मदुराके एक सनातनी सज्जनने शिकायत करते हुए मुझे लिखा था कि वहां सुप्रसिद्ध मीनाक्षी-मंदिर जिस तरीकेसे खोला गया वह ठीक नहीं था। मैंने उस शिकायतको श्री वैद्यनाथ ऐयरके पास भेज दिया था और एक दूसरे मित्रको भी उसके बारेमें लिखा था। उन सज्जनने मेरे पास उक्त शिकायतका स्पष्ट प्रतिवाद भेजा और अपने पत्रमें उन्होंने यह भी लिखा कि सनातनियोंने श्री वैद्यनाथ ऐयरको इतना ज्यादा सताया है कि उनका हृदय विदीर्ण हो गया है। इसपर मैंने उन्हें एक लंबा तार भेजा कि उन्हें सतानेवाले उनके बारेमें चाहे जो कहें या करें, उन्हें उसपर ध्यान

नहीं देना चाहिए। एक धार्मिक सुधारकके रूपमें उन्हें तो पूरी अनासक्तिसे काम करना चाहिए और अत्याचारों तथा बुरी-से-बुरी स्थितिमें भी स्थिर चित्त रहना चाहिए। मेरे तारका उन्होंने यह आश्वासनप्रद उत्तर दिया, "भगवती मीनाक्षीकी कृपा और आपके आशीर्वादसे स्वाभाविक शांति प्राप्त कर ली है। काम जारी है। आशा है कि दूसरे बड़े-बड़े मंदिर भी जल्दी ही खुल जाएंगे। आपका स्नेह और आशीर्वाद मुझे बड़े-से-बड़ा सहारा दे रहे हैं।" यह उत्तर इस महान् सुधारकके अनुरूप ही है। अस्पृश्यता-निवारण प्रवृतिके अत्यंत विनम्र और मूक कार्यकर्त्ताओंमेंसे श्री वैद्यनाथ ऐयर हैं। वे एक ईश्वरभीरु मनुष्य हैं।

दिल्लीके श्रीब्रजकृष्ण चांदीवालाने, जो दक्षिणकी तीर्थयात्रा करने गये थे, अपने मदुराके अनुभवको इस प्रकार लिखा है :

"...श्री वैद्यनाथ ऐयरके घरपर मैंने अनुभव किया कि उनके जैसे सुधारकोंको मंदिर-प्रवेशके कारण कैसे-कैसे कष्ट उठाने पड़ रहे हैं। मैंने अगर खुद अपनी आंखों न देखा होता कि श्री वैद्यनाथ ऐयरपर कैसी-कैसी बीत रही है तो मैं कभी विश्वास नहीं कर सकता था कि मनुष्य-स्वभाव इतना नीचे उतर सकता है, जैसा कि मैंने मदुरामें देखा। उनके प्रति सनातनियोंका बर्ताव अत्यंत अनुचित रहा है। विरोधियोंने यह भी एक तरीका अख्त्यार किया है कि वैद्यनाथ ऐयरके बारेमें झूठी बातोंका प्रचार किया जाये; किंतु वे तथा उनकी पत्नी दोनों ही इन तमाम अत्याचारोंको बहादुरीसे बर्दाश्त कर रहे हैं।" (ह० सें०, २३.१२.३९)

: २७ :

कबीन

कबीन नामक एक व्यक्ति जोहान्सबर्गमें रहनेवाले चीनी लोगोंके अगुवा भी थे। जोहान्सबर्गमें उनकी संख्या कोई तीन-चार सौ होगी। वे सभी व्यापार या छोटी-मोटी खेतीका काम करते थे। भारत कृषि-प्रधान देश है। पर मेरा यह विश्वास है कि चीनी लोगोंने खेतीको जितना बढ़ाया है उतना हम लोगोंने नहीं। अमरीका आदि देशोंमें खेतीकी जो प्रगति हुई है वह आधुनिक है और उसका तो वर्णन ही नहीं हो सकता। उसी प्रकार पश्चिमी खेतीको मैं अभी प्रयोगावस्थामें मानता हूं। पर चीन तो हमारे ही जैसा प्राचीन देश है और वहां प्राचीन कालसे ही खेतीमें तरक्की की गई है। इसलिए चीन और भारतकी तुलना करें तो हमें उससे कुछ शिक्षा मिल सकती है। जोहान्सबर्गके चीनियोंकी खेती देखकर और उनकी बातें सुनकर तो मुझे यही मालूम हुआ कि चीनियोंका ज्ञान और उद्योग भी हम लोगोंसे बहुत बढ़कर है। जिस जमीनको हम ऊसर समझकर छोड़ देते हैं, उसमें वे अपने खेतीके सूक्ष्म ज्ञानके कारण बीज बोकर अच्छी फसल पैदा कर सकते हैं। यह उद्यमशील और चतुर कौम भी उस खूनी कानूनकी श्रेणीमें आती थी। इसलिए उसने भी भारतीयोंके साथ युद्धमें शामिल होना उचित समझा। फिर भी शुरूसे आखिरतक दोनों कौमोंका हरएक व्यवहार अलग-अलग होता था। दोनों अपनी-अपनी संस्थाओंके द्वारा झगड़ रही थीं। इसका शुभ फल यह होता है कि जबतक दोनों जातियां अपने निश्चयपर दृढ़ रहती हैं तबतक तो दोनोंको फायदा होता है; पर आगे चलकर यदि एक फिसल भी जाय तो इससे दूसरी जातिको कोई हानिकी संभावना नहीं रहती। वह गिरती तो हरगिज नहीं। आखिर बहुतसे चीनी तो फिसल गये; क्योंकि उनके

नेताने उन्हें धोखा दिया । नेता कानूनके वश तो नहीं हुए; पर एक दिन किसीने आकर मुझसे कहा कि वे बिना हिसाब-किताब समझाए ही कहीं भाग गये । नेताके चले जानेके बाद अनुयायियोंका दृढ़ रहना तो हमेशा मुश्किल ही पाया गया है । फिर नेतामें किसी मलिनताके पाए जानेपर तो निराशा दूनी बढ़ जाती है । पर जिस समय पकड़ा-धकड़ी शुरू हुई उस समय तो चीनी लोगोंमें बड़ा जोश फैला हुआ था । उनमेंसे शायद ही किसीने परवाने लिए हों, इसीलिए भारतीय नेताओंके साथ चीनियोंके कर्त्ता-धर्त्ता मि० क्वीन भी पकड़े गये । इसमें शक नहीं कि कुछ समयतक तो उन्होंने बहुत अच्छी तरह काम किया था । (द० अ० स० १९२५)

: २८ :

अहमद मुहम्मद काछलिया

भारतीयोंके भाषण शुरू हुए । इस प्रकारके, और सच पूछा जाय तो इस इतिहासके, नायकका परिचय तो मुझे अभी देना ही बाकी है । जो वक्ता खड़े हुए उनमें स्वर्गीय अहमद मुहम्मद काछलिया भी थे । उन्हें तो मैं एक मवक्किल और दुभाषियेकी हैसियतसे जानता था । वे अभी-तक किसी आंदोलनमें आगे होकर भाग नहीं लेते थे । उनका अँग्रेजी भाषाका ज्ञान कामचलाऊ था । पर अनुभवसे उन्होंने उसे यहांतक बढ़ा लिया कि जब वे अंग्रेज वकीलोंके यहां अपने मित्रोंको ले जाते तब दुभाषियेका काम वे स्वयं ही करते थे । वैसे उनका पेशा दुभाषियेका नहीं था । यह काम तो वे बतौर मित्रके ही करते थे । पहले वे कपड़ेकी फेरी लगाते थे । बादमें उन्होंने अपने भाईके साझेमें छोटे पैमानेपर व्यापार शुरू किया । वे सूरती मेमन थे । उनका जन्म सूरत जिलेमें हुआ था । सूरती मेमनोंमें उनकी

खासी प्रतिष्ठा थी। गुजरातीका ज्ञान भी मामूली ही था। हां, अनुभवसे उन्होंने उसे खूब बढ़ा लिया था। पर उनकी बुद्धि इतनी तेज थी कि वे चाहे जिस बातको बड़ी आसानीसे समझ लेते थे। मामलोंकी उलझन इस प्रकार स्पष्ट करते कि मैं तो कई बार चकित हो जाता। वकीलों के साथ कानूनी दलीलें करनेमें भी जरा न हिचकते थे। उनकी कई दलीलें तो ऐसी होतीं कि वकीलोंको भी विचार करना पड़ता।

बहादुरी और एकनिष्ठामें उनसे बढ़कर आदमी मुझे न तो दक्षिण अफ्रीकामें मिला और न भारतमें। कौमके लिए उन्होंने अपने सर्वस्वकी आहुति दे दी थी। उनके साथ जितनी बार मुझे काम पड़ा, उन सब प्रसंगों-पर मैंने उन्हें एकवचनी ही पाया। स्वयं चुस्त मुसलमान थे। सूरती मेमन-मसजिदके मुतवल्लियोंमें वे भी एक थे। पर साथ ही वे हिंदू और मुसलमानोंके लिए समदर्शी थे। मुझे ऐसा एक भी प्रसंग याद नहीं आता जब उन्होंने धर्मांध बनकर हिंदुओंके खिलाफ किसी बातकी खींचातानी की हो। वे बिलकुल निडर और निष्पक्ष थे। इसलिए मौकेपर हिंदुओं और मुसलमानोंको भी उनका दोष दिखाते समय उन्हें जरा भी संकोच न होता था। उनकी सादगी और निरभिमानता अनुकरणीय थी। उनके साथ मेरा जो बरसोंका संबंध रहा, उससे मुझे यह दृढ़ विश्वास हो चुका है कि स्वर्गीय अहमद मुहम्मद काछलिया-जैसा पुरुष कौमको फिर मिलना कठिन है।

प्रिटोरियाकी सभामें बोलनेवालोंमें एक पुरुष यह भी थे। उन्होंने बहुत ही छोटा भाषण दिया। वे बोले—"इस खूनी कानूनको हरएक हिंदुस्तानी जानता है। उसका अर्थ हम सब जानते हैं। मि० हास्किनका भाषण मैंने खूब ध्यान लगाकर सुना। आपने भी सुना। मुझपर तो उसका परिणाम यही हुआ है कि मैं अपनी प्रतिज्ञापर और भी दृढ़ हो गया हूं। ट्रांसवाल सरकारकी ताकतको हम जानते हैं; पर इस खूनी

कानूनसे और अधिक किस बातका डर सरकार हमें बता सकती है ? जेल भेजेगी, जायदाद बेच देगी , हमें देशसे बाहर कर देगी—फांसीपर लटका देगी । यह सब हम बरदाश्त कर सकते हैं । पर इस कानूनके आगे सिर नहीं झुका सकते ।" मैं देखता था कि यह सब बोलते हुए अहमद मुहम्मद काछलिया बड़े उत्तेजित होते जा रहे थे । उनका चेहरा लाल हो रहा था । सिर और गर्दनकी रगें जोशके मारे बाहर उभड़ आई थीं । बदन कांप रहा था । अपने दाहिने हाथकी उंगलियां गर्दनपर रखकर वे गरजे—"मैं खुदाकी कसम खाकर कहता हूं कि मैं कत्ल हो जाऊंगा; पर इस कानूनके आगे कभी अपना सर नहीं झुकाऊंगा । और मैं चाहता हूं कि यह सभा भी यही निश्चय करे ।" यह कहकर वह बैठ गये । जब उन्होंने गर्दनपर हाथ रक्खा तब मंचपर बैठे हुए कितने ही लोगोंके मुंहपर मुस्कराहट दिखाई दी। मुझे याद है कि मैं भी उन्हींमेंसे था। जितने जोरके साथ काछलिया सेठने ये शब्द कहे थे उतना जोर अपनी कृतिमें वे दिखा सकेंगे या नहीं, इस बातमें मुझे जरा संदेह था । पर जब-जब वह संदेह-वाली बात मुझे याद आती है तो आज यह लिखते समय भी मुझे अपने ऊपर लज्जा मालूम होती है । इस महान् युद्धमें जिन बहुत-से आदमियोंने अपनी प्रतिज्ञाका अक्षरशः पालन किया था, काछलिया सेठ उनमें अग्रगण्य थे । मैंने कभी उन्हें अपना रंग पलटते हुए नहीं देखा ।

सभाने तो इस भाषणका करतल-ध्वनिसे स्वागत किया। मेरी अपेक्षा अन्य सभासद उन्हें इस समय बहुत अधिक जानते थे, क्योंकि उनमेंसे अधिकांशको इस 'गुदड़ीके लाल'से व्यक्तिगत परिचय भी था । वे जानते थे कि काछलिया जो करना चाहते हैं, वही करते हैं और जो कहते हैं उसे अवश्य ही पूरा करते हैं । और भी कई जोशीले भाषण हुए । काछलिया सेठके भाषणको उनमेंसे इसीलिए छांट लिया कि उनकी बादकी कृतिसे उनका यह भाषण भविष्यवाणी साबित हुआ। जोशीले भाषणोंके देने-वाले सभी अंततक नहीं टिक सके । इस पुरुष-सिंहकी मृत्यु अपने देश-

भाइयोंकी सेवा करते-करते ही सन् १९१८में अर्थात् इस युद्ध (दक्षिण अफ्रीकाका) के खतम होनेके चार साल बाद हुई।

उनका एक और स्मरण है। उसे और कहीं नहीं दिया जा सकता, इसलिए यहींपर लिख देता हूं। टॉल्स्टॉय फार्ममें सत्याग्रहियोंके कुटुंब रहते थे। वहां आपने अपने पुत्रोंको भी बतौर उदाहरणके तथा सादगी और जाति-सेवाका पाठ पढ़नेके लिए रक्खा था और इसीको देखकर अन्य मुसलमान माता-पिताओंने भी अपने बच्चे इस फार्मपर भेजे थे। जवान काछलियाका नाम अली था। उम्र १०-१२ सालकी होगी। अली नम्र, चपल, सत्यवादी और सरल लड़का था। लड़ाईके बाद, पर काछलिया सेठके पहले, उसे भी फरिश्ते खुदाके दरबारमें ले गये; पर मुझे विश्वास है कि यदि वह भी जीता रहता तो अपने पिताकी कीर्तिको और भी पल्लवित करता।

... ...

कई भारतीय व्यापारियोंको अपने व्यापारके लिए गोरे व्यापारियोंकी कोठियोंपर अवलंबित रहना पड़ता था। वे लाखों रुपयोंका माल बिना किसी प्रकारकी रहनके केवल भारतीय व्यापारियोंके विश्वासपर दे दिया करते हैं। सचमुच, भारतीय व्यापारकी प्रामाणिकताका यह एक सुंदर नमूना है कि वे वहांपर इतना विश्वास संपादन कर सके हैं। काछलिया सेठके साथ भी कई अंग्रेजी फर्मोंका इसी प्रकारका लेन-देनका संबंध था। प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपसे, किसी प्रकार सरकारकी ओरसे इशारा मिलते ही, ये व्यापारी काछलिया सेठसे अपनी वे सब मुद्राएं मांगने लगे, जो उनकी तरफ लेना निकलती थीं। उन्होंने तो काछलिया सेठको बुलवाकर यहांतक कहा कि 'यदि आप इस युद्धसे अपनेको अलग रक्खें तब तो आपको उन मुद्राओंके लिए कुछ भी जल्दी करनेकी आवश्यकता नहीं है। अगर आप यह न करें तो हमें यह भय हमेशा रहेगा कि सरकार आपको न जाने किस वक्त पकड़ ले और यदि ऐसा ही हुआ तो

फिर हमारी मुद्राओंका क्या होगा ? इसलिए यदि इस युद्धमेंसे अपना हाथ हटा लेना आपके लिए किसी प्रकार असंभव हो तो हमारी मुद्राएं आपको इसी समय लौटा देनी चाहिए।' इस वीर पुरुषने उत्तर दिया—"युद्ध तो मेरी व्यक्तिगत वस्तु है। मेरे व्यापारके साथ उसका कोई संबंध नहीं है। अपने धर्म, अपनी जातिके सम्मान और स्वयं मेरे स्वाभिमानकी रक्षाके लिए यह युद्ध छिड़ा हुआ है। आपने मुझे केवल विश्वासपर जो माल दिया है उसके लिए मैं आपका जरूर एहसानमंद हूं। पर इसलिए मैं न तो उस कर्जको और न अपने व्यापारको ही सर्वोपरि स्थान दे सकता हूं। आपके पैसे मेरे लिए सोनेकी मुहरें हैं। अगर मैं जिंदा रहा तो अपने आपको बेंचकर भी आपके पैसे लौटा दूंगा। पर मान लीजिए कि मेरा और कुछ हो गया तो उस हालतमें आप यह विश्वास रक्खें कि मेरा माल और तमाम उगाही आपके हाथोंमें ही है। आजतक आपने मेरा विश्वास किया है। मैं चाहता हूं कि आगेके लिए भी आप इसी प्रकार मेरा विश्वास करें।" यह दलील बिलकुल ठीक थी। काछलियाकी दृढ़ताको देखते हुए गोरोंको उनपर और भी विश्वास होना चाहिए था। पर बात यह थी कि इस समय उन लोगोंपर इसका कोई असर नहीं हो सकता था। हम सोए हुए आदमीको तो जगा सकते हैं, पर सोनेका ढोंग करनेवालेको नहीं। यही हाल उन गोरे व्यापारियोंका भी हुआ। वे तो काछलिया सेठको दबाना चाहते थे, उनकी लेन-देन थोड़े ही डूबने वाली थी!

मेरे दफ्तरमें लेनदारोंकी एक मीटिंग हुई। मैंने उन्हें साफ-साफ शब्दोंमें कह दिया कि आप इस समय जो काछलिया सेठको दबाना चाहते हैं उसमें व्यापार-नीति नहीं, राजनैतिक चाल है। व्यापारियोंको यह काम शोभा नहीं देता। पर वे तो और भी चिढ़ गये। काछलिया सेठके माल और उगाही दोनोंकी फेहरिस्त मेरे पास थी। उसे मैंने उन व्यापारियोंको दिखाया। यह भी सिद्ध कर दिखाया कि उससे उन्हें अपना पूरा

धन मिल सकता है और कहा—"इतनेपर भी यदि आप इस तमाम व्यापारको किसी दूसरे आदमीके हाथ बेच देना चाहते हों तो काछलिया सेठ अपना तमाम माल और उगाही खरीददारको सौंपनेके लिए भी तैयार हैं। यदि यह भी आपको स्वीकार न हो तो दूकानमें जितना भी माल है, उसे मूल कीमतमें आप ले लें। केवल मालसे यदि काम न चले तो उसके बदलेमें उगाहीमेंसे जिसे पसंद करें ले लें।" पाठक सोच सकते हैं कि गोरे व्यापारी यदि इस प्रस्तावको मंजूर कर लेते तो उनकी कोई हानि नहीं होती। (और कई मवक्किलोंके संकट-समयमें मैंने उनके कर्जकी यही व्यवस्था की थी) पर इस समय व्यापारी न्याय न चाहते थे। काछलिया नहीं झुके और वह दिवालिया देनदार साबित हुए।

पर यह दिवालियापन उनके लिए कलंक-रूप नहीं, बल्कि भूषण था। इससे कौममें उनकी इज्जत कहीं बढ़ गई और उनकी दृढ़ता और बहादुरीपर सबने उनको बधाई दी। यह वीरता तो अलौकिक है। सामान्य मनुष्य उसको भलीभांति नहीं समझ सकते। सामान्य मनुष्य तो यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि दिवालियापन एक बुराई और बदनामीके बदले सम्मान और आदरकी वस्तु किस तरह हो सकती है। पर काछलियाको तो यही बात स्वाभाविक मालूम हुई। कई व्यापारियोंने केवल इसी भयके कारण खूनी कानूनके सामने सिर झुका लिया कि कहीं उनका दिवाला न निकल जाय। काछलिया भी यदि चाहते तो इस नादारीसे छूट सकते थे। युद्धसे विमुख होकर तो वह अवश्य ही ऐसा कर सकते थे। पर इस समय मैं कुछ और ही कहना चाहता हूं। कई भारतीय काछलियाके मित्र थे जो उनको इस संकट-समयमें कर्ज दे सकते थे। पर यदि वह इस तरह अपने व्यापारको बचा लेते तो उनकी बहादुरीमें धब्बा नहीं लग जाता? कैदकी जोखिम तो उनकी भांति दूसरे सत्याग्रहियोंके लिए भी थी। इसलिए यह तो उनसे हरगिज नहीं हो सकता था कि वे सत्याग्रहियोंसे पैसे लेकर गोरे व्यापारियोंका ऋण अदा कर दें।

पर सत्याग्रही व्यापारियोंके समान ही अन्य भारतीय भी उनके मित्र थे, जिन्होंने खूनी कानूनके सामने सिर झुका दिया था, और मैं जानता हूं कि उनकी सहायता भी काछलिया सेठको मिल सकती थी। जहांतक मुझे याद है, एक-दो मित्रोंने उन्हें इस विषयमें कहलाया भी था। पर उनकी सहायता लेनेका अर्थ तो यही न होता कि हमने इस बातको स्वीकार कर लिया कि खूनी कानूनको मानने ही में बुद्धिमानी है। इसलिए हम दोनों इसी निश्चयपर पहुंचे कि उनकी सहायता हमें कदापि स्वीकार नहीं करनी चाहिए। फिर हम दोनोंने यह भी सोचा कि यदि काछलिया अपनेको नादार कहलाएंगे तो उनकी नादारी दूसरोंके लिए ढालका काम देगी; क्योंकि अगर सौमें पूरी सौ नहीं तो निन्यानवे फीसदी नादारियोंमें लेनदारको नुकसान उठाना पड़ता है। अगर उनके लेनेमेंसे फीसदी पचास भी मिल जाते हैं तो भी वे खुश होते हैं। जब फीसदी पिचहत्तर मिल जायं तब तो वे उसीको पूरे सौ ही मान लेते हैं; क्योंकि दक्षिण अफ्रीकामें प्रतिशत ६) नहीं; बल्कि फी सैकड़ा २५) मुनाफा लिया जाता है। इसलिए अपनी लेनमेंसे फी सैकड़ा ७५ मिलनेतक तो वे उसे घाटेका व्यवहार नहीं मानते; किंतु नादारीमें पूरा-का-पूरा तो शायद ही कभी मिलता है। इसलिए कभी कोई लेनदार यह नहीं चाहता कि उसका कर्जदार दिवालिया हो जाय।

इसलिए काछलियाका उदाहरण दिखाकर गोरे लोग दूसरे व्यापारियोंको धमकी नहीं दे सकते थे। और हुआ भी ऐसा ही। गोरे चाहते थे कि काछलियाको युद्धसे अपना हाथ हटा लेनेके लिए मजबूर करें और यदि काछलिया इसे मंजूर न करें तो उनसे पूरे सौ-के-सौ वसूल करें। पर इन दोमेंसे उनका एक भी हेतु सिद्ध न हुआ। इसका तो उलटे एक विपरीत ही परिणाम हुआ। एक प्रतिष्ठित भारतीयको इस तरह नादारीका स्वागत करते हुए देखकर गोरे आपारी चकित हो गए और हमेशाके लिए शांत हो गए। परंतु इधर एक सालके अंदर ही काछलियाके माल-

मेंसे ही गोरे व्यापारियोंको पूरे सौ-के-सौ मिल गए। दक्षिण अफ्रीकामें दिवालिया देनदारसे लेनदारको पूरे सौ-के-सौ मिल जाना अपनी जानकारीमें मेरा पहला ही अनुभव था। युद्ध शुरू हो गया था; पर फिर भी इससे गोरे व्यापारियोंमें काछलियाका सम्मान बेहद बढ़ गया। आगे चलकर युद्ध-कालमें उन्हीं व्यापारियोंने काछलियाको मनमाना माल देनेके लिए अपनी तत्परता दिखाई। पर काछलियाका बल तो दिन-ब-दिन बढ़ता ही जा रहा था। युद्धके रहस्यको भी वह भलीभांति समझ चुके थे। और यह तो कौन कह सकता था कि युद्ध शुरू होनेके बाद वह कितने रोज चलेगा। इसलिए नादारीके बाद हमने तो यही निश्चय कर लिया कि लंबे-चौड़े व्यापारकी झंझटमें पड़ना ही नहीं। उन्होंने भी निश्चय कर लिया कि अब, जबतक युद्ध समाप्त नहीं होता, उतना ही व्यापार किया जाय कि जिससे एक गरीब मनुष्य अपना निर्वाह कर सके, इससे ज्यादा नहीं। इसलिए गोरोंने जो वचन दिया, उसका उपयोग उन्होंने नहीं किया। काछलिया सेठके जीवनकी जिन घटनाओंका वर्णन मैं कर चुका हूं, वे कमिटी की मीटिंगके बाद हुई हों सो बात नहीं; पर मैंने उन्हें यहांपर इसीलिए लिख देना ठीक समझा कि उनको कहीं एक ही बार दे देना योग्य होगा। अगर तारीखवार देखा जाय तो दूसरा युद्ध शुरू होनेपर कितने ही समय बाद काछलिया अध्यक्ष हुए और नादार होनेके पहले, इसके बाद और भी कितना ही समय बीत गया।　　(द० अ० स० १९२५)

: २६ :

अलबर्ट कार्टराइट

अलबर्ट कार्टराइट ('ट्रांसवाल लीडर'के संपादक) बड़े चतुर और अतिशय उदार हृदय सज्जन थे। वे अपने अग्रलेखों तकमें अक्सर भारतीयोंका ही पक्ष लिया करते। मेरे और उनके बीच गहरा स्नेह-संबंध हो गया था और मेरे जेल जानेके बाद वह जनरल स्मट्ससे भी मिले थे। जनरल स्मट्सने उन्हें संधिकर्ता स्वीकार किया तब मि० कार्टराइट कौमके अगुओंसे मिले। पर उन्होंने यही उत्तर दिया कि हम लोग कानूनकी बारीकियोंको नहीं जानते। गांधी जेलमें हैं। जबतक वह छोड़ नहीं दिये जाते इस विषयमें कोई सलाह-मशविरा करना हम अनुचित समझते हैं। हम सुलह तो चाहते हैं; पर यदि हमारे आदमियोंको बिना छोड़े ही सरकार सुलह करना चाहती हो तो गांधी जानें। आप गांधीसे मिलें। वह जो कहेगा, हम सब मंजूर करेंगे। इसपर अलबर्ट कार्टराइट मुझसे मिलनेके लिए आए। साथ ही जनरल स्मट्सका बनाया अथवा पसंद किया हुआ समझौतेका मसविदा भी लाए थे। उसकी भाषा गोलमाल थी। वह मुझे पसंद नहीं आई। फिर भी एक जगह कुछ दुरुस्ती करनेपर मैं उसपर दस्तखत करनेके लिए तैयार हो गया। पर मैंने कहा कि बाहरवाले यदि इसे मानलें तो भी मैं इसपर तबतक दस्तखत नहीं कर सकता जबतक जेलके साथियोंकी आज्ञा अथवा सम्मति भी मैं प्राप्त नहीं कर लेता। समझौतेका सार इस प्रकार था : "भारतीय स्वेच्छापूर्वक अपने परवाने बदलवा लें। उनपर कानूनका कोई अधिकार न होगा। नवीन परवाना भारतीयोंकी सलाहसे सरकार बनावे और यदि इसे भारतीय स्वेच्छापूर्वक ले लें तब तो खूनी कानून रद हो ही जायगा और स्वेच्छापूर्वक लिए गये नवीन परवानोंको कानूनन करार देनेके लिए सरकार एक नया कानून

बना लेगी।" खूनी कानूनको रद करनेकी बात इस मसविदेमें स्पष्ट नहीं लिखी गई थी। उसे स्पष्ट करनेके लिए मैंने अपनी समझके अनुसार एक सुधारकी सूचना की। पर अलबर्ट कार्टराइटने उसे पसन्द नहीं किया। उन्होंने कहा, "जनरल स्मट्सका यह आखिरी मसविदा है। स्वयं मैंने भी इसे पसंद किया है। और यह तो मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि अगर आप सब परवाने ले लें तब तो यह खूनी कानून रद हुआ ही समझिए।" मैंने कहा, "समझौता हो या न हो, लेकिन आपकी इस सहानुभूति और समझौतेकी कोशिशके लिए हम आपके सदाके लिए अनुग्रहीत होंगे। मैं एक भी अनावश्यक फेरफार करना नहीं चाहता। जिस भाषासे सरकारकी प्रतिष्ठाकी रक्षा होती हो उसका मैं ख्वामख्वाह विरोध नहीं करूँगा। पर जहां अर्थके विषयमें स्वयं मुझे शंका है वहां तो मुझे अवश्य ही कुछ स्पष्टीकरणकी सूचना करनी चाहिए और अंतमें यदि समझौता करना ही है तो दोनों पक्षोंको कुछ परिवर्तन करनेका अधिकार जरूर ही होना चाहिए। जनरल स्मट्स पिस्तौल दिखाकर उसके बलपर कोई समझौता हमसे मंजूर करानेकी व्यर्थकी कोशिश न करें। खूनी कानून-रूपी एक पिस्तौल तो पहले हीसे हमारे सामने है। अब इस दूसरे पिस्तौलका असर हमपर और क्या हो सकता है?" मि० कार्टराइट इसके उत्तरमें कुछ न कह सके। उन्होंने यह मंजूर किया कि मैं आपका बताया यह परिवर्तन जनरल स्मट्सके सामने पेश कर दूंगा। मैंने अपने साथियोंसे भी मशविरा किया। भाषा तो उन्हें भी पसंद नहीं आई; पर यदि उतने परिवर्तनके साथ जनरल स्मट्स समझौता करते हों तो हम भी उसे मंजूर कर लें यह बात उन्हें पसंद थी। बाहरसे जो लोग आए थे, वे भी अगुआओंका यह संदेश लाए कि यदि उचित समझौता हो रहा हो तो कर लेना चाहिए। हमारी सम्मतिकी राह न देखी जाय। इस मसविदेपर मैंने मि० कवीन और थंबी नायडूके भी दस्तखत लिए और तीनों दस्तखतोंवाला मसविदा कार्टराइटको सौंप दिया।

दूसरे या तीसरे दिन जोहान्सबर्गका पुलिस सुपरिन्टेंन्डेन्ट आया और मुझे जनरल स्मट्सके पास ले गया। उनकी मेरी बहुत-सी बातें हुईं। उन्होंने मुझसे यह भी कहा कि मि० कार्टराइटके साथ मैंने चर्चा की थी। मेरे जेल जानेपर कौम दृढ़ रही, इसके लिए उन्होंने मुझे मुबारकबाद दिया और कहा—"आप लोगोंके विषयमें मेरा कोई व्यक्तिगत दुर्भाव नहीं है। आप जानते ही हैं कि मैं एक बैरिस्टर हूं। मेरे साथ कितने ही भारतीय पढ़े भी हैं। मुझे तो यहां केवल अपना कर्तव्य-पालन करना है। गोरे लोग इस कानूनको चाहते हैं। आप यह भी स्वीकार करेंगे कि उनमें भी अधिकांश बोअर नहीं, अंग्रेज ही हैं। आपने जो सुधार किया उसे मैं मंजूर करता हूं। जनरल बोथाके साथ भी मैं बातचीत कर चुका हूं और मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि यदि आपमेंसे अधिकांश लोग परवाने ले लेंगे तो एशियाटिक एक्टको रद कर दूंगा। स्वेच्छापूर्वक लिए जानेवाले परवानेको मंजूर करनेवाले कानूनका मसविदा तैयार करनेपर उसकी एक नकल आपके पास नोटके लिए भेजूंगा। मैं नहीं चाहता कि यह आंदोलन फिरसे जागे। आपके भावोंका मैं सम्मान करता हूं।" (द०अ०स०१९२५).

: ३० :

राजासाहब कालाकांकर

राजासाहब कालाकांकर २० सितम्बरको असमय ही स्वर्ग सिधार गए। वे एक महान् हरिजन-सेवक थे। लगभग एक सालसे वे बीमार थे। मैं पिछली बार जब कलकत्ते गया तो मैं उन्हें मुश्किलसे पहचान सका। वहां वे अपना इलाज करा रहे थे। राजासाहब संयुक्त प्रांतके एक अत्यंत उदारहृदय तालुकेदार थे। उनके विषयमें निस्संदेह यह कहा

जा सकता है कि उन्होंने यथाशक्ति अपना जीवन अपनी प्रजाके लिए बिताया। बड़ी सादी रहन-सहन थी। लोगोंसे खूब दिल खोलकर मिलते थे। हरिजनोंपर उनका उतना ही प्रेम था, जितना दूसरी जातियोंपर। अपने प्रत्यक्ष आचरणके दृष्टांतसे वे अपनी रियासतसे सवर्ण हिंदुओंसे अस्पृश्यता छुड़वाने और हरिजनोंको भी वही सब अधिकार दिलवाने का प्रयत्न करते रहते थे, जो उनकी सवर्ण प्रजाको प्राप्त थे। राज्यके प्रबंधाधीन तमाम विद्यालय, कुएं और मंदिर उन्होंने हरिजनोंके लिए खोल दिए थे। हमें आशा है कि रानीसाहिबा तथा कालाकांकरके अन्य राज-कुटुम्बी स्व० राजासाहबकी स्मृतिको अजर-अमर बनाए रखनेके लिए उनकी उस प्रेमपूर्ण उदारताका सदैव अनुसरण करते रहेंगे। (ह० से०, २६. १०. ३१)

: ३१ :

हर्बर्ट किचन

हर्बर्ट किचन एक शुद्ध-हृदय अंग्रेज थे। वे बिजलीका काम-काज करते थे। बोअरयुद्धमें उन्होंने हमारे साथ काम किया। कुछ समय तक वे 'इंडियन ओपीनियन' के संपादक भी रहे थे। उन्होंने मृत्यु समयतक ब्रह्मचर्यका पालन किया था। (द० अ० स० १९२५)

: ३२ :

जे० सी० कुमारप्पा

ब्रिटेन और भारतके परस्परके देन (राष्ट्रीय ऋण) के संबंधमें जांच

करनेके लिए महासमिति (आल इंडिया कांग्रेस कमेटी) ने जो समिति नियत की थी, उसकी रिपोर्ट विशेषकर वर्त्तमान अवसरपर एक अत्यंत महत्त्वका लेख है। राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) का कोई भी सेवक उसकी एक प्रति रक्खे बिना न रहेगा। श्री बहादुरजी, भूलाभाई देसाई, खुशाल-शाह और श्री कुमारप्पा अपने इस प्रेमके परिश्रमके लिए राष्ट्रके साभार अभिनंदनके अधिकारी हैं। समितिके संचालक श्री कुमारप्पा गुज-रात विद्यापीठके अध्यापक हैं, इसलिए उनके लिए इसमें कुछ विशेष त्याग नहीं है। वे तो राष्ट्र-सेवककी तरह नामांकित हैं, इसलिए उनका समय और श्रम तो राष्ट्रीय महासभाके चरणोंमें अर्पित हो ही चुका है। वे इस विशिष्ट कार्यके लिए पसंद किए गये, इसका कारण है उनका अर्थशास्त्रका सजग ज्ञान और संशोधन कार्यके प्रति उनकी लगन। रिपोर्टके लेखकोंका यह परिचय मैंने इसलिए दिया है कि विदेशी पाठक जान सकें कि यह रिपोर्ट उथले राजनीतिज्ञोंका लिखा हुआ लेख नहीं, वरन् जो लोग प्रचुर प्रतिष्ठावाले हैं, और जो धांधलीबाज उपदेशक नहीं, वरन् स्वयं जिस विषयके ज्ञाता हैं, उसीपर लिखनेवाले और अपने शब्दोंको तौल-तौलकर व्यवहारमें लाने वालोंकी यह कृति है। (हि० न०, ६. ८. ३१)

: ३२ :

आचार्य जे० बी० कृपलानी

मुजफ्फरपुरमें उस समय आचार्य कृपलानी भी रहते थे। उन्हें मैं पह-चानता था। जब मैं हैदराबाद गया था, उनके महात्यागकी, उनके जीवनकी और उनके द्रव्यसे चलनेवाले आश्रमकी बात डाक्टर चोइथ-रामके मुखसे सुनी थी। वह मुजफ्फरपुर कालेजमें प्रोफेसर थे; पर उस

समय वहां से मुक्त हो बैठे थे। मैंने उन्हें तार दिया। ट्रेन मुजफ्फरपुर आधीरातको पहुंचती थी। वह अपने शिष्य-मंडलको लेकर स्टेशन आ पहुंचे थे; परंतु उनके घरबार कुछ न था। वह अध्यापक मलकानीके यहां रहते थे। मुझे उनके यहां ले गए। मलकानी भी वहांके कालेजमें प्रोफेसर थे और उस जमानेमें सरकारी कालेजके प्रोफेसरका मुझे अपने यहां ठहराना एक असाधारण बात थी।

कृपलानीजीने बिहारकी और उसमें तिरहुत-विभागकी दीन-दशाका वर्णन किया और मुझे अपने कामकी कठिनाईका अंदाज बताया। कृपलानीजीने बिहारियोंके साथ गाढ़ा सबंध कर लिया था। उन्होंने मेरे कामकी बात वहांके लोगोंसे कर रखी थी। (आ०, १९२७)

... ...

यह तो हुआ बिहारी-संघ। इनका मुख्य काम था लोगोंके बयान लिखना। इसमें अध्यापक कृपलानी भला बिना शामिल हुए कैसे रह सकते थे? सिंधी होते हुए भी वह बिहारीसे भी अधिक बिहारी हो गये थे। मैंने ऐसे थोड़े सेवकोंको देखा है जो जिस प्रांतमें जाते हैं वहींके लोगोंमें दूध-शक्करकी तरह घुल-मिल जाते हैं और किसीको यह नहीं मालूम होने देते कि वे गैर प्रांतके हैं। कृपलानी इनमें एक हैं। उनके जिम्मे मुख्य काम था द्वारपालका। दर्शन करने वालोंसे मुझे बचा लेनेमें ही उन्होंने उस समय अपने जीवनकी सार्थकता मान ली थी। किसीको हँसी-दिल्लगीसे और किसीको अहिंसक धमकी देकर वह मेरे पास आनेसे रोकते थे। रातको अपनी अध्यापकी शुरू करते और तमाम साथियोंको हँसा मारते और यदि कोई डरपोक आदमी वहां पहुँच जाता तो उसका हौसला बढ़ाते। (आ०, १९२७)

: ३४ :

वेंकटकृष्णय्या

छः वर्षके बाद आज आप लोगोंसे मिलकर मुझे बड़ा आनंद हुआ है। आपको मालूम है कि पिछले दौरेके अवसरपर मेरा स्वास्थ्य बहुत गिर गया था और उसे सुधारनेके लिए ही मैं आपके मैसूर राज्यमें आया था। इससे स्वभावतः उन दिनोंकी स्मृतियां मेरे लिए अत्यंत सुखद हैं। श्रीमान् महाराजा साहब, दीवान और अन्य अफसरोंसे लेकर मैसूरकी प्रजातकके प्रगाढ़ प्रेमका मैंने अनुभव किया था। अब आप लोग अच्छी तरहसे समझ सकते हैं कि आपके बीच आज पुनः आनेसे मुझे कितनी अधिक खुशी न हुई होगी। मैसूरके पितामह स्व० श्री वेंकटकृष्णय्याके चित्रका मेरे हाथसे उद्घाटन कराके आपने मेरा आंतरिक आनंद और भी बढ़ा दिया है। चित्रकारको उसकी कला-कुशलतापर मैं बधाई देता हूं। बड़ा ही सुंदर और यथार्थ चित्रण किया है। कदाचित् आप सब यह न जानते होंगे कि उस दिवंगत महर्षिके सत्संगका आनंद-लाभ मुझे उन दिनों कितना अधिक प्राप्त हुआ था। मैं उनके अनेक सद्गुणोंसे काफी परिचित हो गया था। मैंने तभी जान लिया था कि आप लोगोंके हृदयोंमें उनके लिए एक खास स्थान है। मुझे विश्वास है कि उनके अनेक गुणोंका बखान करनेकी आप मुझसे आशा न करते होंगे। आप तो यहांके निवासी ही ठहरे, इससे आपको मेरी अपेक्षा उनके गुणोंका अधिक पता होगा। मैं तो केवल यही आशा करता हूं कि स्व० वेंकटकृष्णय्याके जिन गुणोंका हम लोग आज आदर कर रहे हैं, उन्हें हम स्वयं अपने जीवनमें उतारनेकी चेष्टा करेंगे। इस आत्म-प्रशंसासे सदा बचना ही अच्छा कि चलो, उस महान् आत्माके [illegible] दिया और उनकी स्मृतिमें एक अच्छ[illegible]! (ह० से०, १६.१.३४)

: ३५ :

तात्यासाहब केळकर

दोस्तोंने मुझसे कई बार पूछा कि तात्यासाहब केळकर जैसे महान देशभक्तकी मृत्युका उल्लेख क्यों नहीं किया, खासकर इसलिए कि वे मेरे राजनैतिक विरोधी थे और इससे भी ज्यादा इसलिए कि महाराष्ट्रके एक दलके लोगोंमें मेरे बारेमें बहुत बड़ी गलतफहमी है। इन कारणोंने मुझे अपील नहीं किया, हालांकि मेरे टीकाकारोंके मुताबिक इन्हीं कारणोंको मुझे तात्यासाहबकी मृत्युका उल्लेख करनेके लिए प्रेरित करना चाहिए था।

मृत्यु जैसी बड़ी भारी घटनाका साधारण नियमके अनुसार उल्लेख कर देना मैं बहुत अनुचित मानता हूं। लेकिन देर हो जानेपर भी अपने पुराने-से-पुराने दोस्त हरिभाऊ पाठकके आग्रहके कारण अब मुझे ऐसा करना चाहिए।

यह बात मैं एकदम स्वीकार कर लूंगा कि अगर महत्त्वपूर्ण जन्मों और मृत्युओंका उल्लेख करना 'हरिजन' के लिए साधारण नियम होता तो तात्यासाहबकी मृत्युका सबसे पहले उल्लेख किया जाना चाहिए। लेकिन 'हरिजन'-पत्रोंको ध्यानसे पढ़नेवाले पाठकोंने देखा होगा कि 'हरिजन' ने ऐसे किसी नियमको नहीं माना है। इस तरहकी घटनाओंका उल्लेख करना मेरे अवकाश और किसी समयकी मेरी धुनपर निर्भर रहा है। पिछले कुछ अर्सेसे तो मैं नियमसे अखबार भी नहीं पढ़ सका हूं।

इसके खिलाफ कोई कुछ भी कहे, लेकिन मेरे राजनैतिक विरोधी होते हुए भी तात्यासाहबको मैंने हमेशा अपना दोस्त माना था, जिनकी टीकासे मुझे लाभ होता था। स्व० लोकमान्यके माने हुए अनुयायीके

नाते मैं उन्हें जानता था और उनकी इज्जत करता था। मेरे खयालमें सन् १९१९ में अखिल भारत कांग्रेस कमेटीकी एक बैठकमें मैंने यह सिफारिश की थी कि कांग्रेसका एक विधान तैयार किया जाय और कहा था कि अगर लोकमान्य, तात्यासाहबको और देशबंधु श्री निशीथ सेनको मददके लिए मुझे दे दें तो मैं विधान तैयार करके कांग्रेसके सामने पेश करनेकी जिम्मेदारी लेता हूं। अपने साथ काम करनेवाले इन दोनों सज्जनोंकी प्रशंसामें मुझे यह कहना चाहिए कि हालांकि मैंने समयपर विधानका अपना मसविदा उनके सामने पेशकर दिया, लेकिन उन्होंने कभी उसमें रुकावट नहीं डाली। विधानके मसविदेपर विचार करनेके लिए जो कमेटी बैठी, उसमें तात्यासाहबने हमेशा ऐसी टीका की, जिससे उसे सुधारने-संवारनेमें मदद मिली। इसके अलावा, मेरे सुझावपर ही तात्यासाहबको हमेशा कांग्रेस वर्किंग कमेटीका सदस्य बनाया जाता था। मुझे ऐसा एक भी मौका याद नहीं आता, जब उनकी टीका—हालांकि वह कभी-कभी कड़वी होती थी—रचनात्मक न हुई हो। वह निडर थे, लेकिन सभ्य और मित्रता-भरे थे।

मुझे बहुत पहले यह मालूम हो चुका था कि वे मराठीके बड़े विद्वान लेखक थे। मुझे इस बातका अफसोस रहा है कि मराठीके तात्यासाहब और स्व० हरिनारायण आप्टे जैसे आधुनिक लेखकोंकी बुद्धिका अमृत-पान करनेके लिए मराठीका काफी अध्ययन करनेका मुझे कभी समय नहीं मिला। हिंदुस्तानी आकाशके श्री नरसोपंत चिन्तामन केळकर-जैसे चमकीले तारेके अस्तकी उपेक्षा करना मेरे लिए असभ्य और अशोभन बात होगी। (ह० से०, ४.१.४८)

: ३६ :

केलकर (आइस डाक्टर)

डा० तलवलकर एक विचित्र प्राणीको लेकर आए। वह महाराष्ट्री हैं। उनको हिंदुस्तान नहीं जानता। पर मेरे ही जैसे 'चक्रम' हैं, यह मैंने उन्हें देखते ही जान लिया। वह अपना इलाज मुझपर आजमानेके लिए आए थे। बंबईके ग्रैंड मेडिकल कॉलेजमें पढ़ते थे। पर उन्होंने द्वारकाकी छाप---उपाधि---प्राप्त न की थी। मुझे बादमें मालूम हुआ कि वह सज्जन ब्रह्मसमाजी हैं। उनका नाम है केलकर। बड़े स्वतंत्र मिजाजके आदमी हैं। बरफके उपचारके बड़े हिमायती हैं।

मेरी बीमारीकी बात सुनकर जब वह अपने बरफके उपचार मुझपर आजमानेके लिए आए तबसे हमने उन्हें 'आइस डाक्टर' की उपाधि दे रक्खी है। अपनी रायके बारेमें वह बड़े आग्रही हैं। डिग्रीधारी डाक्टरोंकी अपेक्षा उन्होंने कई अच्छे आविष्कार किए हैं, ऐसा उन्हें विश्वास है। वह अपना यह विश्वास मुझमें उत्पन्न नहीं कर सके, यह उनके और मेरे दोनोंके लिए दुःखकी बात है। मैं उनके उपचारोंको एक हद तक तो मानता हूं; पर मेरा खयाल है कि उन्होंने कितने ही अनुमान बांधनेमें कुछ जल्दबाजी की है। उनके आविष्कार सच्चे हों या गलत, मैंने तो उन्हें उनके उपचारका प्रयोग अपने शरीरपर करने दिया। बाह्य उपचारोंसे अच्छा होना मुझे पसंद था। फिर ये तो बरफ अर्थात् पानीके उपचार थे। उन्होंने मेरे सारे शरीरपर बरफ मलना शुरू किया। यद्यपि इसका फल मुझपर उतना नहीं हुआ, जितना कि वह मानते थे, तथापि जो मैं रोज मृत्युकी राह देखता पड़ा रहता था सो अब नहीं रहा। मुझे जीनेकी आशा बंधने लगी। कुछ उत्साह भी मालूम होने लगा। मनके उत्साहके साथ-साथ

शरीरमें भी कुछ ताजगी मालूम होने लगी। खुराक भी थोड़ी बढ़ी। रोज पांच-दस मिनट टहलने लगा। "अगर आप अंडेका रस पियें तो आपके शरीरमें इससे भी अधिक शक्ति आ जावेगी, इसका मैं आपको विश्वास दिला सकता हूं, और अंडा तो दूधके ही समान निर्दोष वस्तु होती है। वह मांस तो हरगिज नहीं कहा जा सकता। फिर यह भी नियम नहीं है कि प्रत्येक अंडेसे बच्चे पैदा होते ही हों। मैं साबित कर सकता हूं कि ऐसे निर्जीव अंडे सेये जाते हैं जिनमेंसे बच्चे पैदा नहीं होते।"—उन्होंने कहा। पर ऐसे निर्जीव अंडे लेनेको भी मैं तो राजी न हुआ। फिर भी मेरी गाड़ी कुछ आगे चली और मैं आस-पासके कामोंमें थोड़ी बहुत दिलचस्पी लेने लगा। (आ०, १९२७)

: ३७ :

केलप्पन

श्री केलप्पन मेरी रायमें भारतवर्षके अच्छे-से-अच्छे मूक सेवकोंमेंसे एक हैं। उन्हें कभी भी प्रतिष्ठित पद मिल सकता था। मलाबारके वे प्रसिद्ध लोकसेवक हैं; परन्तु वे जानबूझकर 'दूरित' और 'अस्पृश्य' लोगोंकी सेवामें कूद पड़े हैं। वाईकोमके सत्याग्रहके समय मुझे उनके साथ काम करनेका आनंद और सम्मान प्राप्त हुआ था। उसके पहले लंबे समयसे और उसके बाद से उन्होंने दलित वर्गकी उन्नति में अपना जीवन लगाया है। जनता जानती है कि लंबे समयतक राह देखनेके बाद गुरुवायुरका मंदिर हरिजनोंके लिए खुलवानेके प्रयत्नमें उन्होंने प्राणार्पण करनेका अटल निश्चय कर लिया था। (ग० डा०, ५.११.३२)

: ३८ :

हरमन कैलेनबेक

मि० कैलेनबेकका टॉल्स्टॉय फार्मपर और सो भी हमारे जैसा रहना एक आश्चर्यजनक वस्तु थी। गोखले सामान्य बातोंसे आकर्षित होनेवाले पुरुष नहीं थे। कैलेनबेकके जीवनमें यह महान परिवर्तन देखकर वह भी अत्यन्त आश्चर्य-चकित हो गए थे। मि० कैलेनबेकने कभी धूप-जाड़ा नहीं सहा था, न किसी प्रकारकी मुसीबत पहले उठाई थी। अर्थात् स्वच्छंद जीवनको उन्होंने अपना धर्म बना लिया था। संसारके आनंदोंका उपभोग लेनेमें उन्होंने किसी प्रकारकी कसर नहीं रहने दी थी। धनसे जितनी भी चीजें खरीदी जा सकती हैं उन सबको प्राप्त करनेके लिए उन्होंने कभी कुछ उठा नहीं रक्खा था।

ऐसे पुरुषका फार्मपर रहना, वहीं खाना-पीना, फार्मवासियोंके जीवनके साथ अपनेको पूर्णतया मिला देना, कोई ऐसी-वैसी बात नहीं थी। भारतीयोंको इस बातपर बड़ा आश्चर्य और आनंद भी हुआ। कितने ही गोरोंने तो उन्हें मूर्ख या पागल ही समझ लिया, कितनोंके दिलोंमें उनकी त्याग-शक्तिके कारण उनके प्रति आदर बढ़ गया। कैलनबेकने अपने त्यागपर न तो कभी पश्चाताप किया और न उन्हें वह दुःख-रूप मालूम हुआ। अपने वैभवसे उन्हें जितना आनन्द प्राप्त हुआ था, उतना ही, बल्कि उससे भी अधिक आनंद वह अपने त्यागसे पा रहे थे। सादगीसे होनेवाले सुखोंका वर्णन करते-करते वह तल्लीन हो जाते, यहांतक कि कई बार तो उनके श्रोताओंको भी इस सुखका आस्वाद करनेकी इच्छा हो जाती। छोटेसे लेकर बड़े तक सबके साथ वह इस तरह प्रेम-पूर्वक हिलमिल जाते कि उनका छोटे-से-छोटा वियोग भी सबके लिए असह्य हो जाता। फल-पौधोंका उन्हें बड़ा शौक था, इसलिए बागवानका काम

उन्होंने अपने अधीन रखा था और प्रतिदिन सुबह बालकों और बड़ोंसे उनकी कांट-छांट, रक्षा वगैरहका काम लेते। मेहनत पूरी लेते, पर साथ ही उनका चेहरा इतना हँसमुख और स्वभाव ऐसा आनंदमय था कि उनके साथ काम करते हुए सबको बड़ा आनंद होता था। जब-जब कभी रातके २ बजेसे उठकर टॉल्स्टॉय फार्मसे कोई टोली जोहान्सबर्गको पैदल जाती तो कैनलबेक बराबर उसके साथ पाए जाते।

उनके साथ धार्मिक संवाद हमेशा होते रहते थे। मेरे नजदीक अहिंसा, सत्य इत्यादि यमोंको छोड़कर तो और कौनसी बात हो सकती थी? सर्पादि जानवरोंको मारना भी पाप है, इस विचारसे जिस तरह दूसरे यूरोपियन मित्रोंको आघात पहुंचा ठीक उसी तरह पहले-पहल मि० कैलनबेकको भी पहुंचा; पर अंतमें तात्विक दृष्टिसे उन्होंने इस सिद्धांतको कबूल कर लिया। हम लोगोंके साथ संबंध होते ही इस बातको तो उन्होंने पहले ही मान लिया था कि जिस बातको बुद्धि स्वीकार करे उसपर अमल करना भी योग्य और उचित है। इसी कारण वह अपने जीवनमें बड़े-से-बड़े परिवर्तन बिना किसी प्रकारके संकोचके एक क्षणमें कर सकते थे।

अब तो, चूंकि सर्पादिको मारना अयोग्य पाया गया, इसलिए मि० कैनलबेकको उनकी मित्रता भी संपादन करनेकी इच्छा होने लगी। पहलेपहल तो उन्होंने भिन्न-भिन्न जातिके सांपोंकी पहचान जाननेके लिए सांपोंसे संबंध रखनेवाली किताबें इकट्ठी कीं। उनसे उनको पता चला कि सभी सर्प जहरीले नहीं होते; बल्कि कितने ही तो खेतीकी फसलकी रक्षा भी करते रहते हैं। हम सबको उन्होंने सर्पोंकी पहचान बताई और अंतमें एक ज़बरदस्त अजगरको उन्होंने पाला, जो फार्ममें ही उन्हें मिल गया था। उसे वह रोज अपने हाथोंसे खिलाते थे। एक दिन नम्रता-पूर्वक मैंने मि० कैलनबेकसे कहा, "यद्यपि आपका भाव तो शुद्ध है तथापि अजगर शायद इसे समझ न सकता होगा; क्योंकि आपका प्रेम

भयसे मिश्रित है । इसको छोड़कर उसके साथ इस तरह क्रीड़ा करनेकी आपकी मेरी या किसीकी शक्ति नहीं है, और हम तो उसी हिम्मतको प्राप्त करना चाहते हैं । इसलिए इस सर्पके पालनमें सद्भाव तो देखता हूं; पर अहिंसा नहीं देख सकता । हमारा कार्य तो ऐसा हो कि जिसे यह अजगर भी पहचान सके । यह तो हमारा हमेशाका अनुभव है कि प्राणिमात्र केवल भय और प्रीति इन दो ही बातोंको समझते हैं । आप इस सर्पको जहरीला तो मानते ही नहीं । केवल इसका स्वभाव आदि जानने भरके लिए आपने इसे कैद कर रखा है । यह तो स्वच्छंद हुआ । मित्रतामें तो इसके लिए भी स्थान नहीं है ।

मि० कैलनबेक मेरी दलीलको समझ गए; पर उनको यह इच्छा नहीं हुई कि अजगरको जल्दी छोड़ दें । मैंने किसी प्रकारका दबाव तो डाला ही नहीं । सर्पके बर्तावमें मैं भी दिलचस्पी ले रहा था । बच्चोंको तो खूब आनंद आ रहा था । सबसे कह दिया गया था कि उसे कोई सतावे नहीं; पर वह कैदी स्वयं ही अपनी राह ढूंढ रहा था । पिंजड़ेका दरवाजा खुला रह गया या शायद उसीने उसे किसी तरह खोल लिया---परमात्मा जाने क्या हुआ---दो-चार दिनके अंदर ही, एक दिन सुबह जब मि० कैलन-बेक अपने कैदीको देखनेके लिए गए तो उन्होंने पिंजड़ेको खाली पाया । वह और मैं दोनों खुश हुए; पर इस प्रयोगके कारण सर्प हमेशाके लिए हमारी बातचीतका विषय हो गया । मि० कैलनबेक एक गरीब जर्मन को हमारे फार्मपर लाए थे । वह गरीब भी था और पंगु भी । उसकी जांघ इतनी टेढ़ी हो गई थी कि वह बिना लकड़ीके चल ही नहीं सकता था; पर वह बड़ा हिम्मतवर था । शिक्षित भी था, इसलिए सूक्ष्म बातोंमें भी बड़ी दिलचस्पी लेता था । फार्मपर वह भी भारतीयोंका साथी बनकर सबसे हिलमिलकर रहता था । उसने तो निर्भयतापूर्वक सर्पोंके साथ खेलना तक शुरू कर दिया । छोटे-छोटे सर्पोंको वह अपने हाथमें ले आता और अपनी हथेलीपर उन्हें खिलाता था । कौन कह सकता है कि फार्म

अधिक दिन तक चला होता तो इस जर्मनके प्रयोगका क्या परिणाम होता। इसका नाम आल्बर्ट था।

इस प्रयोगके कारण यद्यपि सांपका डर तो कम हो गया था तथापि कोई यह न समझले कि फार्मके अंदर किसीको सांपका भय ही नहीं रहा अथवा सांपको मारनेकी सबको मनाई थी। हिंसा-अहिंसा और पापका ज्ञान प्राप्त कर लेना एक बात है और उसके अनुसार आचरण करना दूसरी बात। जिसके दिलमें सांपका डर है और जो प्राण त्याग करनेके लिए तैयार नहीं है, वह संकटके समयमें सांपको कभी नहीं छोड़ेगा। मुझे याद है कि ऐसा ही एक किस्सा फार्मपर हुआ था। पाठकोंने यह तो स्वयं ही अंदाज-से जान लिया होगा कि फार्मपर सर्पोंका उपद्रव खूब रहा होगा; क्योंकि हम लोग वहां गए उससे पहले वहां कोई बस्ती नहीं थी; बल्कि कितने ही समयसे वह निर्जन ही था। एक दिन मि० कैलनबेकके कमरेमें अचा-नक ऐसी जगह एक सांप दिखाई दिया, जहांसे उसे भगाना या पकड़ना भी करीब-करीब असंभव था। पहलेपहल फार्मके एक विद्यार्थीने उसे देखा। उसने मुझे बुलाया और पूछा—अब क्या करना चाहिए? उसे मारनेकी आज्ञा भी उसने चाही। वह बिना इजाजत भी सांपको मार सकता था; परन्तु साधारणतया क्या विद्यार्थी और क्या दूसरे, मुझसे बिना पूछे ऐसी कोई बात नहीं करते थे। इस सांपको मारनेकी इजाजत देना मैंने अपना धर्म समझा और आज्ञा दे भी दी। यह लिखते समय भी मुझे यह नहीं मालूम होता कि मैंने वह आज्ञा देनेमें कोई गलती की। सांपको हाथमें पकड़ने जितनी अथवा अन्य किसी प्रकारसे फार्मवासियोंको निर्भय कर देने जितनी शक्ति न तो मुझमें तब थी और न आज तक उसे प्राप्त कर सका हूं। (द० अ० स०, १९२५)

* * *

बॉकसरस्टके लोगोंने दो दिन पहले ही सभा की थी। उसमें अनेक प्रकारका डर बताया गया था। कितने होने तो यह कहा था कि यदि

भारतीय ट्रांसवालमें प्रवेश करेंगे तो हम उनपर गोलियां चला देंगे । इस सभामें मि० कैलनबेक गोरोंको समझानेके लिए गए थे; पर उनकी बात कोई सुनना ही नहीं चाहता था । कई तो उन्हें मारनेके लिए उठ खड़े हो गये । मि० कैलनबेक स्वयं कसरती जवान हैं । सैंडोसे उन्होंने कसरत सीखी थी । उनको यों डराना मुश्किल था । एक गोरेने उन्हें द्वंद्व युद्धके लिए आह्वान किया । कैलनबेकने कहा, "मैंने शांति धर्मको स्वीकार किया है । इसलिए आपकी इच्छाकी पूर्ति करनेमें मैं असमर्थ हूं । पर मुझपर जिसे प्रहार करना हो, वह सुख-पूर्वक करे । मैं तो इस सभामें बोलता ही रहूंगा । आपने इसमें सभी गोरोंको निमंत्रित किया है । मैं आपको यह सुनानेके लिए आया हूं कि आपकी तरह सभी गोरे निर्दोष मनुष्योंको मारनेके लिए तैयार नहीं हैं । एक ऐसा गोरा है, जो आपसे कह देना चाहता है कि आप भारतीयोंपर जिन बातोंका आरोप करते हैं, वे असत्य हैं । आप जो सोच रहे हैं वह भारतीय नहीं चाहते । उन्होंने तो आपके राज्यकी आवश्यकता है और न वे आपके साथ लड़ना चाहते हैं । वे तो शुद्ध न्यायके लिए पुकार उठा रहे हैं । ट्रांसवालमें हमेशा रहनेके हेतुसे वे प्रवेश नहीं कर रहे हैं, बल्कि उनपर जो अन्यायपूर्ण कर लादा गया है उसके खिलाफ सक्रिय पुकार उठानेके उद्देश्यसे वे यह कर रहे हैं । वे बहादुर हैं, हुल्लड़बाज नहीं । वे आपके साथ लड़ेंगे नहीं, पर यदि आप उनपर गोलियां चलावेंगे तो उनको सहकर भी वे इसी तरह आगे बढ़ते जावेंगे । आपकी बंदूकों या बल्लमके डरसे वे पीछे पैर नहीं हटावेंगे । वे तो स्वयं दुःख सहकर आपके हृदयको पिघला देनेवाले लोग हैं । बस यही कहनेके लिए मैं यहां आया हूं । यह कहकर मैंने तो आपकी सेवा ही की है । आप सावधान हो जाइए और अन्यायसे बचिए ।" इतना कहकर मि० कैलनबेक शांत हो गए । गोरे कुछ शरमा गए । वह द्वंद्व युद्ध करनेवाला कसरती जवान तो अब उनका मित्र हो गया । (द० अ० स०, १९२५)

. . . .

हर्मन कैलनबेकसे मेरा परिचय युद्धके पहले ही हुआ था। वह जर्मन है और यदि जर्मन-अंग्रजोंका युद्ध न हुआ होता तो वह आज भारतमें होते। उनका हृदय विशाल है। वह बेहद भोले हैं। उनकी भावनाएं बड़ी तीव्र हैं। वह शिल्पका धंधा करते हैं। ऐसा एक भी काम नहीं कि जिसे करते हुए उन्होंने ना की हो। जब मैंने जोहान्सबर्गसे अपना घरबार उठा लिया तब हम दोनों एक साथ ही रहते थे। मेरा खर्चा भी वही उठाते थे। घर तो खुद उन्हींका था। खाने वगैरहका खर्च देनेकी बात जब मैं उठाता तब वह बहुत चिढ़ कर कहते कि उन्हें फिजूल-खर्चीसे बचानेवाला तो मैं ही था और मुझे मना करते। उनके इस कथनमें कुछ सार अवश्य था। पर गोरोंके साथ मेरा जो व्यक्तिगत संबंध था, उसका वर्णन यहां नहीं किया जा सकता। गोखले दक्षिण अफ्रीका आए तब जोहान्सबर्गमें कैलनबेकके बंगलेमें ही ठहराए गये थे। गोखले इस मकानसे बड़े प्रसन्न हुए। उनको पहुंचानेके लिए कैलनबेक जंजीबार तक मेरे साथ आए थे। पोलकके साथ वह भी गिरफ्तार हो गए थे और जेलकी सैर कर आए थे। अंतमें जब दक्षिण अफ्रीका छोड़कर गोखलेसे विलायतमें मिलकर मैं भारत लौट रहा था तब कैलनबेक भी साथमें थे। पर लड़ाईके कारण उन्हें भारत आनेकी आज्ञा नहीं मिली। अन्य जर्मनोंके साथ इन्हें भी नजरबंद रखा गया था। महायुद्धके समाप्त होते ही वह फिर जोहान्सबर्ग चले गए हैं और उन्होंने अपना धंधा शुरू कर दिया है। जोहान्सबर्गमें सत्याग्रही कैदियोंके कुटुंबोंको एक साथ रखनेका विचार जब हुआ तब मि० कैलनबेकने अपना ११०० बीघेका खेत कौमको योंही बिना किराया लिए सौंप दिया। (द० अ० स०, १९२५)

... ...

मेरी उनकी (मि० कैलनबेककी) मुलाकात अनायास हो गई थी। मि० खानके वह मित्र थे। मि० खानने देखा कि उनके अंदर गहरा वैराग्यभाव था। इसलिए मेरा खयाल है कि उन्होंने उनसे मेरी मुलाकात

कराई। जिन दिनों उनसे मेरा परिचय हुआ उन दिनोंके उनके शौक और शाह-खर्चीको देखकर मैं चौंक उठा था; परंतु पहली ही मुलाकातमें मुझसे उन्होंने धर्मके विषयमें प्रश्न किया। उसमें बुद्ध भगवान्‌की बात सहज ही निकल पड़ी। तबसे हमारा संपर्क बढ़ता गया, वह इस हद-तक कि उनके मनमें यह निश्चय हो गया कि जो काम मैं करूं वह उन्हें भी अवश्य करना चाहिए। वह अकेले थे। अकेलेके लिए मकान-खर्चके अलावा लगभग १२००) रुपये मासिक खर्च करते थे। यहांसे अंतको ठेठ इतनी सादगीपर आ गए कि उनका मासिक खर्च १२०) रुपये हो गया। मेरे घर-बार बिखेर देने और जेलसे आनेके बाद तो हम दोनों एकसाथ रहने लगे थे। उस समय हम दोनों अपना जीवन अपेक्षाकृत बहुत कड़ाईके साथ बिता रहे थे।

दूधके संबंधमें जब मेरा उनसे वार्तालाप हुआ तब हम शामिल रहते थे। एक बार मि० कैलनबेकने कहा, "जब हम दूधमें इतने दोष बताते हैं तो फिर छोड़ क्यों न दें? वह अनिवार्य तो है ही नहीं।" उनकी इस रायको सुनकर मुझे बड़ा आनंद और आश्चर्य हुआ। मैंने तुरंत उनकी बातका स्वागत किया और हम दोनोंने टाल्स्टाय-फार्ममें उसी क्षण दूधका त्याग कर दिया। यह बात १९१२की है। (आ०, १९२७)

. . . .

१९१४ ई०में जब सत्याग्रह-संग्रामका अंत हुआ तब गोखलेकी इच्छासे मैंने इंग्लैंड होकर देश आनेका विचार किया था। इसलिए जुलाई महीनेमें कस्तूरबाई, कैलनबेक और मैं, तीनों विलायत के लिए रवाना हुए। सत्याग्रह-संग्रामके दिनोंमें मैंने रेलमें तीसरे दर्जेमें सफर शुरू कर दिया था। इस कारण जहाजमें भी तीसरे दर्जेके ही टिकट खरीदे, परंतु इस तीसरे दर्जेमें और हमारे तीसरे दर्जेमें बहुत अंतर है। हमारे यहां तो सोने-बैठनेकी जगह भी मुश्किलसे मिलती है और सफाईकी तो बात ही क्या पूछना! किंतु इसके विपरीत वहांके जहाजोंमें जगह काफी रहती थी

और सफाईका भी अच्छा खयाल रखा जाता था। कंपनीने हमारे लिए कुछ और भी सुविधायें कर दी थीं। कोई हमको दिक न करने पाए, इस खयालसे एक पाखानेमें ताला लगाकर उसकी ताली हमें सौंप दी गई थी, और हम फलाहारी थे इसलिए हमको ताजे और सूखे फल देनेकी आज्ञा भी जहाजके खजांचीको दे दी गई थी। मामूली तौरपर तीसरे दर्जेके यात्रियोंको फल कम ही मिलते हैं और मेवा तो कतई नहीं मिलता। पर इस सुविधाकी बदौलत हम लोग समुद्रपर बहुत शांतिसे १० दिन बिता सके।

इस यात्राके कितने ही संस्मरण जानने योग्य हैं। मि० कैलनबेकको दूरबीनोंका बड़ा शौक था। दो-एक कीमती दूरबीनें उन्होंने अपने साथ रक्खी थीं। इसके विषयमें रोज हमारी आपसमें बहस होती। मैं उन्हें यह जंचानेकी कोशिश करता कि यह हमारे आदर्शके और जिस सादगीको हम पहुंचना चाहते हैं उसके अनुकूल नहीं हैं। एक रोज तो हम दोनोंमें इस विषयपर गरमागरम बहस हो गई। हम दोनों अपनी कैबिनकी खिड़कीके पास खड़े थे।

मैंने कहा—"आपके और मेरे बीच ऐसे झगड़े होनेसे तो क्या यह बेहतर नहीं है कि इस दूरबीनको समुद्रमें फेंक दें और इसकी चर्चा ही न करें?"

मि० कैलनबेकने तुरंत उत्तर दिया—"जरूर, इस झगड़ेकी जड़को फेंक ही दीजिए।"

मैंने कहा—"देखो, मैं फेंके देता हूं!"

उन्होंने बे-रोक उत्तर दिया—"मैं सचमुच कहता हूं, फेंक दीजिए।"

और, मैंने दूरबीन फेंक दी। उसका दाम कोई सात पौंड था; परंतु उसकी कीमत उसके दामकी अपेक्षा मि० कैलनबेकके उसके प्रति मोहमें थी। फिर भी मि० कैलनबेकने अपने मनको कभी इस बातका दुःख न

होने दिया। उनके मेरे बीच तो ऐसी कितनी ही बातें हुआ करती थीं। यह तो उसका एक नमूना पाठकोंको दिखाया है। (आ०, १९२७)

... ...

कैलनबेक मुझसे कहा करता था कि तुम इतनी तेजीसे आगे बढ़ रहे हो कि आखिर तुम्हें सब छोड़ देंगे, वे तुम्हारे साथ आगे बढ़ नहीं सकेंगे। मैंने कहा कि तुम भी छोड़ दोगे? तो कहने लगा, "मैं कैसे छोड़ सकता हूं। हम तो एक जान दो शरीर जैसे हैं और मैंने तुमको अपनी गरजके लिए ढूंढ़ा है, तुमने मुझे नहीं ढूंढ़ा। मैं तो तुम्हें कभी नहीं छोड़ सकता।" मगर अब तो वह भी छूट गया है। उसके विचार भी मुझसे अलग पड़ गए हैं। यहूदियोंके बारेमें उसका इतना पक्षपात है कि क्या कहना! वह मानता है कि जर्मनी यहूदियोंका दुश्मन है और जर्मनीसे लड़नेवाले अंग्रेजोंके साथ मैं लड़ रहा हूं। उसका वह समर्थन नहीं कर पाया। जब वह यहां आया था तब मैंने उसे बहुत समझाया था कि क्यों मैंने यहूदियोंको हिंसासे भरे हुए कहा है। आज तो वे हिंसाको ही अपने हृदयमें पोषण दे रहे हैं। मनमें हिंसा रहे तो बाहरकी अहिंसाका कोई अर्थ नहीं रहता। वह मेरी बात कुछ समझा भी सही। मैंने उसे इस आशयका एक खुला पत्र यहूदियोंको लिखनेको कहा था। उसने लिखा भी, मगर उसे ऐसा लगता था कि इस बारेमें उसकी कौन सुनेगा। इसलिए अखबारोंमें भेजा नहीं। मैंने कहा, "भले न सुने, तुम अपना धर्म पूरा करो। भले ही फिल-स्तीनमें जाकर लड़ो और मर जाओ, यह मैं सहन करूंगा, मगर आज जैसे यहूदियोंका चल रहा है वह असह्य है। हृदयमें हिंसा है तो बाहर इससे उल्टा बतानेमें कोई अर्थ नहीं।" (का० क०, १९.९.४२)

: ३६ :

कोट्स

दूसरे दिन एक बजे मैं मि० बेकरके प्रार्थना-समाजमें गया। वहां कुमारी हैरिस, कुमारी गेब, मि० कोट्स आदिसे परिचय हुआ। सबने घुटने टेककर प्रार्थना की। मैंने भी उनका अनुकरण किया। प्रार्थनामें जिसका जो मन चाहता, ईश्वरसे मांगता। दिन शांतिके साथ बीते, ईश्वर हमारे हृदयके द्वार खोलो, इत्यादि प्रार्थना होती। उस दिन मेरे लिए भी प्रार्थना की गई। 'हमारे साथ जो यह नया भाई आया है, उसे तू राह दिखाना। तूने जो शांति हमें प्रदान की है, वह इसे भी देना। जिस ईसामसीहने हमें मुक्त किया है, वह इसे भी मुक्त करे। यह सब हम ईसामसीहके नामपर मांगते हैं।' इस प्रार्थनामें भजन-कीर्तन न होते। किसी विशेष बातकी याचना ईश्वरसे करके अपने-अपने घर चले जाते। यह समय सबके दोपहरके भोजनका होता था, इसलिए सब इस तरह प्रार्थना करके भोजन करने चले जाते। प्रार्थनामें पांच मिनटसे अधिक समय न लगता।

कुमारी हैरिस और कुमारी गेबकी अवस्था प्रौढ़ थी। मि० कोट्स क्वेकर थे। ये दोनों महिलायें साथ रहतीं। उन्होंने मुझे हर रविवारको ४ बजे चाय पीनेके लिए अपने यहां आमंत्रित किया। मि० कोट्स जब मिलते तब हर रविवारको उन्हें मैं अपना साप्ताहिक धार्मिक रोजनामचा सुनाता। मैंने कौन-कौन-सी पुस्तकें पढ़ीं, उनका क्या असर मेरे दिलपर हुआ, इसकी चर्चा होती। ये कुमारिकाएँ अपने मीठे अनुभव सुनातीं और अपनेको मिली परम-शांतिकी बातें करतीं।

मि० कोट्स एक शुद्ध भाववाले कट्टर युवक क्वेकर थे। उनसे मेरा

घनिष्ठ संबंध हो गया। हम बहुत बार साथ घूमने भी जाते। वह मुझे दूसरे भाइयोंके यहां ले जाते।

कोट्सने मुझे किताबोंसे लाद दिया। ज्यों-ज्यों वह मुझे पहचानते जाते त्यों-त्यों जो पुस्तकें उन्हें ठीक मालूम होतीं, मुझे पढ़नेके लिए देते। मैंने भी केवल श्रद्धाके वशीभूत होकर उन्हें पढ़ना मंजूर किया। इन पुस्तकोंपर हम चर्चा भी करते।

ऐसी पुस्तकें मैंने १८९३में बहुत पढ़ीं। अब सबके नाम मुझे याद नहीं रहे हैं। कुछ ये थीं—सिटी टेंपलवाले डा० पारकरकी टीका, पियर्सन की 'मेनी इनफॉलिबल प्रूफ्स', बटलर कृत 'एनेलाजी' इत्यादि। कितनी ही बातें समझमें न आतीं, कितनी ही पसंद आतीं, कितनी ही न आतीं। यह सब मैं कोट्ससे कहता। 'मेनी इनफॉलिबल प्रूफ्स'के मानी हैं 'बहुतसे दृढ़ प्रमाण', अर्थात् बाइबिलमें रचयिताने जिस धर्मका अनुभव किया उसके प्रमाण। इस पुस्तकका असर मुझपर बिलकुल न हुआ। पारकरकी टीका नीतिवर्द्धक मानी जा सकती है; परंतु वह उन लोगोंकी सहायता नहीं कर सकती जिन्हें ईसाई-धर्मकी प्रचलित धारणाओंपर संदेह है। बटलरकी 'एनेलाजी' बहुत क्लिष्ट और गंभीर मालूम हुई। उसे पांच-सात बार पढ़ना चाहिए। वह नास्तिकको आस्तिक बनानेके लिए लिखी गई मालूम हुई। उसमें ईश्वरके अस्तित्वको सिद्ध करनेके लिए जो युक्तियां दी गई हैं, उनसे मुझे लाभ न हुआ; क्योंकि यह मेरी नास्तिकता-का युग न था! और जो युक्तियां ईसामसीहके अद्वितीय अवतारके संबंधमें अथवा उसके मनुष्य और ईश्वरके बीच संधि-कर्त्ता होनेके विषयमें दी गई थीं, उनकी भी छाप मेरे दिलपर न पड़ी।

पर कोट्स पीछे हटनेवाले आदमी न थे। उनके स्नेहकी सीमा न थी। उन्होंने मेरे गलेमें वैष्णवकी कंठी देखी। उन्हें यह वहम मालूम हुआ और देखकर दुःख हुआ। "यह अंध-विश्वास तुम जैसोंको शोभा नहीं देता। लाओ, तोड़ दूं।"

"यह कंठी तोड़ी नहीं जा सकती। माताजीकी प्रसादी है।"

"पर इसपर तुम्हारा विश्वास है?"

"मैं इसका गूढ़ार्थ नहीं जानता। यह भी नहीं भासित होता कि यदि इसे न पहनूं तो कोई अनिष्ट हो जायगा; परंतु जो माला मुझे माताजीने प्रेम-पूर्वक पहनाई है, जिसे पहनानेमें उसने मेरा श्रेय माना, उसे मैं बिना प्रयोजन नहीं निकाल सकता। समय पाकर जीर्ण होकर जब वह अपने-आप टूट जायगी तब दूसरी मंगाकर पहननेका लोभ मुझे न रहेगा; पर इसे नहीं तोड़ सकता।"

कोट्स मेरी इस दलीलकी कद्र न कर सके; क्योंकि उन्हें तो मेरे धर्मके प्रति ही अनास्था थी। वह तो मुझे अज्ञान-कूपसे उबारनेकी आशा रखते थे। वह मुझे यह बताना चाहते थे कि अन्य धर्मोंमें थोड़ा-बहुत सत्यांश भले ही हो; परंतु पूर्ण सत्य-रूप ईसाई-धर्मको स्वीकार किए बिना मोक्ष नहीं मिल सकता और ईसामसीहकी मध्यस्थताके बिना पाप-प्रक्षालन नहीं हो सकता तथा पुण्य-कर्म सारे निरर्थक हैं। कोट्सने जिस प्रकार पुस्तकोंसे परिचय कराया उसी प्रकार उन ईसाइयोंसे भी कराया, जिन्हें वह कट्टर समझते थे। इनमें एक प्लीमथ ब्रदर्सका भी परिवार था।

'प्लीमथ ब्रदरन्' नामक एक ईसाई-संप्रदाय है। कोट्सके कराये बहुतेरे परिचय मुझे अच्छे मालूम हुए। ऐसा जान पड़ा कि वे लोग ईश्वर-भीरु थे; परंतु इस परिवारवालोंने मेरे सामने यह दलील पेश की—"हमारे धर्मकी खूबी ही तुम नहीं समझ सकते। तुम्हारी बातोंसे हम देखते हैं कि तुम हमेशा बात-बातमें अपनी भूलोंका विचार करते हो, हमेशा उन्हें सुधारना पड़ता है, न सुधरें तो उनके लिए प्रायश्चित करना पड़ता है। इस क्रियाकांडसे तुम्हें मुक्ति कब मिल सकती है? तुमको शांति तो मिल ही नहीं सकती। हम पापी हैं, यह तो आप कबूल ही करते हैं। अब देखो हमारे धर्म-मन्तव्यकी परिपूर्णता। वह कहता है

मनुष्यका प्रयत्न व्यर्थ है। फिर भी उसे मुक्तिकी तो जरूरत है ही। ऐसी दशामें पापका बोझ उसके सिरसे उतरेगा किस तरह? इसकी तरकीब यह कि हम उसे ईसामसीहपर ढो देते हैं; क्योंकि वह तो ईश्वरका एकमात्र निष्पाप पुत्र है। उसका वरदान है कि जो मुझे मानता है वह सब पापोंसे छूट जाता है। ईश्वरकी यह अगाध उदारता है। ईसामसीह-की इस मुक्ति-योजनाको हमने स्वीकार किया है, इसलिए हमारे पाप हमें नहीं लगते। पाप तो मनुष्यसे होते ही हैं। इस जगत्में बिना पापके कोई कैसे रह सकता है? इसलिए ईसामसीहने सारे संसारके पापोंका प्रायश्चित एकबारगी कर लिया। उसके इस बलिदानपर जिसकी श्रद्धा हो वही शांति प्राप्त कर सकता है। कहां तुम्हारी शांति और कहां हमारी शांति!"

यह दलील मुझे बिलकुल न जंची। मैंने नम्रता-पूर्वक उत्तर दिया—"यदि सर्वमान्य ईसाई-धर्म यही हो, जैसा कि आपने बयान किया है, तो इससे मेरा काम नहीं चल सकता। मैं पापके परिणामसे मुक्ति नहीं चाहता। मैं तो पाप-प्रवृत्तिसे, पाप-कर्मसे, मुक्ति चाहता हूं। जबतक वह न मिलेगी, मेरी अशांति मुझे प्रिय लगेगी।"

प्लीमथ ब्रदरने उत्तर दिया—"मैं तुमको निश्चयसे कहता हूं कि तुम्हारा यह प्रयत्न व्यर्थ है। मेरी बातपर फिरसे विचार करना।"

और इन महाशयने जैसा कहा था वैसा ही कर भी दिखाया—जान-बूझकर बुरा काम कर दिखाया।

परंतु तमाम ईसाइयोंकी मान्यता ऐसी नहीं होती, यह बात तो मैं इनसे परिचय होनेके पहले भी जान चुका था। कोट्स खुद पाप-भीरु थे। उनका हृदय निर्मल था, वह हृदय-शुद्धिकी संभावनापर विश्वास रखते थे। वे बहनें भी इसी विचारकी थीं। जो-जो पुस्तकें मेरे हाथ आईं उनमें कितनी ही भक्ति-पूर्ण थीं, इसलिए प्लीमथ ब्रदर्सके परिचयसे कोट्सको जो चिंता हुई थी उसे मैंने दूर कर दिया और उन्हें विश्वास दिलाया कि प्लीमथ ब्रदरकी अनुचित धारणाके आधारपर मैं सारे ईसाई-

धर्मके खिलाफ अपनी राय न बना लूंगा। मेरी कठिनाइयां तो बाइबिल तथा उसके रूढ़ अर्थके संबंधमें थीं। (आ०, १९२७)

: ४० :

मणिलाल कोठारी

हरिजन-आंदोलन इतनी तेजीसे शुरू हुआ उसके पहलेसे ही मणिलाल कोठारीको मैं जानता था और जबसे मेरा उनसे परिचय हुआ तभी मैंने यह देख लिया था कि उनमें छूतछातकी ज़रा भी गंध नहीं थी। हरिजनोंकी सहायता करते हुए जो जोखिम उठानी चाहिए उसे उठानेको वे हमेशा तैयार रहते थे। अगर यह कहा जाय कि अच्छे कामोंके लिए पैसा इकट्ठा करनेकी उनमें अद्वितीय शक्ति थी तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं। उनमें यों तो बहुत-सी शक्तियां थीं, किंतु पारमार्थिक कार्योंके लिए धन-संग्रह करनेकी उनमें जो शक्ति थी, उसके लिए तो लोग हमेशा ही उन्हें याद करेंगे। हरिजन-कार्यके लिए उन्होंने काफ़ी पैसा इकट्ठा किया था और हिम्मतके साथ मुझसे कहा था कि अगर मैं अच्छा हो जाऊं तो जितना पैसा आपको चाहिए उतना ला दूंगा। पैसा इकट्ठा करा देनेके लिए जहां-तहांसे उनके पास मांगें आती ही रहती थीं। मणिलाल तीव्र लगनके आदमी थे। कोई भी पारमार्थिक काम हो, वह उन्हें अपनी तरफ खींच सकता था। सेवा करनेका उनका लोभ उन्हें चाहे जिस जोखिममें उतार सकता था। उनकी कमी उनके कुटुंबको तो खटकेगी ही हरिजनोंको भी खटकेगी, पर दूसरे अनेक सेवाक्षेत्रोंमें उनके अभावकी बहुत सगवगाहट याद रहेगी, इसमें संदेह नहीं।

ईश्वर उनकी आत्माको शांति प्रदान करे। (ह० से०, २३.१०.३७)

: ४१ :

धर्मानन्द कौसंबी

[बौद्ध विद्वान श्रीकौसंबीकी मृत्युका समाचार देते हुए गांधीजीने कहा :]

शायद आपने उनका नाम नहीं सुना होगा। इसलिए शायद आप दुःख मानना नहीं चाहेंगे। वैसे किसी मृत्युपर हमें दुःख मानना चाहिए भी नहीं; लेकिन इन्सानका स्वभाव है कि वह अपने स्नेही या पूज्यके मरनेपर दुःख मनाता ही है। हम लोग ऐसे बने हैं कि जो अपने कामकी डुग्गी पिटवाता फिरता है और राज्य-कारणमें उछालें भरता है, उसको तो हम आसमानपर चढ़ा देते हैं; लेकिन मूक काम करनेवालोंको नहीं पूछते।

कौसंबीजी ऐसे ही एक मूक कार्यकर्त्ता थे। उनका जन्म गोवामें हुआ था। जन्मसे वह हिंदू थे, पर उनको ऐसा विश्वास बैठ गया था कि बौद्ध धर्ममें अहिंसा, शील आदि जितने बढ़े-चढ़े हैं, उतने दूसरे धर्ममें, वेद-धर्ममें भी नहीं हैं। इसलिए उन्होंने बौद्ध धर्म स्वीकार किया और बौद्ध शास्त्रोंके अध्ययनमें लग गए और उसमें इतने बड़े विद्वान् हो गए कि शायद ही हिंदुस्तानमें उनकी बराबरीका और कोई हो। उन्होंने गुजरात विद्यापीठ व काशी विद्यापीठमें पाली भाषा पढ़ाई और अपनी अगाध विद्वत्ताका ज्ञान-दान किया था।

उन्होंने मेरे पास १०००) भेज दिए, जो किसीने उनको दिए थे। उन्होंने मुझको लिखा था कि किसीको पाली पढ़नेके लिए लंका भेज देना। लेकिन मैंने उनसे पूछा कि क्या लंका जाकर पढ़नेसे किसीको बौद्ध धर्म प्राप्त हो जायगा? मैंने तो दुनियामें बौद्धोंसे कहा है कि आपको अगर बौद्ध धर्म जानना है तो आप उसके जन्म-स्थान भारतमें ही उसे

पायेंगे। जहांपर वेद-धर्मसे वह निकला है, वहीं आपको उसे खोजना है और शंकराचार्य-जैसे अद्वितीय विद्वान्, जो प्रच्छन्न बुद्ध कहलाए, उनके ग्रंथोंको भी आप समझेंगे तब बौद्ध धर्मका गूढ़ रहस्य आप जान पायेंगे।

लेकिन कौसंबीजीकी विद्वत्तासे मैं अपनी तुलना नहीं कर सकता। मैं तो इंग्लैंडमें भोज खाकर बना हुआ बैरिस्टर हूं। मेरे पास संस्कृतका ज्ञान जरा-सा है। अगर आज मैं महात्मा बना हूं तो इसलिए नहीं कि अंग्रेजीका बैरिस्टर हूं, पर इसलिए कि मैंने सेवा की है और वह सेवा सत्य और अहिंसाके द्वारा की है। इस सत्य और अहिंसाकी पूजामें जो थोड़ी-सी सफलता मुझे मिलती चली गई उसीके कारण आज मेरी थोड़ी-बहुत पूछ है।

कौसंबीजीकी समझमें यह समा गया कि अब यह शरीर अधिक काम करनेके योग्य नहीं रहा है तो उन्होंने अनशन करके प्राण-त्याग करनेकी ठानी। टंडनजीके कहनेपर मैंने उनका अनशन उनकी (कौसंबीजीकी) अनिच्छासे तुड़वाया; पर उनका हाजमा बहुत खराब हो चुका था और कुछ भी खुराक ले ही नहीं सकते थे। तब दुबारा सेवाग्राममें चालीस दिनतक केवल जलपर ही रहकर उन्होंने शरीरांत किया। बीमारीमें नाममात्रकी सेवा और औषधि भी नहीं ली। जन्म-स्थान गोवामें जानेका मोह भी उन्होंने तजा और अपने पुत्र आदिको अपने पास न आनेकी आज्ञा दी। मृत्युके बादके लिए कह गए कि 'मेरा कोई स्मारक न बनाया जाय।' शरीरको जलाने या दफनानेमें जो सस्ता पड़े वह किया जाय और इस तरह उन्होंने बुद्धका नाम रटते-रटते अंतिम गहरी निद्रा ली, जो हरेक जन्मनेवालेको कभी-न-कभी लेनी ही है। मृत्यु हरेकका परम मित्र है, वह अपने कर्मके मुताबिक आवेगा ही। भले ही कोई यह बता दे कि अमुकका जन्म अमुक समय होगा, पर मौत कब आवेगी यह कोई भी आजतक नहीं बता पाया है। (प्रा० प्र० ५.६.४७)

. . . .

प्रोफेसर कोसंबीजी जो बड़े विद्वान थे और पाली भाषामें अग्रगण्य माने जाते थे। वे अभी-अभी सेवाग्राम आश्रममें चल बसे । उनके बारेमें वहांके संचालक बलवंतसिंहका पत्र है, जिसमें कहा गया है कि ऐसी मृत्यु आजतक मैंने नहीं देखी । यह तो बिल्कुल ऐसी हुई जैसी कबीरजीने बताई है :

दास कबीर जतन सो ओढ़ी,
ज्यों-की-त्यों धर दीनी चदरिया।

इस तरह हम सभी लोग मृत्युकी मैत्री साध लें तो हिंदुस्तानका भला ही होनेवाला है। (प्रा० प्र०, ८.६.४७)

: ४२ :

सरदार खड्गसिंह

जेलकी चहारदीवारीसे बाहर अपने बीच सरदार खड्गसिंहको पुन: राष्ट्रीय काम करते हुए देखकर प्रत्येक देशभक्तको आनंद होगा। अपने दुर्दमनीय स्वभाव और छुटकारा पानेके लिए अधिकारियोंके सामने अपना सिर झुकानेसे इन्कार करनेके कारण अपने देशभाइयोंके हृदयमें उन्होंने बहुत ऊंचा स्थान प्राप्त कर लिया है। परमात्मासे प्रार्थना है कि इस स्वाधीनताके युद्धमें वे वर्षोंतक देशकी सेवा करें। (हिं० न०, २३.६.२७)

: ४३ :

डा० एन० बी० खरे

पिछले सप्ताह डाक्टर खरे और उनकी हरिजन-सेवक-समितिने मेरे प्रवासके कार्यक्रमके संबंधमें बड़ी ही सुंदर व्यवस्था की थी। डाक्टर खरेको स्वेच्छासे काम करनेवाले अनेक सुयोग्य साथियोंकी सहायता न मिलती तो यह कार्यक्रम पूरा ही नहीं हो सकता था। डाक्टर साहबने, हृदयकी पुरानी व्याधिसे पीड़ित होते हुए भी, इन कठिन दिनोंमें परिश्रम करनेमें कोई कसर उठा नहीं रक्खी और अपने साथियोंसे भी उन्होंने खूब काम लिया। नागपुरकी विराट् सभामें बिजलीकी सैकड़ों बत्तियां लगाने और ऊंचा पक्का मंच तैयार करनेमें जो खर्च पड़ा वह कुछ सज्जनोंने आपसमें ही इकट्ठा करके दे दिया था। दानकी थैलियोंमेंसे इस खर्चके लिए एक पैसा भी नहीं निकाला गया। उन दिनों श्रीगणपत राव टिकेकरका मकान, जहां मैं ठहरा हुआ था, एक तरहसे धर्मशाला बन गया था। टिकेकर-बंधुओंने हमारे बड़े दलको तथा दूसरे कार्योंके संबंधमें आए हुए अन्य लोगोंको आराम और सुविधाएं पहुंचानेमें परिश्रम तथा खर्चमें जरा भी कमी नहीं रक्खी। मैंने देखा कि नागपूर और आसपासके गांवोंमें मेरे दौरेको सफल बनानेमें कांग्रेसवालों एवं दूसरे लोगोंने पूरा सहयोग दिया। इसमें संदेह ही नहीं कि उन सबके सहयोगसे मेरा यह दौरा सफल हुआ। डाक्टर खरे और उनके साथियोंने इस अवसरपर जो असीम परिश्रम किया उसके लिए मैं उन्हें धन्यवाद देता हूं। इस महान् शुद्धि-कार्यमें जो परिश्रम और सावधानी उन्होंने दिखाई, वह आवश्यक ही थी।

(ह० से०, २४.११.३३)

: ४४ :

नारायण मोरेश्वर खरे

हाल हीमें स्थापित हुए सत्याग्रह-आश्रमके लिए एक अच्छा संगीत-शिक्षक देनेको जब मैंने स्वर्गीय मगनलाल गांधीको पं० विष्णु दिगंबरके पास भेजा तो पंडित विष्णु दिगंबरजी समझ गए कि मैं किस तरहका आदमी चाहता हूं। पंडित खरेका उन्होंने जो चुनाव किया वह ठीक ही निकला, क्योंकि जिस कामके लिए उन्हें लाया गया उसे उन्होंने इतनी अच्छी तरह किया जिससे अच्छी तरह और किसीने न किया होता। उनकी मृत्युसे जो स्थान खाली हुआ है वह शायद खाली ही बना रहेगा; क्योंकि जिन्होंने कलाको अपनाया है, उनमें ऐसे बहुत कम हैं जिन्होंने उसमें पड़कर भी अपने जीवनको शुद्ध और निर्दोष बनाये रक्खा हो। बल्कि हम लोगोंमें किसी कदर यह भावना-सी जम गई है कि कलाका व्यक्तिगत जीवनकी शुद्धतासे कोई सरोकार नहीं है। लेकिन अपने सारे अनुभवके आधारपर मैं कह सकता हूं कि इससे असत्य और कोई बात नहीं हो सकती। ज्यों-ज्यों मैं अपने पार्थिव जीवनके अंतपर आ रहा हूं, मैं यह कह सकता हूं कि जीवनकी शुद्धता ही सबसे ऊंची और सच्ची कला है। कृत्रिम आवाजसे सुंदर संगीत पैदा करनेकी कला तो बहुत लोग हासिल कर सकते हैं, लेकिन शुद्ध जीवनकी एकरसतासे उस संगीतको पैदा करनेकी कला बिरले ही प्राप्त करते हैं। पंडित खरे उन्हीं बिरले व्यक्तियोंमेंसे थे, जिन्होंने संपूर्णताके साथ उस कलाको प्राप्त किया है। ऐसा कोई अवसर नहीं हुआ जबकि उनके जीवनकी शुद्धताके बारेमें मुझे जरा-सा भी संदेह हुआ हो।

पंडितजीने संगीतमें गुजरातका जो रस पैदा किया है उसे गुजरातको बराबर जारी रखना चहिए। मैं आशा करता हूं कि उनके दोनों बच्चे

उन्हींके योग्य साबित होंगे और उनकी वीर पत्नी अपने त्यागमय जीवनके द्वारा भारतीय विधवाका आदर्श उपस्थित करेंगी, इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं है। रही पंडितजीकी बात, सो यह तो ठीक है कि अपने जीवनके मध्यकालमें ही उनकी मृत्यु हो गई है, लेकिन उनकी मौत ऐसी मौत है कि हरएक उसके लिए ईर्षा करेगा; क्योंकि इस पुण्यस्थान में काम करते हुए उनकी मृत्यु हुई है और अपनी मृत्युका ज्ञान होजानेके कारण राम-नामका उच्चारण करते हुए तथा उसी पवित्र नामकी ध्वनि श्रवण करते हुए उनका अवसान हुआ है। ईश्वर करे कि गुजरात उनके मृदु स्मरणको सुरक्षित रखे! (ह० से० १९.२.३८)

. . . .

तार माना जासकने जैसा नहीं है। जब तुमने बीमारीकी बात कही थी तब मनमें कुछ खटका हुआ था; लेकिन तुरंत ही उसकी उपेक्षा करदी और यह मानकर बैठ गया कि उनका कुछ बिगड़ेगा नहीं। दूसरे पंडितजीका मिलना अशक्य समझता हूं। संगीत और श्रेष्ठ नीतिका मेल कहां ढूंढूंगा? (मृत्युपर दिया गया तार)

: ४५ :

खान अब्दुल गफ्फार खाँ

खान अब्दुल गफ्फार खांके संपर्कमें आनेकी अभिलाषा तो मुझे हमेशा रही है, लेकिन गत वर्षके आखिरी महीनोंसे पहले मुझे कभी ऐसा अवसर नहीं मिला कि मैं कुछ समय तक उनके साथ रहता। परंतु हजारीबाग जेलसे छूटनेके बाद, सौभाग्यवश शीघ्र ही, न केवल खान अब्दुल गफ्फार खां, बल्कि उनके भाई डा० खानसाहब भी मेरे पास आ गए। भाग्यकी बात

है कि २७ दिसंबर तक सीमाप्रांतमें उनका प्रवेश निषिद्ध कर दिया गया और कांग्रेसके आदेशके अनुसार वे आज्ञा भंग कर नहीं सकते थे। अतः उन्होंने वर्धामें सेठ जमनालाल बजाजका आतिथ्य स्वीकार कर लिया। इस प्रकार मुझे इन भाइयोंके घनिष्ट संपर्कमें आनेका मौका मिल गया। जितना-जितना मैं उन्हें जानता गया, उतना ही अधिक मैं उनकी ओर आकर्षित होने लगा। उनकी पारदर्शी सचाई, स्पष्टवादिता और हद दर्जेकी सादगीका मुझपर बहुत प्रभाव पड़ा। साथ ही मैंने यह भी देखा कि सत्य और अहिंसामें केवल नीतिके तौरपर नहीं, वरन् ध्येयके रूपमें उनका विश्वास हो गया है। छोटे भाई खान अब्दुल गफ्फार खां तो मुझे गहरी धार्मिक भावनाओंसे ओतप्रोत प्रतीत हुए; परंतु उनके विचार संकीर्ण नहीं हैं। मुझे तो वह विश्वप्रेमी मालूम पड़े। उनमें यदि कुछ राजनीतिकता है तो उसका आधार उनका धर्म है। और डाक्टर साहबकी तो कोई राजनीति है ही नहीं। ('दो खुदाई खिदमतगार' की भूमिका)

. . . .

खुदाई खिदमतगार चाहे जैसे हों, या अंतमें वे चाहे जैसे साबित हों, पर उनके नेताके बारेमें तो, जिसे वे बादशाह खान कहकर खुश होते हैं, कोई संदेह नहीं हो सकता। वह तो असंदिग्ध रूपसे ईश्वर-भीरु पुरुष हैं। उसकी प्रतिक्षणकी अखंड उपस्थितिमें उनकी परम श्रद्धा है और वह बखूबी जानते हैं कि उनका आंदोलन तभी प्रगति करेगा जब ईश्वरकी वैसी इच्छा होगी। ईश्वरके इस कार्यमें अपनी सारी आत्माको उंडेलकर, परिणामकी वह बहुत ज्यादा फिक्र नहीं करते। उनके लिए तो यह महसूस करना ही काफी है कि अहिंसाको उसके पूरे रूपमें स्वीकार किए बगैर पठानोंकी मुक्ति नहीं। इस बातमें वह कोई गौरव अनुभव नहीं करते कि पठान अच्छे लड़ाका हैं। वह उनकी बहादुरीकी तो कद्र करते हैं, लेकिन उनका ऐसा खयाल है कि बहुत ज्यादा प्रशंसासे उसे बिगाड़ दिया गया है। अपने पठानोंको वह समाजके गुंडोंके रूपमें नहीं देखना चाहते। उनका यह विश्वास

है कि पठानोंको अज्ञानमें रखकर उनसे अपनी स्वार्थ-सिद्धि की गई है। वह पठानोंको और अधिक वीर बनाना चाहते हैं और चाहते हैं कि उनकी वीरताके साथ सच्चे ज्ञानका भी समावेश होजाय। उनका ख़याल है कि ऐसा केवल अहिंसाके द्वारा ही हो सकता है।

और चूंकि खानसाहब अहिंसामें विश्वास करते हैं, इसलिए उन्होंने चाहा कि खुदाई खिदमतगारोंके बीच जितने अधिक समयतक मैं रह सकूं उतने अधिक समयतक रहूं। मुझे तो वहां आनेके लिए किसी प्रलोभनकी जरूरत ही नहीं थी; क्योंकि मैं तो खुद ही उनसे परिचय प्राप्त करनेके लिए उत्सुक था और उनके दिलों तक पहुंचना चाहता था। अब भी मैं ऐसा कर सका हूं या नहीं, यह मैं नहीं जानता। बहरहाल, मैंने प्रयत्न तो किया ही है।

लेकिन यह बतानेसे पहले कि यह मैंने किस तरह और किस हदतक किया, मुझे एक शब्द खानसाहबकी मेजबानीके बारेमें भी जरूर कह देना चाहिए। इस सारे दौरेमें उन्हें इस बातकी बड़ी ही फिक्र रही कि मुझे जितनी भी सुविधा पहुंचाई जा सकती हो उतनी पहुंचाई जाय। मुझे किसी किस्मकी दिक्कत या कमी न होने देनेके लिए उन्होंने कोई बात उठा नहीं रक्खी। मेरी सभी जरूरतोंका वह पहलेसे ही अंदाज लगा लेते थे, और उन्होंने जो कुछ किया उसमें कोई दिखावा नहीं था; बल्कि उनके लिए वह सब बिलकुल स्वाभाविक था। उन्होंने जो कुछ किया, सब दिलसे किया। फरेब या बनावट तो उनमें है ही नहीं। दिखावेसे तो वह बिलकुल दूर हैं। इसलिए वह जो भी देख-भाल रखते वह न तो अखरती और न उससे मेरे काममें कोई रुकावट ही पड़ती। यही कारण है कि तक्षशिलामें जब हम एक-दूसरेसे जुदा हुए तो हमारी आंखें भर आईं। जुदाई मुश्किल थी, और इसी आशामें हम एक-दूसरेसे विदा हुए कि शायद अगले मार्चमें ही हम फिर मिलेंगे। सीमाप्रांतका मेरे लिए ऐसी जगह बना रहना आवश्यक है, जहां मैं

अवसर जाता रहूं; क्योंकि शेष भारत सच्ची अहिंसाका प्रदर्शन करनेमें चाहे असफल रहे, सीमाप्रांतसे यह आशा करनेकी काफी गुंजाइश है कि वह इस अग्नि-परीक्षामें खरा उतरेगा। इसका कारण स्पष्ट है। वह यह कि बादशाह खानके अनुयायी, जिनकी संख्या एक लाखसे अधिक बतलाई जाती है, उनकी आज्ञाका स्वेच्छापूर्वक पालन करते हैं। उनके कहनेपर वे चलते हैं। जहां उन्होंने कुछ कहा नहीं कि तुरंत उसपर अमल होता है। पर खुदाई खिदमतगारोंकी उनमें जो श्रद्धा है उसके होते हुए भी, खुदाई खिदमतगार रचनात्मक अहिंसाकी परीक्षामें पूरे उतरेंगे या नहीं, यह अभी देखनेकी ही बात है।

खानसाहब और मैं यह शुरूमें ही तय कर चुके थे कि विभिन्न केन्द्रोंमें तमाम खुदाई खिदमतगारोंके सामने भाषण करनेके बजाय मुझे उनके नेताओं तक ही मर्यादा बना लेनी चाहिए। इससे मेरी शक्तिका क्षय नहीं होगा और उसका अधिक-से-अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण उपयोग होगा। हुआ भी यही। पांच हफ्तेके अंदर हम सारे केन्द्रोंमें हो आए और हरएक केन्द्रमें कोई एक घंटा या उससे कुछ अधिक समयतक बातचीत की। खानसाहब मेरे बहुत योग्य और विश्वस्त दुभाषिये साबित हुए। मैंने जो कुछ कहा उसमें उनका विश्वास था, इसलिए मेरी बातोंका उल्था अपनी जबानमें करनेमें उन्होंने अपनी सारी शक्ति लगा दी। वह एक जन्मजात वक्ता हैं और बड़े शानदार और प्रभावकारी ढंगसे बोलते हैं।

(ह० से०, १९.११.३८)

... ...

मिस म्यूरियल लेस्टर, जिनके यहां गोलमेज कानफ्रेंसके समय ईस्ट-एण्ड (लंदन) में मैं ठहरा था और जो यह लिखते समय सीमाप्रांतमें हैं, बादशाह खानसे मिलकर उनके बारेमें इस प्रकार लिखती हैं :

"अब मैं खान अब्दुल गफ्फार खांको पहचानने लगी हूं। मुझे ऐसा लगता है कि जहांतक अद्भुत व्यक्तियोंसे मिलनेका सवाल है, अपने

जीवनमें ऐसा सम्मान और कहीं मिलनेकी कोई संभावना नहीं है । वह तो नये टेस्टामेंटकी सुजनताके साथ पुराने टेस्टामेंटके राजा ही हैं। कितने ऊंचे संत हैं वह ! आपको धन्यवाद हैं कि आपके द्वारा हमें उनके परिचयमें आना संभव हुआ।

"कल वह हमें उत्तमंजई ले जा रहे हैं। मीराको फिरसे देखनेमें बड़ा आनंद आयगा।"

मैं अगर यह समझता कि यह एक असंतुलित मस्तिष्ककी अतिशयोक्ति है तो मैं व्यक्तिगत रूपसे की गई इस प्रशंसाको कभी प्रकाशित न करता। यह तो सच है कि म्यूरियल लेस्टर जिन लोगोंसे मिलती हैं उनकी अच्छाइयोंपर ही झट उनका ध्यान जाता है। लेकिन यह कोई बुरी बात नहीं; बल्कि एक सद्गुण है। बुराइयोंसे खाली तो कोई नहीं है, यहांतक कि ईश्वरसे डरकर चलनेवाले संत पुरुष भी नहीं बचे हैं ! वे संत इसलिए नहीं हैं कि उनमें कोई बुराई नहीं है, बल्कि इसलिए हैं कि वे अपनी बुराइयोंको जानते हैं, उनसे बचना चाहते हैं, उन्हें छिपाते नहीं और उनसे मुक्त होकर अच्छे बननेके लिए हमेशा तैयार रहते हैं। ऐसे ही खानसाहब हैं, जो खुदाई खिदमतगार कहलानेमें ही फख्र समझते हैं। वह एक श्रद्धालु मुसलमान हैं, जो रोजे व नमाजमें कभी नहीं चूकते। कुरानकी उनकी व्याख्या इतनी उदार है कि उससे उदार व्याख्या मैं और नहीं जानता। खुदाई खिदमतगारोंमें कताई वगैरह जारी करनेके लिए मैंने उन्हें अपना एक आदमी देनेके लिए कहा था, जिसका उन्हें चुनाव करना था। इसके लिए उन्होंने जानबूझकर मीराबेनको चुना। अभी हालतक वह उन्हींके मकानमें रहती भी थीं और अब उनके घरसे लगे हुए मकानमें रह रही हैं, जहां वह अपना कताई-वर्ग चलाती हैं। वह मुझे प्रायः रोज पत्र लिखती हैं। मुझे यह कहते हुए प्रसन्नता होती है कि जिन लोगोंसे वह प्रेम करती हैं उनकी आलोचना करनेसे कभी नहीं चूकतीं। फिर भी उनके पत्रोंमें इस श्रेष्ठ फकीरके बारेमें ऐसे ही

भाव प्रदर्शित किए गए थे, जैसे म्यूरियल लेस्टरने अपनी पहली मुलाकातमें व्यस्त किए हैं। इतनेपर भी अंग्रेज अधिकारी उनका कोई उपयोग नहीं करते। वे तो उनसे डरते हैं और उनमें अविश्वास करते हैं। इस अविश्वाससे अगर प्रगतिमें कोई रुकावट न पड़ती और भारत तथा इंग्लैंड और इसलिए सारे संसार को हानि न होती तो मैं इस अविश्वासकी कोई परवा न करता (ह० से०, २८.१.३६)

. . . .

जहां हर तरफ 'शुद्ध अहिंसा' की होली जल रही है, वहां खानसाहबकी जीती-जागती अहिंसा कायम है। यह बात हमारे लिए चिराग जैसी रोशन है। खानसाहबका निवेदन[1] मनन करनेके काबिल है। खानसाहबको शोभा भी यही देता है। खानसाहब पठान हैं। पठान तो तलवार-बंदूक साथ लेकर पैदा हुए हैं, ऐसा कहा जा सकता है।

रौलट एक्टकी लड़ाईके जमानेमें जब खुदाई खिदमतगार आमादा हुए तब खानसाहबने उनके हथियार छुड़वा दिए। सरकारके साथ तो लड़ना ही था; लेकिन खानसाहबने अहिंसाका सच्चा तजुरबा दूसरी जगह पाया। पठानोंमें बदला लेनेका कानून ऐसा सख्त है कि अगर एक खान्दानमें खून हो गया हो तो उसका बदला खूनसे ही लेकर छुटकारा होता है। एक बार खूनका बदला लिया तो फिर उस खूनका बदला लेना होता है। इस तरह पीढ़ी-दर-पीढ़ी खूनका बदला खूनसे लेनेका कहीं अंत ही नहीं आता था। यह भी हिंसाकी हद और हिंसाका दिवाला था; क्योंकि इस तरह खूनका बदला लेते-लेते खान्दान बरबाद हो जाते थे। खानसाहबने पठानोंकी ऐसी बरबादी देखी और अहिंसामें उनकी बेहतरी पाई। उन्होंने सोचा कि अगर मैं पठान लोगोंको समझा सकूं कि हमको न सिर्फ

[1]द्वितीय महायुद्धमें सहयोगके प्रश्नको लेकर खानसाहब कांग्रेससे अलग हो गए थे। —संपादक

खूनका बदला नहीं लेना है; बल्कि खूनको भूल जाना है तो एक दूसरेसे बदला बंद हो जाएगा, हम जीवित रह सकेंगे और जीवनको सफल भी बना सकेंगे। यह नकदका सौदा है। उनके अनुयायियोंने उसपर अमल किया। अब ऐसे खुदाई खिदमतगार पाए जाते हैं, जो खूनका बदला लेना भूल गए हैं। यह शक्तिशालीकी अहिंसा या सच्ची अहिंसा कही जा सकती है।

अगर खानसाहब कांग्रेसमें रहते तो उनकी जिंदगीका काम खाकमें मिल जाता। वह पठानोंसे किस मुंहसे कहते कि 'तुम लड़ाईमें भरती हो जाओ? यह बदला न लेने का क़ानून अब रद हुआ समझो!' ऐसी भाषा पठान समझ ही नहीं सकते। वह तो तुरंत यही जवाब देते कि जर्मनी अपना बदला ले रहा है, इंगलैंड मुकाबिला कर रहा है, यह हार जाएगा तो खुद लड़ाईकी तैयारी करेगा। इसलिए इस लड़ाईमें और हमारे खूनका बदला खूनसे लेनेमें रत्तीभर भी फर्क नहीं। ऐसी दलीलोंके सामने खान-साहबकी जबान बन्द हो जाती। इसलिए उन्होंने अपना ही काम जारी रखना पसंद करके कांग्रेससे निकल जानेका फैसला किया। खानसाहबको अहिंसाका संदेश पहुंचानेमें कहांतक सफलता हुई है, वह मैं नहीं जानता। इतना ही जानता हूं कि खानसाहबकी श्रद्धा दिमागी नहीं, केवल दिलसे निकली हुई है, इसलिए वह हमेशा कायम है। अब कबतक उनके चेले उनकी तालीममें लगे रहेंगे, यह खुद खानसाहब भी नहीं कह सकते और न इसकी उनको परवाह है। उनको तो अपना कर्त्तव्य पूरा करना है। परिणाम खुदापर छोड़ दिया है। उनकी अहिंसाका आधार कुरान शरीफ है। खानसाहब पक्के मुसलमान हैं। वह मेरे साथ लगभग एक सालतक रहे। बावजूद बीमार होनेके, उन्होंने न कभी नमाज कज़ा की, न रोजा। खानसाहबके दिलमें दूसरे मजहबोंके प्रति पूरा आदर है। उन्होंने गीताका भी थोड़ा अभ्यास किया है। वह हमेशा बहुत कम पढ़ते हैं; लेकिन जो पढ़ते या सुनते हैं वह अगर अमलमें लानेके योग्य हो तो उसपर अमल करनेमें उन्हें देर नहीं लगती। वह लंबी-चौड़ी दलीलोंमें नहीं पड़ते।

जरा समझा और तुरंत 'हां' या 'ना' कह सकते हैं। अगर खानसाहबको स्पष्ट सफलता हासिल हुई तो उससे बहुत सारी उलझनें सुलझ सकती हैं। आज तो कुछ नहीं कहा जा सकता। चाकपर मिट्टी है, मटका उतरेगा या गागर, इस बातको तो खुदा ही ज्यादा अच्छी तरह जानता है।

(ह० से०, २०.७.४०)

... ...

'एसोसिएटेड प्रेस' ने बादशाह खानके विषयमें नीचे लिखा संवाद प्रचारित किया है :

"सीमाप्रांतकी प्रांतीय कांग्रेस-कमिटीने निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया है :

'देशके कई समाचार-पत्रोंमें पठानोंके निर्विवाद नेता खान अब्दुल गफ्फार खांके विरुद्ध और खुदाई खिदमतगार आंदोलनके विरुद्ध, जो प्रचार किया जा रहा है, उसके बारेमें हम जनताको सावधान करना चाहते हैं। कुछ इस ढंगका इशारा किया गया है कि सीमाप्रांतके कार्यकर्ताओंके बीच फूट पड़ गई है और दलबंदियोंने उनके बीच अपनी मनहूस शक्ल दिखानी शुरू की है। अभीतक एक भी खुदाई खिदमतगारने त्यागपत्र नहीं दिया है। वे सब खान अब्दुल गफ्फार खांके नेतृत्वमें एक अभेद्य दलकी नाई संगठित हैं। उनके दरमियान दलबंदीकी सब बातें सर्वथा निर्मूल हैं। फूटकी ये सब दंतकथाएं कुछ ऐसे स्वार्थी और पदलोलुप व्यक्तियोंके दिमागकी उपज हैं, जो समझते हैं कि इस तरह वे अपना उल्लू सीधा कर सकेंगे। इस सब प्रचारके पीछे सरकारकी प्रेरणा तो है ही; परंतु सीमाप्रांतकी जनतामें इन लोगोंका कोई साथी नहीं है। यहांका हरएक राष्ट्रवादी बखूबी समझता है कि पदग्रहणकी बात तो दूर रही, आज भारतमें अंग्रेज सरकारके साथ हमें कोई मतलब ही नहीं हो सकता। हिंदुस्तानके अन्य भागोंमें पार्लमेंटरी कार्यक्रमके लिए चाहे जो आकर्षण हो, सीमाप्रांतमें तो उसके लिए कतई स्थान नहीं।

'खान अब्दुल गफ्फार खांने देहातोंमें आंतरिक सुव्यवस्था और अन्न-वस्त्रके स्वावलंबनके बारेमें जो शांत, पारमार्थिक रचनात्मक कार्य किया है, उसने वहांकी जनतामें और खास तौरपर गरीब जनतामें उनकी लोकप्रियता और भी बढ़ा दी है। वे सरहदके आसपासवाले कबीलोंमें सुलह और शांतिके संदेशको पहुंचानेका स्वप्न देख रहे हैं।

'आनेवाले संकटके समयमें जनताकी सच्ची सेवा करनेवाली एक शांत और अहिंसक सेनाको तैयार करनेमें उन्होंने अपनी सारी शक्ति लगा दी है। करोड़ों रुपये खर्च करके जो काम करनेमें सरकार असफल रही है, उसे वे जनताकी शुद्ध ऐच्छिक सहायता द्वारा करनेका प्रयत्न कर सहानुभूति और सहयोगके अधिकारी हैं। हम आशा करते हैं कि सीमा-प्रांतकी जनता उनके आह्वानका ठीक-ठीक जवाब देगी और देशके सब सच्चे हितैषी समाचार-पत्र और पत्रकार तमाम पूर्वाग्रहोंको छोड़कर उनके इस कार्यमें रस लेंगे।' "

सीमाप्रान्तीय समितिने यह प्रस्ताव पास करके और विज्ञप्तिके रूपमें इसे प्रचारित करके ठीक ही किया है; परंतु बादशाह खानकी कीर्ति सीमाप्रांतकी प्रांतीय समितिके इस प्रस्तावकी अपेक्षा कहीं अधिक सबल आधारपर अवलंबित है। उनकी कीर्तिका आधार चौथाई सदीसे भी अधिक कालतककी हुई उनकी निःस्वार्थ जनसेवा और उसके फल-स्वरूप प्राप्त उनकी लोकप्रियता है। अपने निंदकोंकी सब कुचेष्टाओंके बावजूद खानसाहब अबतककी सभी अग्नि-परीक्षाओंमें उत्तीर्ण हुए हैं। मुझे इसमें जरा भी शक नहीं कि आगे चलकर जब फिर परीक्षाका समय आवेगा तो वे पहलेकी भांति ही अपनी लोकप्रियताका प्रमाण देंगे।

(ह० से०, ५.७.४२)

... ...

बादशाह खान मेरे दोस्त हैं। मौलाना आजाद तथा जवाहरलालके महल छोड़कर मेरी झोंपड़ीमें आकर टिकते हैं। यहां गोश्त नहीं मांगते।

मेरे साथ ही रोटी-फल लेते हैं। वे पूरे फकीर हैं। उनके भाई डा० खान साहब बिना उनकी मददके काम नहीं चला सकते। हम उन्हें सीमांत गांधी कहते हैं; पर वहां गांधीको ही कोई नहीं जानता तो सीमांत गांधीको कौन जाने? वहां तो यह बादशाह कहलाते हैं और जिस झोंपड़ीमें जाइए, वहां पठान अपने इस बादशाहपर खुश हो जाते हैं।

ऐसे बादशाहके इलाकेमें जनमत-संग्रह करनेकी बात तय कर दी गई है और वह भी तब जब पठानका खून अभी ठंडा नहीं हुआ है, जिसका कि खून सदा गरम ही रहता आया है, और बादशाहने अपनी जिंदगी उस खूनको ठंडा करनेमें खपा रखी है। (प्रा० प्र०, ११.६.४७)

. . . .

पठान तलवारबाज होता है। कोई पठान ऐसा नहीं होता जो तलवार और बंदूक चलाना न जानता हो। पीढ़ी-दर-पीढ़ी पठान खूनका बदला लेता रहा है। पर बादशाह खानने देखा कि हथियारोंकी बहादुरीसे भी ज्यादा बुलंदी, सरकार स्वरक्षा करनेमें है। बादशाह खानका खयाल था कि पठान लोग यह ऊंची बहादुरी अपना लें और एक होकर सबकी खिदमत करें; पर यह ख्वाब पूरा होनेसे पहले वहां यह जनमत-संग्रहका झगड़ा फैल गया।

कुछ कहेंगे कि हम पाकिस्तानके साथ रहेंगे, कोई कहेंगे कि कांग्रेसके साथ रहेंगे, और कांग्रेस तो आज बदनाम है कि वह हिंदुओंकी हो गई। इस बातपर पठान अलग-अलग होंगे और ऐसी यादवस्थली मचेगी कि जिसका दबाना दुश्वार होगा। वे आपसमें कट मरेंगे। बादशाह खान चाहते हैं कि किसी तरहसे जनमतसंग्रहकी बलासे छूटकर पठान आजाद रहें। वे खुद अपने कानून बनावें और एक रहें, फिर चाहे वे पाकिस्तानमें रहें चाहे हिंदुस्तानमें मिलें। वे कहते हैं कि हमारे पास पैसा नहीं है। हम तो मिस्कीन आदमी हैं। हम अपना स्वतन्त्र राष्ट्र

बनाना नहीं चाहते, पर किसमें मिलेंगे इसके बारेमें आपसी झगड़ा मिट जानेके बाद ही हम निश्चय करेंगे। (प्रा० प्र०, १७.६.४७)

... ...

लोगोंकी आंखें आज सरहदी सूबेमें होनेवाले जन-मतकी तरफ लगी हुई हैं, क्योंकि सरहदी सूबा कानूनन कांग्रेसका रहा है और आज भी है। बादशाह खान और उनके साथियोंसे कहा जाता है कि पाकिस्तान या हिंदुस्तान, दोमेंसे किसी एकको चुनो। हिंदुस्तानका आज गलत अर्थ हो गया है---हिंदुस्तानका हिंदू और पाकिस्तानका मुसलमान। बादशाह खान इस कठिनाईमेंसे कैसे निकलें? कांग्रेसने वचन दिया है कि डा० खानसाहबकी सीधी देख-रेखके नीचे सरहदी सूबेमें जनमत लिया जायगा। वह तो नियत तारीखपर ही होगा। खुदाई खिदमतगार मत नहीं देंगे। सो मुस्लिम लीगको सीधी जीत मिलेगी और खुदाई खिदमतगारोंको अपनी आत्माकी आवाजके खिलाफ काम नहीं करना पड़ेगा, बशर्तेकि उनकी आत्माकी आवाज है, ऐसा माना जाय। ऐसा करनेमें क्या जन-मतकी शर्तोंका भंग होता है? वही खुदाई खिदमतगार जिन्होंने बहादुरीसे ब्रिटिश सरकारका सामना किया, अब हारसे डरनेवाले नहीं हैं। हार होगी, यह पक्की तरह जानते हुए अलग-अलग दल रोज चुनावमें हिस्सा लेते हैं। जब एक दल चुनावमें हिस्सा नहीं लेता तब भी तो हार निश्चित ही होती है।

पठानिस्तानकी नई मांग पेश करनेके लिए बादशाह खानको ताना दिया जाता है। कांग्रेसकी वजारत बननेसे पहले भी, जहांतक मैं जानता हूं, बादशाह खानके सिरपर यही धुन सवार थी कि अपने घरमें पठानोंको पूरी आजादी हो। बादशाह खान एक अलग स्टेट बनाना नहीं चाहते। अगर वह अपने घरमें अपना विधान बना सकें तो वह खुशीसे दोमेंसे एक संघको कबूल कर लेंगे। मुझे तो समझमें नहीं आता कि पठानिस्तानकी इस मांगके सामने किसीको क्या उज्र हो सकता है।

हां, पठानोंको पाठ सिखाना हो और उन्हें किसी-न-किसी तरह झुकाना ही हो तो बात अलग है। बादशाह खानपर एक बड़ा इल्जाम यह लगाया जा रहा है कि वह अफगानिस्तानके हाथोंमें खेल रहे हैं। मैं समझता हूं कि वह कभी किसी तरहकी धोखेबाजी कर ही नहीं सकते। वह सरहदी सूबेको अफगानिस्तानमें जज्ब होने नहीं देंगे।

उनके दोस्त होनेके नाते मैं मानता हूं कि उनमें एक ही कमी है। वे बहुत ही शक्की हैं, खासकर अंग्रेजोंके काम और नीयतपर वह हमेशा शुबहा करते हैं। मैं सबसे कहूंगा कि वे उनकी इस कमजोरीको, जो कि खास उन्हींमें नहीं है, नजरअंदाज कर दें। यह जरूर है कि इतने बड़े नेताके लिए यह शोभा नहीं देता। अगर्चे मैंने उसको एक कमजोरी कहा है और जो एक तरहसे ठीक ही है, मगर दूसरी प्रकारसे इसको एक खूबी मानना चाहिए; क्योंकि वे चाहें भी तो अपने विचारोंको छिपा नहीं सकते। (प्रा० प्र०, ३०.६.४७)

: ४६ :

आदमजी मियां खान

यदि मैं देश जाऊं तो फिर कांग्रेसका और शिक्षा-मंडलके कामका कौन जिम्मा ले? दो साथियोंपर नजर गई: आदमजी मियां खान और पारसी रुस्तमजी। व्यापारी-वर्गमेंसे बहुतेरे काम करनेवाले ऊपर उठ आए थे; पर उनमें प्रथम पंक्तिमें आने योग्य यही दो सज्जन ऐसे थे जो मंत्रीका काम नियमित रूपसे कर सकते थे और जो दक्षिण अफ्रीकामें जन्मे भारतवासियोंका मन हरण कर सकते थे। मंत्रीके लिए मामूली अंग्रेजी जानना तो आवश्यक था ही। मैंने इनमेंसे स्वर्गीय आदमजी

मियां खानको मंत्री-पद देनेकी सिफारिश की और वह स्वीकृत हुई। अनुभवसे यह पसंदगी बहुत ही अच्छी साबित हुई। अपनी उद्योगशीलता, उदारता, मिठास और विवेकके द्वारा सेठ आदमजी मियां खानने अपना काम संतोषजनक रीतिसे किया और सबको विश्वास हो गया कि मंत्रीका काम करनेके लिए वकील बैरिस्टरकी अथवा पदवीधारी बड़े अंग्रेजीदांकी जरूरत न थी। (आ० १९२७)

: ४७ :

गंगाबहन

हम कह सकते हैं कि गंगाबहनने जीकर आश्रमको सुशोभित किया और मरकर भी आश्रमको सुशोभित किया। (बड़ी गंगाबहनको भेजा पत्र)

. . . .

गंगाबहनकी मृत्युके समाचार जानकर हम सबको दुःख हुआ। मुझे खुशी है कि उन्होंने अमर श्रद्धाके साथ जीना जाना और मरना जाना। तोता-रामजी आनंदमें है, इसमें आश्चर्य नहीं। (आश्रमको दिया गया तार)

. . . .

देखो, इस निरक्षर स्त्रीको ! इसकी मौत कैसी है ! दोनोंने आश्रमको सुशोभित किया। तोतारामजी गिरमिटिया थे। वहां फीजीके किसी गिरमिटियेकी लड़कीसे शादी की होगी, इसलिए दोनों गिरमिटिये ही कहलायेंगे। मगर दोनोंने कैसी जिंदगी गुजारी !

(म० डा०, ६.५.३२)

. . . .

गंगादेवीका चेहरा अब भी मेरी आंखोंके सामने फिरा करता है, उनकी

बोलीकी भनक मेरे कानोंमें पड़ती है। उनके स्मरणोंकी याद करते अब भी मैं थका नहीं। उनके जीवनसे हम सबको और बहनोंको खासतौरसे बहुत सबक सीखने हैं। वह लगभग निरक्षर होनेपर भी ज्ञानी थीं। हवा, पानी बदलनेके लिए जाने लायक होने पर भी स्वेच्छासे जानेसे अंततक इन्कार करती रहनेवाली वह अकेली ही थीं। जो बच्चे उन्हें मिले, उनकी सम्हाल उन्होंने अपने बच्चे मानकर की। उन्होंने किसी दिन किसीके साथ तकरार की हो या किसीपर खफा हुई हों, इसकी जानकारी मुझे नहीं है। उनको जीनेका उल्लास न था, मरनेका भय न था। उन्होंने हँसते हुए मृत्युको गले लगाया। उन्होंने मरनेकी कला हस्तगत कर ली थी। जैसे जीनेकी कला है, वैसे ही मरनेकी भी कला है।

(य० म०, ३०.५.३२)

: ४८ :

लाला गंगाराम

एक मित्रके पत्रसे मुझे स्यालकोटके लाला गंगारामके स्वर्गवासकी खबर मिली है। वे ६० वर्षकी अवस्थामें गत ४ नवंबरको एकाएक दिलकी धड़कन बंद होनेसे परलोक सिधार गए। सन् १९१९में लाहौरमें स्वर्गीय रामभजदत्त चौधरीके मकान पर उनसे मिलनेका मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वे एक हरिजन-कार्यकर्त्ता थे। हरिजन-सेवाके अर्थ उन्होंने अपना जीवन अर्पण कर दिया था। उन्होंने हरिजनोंकी नई बस्तियां बसवाई थीं। हरिजन-कार्यको निश्चय ही उनके निधनसे हानि पहुंची है। स्वर्गीय लाला गंगारामके कुटुंब तथा उनके प्यारे हरिजनोंके प्रति मैं समवेदना प्रकट करता हूं। (ह० से०, ८.१२.३३)

: ४६ :

सर गंगाराम

मृत्युने सर श्रीगंगारामको क्या उठाया, हमारे बीचसे एक सुयोग्य और व्यवहारदक्ष खेतीशास्त्रके जानकारको, एक महान दाताको और विधवाओंके बंधुको, उठा लिया। सर गंगाराम यों तो वयोवृद्ध थे; किंतु उनमें उत्साह युवकोंका-सा था। उनकी आशावादिता भी उतनी ही प्रबल थी जितना कि उनका अपने विचारोंका आग्रह। इधर मुझे उनसे निकटका संबंध प्राप्त करनेका सुअवसर मिला था और यद्यपि हम अनेक बातोंमें एक-दूसरेसे भिन्न मत ही रखते थे तथापि मैंने देखा कि वे एक सच्चे सुधारक और महान कार्यकर्त्ता थे। और यद्यपि उनके अनुभव और वयोमानके कारण मैंने उनके विचारोंसे बार-बार आदरपूर्वक, किंतु दृढ़ विरोध प्रकट किया तथापि मेरे प्रति, जिसे वे अपनी तुलनामें कलका युवक समझते थे, उनका प्रेम तो बढ़ता ही जाता था। साथ-ही-साथ भारतकी दरिद्रताके विषयमें उनके कुछ विचित्र विचारोंसे मेरा विरोध भी। वे मेरे साथ लंबे वाद-विवाद करनेके लिए इतने उत्सुक थे तथा मुझे अपने विचारोंका कायल कर देनेकी उन्हें इतनी दृढ़ आशा थी कि उन्होंने उनके अपने खर्चेसे मुझे इंगलैंड चलनेतकके लिए आग्रह किया और मेरे दिमागसे सब पागलपनकी बातोंको निकाल देनेका विश्वास दिलाया। यद्यपि मैं उनकी इस बातको कबूल नहीं कर सका और यद्यपि उन्होंने तो उसे सच्चे दिलसे ही पेश किया था, तथापि उनके इंगलैंड जानेसे पहले उनसे मिलकर उन्हें चरखेका, जिसे वे केवल जला देने योग्य ही समझते थे, कायल कर देनेका मैंने वचन दिया था। अतः पाठक अनुमान कर सकते हैं कि उनकी अकस्मात मृत्युकी यह वार्ता सुनकर मुझे कितना दुःख हुआ होगा। पर यह तो ऐसी मृत्यु है, जिसे हम सब अपने लिए चाहेंगे;

क्योंकि वे इंगलैंड किसी आमोद-प्रमोदके लिए नहीं गए थे; बल्कि ऐसे कार्यके लिए गए थे, जिसे वे अपना अत्यन्त जरूरी कर्त्तव्य समझते थे। इसलिए वे तो कर्त्तव्य क्षेत्रहीमें मर गए। भारतको हर तरहसे इस बातका अभिमान है कि सर गंगारामके समान पुरुष उसके विख्यात सपूतोंमेंसे एक हैं। दिवंगत सुधारकके कुटुंबी जनोंको मैं अपने धन्यवाद और समवेदना साथ-साथ भेजता हूं। (हिं० न०, २१.७.२७)

: ५० :

कस्तूरबा गांधी

मैं जानता था कि बहनोंको जेल[१] भेजनेका काम बहुत खतरनाक था। फिनिक्समें रहनेवाली अधिकतर बहनें मेरी रिश्तेदार थीं, वे सिर्फ मेरे लिहाजके कारण ही जेल जानेका विचार करें और फिर ऐन मौकेपर घबराकर या जेलमें जानेके बाद उकताकर माफी वगैरह मांग लें तो मुझे सदमा पहुंचे। साथ ही, इसकी वजहसे लड़ाईके एकदम कमजोर पड़ जानेका डर भी था। मैंने तय किया था कि मैं अपनी पत्नीको तो हरगिज नहीं ललचाऊंगा। वह इन्कार भी नहीं कर सकती थीं और 'हां' कह दें तो उस 'हां'की भी कितनी कीमत की जाय, सो मैं कह नहीं सकता था। ऐसे जोखिमके काममें स्त्री स्वयं जो निश्चय करे, पुरुषको वही मान लेना चाहिए और कुछ भी न करे तो पतिको उसके बारेमें तनिक भी दुखी नहीं होना चाहिए, इतना मैं समझता था। इसलिए मैंने उनके साथ कुछ भी बात न करनेका इरादा कर रक्खा था। दूसरी बहनोंसे मैंने चर्चा की। वे

---

[१] दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहके संबंधमें।

जेल-यात्राके लिए तैयार हुईं। उन्होंने मुझे विश्वास दिलाया कि वे हर तरहका दुख सहकर भी अपनी जेल-यात्रा पूरी करेंगी। मेरी पत्नीने भी इन सब बातोंका सार जान लिया और मुझसे कहा,

"मुझसे इस बातकी चर्चा नहीं करते, इसका मुझे दुख है। मुझमें ऐसी क्या खामी है कि मैं जेल नहीं जा सकती। मुझे भी उसी रास्ते जाना है, जिस रास्ते जानेकी सलाह आप इन बहनोंको दे रहे हैं।"

मैंने कहा, "मैं तुम्हें दुख पहुंचा ही नहीं सकता। इसमें अविश्वासकी भी कोई बात नहीं। मुझे तो तुम्हारे जानेसे खुशी ही होगी; लेकिन तुम मेरे कहनेपर गई हो, इसका तो आभास तक मुझे अच्छा नहीं लगेगा। ऐसे काम सबको अपनी-अपनी हिम्मतसे ही करने चाहिए। मैं कहूं और मेरी बात रखनेके लिए तुम सहज ही चली जाओ और बादमें अदालत के सामने खड़ी होते ही कांप उठो और हार जाओ या जेलके दुखसे ऊब उठो तो इसे मैं अपना दोष तो नहीं मानूंगा, लेकिन सोचो कि मेरा क्या हाल होगा। मैं तुमको किस तरह रख सकूंगा और दुनियाके सामने किस तरह खड़ा रह सकूंगा। बस, इस भयके कारण ही मैंने तुम्हें ललचाया नहीं।"

मुझे जवाब मिला, "मैं हारकर छूट आऊं तो मुझे मत रखना। मेरे बच्चेतक सह सकें, आप सब सहन कर सकें और अकेली मैं ही न सह सकूं, ऐसा आप सोचते कैसे हैं? मुझे इस लड़ाईमें शामिल होना ही होगा।"

मैंने जवाब दिया, "तो मुझे तुमको शामिल करना ही होगा। मेरी शर्त तो तुम जानती ही हो। मेरे स्वभावसे भी तुम परिचित हो। अब भी विचार करना हो तो फिर विचार कर लेना और भलीभांति सोचनेके बाद तुम्हें यह लगे कि शामिल नहीं होना है तो समझना कि तुम इसके लिए आजाद हो। साथ ही, यह भी समझ लो कि निश्चय बदलनेमें अभी शरमकी कोई बात नहीं है।"

मुझे जवाब मिला, "मुझे विचार-विचार कुछ नहीं करना है। मेरा निश्चय ही है।" (द० अ० स०, १६२५)

. . . .

जिन दिनों मेरा विवाह हुआ, छोटे-छोटे निबंध—पैसे-पैसे या पाई-पाईके, सो याद नहीं पड़ता—छपा करते। इनमें दांपत्य प्रेम, मितव्ययता, बाल-विवाह इत्यादि विषयोंकी चर्चा रहा करती। इनमेंसे कोई-कोई निबंध मेरे हाथ पड़ता और उसे मैं पढ़ जाता। शुरूसे यह मेरी आदत रही कि जो बात पढ़नेमें अच्छी नहीं लगती उसे भूल जाता और जो अच्छी लगती उसके अनुसार आचरण करता। यह पढ़ा कि एक-पत्नी-व्रतका पालन करना पतिका धर्म है। बस, यह मेरे हृदयमें अंकित हो गया। सत्यकी लगन तो थी ही। इसलिए पत्नीको धोखा या भुलावा देनेका तो अवसर ही न था। और यह भी समझ चुका था कि दूसरी स्त्रीसे संबंध जोड़ना पाप है। फिर कोमल वयमें एक-पत्नी-व्रतके भंग होनेकी संभावना भी कम रहती है।

परंतु इन सद्विचारोंका एक बुरा परिणाम निकला। 'यदि मैं एक-पत्नी-व्रतका पालन करता हूं तो मेरी पत्नीको भी एक-पति-व्रतका पालन करना चाहिए।' इस विचारसे मैं असहिष्णु-ईर्ष्यालु पति बन गया। फिर 'पालन करना चाहिए'मेंसे 'पालन करवाना चाहिए' इस विचारतक जा पहुंचा और यदि पालन करवाना हो तो फिर मुझे पत्नीकी चौकीदारी करनी चाहिए। पत्नीकी पवित्रतापर तो संदेह करनेका कोई कारण न था; परंतु ईर्ष्या कहीं कारण देखने जाती है? मैंने कहा—"पत्नी हमेशा कहां-कहां जाती है, यह जानना मेरे लिए जरूरी है। मेरी इजाजत लिये बिना वह कहीं नहीं जा सकती।" मेरा यह भाव मेरे और उनके बीच दुःखद झगड़ेका मूल बन बैठा। बिना इजाजतके कहीं न जा पाना तो एक तरहकी कैद ही हो गई; परंतु कस्तूरबाई ऐसी मिट्टीकी न बनी थीं, जो ऐसी कैदको बरदाश्त करतीं। जहां जी चाहे, मुझसे बिना पूछे

जरूर चली जातीं। ज्यों-ज्यों मैं उन्हें दबाता त्यों-त्यों वह अधिक आजादी लेतीं और त्यों-ही-त्यों मैं और बिगड़ता। इस कारण हम बाल-दंपतीमें अबोला रहना एक मामूली बात हो गई। कस्तूरबाई जो आजादी लिया करतीं उसे मैं बिलकुल निर्दोष मानता हूं। एक बालिका, जिसके मनमें कोई बात नहीं है, देव-दर्शनको जानेके लिए अथवा किसीसे मिलने जानेके लिए क्यों ऐसा दबाव सहन करने लगी? 'यदि मैं उसपर दबाव रखूं तो फिर वह मुझपर क्यों न रखे?' पर यह बात तो अब समझमें आती है। उस समय तो मुझे पतिदेवकी सत्ता सिद्ध करनी थी।

इससे पाठक यह न समझें कि हमारे इस गार्हस्थ्य-जीवनमें कहीं मिठास थी ही नहीं। मेरी इस वक्रताका मूल था प्रेम—मैं अपनी पत्नीको आदर्श स्त्री बनाना चाहता था। मेरे मनमें एकमात्र यही भाव रहता था कि मेरी पत्नी स्वच्छ हो, स्वच्छ रहे, मैं सीखूं सो सीखे, मैं पढ़ूं सो पढ़े और हम दोनों एक-मन दो-तन बनकर रहें।

मुझे खयाल नहीं पड़ता कि कस्तूरबाईके भी मनमें ऐसा भाव रहा हो। वह निरक्षर थीं। स्वभाव उनका सरल और स्वतंत्र था। वह परिश्रमी भी थीं, पर मेरे साथ कम बोला करतीं। अपने अज्ञानपर उन्हें असंतोष न था। अपने बचपनमें मैंने कभी उनकी ऐसी इच्छा नहीं देखी कि 'वह पढ़ते हैं तो मैं भी पढ़ूं।' इससे मैं मानता हूं कि मेरी भावना इकतरफा थी। मेरा विषय-सुख एक ही स्त्रीपर अवलंबित था और मैं उस सुखकी प्रतिध्वनिकी आशा लगाये रहता था। अस्तु, प्रेम यदि एक-पक्षीय भी हो तो वहां सर्वांशमें दुःख नहीं हो सकता।

मुझे कहना चाहिए कि मैं अपनी पत्नीसे जहांतक संबंध है, विषयासक्त था। स्कूलमें भी उसका ध्यान आता और यह विचार मनमें चला ही करता था कि कब रात हो और कब हम मिलें। वियोग असह्य हो जाता था। कितनी ही ऊट-पटांग बातें कह-कहकर मैं कस्तूरबाईको देरतक सोने न देता। इस आसक्तिके साथ ही यदि मुझमें कर्त्तव्यपरायणता न

होती तो, मैं समझता हूं, या तो किसी बुरी बीमारीमें फंसकर अकाल ही कालकवलित हो जाता अथवा अपने और दुनियाके लिए भारभूत होकर वृथा जीवन व्यतीत करता होता। 'सुबह होते ही नित्यकर्म तो हर हालतमें करने चाहिए' 'झूठ तो बोल ही नहीं सकते', आदि अपने इन विचारोंकी बदौलत मैं अपने जीवनमें कई संकटोंसे बच गया हूं।

मैं ऊपर कह आया हूं कि कस्तूरबाई निरक्षर थीं। उन्हें पढ़ानेकी मुझे बड़ी चाह थी। पर मेरी विषय-वासना मुझे कैसे पढ़ाने देती? एक तो मुझे उनकी मर्जीके खिलाफ पढ़ाना था, फिर रातमें ही ऐसा मौका मिल सकता था। बुजुर्गोंके सामने तो पत्नीकी तरफ देखतक नहीं सकते, बात करना तो दूर रहा! उस समय काठियावाड़में घूंघट निकालनेका निरर्थक और जंगली रिवाज था, आज भी थोड़ा-बहुत बाकी है। इस कारण पढ़ानेके अवसर भी मेरे प्रतिकूल थे। इसलिए मुझे कहना होगा कि युवावस्थामें पढ़ानेकी जितनी कोशिशें मैंने कीं वे सब प्रायः बेकार गईं और जब मैं विषय-निद्रासे जगा तब तो सार्वजनिक जीवनमें पड़ चुका था। इस कारण अधिक समय देने योग्य मेरी स्थिति नहीं रह गई थी। शिक्षक रखकर पढ़ानेके मेरे यत्न भी विफल हुए। इसके फलस्वरूप आज कस्तूरबाई मामूली चिट्ठी-पत्री व गुजराती लिखने-पढ़नेसे अधिक साक्षर न होने पाईं। यदि मेरा प्रेम विषयसे दूषित न हुआ होता तो, मैं मानता हूं, आज वह विदुषी हो गई होतीं। उनके पढ़नेके आलस्यपर मैं विजय प्राप्त कर पाता; क्योंकि मैं जानता हूं कि शुद्ध प्रेमके लिए दुनियामें कोई बात असंभव नहीं।

इस तरह अपनी पत्नीके साथ विषय-रत रहते हुए भी मैं कैसे बहुत कुछ बच गया, इसका एक कारण मैंने ऊपर बताया। इस सिलसिलेमें एक और बात कहने जैसी है। सैकड़ों अनुभवोंसे मैंने यह निचोड़ निकाला है कि जिसकी निष्ठा सच्ची है, उसे खुद परमेश्वर ही बचा लेता है। हिंदू-संसारमें जहां बाल-विवाहकी घातक प्रथा है वहां उसके साथ ही

उसमेंसे कुछ मुक्ति दिलानेवाला भी एक रिवाज है। बालक वर-वधूको मां-बाप बहुत समयतक एक साथ नहीं रहने देते। बाल-पत्नीका आधेसे ज्यादा समय मायकेमें जाता है। हमारे साथ भी ऐसा ही हुआ। अर्थात् हम १३ और १८ सालकी उम्रके दरमियान थोड़ा-थोड़ा करके तीन सालसे अधिक साथ न रह सके होंगे। छः-आठ महीने रहना हुआ नहीं कि पत्नीके मां-बापका बुलावा आया नहीं। उस समय तो वे बुलावे बड़े नागवार मालूम होते; परंतु सच पूछिए तो उन्हींकी बदौलत हम दोनों बहुत बच गए। फिर १८ सालकी अवस्थामें मैं विलायत गया, लंबे और सुंदर वियोगका अवसर आया। विलायतसे लौटनेपर भी हम एक साथ तो छः महीने मुश्किलसे रहे होंगे, क्योंकि मुझे राजकोट-बंबई बार-बार आना-जाना पड़ता था। फिर इतनेमें ही दक्षिण अफ्रीकाका निमंत्रण आ पहुंचा, और इस बीच तो मेरी आंखें बहुत-कुछ खुल भी चुकी थीं।

विलायत जाते समय जो वियोग-दुःख हुआ था, वह दक्षिण अफ्रीका जाते हुए न हुआ; क्योंकि माताजी तो चल बसी थीं और मुझे दुनियाका और सफरका अनुभव भी बहुत-कुछ हो गया था। राजकोट और बंबई तो आया-जाया करता ही था। इस कारण अबकी बार सिर्फ पत्नीका ही वियोग दुःखद था। विलायतसे आनेके बाद दूसरे एक बालकका जन्म हो गया था। हम दंपतीके प्रेममें अभी विषय-भोगका अंश तो था ही। फिर भी उसमें निर्मलता आने लगी थी। मेरे विलायतसे लौटनेके बाद हम बहुत थोड़ा समय एक साथ रहे थे और मैं ऐसा-वैसा ही क्यों न हो, उसका शिक्षक बन चुका था। इधर पत्नीकी बहुतेरी बातोंमें बहुत-कुछ सुधार करा चुका था और उन्हें कायम रखनेके लिए भी साथ रहनेकी आवश्यकता हम दोनोंको मालूम होती थी। परंतु अफ्रीका मुझे आकर्षित कर रहा था। उसने इस वियोगको सहन करनेकी शक्ति दे दी थी। 'एक सालके बाद तो हम मिलेंगे ही'—कहकर और दिलासा देकर मैंने राजकोट छोड़ा और बंबई पहुंचा।

लड़ाईके कामसे मुक्त होनेके बाद मैंने सोचा कि अब मेरा काम दक्षिण अफ्रीकामें नहीं, बल्कि देशमें है। दक्षिण अफ्रीकामें बैठे-बैठे मैं कुछ-न-कुछ सेवा तो जरूर कर पाता था, परंतु मैंने देखा कि यहां कहीं मेरा मुख्य काम धन कमाना ही न हो जाय।

देशसे मित्र लोग भी देश लौट आनेको आकर्षित कर रहे थे। मुझे भी जंचा कि देश जानेसे मेरा अधिक उपयोग हो सकेगा। नेटालमें मि० खान और मनसुखलाल नाजर थे ही।

मैंने साथियोंसे छुट्टी देनेका अनुरोध किया। बड़ी मुश्किलसे उन्होंने एक शर्तपर छुट्टी स्वीकार की। वह यह कि एक सालके अंदर लोगोंको मेरी जरूरत मालूम हो तो मैं फिर दक्षिण अफ्रीका आ जाऊंगा। मुझे यह शर्त कठिन मालूम हुई, परंतु मैं तो प्रेम-पाशमें बंधा हुआ था।

काचे रे तांतणे मने हरजीए बांधी
जेम ताणे तेम तेमरी रे
मने लागी कटारी प्रेमनी।[1]

मीराबाईकी यह उपमा न्यूनाधिक अंशमें मुझपर घटित होती थी। पंच भी परमेश्वर ही है। मित्रोंकी बातको टाल नहीं सकता था। मैंने वचन दिया। इजाजत मिली।

इस समय मेरा निकट-संबंध प्रायः नेटालके ही साथ था। नेटालके हिंदुस्तानियोंने मुझे प्रेमामृतसे नहला डाला। स्थान-स्थानपर अभिनंदन पत्र दिए गए और हरएक जगहसे कीमती चीजें नजर की गईं।

१८९६में जब मैं देश आया था तब भी भेंटें मिली थीं; पर इस बारकी भेंटों और सभाओंके दृश्योंसे मैं घबराया। भेंटमें सोने-चांदीकी चीजें तो थीं ही; पर हीरेकी चीजें भी थीं।

---

[1] प्रभुजीने मुझे कच्चे सूतके प्रेम-धागेसे बांध लिया है। ज्यों-ज्यों वह उसे तानते हैं त्यों-त्यों मैं उनकी होती जाती हूं।

इन सब चीजोंको स्वीकार करनेका मुझे क्या अधिकार हो सकता है ? यदि मैं इन्हें मंजूर कर लूं तो फिर अपने मनको यह कहकर कैसे मना सकता हूं कि मैं पैसा लेकर लोगोंकी सेवा नहीं करता था ? मेरे मवक्किलोंकी कुछ रकमोंको छोड़कर बाकी सब चीजें मेरी लोक-सेवाके ही उपलक्ष्यमें दी गई थीं। पर मेरे मनमें तो मवक्किल और दूसरे साथियोंमें कुछ भेद न था। मुख्य-मुख्य मवक्किल सब सार्वजनिक काममें भी सहायता देते थे।

फिर उन भेंटोंमें एक पचास गिनीका हार कस्तूरबाईके लिए था। मगर उसे जो चीज मिली वह भी थी तो मेरी ही सेवाके उपलक्ष्यमें। अतएव उसे पृथक् नहीं मान सकते थे।

जिस शामको इनमेंसे मुख्य-मुख्य भेंटें मिलीं, वह रात मैंने एक पागल की तरह जागकर काटी। कमरेमें यहां-से-वहां टहलता रहा; परंतु गुत्थी किसी तरह सुलझती न थी। सैकड़ों रुपयोंकी भेंटें न लेना भारी पड़ रहा था; पर ले लेना उससे भी भारी मालूम होता था।

मैं चाहे इन भेंटोंको पचा भी सकता; पर मेरे बालक और पत्नी ? उन्हें तालीम तो सेवाकी मिल रही थी। सेवाका दाम नहीं लिया जा सकता था, यह हमेशा समझाया जाता था। घरमें कीमती जेवर आदि मैं नहीं रखता था। सादगी बढ़ती जाती थी। ऐसी अवस्थामें सोनेकी घड़ियां कौन रखेगा ? सोनेकी कंठी और हीरेकी अंगूठियां कौन पहनेगा ? गहनोंका मोह छोड़नेके लिए मैं उस समय भी औरोंसे कहता रहता था। अब इन गहनों और जवाहरातको लेकर मैं क्या करूंगा ?

मैं इस निर्णयपर पहुंचा कि ये चीजें मैं हरगिज नहीं रख सकता। पारसी रुस्तमजी इत्यादिको इन गहनोंका ट्रस्टी बनाकर उनके नाम एक चिट्ठी तैयार की और सुबह स्त्री-पुत्रादिसे सलाह करके अपना बोझ हल्का करनेका निश्चय किया।

मैं जानता था कि धर्मपत्नीको समझाना मुश्किल पड़ेगा। मुझे

विश्वास था कि बालकोंको समझानेमें जरा भी दिक्कत पेश न आवेगी। अतः उन्हें वकील बनानेका विचार किया।

बच्चे तो तुरंत समझ गए। वे बोले, "हमें इन गहनोंसे कुछ मतलब नहीं। ये सब चीजें हमें लौटा देनी चाहिए और यदि जरूरत होगी तो क्या हम खुद नहीं बना सकेंगे ?"

मैं प्रसन्न हुआ। "तो तुम बाको समझाओगे न ?" मैंने पूछा।

"जरूर-जरूर। वह कहां इन गहनोंको पहनने चली हैं! वह रखना चाहेंगी भी तो हमारे ही लिए न ? पर जब हमें ही इनकी जरूरत नहीं है तब फिर वह क्यों जिद करने लगीं ?"

परंतु काम अंदाजसे ज्यादा मुश्किल साबित हुआ।

"तुम्हें चाहे जरूरत न हो और लड़कोंको भी न हो। बच्चोंका क्या ? जैसा समझा दें समझ जाते हैं। मुझे न पहनने दो; पर मेरी बहुओंको तो जरूरत होगी। और कौन कह सकता है कि कल क्या होगा ? जो चीजें लोगोंने इतने प्रेमसे दी हैं उन्हें वापस लौटाना ठीक नहीं।" इस प्रकार वाग्धारा शुरू हुई और उसके साथ अश्रु-धारा आ मिली। लड़के दृढ़ रहे और मैं भला क्यों डिगने लगा ?

मैंने धीरेसे कहा—"पहले लड़कोंकी शादी तो हो लेने दो। हम बचपनमें तो इनके विवाह करना चाहते ही नहीं हैं। बड़े होनेपर जो इनका जी चाहे सो करें। फिर हमें क्या गहनों-कपड़ोंकी शौकीन बहुएं खोजनी हैं ? फिर भी अगर कुछ बनवाना ही होगा तो मैं कहां चला गया हूं ?"

"हां, जानती हूं तुमको। वही न हो, जिन्होंने मेरे भी गहने उतरवा लिए हैं! जब मुझे ही नहीं पहनने देते हो तो मेरी बहुओंको जरूर ला दोगे! लड़कोंको तो अभीसे वैरागी बना रहे हो! इन गहनोंको मैं वापस नहीं देने दूंगी और फिर मेरे हारपर तुम्हारा क्या हक है ?"

"पर यह हार तुम्हारी सेवाकी खातिर मिला है या मेरी ?" मैंने पूछा।

"जैसा भी हो तुम्हारी सेवामें क्या मेरी सेवा नहीं है ? मुझसे जो रात-दिन मजूरी कराते हो, क्या वह सेवा नहीं है ? मुझे रुला-रुलाकर जो ऐरे-गैरोंको घरमें रखा और मुझसे सेवा-टहल कराई, वह कुछ भी नहीं ?"

ये सब वाण तीखे थे। कितने ही तो मुझे चुभ रहे थे। पर गहने वापस लौटानेका मैं निश्चय कर चुका था। अंतको वहुतेरी बातोंमें मैं जैसे-तैसे सम्मति प्राप्त कर सका। १८९६ और १६०१में मिली भेंटें लौटाईं। उनका ट्रस्ट बनाया गया और लोक-सेवाके लिए उसका उपयोग मेरी अथवा ट्रस्टियोंकी इच्छाके अनुसार होनेकी शर्तपर वह रकम बैंकमें रखी गई। इन चीजोंको बेचनेके निमित्तसे मैं वहुत बार रुपया एकत्र कर सका हूं। आपत्ति-कोषके रूपमें वह रकम आज भी मौजूद है और उसमें वृद्धि होती जाती है।

इस बातके लिए मुझे कभी पश्चात्ताप नहीं हुआ। आगे चलकर कस्तूरबाईको भी उसका और औचित्य जंचने लगा। इस तरह हम अपने जीवनमें बहुतेरे लालचोंसे बच गए हैं।

मेरा यह निश्चित मत हो गया है लोक-सेवकको जो भेंट मिलती हैं, वे उसकी निजी चीज़ कदापि नहीं हो सकतीं।

मेरे जीवनमें ऐसी अनेक घटनाएं होती रही हैं, जिनके कारण मैं विविध धर्मों तथा जातियोंके निकट परिचयमें आ सका हूं। इन सब अनुभवोंपर यह कह सकते हैं कि मैंने घरके या बाहरके, देशी या विदेशी हिंदू या मुसलमान तथा ईसाई, पारसी या यहूदियोंसे भेद-भावका खयाल तक नहीं किया। मैं कह सकता हूं कि मेरा हृदय इस प्रकारके भेद-भावको जानता ही नहीं। इसको मैं अपना एक गुण नहीं मानता हूं, क्योंकि जिस प्रकार अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रहादि यम-नियमोंके अभ्यासका

तथा उनके लिए अब भी प्रयत्न करते रहनेका पूर्ण ज्ञान मुझे है उसी प्रकार इस अ-भेद-भावको बढ़ानेके लिए मैंने कोई खास प्रयत्न किया है, ऐसा याद नहीं पड़ता।

जिस समय डरबनमें मैं वकालत करता था, उस समय बहुत बार मेरे कारकुन मेरे साथ ही रहते थे। वे हिंदू और ईसाई होते थे, अथवा प्रांतोंके हिसाबसे कहें तो गुजराती और मद्रासी। मुझे याद नहीं आता कि कभी उनके विषयमें मेरे मनमें भेद-भाव पैदा हुआ हो। मैं उन्हें बिलकुल घरके ही जैसा समझता और उसमें मेरी धर्मपत्नीकी ओरसे यदि कोई विघ्न उपस्थित होता तो मैं उससे लड़ता था। मेरा एक कारकुन ईसाई था। उसके मां-बाप पंचम जातिके थे। हमारे घरकी बनावट पश्चिमी ढंगकी थी। इस कारण कमरेमें मोरी नहीं होती थी—और न होनी चाहिए थी, ऐसा मेरा मत है। इस कारण कमरोंमें मोरियोंकी जगह पेशाबके लिए एक अलग बर्तन होता था। उसे उठाकर रखनेका काम हम दोनों—दंपतीका था, नौकरोंका नहीं। हां, जो कारकुन लोग अपनेको हमारा कुटुंबी-सा मानने लगते थे वे तो खुद ही उसे साफ कर भी डालते थे, लेकिन पंचम जातिमें जन्मा यह कारकुन नया था। उसका बर्तन हमें ही उठाकर साफ करना चाहिए था, दूसरे बर्तन तो कस्तूरबाई उठाकर साफ कर देतीं, लेकिन इन भाईका बर्तन उठाना उसे असह्य मालूम हुआ। इससे हम दोनोंमें झगड़ा मचा। यदि मैं उठाता हूं तो उसे अच्छा नहीं मालूम होता था और खुद उसके लिए उठाना कठिन था। फिर भी आंखोंसे मोतीकी बूंदें टपक रही हैं, एक हाथ में बर्तन लिये अपनी लाल-लाल आंखोंसे उलहना देती हुई कस्तूरबाई सीढ़ियोंसे उतर रही हैं। वह चित्र मैं आज भी ज्यों-का-त्यों खींच सकता हूं।

परंतु मैं जैसा सहृदय और प्रेमी पति था वैसा ही निष्ठुर और कठोर भी था। मैं अपनेको उसका शिक्षक मानता था। इससे अपने अंधप्रेमके अधीन हो मैं उसे खूब सताता था। इस कारण महज उसके बर्तन उठा

ले जाने-भरसे मुझे संतोष न हुआ। मैंने यह भी चाहा कि वह हँसते और हरखते हुए उसे ले जाय। इसलिए मैंने उसे डांटा-डपटा भी। मैंने उत्तेजित होकर कहा—"देखो, यह बखेड़ा मेरे घरमें नहीं चल सकेगा।"

मेरा यह बोल कस्तूरबाईको तीरकी तरह लगा। उसने धधकते दिलसे कहा—"तो लो, रखो यह अपना घर! मैं चली!"

उस समय मैं ईश्वरको भूल गया था। दयाका लेशमात्र मेरे हृदयमें न रह गया था। मैंने उसका हाथ पकड़ा। सीढ़ीके सामने ही बाहर जानेका दरवाजा था। मैं उस दीन अबलाका हाथ पकड़कर दरवाजेतक खींचकर ले गया। दरवाजा आधा खोला होगा कि आंखोंमें गंगा-जमुना बहाती हुई कस्तूरबाई बोलीं, "तुम्हें तो कुछ शरम है नहीं; पर मुझे है। जरा तो लजाओ। मैं बाहर निकलकर आखिर जाऊँ कहां? मां-बाप भी यहां नहीं कि उनके पास चली जाऊँ। मैं ठहरी स्त्री-जाति! इसलिए मुझे तुम्हारी धौंस सहनी ही पड़ेगी। अब जरा शरम करो और दरवाजा बंद कर लो। कोई देख लेगा तो दोनोंकी फजीहत होगी।"

मैंने अपना चेहरा तो सुर्ख बनाये रखा; पर मनमें शरमा जरूर गया। दरवाजा बंद कर दिया। जबकि पत्नी मुझे छोड़ नहीं सकती थी तब मैं भी उसे छोड़कर कहां जा सकता था? इस तरह हमारे आपसमें लड़ाई-झगड़े कई बार हुए हैं; परंतु उनका परिणाम सदा अच्छा ही निकला है। उनमें पत्नीने अपनी अद्भुत सहनशीलताके द्वारा मुझपर विजय प्राप्त की है।

ये घटनाएं हमारे पूर्व-युगकी हैं, इसलिए उनका वर्णन मैं आज अलिप्त-भावसे करता हूं। आज मैं तबकी तरह मोहांध पति नहीं हूं, न उसका शिक्षक ही हूं। यदि चाहें तो कस्तूरबाई आज मुझे धमका सकती हैं। हम आज एक-दूसरेके भुक्त-भोगी मित्र हैं, एक-दूसरेके प्रति

निर्विकार रहकर जीवन बिता रहे हैं। कस्तूरबाई आज ऐसी सेविका बन गई हैं, जो मेरी बीमारियोंमें बिना प्रतिफलकी इच्छा किये सेवा-शुश्रूषा करती हैं।

यह घटना १८९८की है। उस समय मुझे ब्रह्मचर्य-पालनके विषयमें कुछ ज्ञान न था। वह समय ऐसा था जबकि मुझे इस बातका स्पष्ट ज्ञान न था कि पत्नी तो केवल सहधर्मिणी, सहचारिणी और सुख-दुःखकी साथिन है। मैं यह समझकर बर्ताव करता था कि पत्नी विषय-भोगकी भाजन है, उसका जन्म पतिकी हर तरहकी आज्ञाओंका पालन करनेके लिए हुआ है।

किंतु १९०० ई०से मेरे इन विचारोंमें गहरा परिवर्तन हुआ। १९०६में उसका परिणाम प्रकट हुआ; परंतु इसका वर्णन आगे प्रसंग आनेपर होगा। यहां तो सिर्फ इतना बताना काफी है कि ज्यों-ज्यों मैं निर्विकार होता गया त्यों-त्यों मेरा घर-संसार शांत, निर्मल और सुखी होता गया और अब भी होता जाता है।

इस पुण्य-स्मरणसे कोई यह न समझ लें कि हम आदर्श दंपती हैं, अथवा मेरी धर्म-पत्नीमें किसी किस्मका दोष नहीं है, अथवा हमारे आदर्श अब एक हो गए हैं। कस्तूरबाई अपना स्वतंत्र आदर्श रखती हैं या नहीं, यह तो वह बेचारी खुद भी शायद न जानती होंगी। बहुत संभव है कि मेरे आचरणकी बहुतेरी बातें उसे अब भी पसंद न आती हों; परंतु अब हम उनके बारेमें एक-दूसरेसे चर्चा नहीं करते, करनेमें कुछ सार भी नहीं है। उसे न तो उसके मां-बापने शिक्षा दी है, न मैं ही, जब समय था, शिक्षा दे सका; परंतु उसमें एक गुण बहुत बड़े परिमाण में है, जो दूसरी कितनी ही हिंदू-स्त्रियोंमें थोड़ी-बहुत मात्रामें पाया जाता है। मनसे हो या बे-मनसे, जानमें हो या अनजानमें, मेरे पीछे-पीछे चलनेमें उसने अपने जीवनकी सार्थकता मानी है और स्वच्छ जीवन बितानेके मेरे प्रयत्नमें उसने कभी बाधा नहीं डाली। इस कारण यद्यपि हम दोनोंकी बुद्धि-

शक्तिमें बहुत अंतर है, फिर भी मेरा खयाल है कि हमारा जीवन संतोषी, सुखी और ऊर्ध्वगामी है।

कस्तूरबाईपर तीन घातें हुईं और तीनोंमें वह महज घरेलू इलाजसे बच गईं। पहली घटना तो तबकी है जब सत्याग्रह-संग्राम चल रहा था उसको बार-बार रक्त-स्राव हुआ करता था। एक डाक्टर मित्रने नश्तर लगवानेकी सलाह दी थी। बड़ी आनाकानीके बाद वह नश्तरके लिए राजी हुई। शरीर बहुत क्षीण हो गया था। डाक्टरने बिना बेहोश किये ही नश्तर लगाया। उस समय उसे दर्द तो बहुत हो रहा था; पर जिस धीरजसे कस्तूरबाईने उसे सहन किया उसे देखकर मैं दांतों तले अंगुली देने लगा। नश्तर अच्छी तरह लग गया। डाक्टर और उसकी धर्मपत्नीने कस्तूरबाईकी बहुत अच्छी तरह शुश्रूषा की।

यह घटना डरबनकी है। दो या तीन दिन बाद डाक्टरने मुझे निश्चिंत होकर जोहान्सबर्ग जानेकी छुट्टी दे दी। मैं चला भी गया; पर थोड़े ही दिनमें समाचार मिले कि कस्तूरबाईका शरीर बिलकुल सिमटता नहीं है और वह बिछौनेसे उठ-बैठ भी नहीं सकती। एक बार बेहोश भी हो गई थीं। डाक्टर जानते थे कि मुझसे पूछे बिना कस्तूरबाईको शराब या मांस—दवामें अथवा भोजनमें—नहीं दिया जा सकता था। सो उन्होंने मुझे जोहान्सबर्ग टेलीफोन किया, "आपकी पत्नीको मैं मांसका शोरबा और 'बीफ टी' देनेकी जरूरत समझता हूं। मुझे इजाजत दीजिए।"

मैंने जवाब दिया, "मैं तो इजाजत नहीं दे सकता। परंतु कस्तूरबाई आजाद है। उसकी हालत पूछने लायक हो तो पूछ देखिए और वह लेना चाहे तो जरूर दीजिए।"

"बीमारसे मैं ऐसी बातें नहीं पूछना चाहता। आप खुद यहां आ जाइए। जो चीजें मैं बताता हूं उनके खानेकी इजाजत यदि आप न दें तो मैं आपकी पत्नीकी जिंदगीके लिए जिम्मेदार नहीं हूं।"

यह सुनकर मैं उसी दिन डरबन रवाना हुआ। डाक्टरसे मिलनेपर उन्होंने कहा—"मैंने तो शोरबा पिलाकर आपको टेलीफोन किया था।"

मैंने कहा—"डाक्टर, यह तो विश्वासघात है।"

"इलाज करते वक्त मैं दगा-वगा कुछ नहीं समझता। हम डाक्टर लोग ऐसे समय बीमारको व उसके रिश्तेदारोंको धोखा देना पुण्य समझते हैं। हमारा धर्म तो है, जिस तरह हो सके रोगीको बचाना।" डाक्टरने दृढ़ता-पूर्वक उत्तर दिया।

यह सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ; पर मैंने शांति धारण की। डाक्टर मित्र थे, सज्जन थे। उनका और उनकी पत्नीका मुझपर बड़ा अहसान था। पर मैं उनके इस व्यवहारको बरदाश्त करनेके लिए तैयार न था।

"डाक्टर, अब साफ-साफ बातें कर लीजिए। बताइए, आप क्या करना चाहते हैं? अपनी पत्नीको बिना उसकी इच्छाके मांस नहीं देने दूंगा। उसके न लेनेसे यदि वह मरती हो तो इसे सहन करने के लिए मैं तैयार हूं।"

डाक्टर बोले, "आपका यह सिद्धांत मेरे घर नहीं चल सकता। मैं तो आपसे कहता हूं कि आपकी पत्नी जबतक मेरे यहां हैं तबतक मैं मांस, अथवा जो कुछ देना मुनासिब समझूंगा, जरूर दूंगा। अगर आपको यह मंजूर नहीं है तो आप अपनी पत्नीको यहांसे ले जाइए। अपने ही घरमें मैं इस तरह उन्हें नहीं मरने दूंगा।"

"तो क्या आपका यह मतलब है कि मैं पत्नीको अभी ले जाऊं?"

"मैं कहां कहता हूं कि ले जाओ? मैं तो यह कहता हूं कि मुझपर कोई शर्त न लादो तो हम दोनोंसे इनकी जितनी सेवा हो सकेगी करेंगे और आप सो जाइए। जो यह सीधी-सी बात समझमें न आती हो तो मुझे मजबूरीसे कहना होगा कि आप अपनी पत्नीको मेरे घरसे ले जाइए।"

मेरा खयाल है कि मेरा लड़का उस समय मेरे साथ था। उससे

मैंने पूछा तो उसने कहा—"हां, आपका कहना ठीक है। बाको मांस कैसे दे सकते हैं?"

फिर मैं कस्तूरबाईके पास गया। वह बहुत कमजोर हो गई थीं। उससे कुछ भी पूछना मेरे लिए दुखदाई था। पर अपना धर्म समझकर मैंने ऊपरकी बातचीत उसे थोड़ेमें समझा दी। उसने दृढ़तापूर्वक जवाब दिया—"मैं मांसका शोरबा नहीं लूंगी। यह मनुष्य-देह बार-बार नहीं मिला करती। आपकी गोदीमें मैं मर जाऊं तो परवाह नहीं; पर अपनी देहको मैं भ्रष्ट नहीं होने दूंगी।"

मैंने उसे बहुतेरा समझाया और कहा कि तुम मेरे विचारोंके अनुसार चलनेके लिए बाध्य नहीं हो। मैंने उसे यह भी बता दिया कि कितने ही अपने परिचित हिंदू भी दवाके लिए शराब और मांस लेनेमें परहेज नहीं करते। पर वह अपनी बातसे बिलकुल न डिगी और मुझसे कहा—"मुझे यहांसे ले चलो।"

यह देखकर मैं बड़ा खुश हुआ; किन्तु ले जाते हुए बड़ी चिंता हुई। पर मैंने तो निश्चय कर ही डाला और डाक्टरको भी पत्नीका निश्चय सुना दिया।

वह बिगड़कर बोले, "आप तो बड़े घातक पति मालूम होते हैं। ऐसी नाजुक हालतमें उस बेचारीसे ऐसी बात करते हुए आपको शरम नहीं मालूम हुई? मैं कहता हूं कि आपकी पत्नीकी हालत यहांसे ले जाने लायक नहीं है। उनके शरीरकी हालत ऐसी नहीं है कि जरा भी धक्का सहन कर सके। रास्ते हीमें दम निकल जाय तो ताज्जुब नहीं! फिर भी आप हठ-धर्मीसे न मानें तो आप जानें! यदि शोरबा न देने दें तो एक रात भी उन्हें अपने घरमें रखनेकी जोखिम मैं नहीं लेता।"

रिमझिम-रिमझिम मेंह बरस रहा था। स्टेशन दूर न था। डरबनसे फिनिक्सतक रेलके रास्ते और फिनिक्ससे लगभग ढाई मीलतक पैदल जाना था। खतरा पूरा-पूरा था। पर मैंने यही सोच लिया कि

ईश्वर सब तरह मदद करेगा। पहले एक आदमीको फिनिक्स भेज दिया। फिनिक्समें हमारे यहां एक हैमक था। हैमक कहते हैं जालीदार कपड़ेकी झोली अथवा पालनेको। उसके सिरोंको बांससे बांध देनेपर बीमार उसमें आरामसे झूला करता है। मैंने वेस्टको कहलाया कि वह हैमक, एक बोतल गरम दूध, एक बोतल गरम पानी और छः आदमियोंको लेकर फिनिक्स स्टेशनपर आ जाय।

जब दूसरी ट्रेन चलनेका समय हुआ तब मैंने रिक्शा मंगाई और उस भयंकर स्थितिमें पत्नीको लेकर चल दिया।

पत्नीको हिम्मत दिलानेकी मुझे जरूरत न पड़ी, उल्टा मुझीको हिम्मत दिलाते हुए उसने कहा, "मुझे कुछ नुकसान न होगा, आप चिंता न करें।"

इस ठठरीमें वजन तो कुछ रही नहीं गया था। खाना पेटमें जाता ही न था। ट्रेनके डब्बेतक पहुंचनेके लिए स्टेशनके लंबे-चौड़े प्लेटफार्मपर दूरतक चलकर जाना था; क्योंकि रिक्शा वहांतक पहुंच नहीं सकती थी। मैं सहारा देकर डब्बेतक ले गया। फिनिक्स स्टेशन पर तो वह झोली आ गई थी। उसमें हम रोगीको आरामसे घरतक ले गए। वहां केवल पानीके उपचारसे धीरे-धीरे उसका शरीर बनने लगा। फिनिक्स पहुंचनेके दो-तीन दिन बाद एक स्वामीजी हमारे यहां पधारे। जब हमारी हठ-धर्मीकी कथा उन्होंने सुनी तो हमपर उनको बड़ा तरस आया और वह हम दोनोंको समझाने लगे।

मुझे जहांतक याद आता है, मणिलाल और रामदास भी उस समय मौजूद थे। स्वामीजीने मांसाहारकी निर्दोषतापर एक व्याख्यान झाड़ा; मनुस्मृतिके श्लोक सुनाए। पत्नीके सामने जो इसकी बहस उन्होंने छेड़ी यह मुझे अच्छा न मालूम हुआ; परंतु शिष्टाचारकी खातिर मैंने उसमें दखल न दिया। मुझे मांसाहारके समर्थनमें मनुस्मृतिके प्रमाणोंकी आवश्यकता न थी। उनका पता मुझे था। मैं यह भी जानता था कि ऐसे लोग

भी हैं जो उन्हें प्रक्षिप्त समझते हैं। यदि वे प्रक्षिप्त न हों तो भी अन्नाहार-संबंधी मेरे विचार स्वतंत्र-रूपसे बन चुके थे। पर कस्तूरबाईकी तो श्रद्धा ही काम कर रही थी। वह बेचारी शास्त्रोंके प्रमाणोंको क्या जानती? उसके नजदीक तो परंपरागत रूढ़ि ही धर्म था। लड़कोंको अपने पिताके धर्मपर विश्वास था, इससे वे स्वामीजीके साथ विनोद करते जाते थे। अंतको कस्तूरबाईने यह कहकर इस बहसको बंद कर दिया, "स्वामीजी, आप कुछ भी कहिए, मैं मांसका शोरबा खाकर चंगी होना नहीं चाहती। अब बड़ी दया होगी, अगर आप मेरा सिर न खपावें। मैंने तो अपना निश्चय आपसे कह दिया। अब और बातें रह गई हों तो आप इन लड़कोंके बापसे जाकर कीजिएगा।"

नश्तर लगानेके बाद यद्यपि कस्तूरबाईका रक्त-स्राव कुछ समयके लिए बंद हो गया था, तथापि बादको वह फिर जारी हो गया। अबकी वह किसी तरह मिटाये न मिटा। पानीके इलाज बेकार साबित हुए। मेरे इन उपचारोंपर पत्नीकी बहुत श्रद्धा न थी; पर साथ ही तिरस्कार भी न था। दूसरा इलाज करनेका भी उसे आग्रह न था। इसलिए जब मेरे दूसरे उपचारोंमें सफलता न मिली तब मैंने उसको समझाया कि दाल और नमक छोड़ दो। मैंने उसे समझानेकी हद कर दी, अपनी बातके समर्थनमें कुछ साहित्य भी पढ़कर सुनाया, पर वह नहीं मानती थी। अंतको उसने झुंझलाकर कहा—"दाल और नमक छोड़नेके लिए तो आपसे भी कोई कहे तो आप भी न छोड़ेंगे।"

इस जवाबको सुनकर, एक ओर जहां मुझे दुःख हुआ वहां दूसरी ओर हर्ष भी हुआ; क्योंकि इससे मुझे अपने प्रेमका परिचय देनेका अवसर मिला। उस हर्षसे मैंने तुरंत कहा, "तुम्हारा खयाल गलत है, मैं यदि बीमार होऊं और मुझे यदि वैद्य इन चीजोंको छोड़ने के लिए कहें तो जरूर छोड़ दूं। पर ऐसा क्यों? लो, तुम्हारे लिए मैं आज ही से दाल और नमक एक साल तक छोड़े देता हूँ। तुम छोड़ो या न छोड़ो, मैंने तो छोड़ दिया।"

यह देखकर पत्नीको बड़ा पश्चात्ताप हुआ। वह कह उठी, "माफ करो, आपका मिजाज जानते हुए भी यह बात मेरे मुंहसे निकल गई। अब मैं तो दाल और नमक न खाऊंगी, पर आप अपना वचन वापस ले लीजिए। यह तो मुझे भारी सजा दे दी।"

मैंने कहा, "तुम दाल और नमक छोड़ दो तो बहुत ही अच्छा होगा। मुझे विश्वास है कि उससे तुम्हें लाभ ही होगा, परंतु मैं जो प्रतिज्ञा कर चुका हूं वह नहीं टूट सकती। मुझे भी उससे लाभ ही होगा। हर किसी निमित्तसे मनुष्य यदि संयमका पालन करता है तो इससे उसे लाभ ही होता है। इसलिए तुम इस बातपर जोर न दो; क्योंकि इससे मुझे भी अपनी आजमाइश कर लेनेका मौका मिलेगा और तुमने जो इनको छोड़नेका निश्चय किया है, उसपर दृढ़ रहनेमें भी तुम्हें मदद मिलेगी।" इतना कहनेके बाद तो मुझे मनानेकी आवश्यकता रह नहीं गई थी।

"आप तो बड़े हठी हैं, किसीका कहा मानना आपने सीखा ही नहीं।" यह कहकर वह आंसू बहाती हुई चुप हो रही।

इसको मैं पाठकोंके सामने सत्याग्रहके तौरपर पेश करना चाहता हूं और मैं कहना चाहता हूं कि मैं इसे अपने जीवनकी मीठी स्मृतियोंमें गिनता हूं।

इसके बाद तो कस्तूरबाईका स्वास्थ्य खूब सम्हलने लगा। अब यह नमक और दालके त्यागका फल है, या उस त्यागसे हुए भोजनके छोटे-बड़े परिवर्तनोंका फल था, या उसके बाद दूसरे नियमोंका पालन करानेकी मेरी जागरूकताका फल था, या इस घटनाके कारण जो मानसिक उल्लास हुआ उसका फल था, यह मैं नहीं कह सकता; परंतु यह बात जरूर हुई कि कस्तूरबाईका सूखा शरीर फिर पनपने लगा। रक्त-स्राव बंद हो गया और 'वैद्यराज' के नामसे मेरी साख कुछ बढ़ गई (आ०, १९२७)

. . . .

कल एक आदमीने भूलसे उन्हें (बाको) मेरी मां समझ लिया था।

यह भूल हमारे और उनके बीच न सिर्फ क्षम्य ही है, वलिक तारीफकी बात है; क्योंकि बहुत वर्षोंसे वह हम दोनोंकी सलाहसे मेरी पत्नी नहीं रह गई है। चालीस साल हुए मैं बेमां-बापका हो गया और तीस वर्षोंसे वह मेरी मांका काम कर रही है। वह मेरी मां, सेविका, रसोइया, बोतल धोनेवाली सब कुछ रही है। अगर वह इतने सवेरे आपके दिए सम्मानमें हिस्सा लगाने आती तो मैं भूखा ही रह जाता और मेरे शारीरिक सुखकी कोई परवाह नहीं करता। इसलिए हमने आपसमें यह समझौता कर लिया है कि सभी सम्मान मुझे मिले और सभी मिहनत उसे करनी पड़े। मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि उसके बारेमें जो-जो अच्छी-अच्छी बातें आपने कही हैं वे सब मेरे कोई साथी उससे कह देंगे और उसकी गैरहाजिरीके लिए आप मेरा जवाब मंजूर कर लेंगे। (हि० न०, १.१२.२७)

... ...

आज (३१-३-३२) 'लीडर' की 'लंदनकी चिट्ठी' अच्छी थी। आम तौरपर पोलक नरम शब्दोंमें ही लिखते हैं, मगर इस बार हिंदुस्तानकी घटनाओंपर उन्होंने काफी गरम होकर लिखा है। बाको 'सी' क्लास मिला, बादमें 'ए' मिला और कराचीकी एक ८० वर्षकी महिलाको पकड़ा गया, इन बातोंपर उन्होंने अच्छा लिखा है। 'बा' तो गांधीकी पत्नी थीं, इसलिए उन्हें 'सी'से बदलकर 'ए'में रख दिया, नहीं तो ६० वर्षकी दूसरी कोई औरत होती तो 'सी'में ही रहती न ? यह उनकी दलील अच्छी है। मगर सबसे बढ़िया तो यह है। सेम्युअल होर के लिए वे लिखते हैं कि हिंदुस्तानमें जब यह सबकुछ हो रहा है तब सेम्युअल 'स्केट' करता है ! कारवां और उसपर भोंकनेवाले कुत्तोंका इसका रूपक उलटा इसीपर चाहे लागू न हो, मगर यह देखना कि कहीं यहांका कारवां इतना आगे न बढ़ जाय कि फिर कुछ सुधारनेकी गुंजायश ही न रहे और सिर्फ कुत्ते ही भोंकते रह जायं—यह कहकर उन्होंने होरको 'सावधान' कहा है।

बापू—"बस, यह तो फिरोजशाह मेहता जैसी बात हुई। उन्हें

दक्षिण अफ्रीकाकी लड़ाईकी कोई परवाह नहीं थी, मगर जब बाको पकड़नेकी खबर सुनी तो उन्हें आग लग गई और उन्होंने टाउन हालका प्रसिद्ध भाषण दिया। पोलकसे बा वाली बात बर्दाश्त नहीं हुई, इसलिए यह लिखा है।"

वल्लभभाई—"बाकी बात ऐसी है, जो किसीको भी चुभेगी। बा तो अहिंसाकी मूर्ति है। ऐसी अहिंसाकी छाप मैंने और किसी स्त्रीके चेहरेपर नहीं देखी। उनकी अपार नम्रता, उनकी सरलता किसीको भी हैरतमें डालनेवाली है।"

बापू—"सही बात है, वल्लभभाई। मगर मुझे बाका सबसे बड़ा गुण उसकी हिम्मत और बहादुरी मालूम होती है। वह जिद करे, क्रोध करे, ईर्ष्या करे, मगर यह सब जाननेके बाद आखिर दक्षिण अफ्रीकासे आजतककी उसकी कारगुजारी देखें तो उसकी बहादुरी बाकी रहती है।" (म० डा०, भाग १, ३१.३.३२)

. . . .

बापूकी थकान अभी चल रही है। बाका स्मरण उन्हें उसी तरह व्यथित करता रहता है। आज फिर कह रहे थे,

"बाकी मृत्यु भव्य थी। मुझे उसका बहुत हर्ष है। जो दुःख है वह तो अपने स्वार्थके लिए। ६२ वर्षके साथके बाद उसका साथ छूटना चुभता है। कितनी ही कोशिश करूं, अभी मैं उन स्मरणोंको मनसे नहीं निकाल सकता। (का० क०, २७.२.४४)

. . . .

शामको घूमते समय बापू कुछ थके-से लगे। पूछनेपर कहने लगे,

"एक तो मेरे पत्रोंके सरकारी जवाब नहीं आते हैं, इसलिए मनपर बोझ है। दूसरे, बाके जानेका धक्का अभीतक दूर नहीं हुआ। बुद्धि कहती है कि इससे अच्छी मृत्यु बा के लिए हो नहीं सकती थी। मुझे हमेशा यह डर रहता था कि बा अगर मेरे पीछे रह जायगी तो अच्छा नहीं।

ारे हाथोंमें ही चली जाय तो मुझे अच्छा लगे; क्योंकि बा मुझमें समा
ाई थी। मैं शोकमें पड़ा रहता हूँ, ऐसा भी नहीं है। बाका विचार करता
हता हूं, वह भी नहीं। क्या है, उसका मैं वर्णन नहीं कर सकता।"
(का० क०, २३.३.४४)

... ...

बाका जाना एक कल्पना-सा लगता है। मैं उसके लिए तैयार था,
गर जब वह सचमुच ही चली गई तो मुझे कल्पनासे अधिक एक नई बात
गी। मैं अब सोचता हूं कि बाके बिना मैं अपने जीवनको ठीक-ठीक
ठा ही नहीं सकता हूं। (का० क०, २.३.४४)

**शामको बापू घूमते समय कनुसे बात कर रहे थे कि बाके स्मारकके
लए पैसा इकट्ठा करना है। बापूकी अगली जयंतीपर ७५ लाख रुपया
कट्ठा करनेकी बात पहलेसे ही चल रही थी। कनु बापूसे इस विषयपर
छ रहा था। बापूने कहा,**

"दोनों फंड साथ मिला दो। बा मुझमें समा गई थी। कौन है ऐसी
त्री, जो इस तरह अपने पतिकी गोदमें प्राण दे? अंतिम समयमें उसने मुझे
ुलाया। तब मैं नहीं जानता था कि वह जा रही है, और मैं घूमने नहीं
ला गया था, वह भी ईश्वरका ही काम था। पेनिसिलीनके कारण ही
ं रुका। मृत्यु-शय्यापर पड़ी हुई को इन्जेक्शन क्या देना था? मगर जब
ा के पास बैठा तो समझ गया कि बा अब जाती है। बा के नामसे विश्व-
वद्यालय खोलना मैं एक निकम्मी बात समझता हूं। उसे विश्वविद्यालयमें
स कहां था? चर्खा इत्यादिमें तो वह रस लेती थी। यह फंड हम दोनोंके
नेमित्त इकट्ठा हो तो लोगोंपर बोझ नहीं पड़ेगा। बाका हिस्सा मेरी
यन्तीमें हमेशा रहा है। इस फंडका उपयोग चर्खा और ग्रामोद्योगके
लेए होगा। नारायणदासको उसके कारभारमें पूरी मेहनत और जिम्मे-
ारी लेनी होगी।" (का० क०, ४.३.४४)

... ...

बाका जबरदस्त गुण सहज अपनी इच्छासे मुझमें समा जानेका था। यह कुछ मेरे आग्रहसे नहीं हुआ था। लेकिन समय पाकर बाके अंदर ही इस गुणका विकास हो गया था। मैं नहीं जानता था कि बामें यह गुण छिपा हुआ था। मेरे शुरू-शुरूके अनुभवके अनुसार बा बहुत हठीली थीं। मेरे दबाव डालनेपर भी वह अपना चाहा ही करतीं। इसके कारण हमारे बीच थोड़े समय की या लंबी कड़ुवाहट भी रहती, लेकिन जैसे-जैसे मेरा सार्वजनिक जीवन उज्ज्वल बनता गया, वैसे-वैसे बा खिलती गईं और पुख्ता विचारोंके साथ मुझमें यानी मेरे काममें समाती गईं। जैसे दिन बीतते गए, मुझमें और मेरे काममें—सेवामें—भेद न रह गया। बा धीमे-धीमे उसमें तदाकार होने लगीं। शायद हिंदुस्तानकी भूमिको यह गुण अधिक-से-अधिक प्रिय है। कुछ भी हो, मुझे तो बाकी उक्त भावनाका यह मुख्य कारण मालूम होता है।

बामें यह गुण पराकाष्ठाको पहुंचा, इसका कारण हमारा ब्रह्मचर्य था। मेरी अपेक्षा बाके लिए वह बहुत ज्यादा स्वाभाविक सिद्ध हुआ। शुरूमें बाको इसका कोई ज्ञान भी न था। मैंने विचार किया और बाने उसको उठाकर अपना बना लिया। परिणामस्वरूप हमारा संबंध सच्चे मित्रका बना। मेरे साथ रहनेमें बाके लिए सन् १९०६ से, असलमें सन् १९०१ से, मेरे काममें शरीक हो जानेके सिवा या उससे भिन्न और कुछ रह ही नहीं गया था। वह अलग रह नहीं सकती थीं। अलग रहनेमें उन्हें कोई दिक्कत न होती, लेकिन उन्होंने मित्र बननेपर भी स्त्रीके नाते और पत्नीके नाते मेरे काममें समा जानेमें ही अपना धर्म माना। इसमें बाने मेरी निजी सेवाको अनिवार्य स्थान दिया। इसलिए मरते दम तक उन्होंने मेरी सुविधाकी देखरेखका काम छोड़ा ही नहीं।

अगर मैं अपनी पत्नीके बारेमें अपने प्रेम और अपनी भावनाका वर्णन कर सकूं तो हिंदूधर्मके बारेमें अपने प्रेम और अपनी भावनाओंको

मैं प्रकट कर सकता हूं। दुनियाकी दूसरी किसी भी स्त्रीके मुकाबिलेमें मेरी पत्नी मुझपर ज्यादा असर डालती है।

पहले तो अपनी पत्नीके मृत्युके बारेमें आपकी ममताभरी समवेदनाके लिए मैं आपका और लेडी वेवेलका आभार मानता हूं। यद्यपि अपनी मृत्युके कारण वह सतत वेदनासे छूट गई हैं, इसलिए उनकी दृष्टिसे मैंने उनकी मौतका स्वागत किया है, तो भी इस क्षतिसे मुझको जितना दुःख होनेकी कल्पना मैंने की थी, उससे अधिक दुःख हुआ है। हम असाधारण दंपती थे। १९०६ में एक दूसरेकी स्वीकृतिसे और अनजानी आजमाइशके बाद हमने आत्म-संयमके नियमको निश्चित रूपसे स्वीकार किया था। इसके परिणामस्वरूप हमारी गांठ पहलेसे कहीं ज्यादा मजबूत बनी और मुझे उससे बहुत आनंद हुआ। हम दो भिन्न व्यक्ति नहीं रह गए। मेरी वैसी कोई इच्छा नहीं थी, तो भी उन्होंने मुझमें लीन होना पसंद किया। फलतः वह सचमुच ही मेरी अर्धांगिनी बनीं। वह हमेशासे बहुत दृढ़ इच्छा-शक्तिवाली स्त्री थीं, जिनको अपनी नवविवाहित दशामें मैं भूलसे हठीली माना करता था; लेकिन अपनी दृढ़ इच्छा-शक्तिके कारण वह अनजाने ही अहिंसक असहयोगकी कलाके आचरणमें मेरी गुरु बन गईं। आचरणका आरंभ मेरे अपने परिवारसे ही किया। १९०६ में जब मैंने उसे राजनीतिके क्षेत्रमें दाखिल किया तब उसका अधिक विशाल और विशेष रूपसे योजित 'सत्याग्रह' नाम पड़ा। दक्षिण अफ्रीकामें जब हिंदुस्तानियोंकी जेल-यात्रा शुरू हुई तब श्रीमती कस्तूरबा भी सत्याग्रहियोंमें एक थीं। मेरे मुकाबिले शारीरिक पीड़ा उनको ज्यादा हुई। वह कई बार जेल जा चुकी थीं, फिर भी इस बारके इस कैदखानेमें, जिसमें सभी तरहकी सहूलियतें मौजूद थीं, उनको अच्छा नहीं लगा। दूसरे बहुतोंके साथ मेरी और फिर तुरंत ही उनकी जो गिरफ्तारी हुई, उससे उन्हें जोरका आघात पहुंचा और उनका मन खट्टा हो गया। वह मेरी गिरफ्तारीके लिए बिलकुल तैयार नहीं थीं। मैंने उन्हें विश्वास दिलाया था कि सरकार-

को मेरी अहिंसापर भरोसा है और जबतक मैं खुद गिरफ्तार होना न चाहूं वह मुझे पकड़ेगी नहीं। सचमुच उनके ज्ञानतंतुओंको इतने जोरका धक्का बैठा कि उनकी गिरफ्तारीके बाद उन्हें दस्तकी सख्त शिकायत हो गई। अगर उस समय डा० सुशीला नैयरने, जो उनके साथ ही पकड़ी गई थीं, उनका इलाज न किया होता तो मुझसे इस जेलमें आकर मिलनेसे पहले ही उनकी देह छूट चुकी होती। मेरी हाजिरीसे उन्हें आश्वासन मिला और बिना किसी खास इलाजके दस्तकी शिकायत दूर हो गई। लेकिन मन जो खट्टा हुआ था, सो खट्टा ही बना रहा। इसकी वजहसे उनके स्वभावमें चिड़चिड़ापन आ गया और इसीका नतीजा था कि आखिर कष्ट सहते-सहते क्रम-क्रमसे उनका देहपात हुआ। ('हमारी बा', पृ० २२)

. . . .

बा राजकोटकी लड़ाईमें शामिल हुई, इसपर कुछ न लिखनेका मेरा इरादा था, लेकिन उनके उस लड़ाईमें शामिल होनेपर जो थोड़ी निष्ठुर टीकाएं हुई हैं, वे खुलासा चाहती हैं। मुझे तो कभी यह सूझा ही न था कि बाको इस लड़ाईमें शरीक होना चाहिए। इसकी खास वजह तो यह थी कि इस तरहकी मुसीबतोंके लिए वे बहुत बूढ़ी हो चुकी थीं। लेकिन बात कितनी ही अनोखी क्यों न मालूम हो, टीकाकारोंको मेरे इस कथन पर इतना विश्वास तो रखना चाहिए कि अगरचे बा अनपढ़ थीं, फिर भी कई सालोंसे उन्हें इस बातकी पूरी-पूरी आजादी थी कि वे जो करना चाहें, करें। क्या दक्षिण अफ्रीकामें और क्या हिंदुस्तानमें, जब-जब भी वे किसी लड़ाईमें शरीक हुई हैं, अपने आप, अपनी आंतरिक भावनासे ही। इस बार भी ऐसा ही हुआ था। जब उन्होंने मणिबहनकी गिरफ्तारीकी बात सुनी तो उनसे न रहा गया और उन्होंने मुझसे लड़ाईमें शामिल होनेकी इजाजत मांगी। मैंने कहा, "तुम अभी बहुत ही कमजोर हो।" दिल्लीमें कुछ ही दिन पहले वह अपने नहानेके कमरेमें बेहोश हो गई थीं। उस वक्त देवदासने हाजिरखयालीसे काम न लिया होता तो वे उसी समय

स्वर्गधाम पहुंच गई होतीं। लेकिन बाने जवाब दिया, "शरीरकी मुझे परवाह नहीं।" इसपर मैंने सरदारसे पुछवाया। वे भी इजाजत देनेके लिए बिलकुल तैयार न थे।

लेकिन फिर तो वे पसीजे। रेजीडेंटकी सूचनासे ठाकुरसाहबने जो वचन भंग किया था, उसके कारण मुझे होनेवाले क्लेशके वे साक्षी थे। कस्तूबाई राजकोटकी बेटी ठहरी। इसलिए उन्होंने अंतरकी आवाज सुनी। उन्होंने महसूस किया कि जब राजकोटकी बेटियां राज्यके पुरुषों और स्त्रियोंकी आजादीके लिए जूझ रही हों तब वे चुप बैठ ही नहीं सकतीं।

उनमें एक गुण बहुत बड़ा था। हरएक हिंदू पत्नीमें वह कमोबेश होता ही है। इच्छासे या अनिच्छासे अथवा जाने-अनजाने भी वह मेरे पदचिन्होंपर चलनेमें धन्यता अनुभव करती थीं।....

अगरचे मैं चाहता था कि उस तीव्र वेदनासे उन्हें छुटकारा मिले और जल्दी ही उनकी देहका अंत हो जाय तो भी आज उनकी कमीको जितना मैंने माना था, उससे कहीं अधिक मैं महसूस कर रहा हूं। हम असाधारण दंपती थे---अनोखे। हमारा जीवन संतोषी, सुखी और सदा ऊर्ध्वगामी था। ('हमारी बा', १८.२.४५)

: ५१ :

नारणदास गांधी

पास ही नारणदास जैसा साधु पुरुष है। नारणदासकी दृढ़ता, सहन-शीलता, हिम्मत, त्यागशक्ति और विवेकबुद्धि वगैरह पर मुझ जैसेको भी ईर्ष्या करनेकी इच्छा होती है। इसने मुझे आश्रमकी तरफसे बिलकुल निश्चित कर दिया है।

. . . .

हम अंदर रहकर ताप नहीं सह रहे हैं, तुम आंतरिक और बाह्य दोनों तपश्चर्या कर रहे हो। (म० डा०, भाग १, २७.५.३२.)

... ...

यहां बैठे-बैठे आश्रममें फेरबदल कराया करता हूं। नारणदासकी अनन्य श्रद्धा, उसकी पवित्रता, दृढ़ता, उसका उद्यम और कार्यदक्षता सबका लाभ ले रहा हूं।

... ...

नारणदासके बारेमें मेरा पूरा विश्वास है। वह कहे कि मुझे शांति है तो मैं अशांति माननेको तैयार नहीं हूं। मैंने उसे खूब चेता दिया है। दूर बैठा हुआ अब उसे तंग नहीं करूंगा। नारणदासमें अनासक्तिके साथ काम करनेकी बड़ी शक्ति है। अनासक्त हमेशा आसक्तसे बहुत ज्यादा काम करता है और फुर्सतमें हो, ऐसा दीखता है। वह सबसे बादमें थकता है। सच पूछो तो उसे थकावट मालूम ही नहीं होनी चाहिए। मगर यह तो हुआ आदर्श। तुम वहां मौजूद हो, इसलिए अगर तुम्हें अशांति दिखाई दे और यह लगे कि नारणदास अपने आपको धोखा देता है तो तुम्हारा धर्म मुझसे अलग होगा। तुम्हें तो नारणदासको सावधान करना ही चाहिए। मैं भी वहां होऊं और वह प्रत्यक्ष जो कहे उससे दूसरी ही बात देखूं तो जरूर उसे चेतावनी दूं। तुम्हारी चेतावनीके बावजूद वह तुम्हारा विरोध करे तो तुम्हें उसका कहना मानना चाहिए, जबतक तुम उसे सत्याग्रही मानती हो तबतक। कई बार हमें अपनी आंखें भी धोखा दे देती हैं। मुझे तुम्हारे चेहरेपर उदासी दीखे; परंतु तुम इन्कार करो तो मुझे तुम्हारी बात मान ही लेनी चाहिए। मुझे यह भय हो या शक हो कि मुझसे तुम छिपाती हो तो दूसरी बात है। फिर तो तुमसे पूछनेकी बात नहीं रह जाती। जाननेके लिए मुझे दूसरे साधन पैदा करने चाहिए। मगर आश्रमजीवन तो इसी तरह चलता है। उसकी बुनियाद

सचाईपर ही है। वहां अच्छे हेतुसे भी धोखा नहीं दिया जा सकता। (म० डा०, भाग १, २३.६.३२)

. . . .

नारायणदाससे बढ़कर कोई आदमी इतना ही दृढ़, विवेकी, समझदार और कर्तव्य-परायण मुझको मिलनेकी कोई उम्मीद नहीं है, और नारायणदास मिला है इसको मैं ईश्वरका अनुग्रह मानता हूं।

. . . .

तुम्हें मेरा आशीर्वाद अंजलियां भर-भरकर है। क्यों न भेजूं! मेरी सारी आशाएं तुम सफल कर रहे हो और अपनी अनन्य और ज्ञान-मय सेवासे हम तीनोंको ही आश्चर्य-चकित कर रहे हो। सारी अग्नि-परीक्षाओंमेंसे पार उतरनेकी शक्ति ईश्वरने तुम्हें बख्शी मालूम होती है। खूब जिओ और अहिंसा-देवीके जरिए सत्यनाराणका साक्षात्कार करो और दूसरोंके करनेमें सहायक बनो। (म० डा०, भाग २, ११.६.३२)

. . . .

नारणदास गांधी लिखते हैं कि मैं पाठकोंको यह याद दिला दूं कि 'चर्खा-जयंती' के निमित्त जो लोग कताई-यज्ञमें भाग लेना चाहते हों उन्हें अपने नाम तुरंत भेज देने चाहिए। गत ११ अक्तूबरसे यह यज्ञ आरंभ हुआ है। जिन लोगोंने अपने नाम अभीतक नहीं भेजे हैं, वे पिछड़ तो गए ही हैं; लेकिन कभी न करनेसे देरसे करना फिर भी अच्छा है। जो पीछे रह गए हैं वे निश्चित परिमाणसे अधिक कातकर साथ हो सकते हैं। नारणदास गांधी इस किस्मके खादी-कार्यके अच्छे विशेषज्ञ हैं। आंकड़ोंमें वे खूब रस लेते हैं और इस कामको तेजीसे करते हैं। यज्ञार्थ कातनेवालोंके नाम और पतोंका ठीक-ठीक हिसाब रखने और उनके सूतको रजिस्टरपर चढ़ानेके कामसे वे कभी थकते ही नहीं; बल्कि उलटे इस काममें उन्हें आनंद आता है। वे मानते हैं कि काम कोई भी हो नियमसे

होना चाहिए। उनका खयाल है कि इस तरह कामका ठीक-ठीक हिसाब रखनेसे ही नियमितता आती है और काम करनेवालोंको प्रोत्साहन मिलता है। यदि खासी बड़ी तादादमें लोग यज्ञार्थ कातें तो वे खादीकी कीमतमें जरूर कमी कर सकते हैं। इस योजनामें बहुत संभावनाएं हैं। इसलिए मैं आशा करता हूं कि यज्ञार्थ कताईकी इस सुंदर योजनापर समुचित ध्यान दिया जायगा। (ह० से०, २५.११.३६)

: ५२ :

मगनलाल खुशालचन्द गान्धी

मेरे साथ मेरे जो-जो रिश्तेदार आदि वहां गए और व्यापार आदिमें लग गए थे उन्हें अपने मतमें मिलानेका और फिनिक्समें दाखिल करनेका प्रयत्न मैंने शुरू किया। वे सब तो धन जमा करनेकी उमंगसे दक्षिण अफ्रीका आए थे। उनको राजी कर लेना बड़ा कठिन काम था; परंतु कितने ही लोगोंको मेरी बात जंच गई। इन सबमेंसे आज तो मगनलाल गांधीका नाम मैं चुनकर पाठकोंके सामने रखता हूं, क्योंकि दूसरे लोग जो राजी हुए थे, वे थोड़े-बहुत समय फिनिक्समें रहकर फिर धन-संचयके फेरमें पड़ गए। मगनलाल गांधी तो अपना काम छोड़कर जो मेरे साथ आए, सो अबतक रह रहे हैं और अपने बुद्धि-बलसे, त्यागसे, शक्तिसे एवं अनन्य भक्ति-भावसे मेरे आंतरिक प्रयोगोंमें मेरा साथ देते हैं एवं मेरे मूल साथियोंमें आज उनका स्थान सबमें प्रधान है। फिर एक स्वयं-शिक्षित कारीगरके रूपमें तो उनका स्थान मेरी दृष्टिमें अद्वितीय है।

... ...

शांतिनिकेतनमें मेरे मंडलको अलग स्थानमें ठहराया गया था। वहां मगनलाल गांधी उस मंडलकी देख-भाल कर रहे थे और फिनिक्स आश्रमके तमाम नियमोंका बारीकीसे पालन कराते थे। मैंने देखा कि उन्होंने शांतिनिकेतनमें अपने प्रेम, ज्ञान और उद्योग-शीलताके कारण अपनी सुगंध फैला रखी थी (आ०, १९२७)

. . . .

जिसे मैंने अपने सर्वस्वका वारिस चुना था वह अब नहीं रहा। मेरे चाचाके पोते मगनलाल खुशालचंद गांधी मेरे कामोंमें मेरे साथ सन् १९०४ से ही थे। मगनलालके पिताने अपने सभी पुत्रोंको देशके काममें दे दिया है। वे इस महीनेके शुरूमें सेठ जमनालालजी तथा दूसरे मित्रोंके साथ बंगाल गए थे, वहांसे बिहार आए। वहींपर अपने कर्त्तव्यके पालनमें ही उन्हें कठिन ज्वर हो आया। नौ दिनकी बीमारीके बाद प्रेम और डाक्टरी ज्ञानसे जितनी सेवा संभव है, सभी कुछ होने पर भी वे वृजकिशोरप्रसाद-जीकी गोदमें से चले गए।

कुछ धन कमा सकनेकी आशासे मगनलाल गांधी मेरे साथ सन् १९०३ में दक्षिण अफ्रीका गए थे। मगर उन्हें दूकान करते पूरा साल भर भी न हुआ होगा कि स्वेच्छापूर्वक गरीबीकी मेरी अचानक पुकारको सुनकर वे फिनिक्स आश्रममें आ शामिल हुए और तबसे एक बार भी वे डिगे नहीं, मेरी आशाएं पूरी करनेमें असमर्थ न हुए। यदि उन्होंने स्वदेश-सेवामें अपनेको होम दिया तो अपनी योग्यताओं और अपने अध्यवसायके बलपर, जिनके बारेमें कोई संदेह हो ही नहीं सकता, वे आज व्यापारियोंके सिरताज होते। छापाखानेमें डाल दिए जानेपर उन्होंने तुरंत ही मुद्रण-कलाके सभी भेदोंको जान लिया। यद्यपि पहले उन्होंने कभी कोई यंत्र हाथमें नहीं लिया था तो भी इंजिन-घरमें, कलोंके बीच तथा कंपोजीटरोंके टेबल पर सभी जगह अत्यंत कुशलता दिखलाई। 'इंडियन ओपीनियन' के गुजराती अंशका संपादन करना भी उनके लिए वैसा ही सहज काम था।

फिनिक्स आश्रममें खेतीका काम भी शामिल था और इसलिए वे कुशल किसान भी बन गए। मेरा खयाल है कि आश्रममें वे सर्वोत्तम बागबान थे। यह भी उल्लेखनीय है कि अहमदाबादसे 'यंग इंडिया' का जो पहला अंक निकला उसमें भी उस संकटकालमें उनके हाथकी कारीगरी थी।

पहले उनका शरीर भीम जैसा था; किंतु जिस काममें उन्होंने अपनेको उत्सर्ग किया, उसकी उन्नतिमें उस शरीरको गला दिया था। उन्होंने बड़ी सावधानीसे मेरे आध्यात्मिक जीवनका अध्ययन किया था। जबकि मैंने विवाहित स्त्री-पुरुषोंके लिए भी 'ब्रह्मचर्य ही जीवनका नियम है' का सिद्धांत अपने सहकारियोंके सामने पेश किया था तब उन्होंने पहले-पहल उसका सौंदर्य तथा उसके पालनकी आवश्यकता समझी और यद्यपि उसके लिए, जैसा कि मैं जानता हूं, उन्हें बड़ा कठोर प्रयत्न करना पड़ा था तो भी उन्होंने इसे सफल कर दिखलाया। इसमें वे अपने साथ अपनी धर्मपत्नीको भी धीरतापूर्वक समझा-बुझाकर ले गए, उसपर अपने विचार जबरन डालकर नहीं।

जब सत्याग्रहका जन्म हुआ तब वे सबसे आगे थे। दक्षिण अफ्रीका-के युद्धका पूरा-पूरा मतलब समझानेवाला एक शब्द मैं ढूंढ़ रहा था। दूसरा कोई अच्छा शब्द न मिल सकनेसे मैंने लाचार उसे निष्क्रिय प्रतिरोध-का नाम दिया था, गोकि ये शब्द बहुत ही नाकाफी और भ्रमोत्पादक भी हैं। क्या ही अच्छा होता अगर आज मेरे पास उनका वह अत्यंत सुंदर पत्र होता जिसमें उन्होंने बतलाया था कि इस युद्धको 'सदाग्रह' क्यों कहना चाहिए। इसी सदाग्रहको बदलकर मैंने 'सत्याग्रह' शब्द बनाया। उनका पत्र पढ़नेपर इस युद्धके सभी सिद्धांतोंपर एक-एक करके विचार करते हुए अंतमें पाठकको इसी नामपर आना ही पड़ता था। मुझे याद है कि वह पत्र अत्यंत ही छोटा और केवल आवश्यक विषयपर ही था, जैसे कि उनके सभी पत्र होते थे।

युद्धके समय वे कामसे कभी थके नहीं, किसी कामसे देह नहीं चुराई

और अपनी वीरतासे वे अपने आसपासमें सभी किसीके दिल उत्साह और आशासे भर देते थे। जबकि सब कोई जेल गए, जब फिनिक्समें जेल जाना ही मानों इनाम जीतना था तब भी, मेरी आज्ञासे, जेलसे भारी काम उठानेके लिए वे पीछे ठहर गए। उन्होंने स्त्रियोंके दलमें अपनी पत्नीको भेजा।

हिंदुस्तान लौटनेपर भी उन्हींकी बदौलत आश्रम, जिस संयम-नियमकी बुनियादपर बना है, खुल सका था। यहां उन्हें नया और अधिक मुश्किल काम करना पड़ा। मगर उन्होंने अपनेको उसके लायक साबित किया। उनके लिए अस्पृश्यता बहुत कठिन परीक्षा थी। सिर्फ एक लहमे भरके लिए ऐसा जान पड़ा, मानों उनका दिल डोल गया हो। मगर यह तो एक सेकंडकी बात थी। उन्होंने देख लिया कि प्रेमकी सीमा नहीं बांधी जा सकती, और कुछ नहीं तो महज इसीलिए कि अछूतोंके लिए ऊंची जातिवाले जिम्मेवार हैं, हमें उन्हींके जैसे रहना चाहिए।

आश्रमका औद्योगिक विभाग फिनिक्सके ही कारखानेके ढंगका नहीं था। यहां हमें बुनना, कातना, धुनना और ओटना सीखना था। फिर मैं मगनलालकी ओर झुका। गोकि कल्पना मेरी थी, किंतु उसे काममें लानेवाले हाथ तो उनके थे। उन्होंने बुनना और कपासके खादी बनने तककी और दूसरी सभी क्रियाएं सीखीं। वे तो जन्मसे ही विश्वकर्मा, कुशल कारीगर थे।

जब आश्रममें गोशालाका काम शुरू हुआ तब वे इस काममें उत्साहसे लग गए, गोशाला-संबंधी साहित्य पढ़ा और आश्रमकी सभी गायोंका नामकरण किया और सभी गौओंसे मित्रता पैदा कर ली।

जब चर्मालय खुला तब भी वे वैसे ही दृढ़ थे। जरा दम लेनेकी फुर्सत मिलते ही वे चमड़ेकी कमाईके सिद्धांत भी सीखनेवाले थे। राजकोटके हाईस्कूलकी शिक्षाके अलावा और जो कुछ वे इतनी अच्छी तरह जानते थे, उन्होंने वह सब स्वानुभवकी कठिन पाठशालामें सीखा था।

उन्होंने देहाती बढ़ई, देहाती बुनकर, किसान, चरवाहों और ऐसे ही मामूली लोगोंसे सीखा था।

वे चर्खा-संघके शिक्षण विभागके व्यवस्थापक थे। श्री वल्लभभाईने बाढ़के जमानेमें उन्हें विठ्ठलपुरका नया गांव बनानेका भार दिया था।

वे आदर्श पिता थे। उन्होंने अपने बच्चोंको, दो लड़कियों और एक लड़केको, जो अबतक अविवाहित हैं, ऐसी शिक्षा दी थी कि जिसमें वे देशके लिए उपहार बननेके लिए योग्य हों। उनका पुत्र केशव यंत्र-विद्यामें बड़ी कुशलता दिखला रहा है। उसने भी अपने पिताके ही समान यह सब मामूली लुहार-बढ़इयोंको काम करते देखकर सीखा है। उनकी सबसे बड़ी लड़की राधाने, जिसकी उम्र आज अठारह वर्ष है, अपने मत्थे बिहारमें स्त्रियोंकी स्वाधीनताके संबंधमें एक मुश्किल और नाजुक काम उठाया था। सच ही तो, वे यह पूरा-पूरा जानते थे कि राष्ट्रीय शिक्षा कैसी होनी चाहिए और वे शिक्षकोंको प्रायः इस विषयपर गंभीर और विचारपूर्वक चर्चामें लगाया करते थे।

पाठक यह न समझें कि उन्हें राजनीतिका कुछ ज्ञान ही नहीं था। उन्हें ज्ञान जरूर था; किंतु उन्होंने आत्मत्यागका रचनात्मक और शांत पथ चुना था।

वे मेरे हाथ थे, मेरे पैर थे और थे मेरी आंखें। दुनियाको क्या पता कि मैं जो इतना बड़ा आदमी कहा जाता हूं, वह बड़प्पन मेरे शान्त, श्रद्धालु, योग्य और पवित्र स्त्री तथा पुरुष कार्यकर्त्ताओंके अविरल परिश्रम, और सेवापर कितना निर्भर है, और उन सबमें मेरे लिए मगनलाल सबसे बड़े, सबसे अच्छे और सबसे अधिक पवित्र थे।

यह लेख लिखते हुए भी अपने प्यारे पतिके लिए विलाप करती हुई उनकी विधवाकी सिसक मैं सुन रहा हूं। मगर वह क्या समझेगी कि उससे अधिक विधवा, अनाथ मैं ही हो गया हूं। अगर ईश्वरमें मेरा जीवंत विश्वास न होता तो उसकी मृत्युपर, जो कि मुझे अपने सगे पुत्रोंसे

भी अधिक प्रिय था, जिसने मुझे कभी धोखा न दिया, मेरी आशाएं न तोड़ीं, जो अध्यवसायकी मूर्त्ति था, जो आश्रमके भौतिक, नैतिक और आध्यात्मिक सभी अंगोंका सच्चा चौकीदार था, मैं विक्षिप्त हो जाता। उसका जीवन मेरे लिए उत्साहदायक है, नैतिक नियमकी अमोघता और उच्चताका प्रत्यक्ष प्रदर्शन है। उन्होंने अपने ही जीवनमें मुझे एक-दो दिनोंमें नहीं, कुछ महीनोंमें नहीं, बल्कि पूरे चौबीस वर्षों तक की बड़ी अवधिमें---हाय, जो अब घड़ी भरका समय जान पड़ता है---यह साबित कर दिखलाया कि देश-सेवा, मनुष्य-सेवा और आत्म-ज्ञान या ब्रह्मज्ञान आदि सभी शब्द एक ही अर्थके द्योतक हैं।

मगनलाल न रहे, मगर अपने सभी कामोंमें वे जीवित हैं, जिनकी छाप आश्रमकी धूलमेंसे दौड़कर निकल जानेवाले भी देख सकते हैं।

(हि० न० जी०, २६.४.२८)

... ...

गांधीजीका मौनवार था। अकल्पित संयोगोंमें किसीकी सेवा करनेका प्रसंग उपस्थित हो और बोले बिना न चले तभी बोलनेका प्रसंग शायद ही कभी आता हो। गांधीजी तुरंत ही मगनलालभाईके घर जाकर बालकोंको गोद ले बैठे। सारा आश्रम खबर पाते ही विह्वल हो उठा। किंतु आज्ञा हुई कि सबके एकत्र होनेकी कोई जरूरत नहीं है। जो काम चलते हैं उन्हें बंद करनेकी कोई जरूरत नहीं है। वृढ़व्रती, कर्मवीरके अवसानका शोक तो काम करके ही मनाना चाहिए न! वणाटशाला, शाला आदि बंद करनेका मन बहुतोंका हुआ, मगर हिम्मत किसे हो!

मगनलालभाईकी धर्मपत्नी श्री संतोकबहनने जैसे-तैसे किसी तरह अपना शोक दबाया। बापू घरमें बैठे हों तो शोकका प्रदर्शन कैसे किया जाय। और बापू बराबर यही कहते रहे, "मगनलाल होते तो ऐसे प्रसंगमें क्या करते।" मगनलालभाईके पुत्रने तो मुझ-जैसे बड़ोंसे भी अधिक साहस दिखलाया। सायंकालमें हमेशाके मुताबिक प्रार्थनाके

समय सभी कोई इकट्ठे हुए। पंडितजीने धीरे गंभीर स्वरमें गाया :

"अब हम अमर भये न मरेंगे।"

उज्ज्वल यशसे यशस्वी मगनलालभाईके बारेमें यह भजन अतिशय उचित था; किंतु उनके बिना हम जो अपंग लगते थे, हमें कौन आश्वासन दे। कुलका दीपक-रूप बड़ा लड़का जब मर जाता है तब दूसरे लड़कोंको गोदमें बिठाकर अपनी छाती वज्रकी बनाकर, जिस भांति पिता उन्हें आश्वासन देता है उसी तरह गांधीजीने प्रार्थनाके बाद आश्वासन दिया। चौबीस वर्षका संबंध क्रूर कालने तोड़ दिया। जैसी चोट पहले कभी न लगी थी, वैसी लगी। मगर तो भी छाती कठिन करके, मानों वियोग-वेदना हलकी करनेके लिए ही गांधीजीने कितने-एक उद्‌गार निकाले। ये उद्‌गार ऐसे नहीं हैं जो यहां दिये जा सकें। उनमें ऐसे-ऐसे वाक्य थे:

"आश्रमके प्राण मगनलाल थे, मैं नहीं।" "इनके तेजसे मैं प्रकाशित हुआ।" "तुम्हारे आदर्श मगनलाल थे। मेरे आदर्श भी वही थे। उनके जैसा सरदार अगर मुझे मिला होता तो उन्होंने जितनी मेरी सेवा की थी, उतनी मैं अपने सरदारकी नहीं कर सकता। उनका जीवन संपूर्ण था। आश्रमके वे प्राण थे। मैं तो केवल घूमता फिरा और आश्रमके प्रति बेवफा रहा। और उन्होंने आश्रमकी सेवामें अपना शरीर गला दिया था।" "मैं मीराबाईके समान जहरका प्याला पी सकता हूं, मेरे गलेमें कोई सांपोंकी माला डाल दे तो उसे सहन कर सकता हूं, किंतु यह वियोग उन दोनोंसे भी अधिक कठिन है। तोभी छाती कठिन करके, उनका गुण-कीर्तन करते हुए मैंने अपने हृदयमें उनकी मूर्त्ति स्थापित की है।"

(हि० न० जी०, ३.५.२८)

... ...

निकटसे और दूर-दूरसे मित्रोंने अपने मीठे संदेशोंसे मेरे लिए मेरी सबसे कड़ी परीक्षाके अवसरपर मुझे अत्यंत अनुगृहीत किया है। मेरी यह मूर्खता थी, मगर मैंने कभी यह सोचा ही नहीं था कि मगनलाल मुझसे

पहले मरेंगे । व्यक्तियों, संस्थाओं और कांग्रेस-सभाओंके तारों और पत्रोंसे मुझे बहुत आश्वासन मिला है । मैं उन्हें विश्वास दिलाता हूं कि उन्होंने मुझपर जिस प्रेमकी वर्षा की है उसके तथा मगनलालने मेरे साथ जिन आदर्शोंको माना और जिनके लिए शांतिपूर्वक अपने आपको उत्सर्ग कर दिया, मैं उनके योग्य बननेकी कोशिश करूंगा । (हि० न० जी०, ३.५.२८)

तुम शायद नहीं जानते होगे कि रूखीबहन बिलकुल बच्ची थी, तबसे संतोकके जीतेजी भी मगनलालके हाथों पली थी । इसके जीनेकी शायद ही आशा थी । मुश्किलसे सांस ले सकती थी । इस लड़कीको मगनलाल नहलाते, बाल संवारते और पास बैठकर खिलाते थे और अपने दूसरे बच्चोंकी भी देखभाल करते थे । फिर भी नौकरीमें सबसे ज्यादा काम करते थे । सुंदर-से-सुंदर वाड़ी उन्हींने बनाई थी । फिनिक्समें पहला गुलाबका फूल उन्हींने उगाया था । फिनिक्सकी कितनी ही सख्त जमीनमें जब उनकी कुदालीकी चोट पड़ती थी तब धरती कांपती मालूम होती थी । जो मगनलाल कर सके वह सब तुम कर सकते हो । इसमें मैंने कहीं भी मगनलालकी बड़ी कला-शक्ति या उनके पढ़े-लिखेपनकी बात नहीं कही है । मगनलालमें आत्म-विश्वास था । अपने कामके बारेमें श्रद्धा थी और भगवानने उन्हें बलवान शरीर दिया था । यह शरीर अंतमें आश्रमके बोझसे और उनकी तपश्चर्यासे कमजोर हो गया था । लेकिन मैं यह मानता हूं कि मगनलालने अपने छोटे-से जीवनमें सौ वर्षके बराबर या सैकड़ों बरस जितना काम किया । मगनलालकी मिसाल तुम्हारे सामने इसलिए रखी है कि तुम मगनलालको जानते थे और उनके प्रेम-भावके कारण तुम्हारा आश्रमसे संबंध हुआ था । मगनलालको याद करके भी भूल जाओ कि तुम अपंग हो या अंधेरेमें हो । मैं मानता हूं कि जो सुविधाएं तुम्हें सहज ही मिली हुई हैं, वे इस देशमें लाखोंमें एकको भी प्राप्त न होंगी ।" (म० डा०, भाग १, ८.७.३२)

• • • • • • • • •

मगनलालके विषयमें क्या कहूं ? उन्होंने आश्रमके लिए जन्म लिया था। सोना जैसे अग्निमें तपता है वैसे मगनलाल सेवाग्निमें तपे और कसौटीपर सौ फीसदी खरे उतरकर दुनियासे कूच कर गए। आश्रममें जो कोई भी है वह मगनलालकी सेवाकी गवाही देता है। (य० म०, ३०.५.३२)

... ...

मेरी रायमें स्वर्गीय मगनलाल गांधी इस तरहके एक आदर्श खादी-सेवक थे। उनसे जितनी आशाएं मैंने रक्खी थीं, उससे कहीं ज्यादा उन्होंने करके दिखाया। कड़ी-से-कड़ी कठिनाइयोंका सामना करके भी वह अपने कामकी चीज, जहां-कहीं भी वह मिल जाती थी, सीख लिया करते थे। कठिनाइयोंसे वह न कभी घबराते थे, न थकते थे। अंतिम समयतक वह अपने खादी-संबंधी ज्ञानको बढ़ाने हीमें लगे रहे। मैं चाहता हूं कि आप मगनलाल गांधीके इस आदर्शका अपने जीवनमें अनुकरण करें। (ह० से०, १५.५.४२)

... ...

ऐसा ही यह भजन है—'अजहु न निकसे प्राण कठोर'। वह कहता है कि अबतक ईश्वरके दर्शन न हुए तो अबतक प्राण क्यों न निकले ? हमेशा तो इस भजनको गणेश शास्त्री गाते थे, लेकिन बाज दफा जब वह हाजिर न होता या बीमार पड़ जाता तो मगनलाल उसको गाता था। वह संगीत-शास्त्री तो नहीं था, लेकिन उसका कंठ अच्छा था। उसका वह भजन अब भी मेरे कानोंमें गूंजता है। वह तो आश्रमका स्तंभ था। आश्रमको चलानेमें वह पहाड़-सा था, बहुत मजबूत। कुदाली अपने आप चलाता था तो सबसे आगे चला जाता था। दक्षिण अफ्रीकामें तो उसका शरीर बहुत मजबूत था। यहां उसको कोई बीमारी तो नहीं थी, लेकिन शरीर क्षीण हो गया था; क्योंकि, उसपर सारा बोझ तो वहांपर भी था; लेकिन यहां तो एक अनोखी चीज यह है कि करोड़ों आदमियोंमें

काम करना पड़ता था। रचनात्मक कामका भी बोझ उसपर पड़ता था। रचनात्मक कामके बिना हम रह भी कैसे सकते हैं! उसके बगैर स्वराज चीज हो भी क्या सकती है? आज स्वराज तो मिला, लेकिन उसकी कितनी कीमत है? मिला तो भी क्या, आज हम सिद्ध करते हैं कि अगर हम रचनात्मक काम उस वक्त कर लेते तो हमें यह वक्त नहीं देखना पड़ता, जो हम आज प्रत्यक्षमें देख रहे हैं। स्वराज्यकी जो कल्पना हमने की थी और वह कल्पना बढ़ भी गई थी, क्या वह यही है? अगर उस वक्त हम इतना कर लेते तो आज हिंदुस्तानका इतिहास अनोखा होनेवाला था, इसमें मुझे कोई शक नहीं। मगनलालका जो भगवान था वह तो स्वराज्यमें ही था। उसका स्वराज्य तो राम-राज्य था।

(प्रा० प्र०, १६.१०.४७)

: ५३ :

हरिलाल गांधी

हरिलालके जीवनमें बहुतेरी ऐसी बातें हैं जिन्हें मैं नापसंद करता हूं। वह उन्हें जानता है; पर उसके इन दोषोंके रहते हुए भी मैं उसे प्यार करता हूं। पिताका हृदय है। ज्योंही वह उसमें प्रवेश पाना चाहेगा, उसे स्थान मिल जायगा। फिलहाल तो उसने अपने लिए उसका द्वार बंद रक्खा है। अभी उसे और जंगल-झाड़ीमें भटकना है। मानवी पिताके संरक्षणकी भी एक निश्चित मर्यादा होती है; पर दैवी पिताका द्वार उसके लिए सदा खुला हुआ है। वह उसे खोजेगा तो जरूर स्थान पावेगा। (हि० न० जी०, १८.६.२५)

. . . .

हरिलालकी लाल प्याली रोज भरी रहती है। पीकर इधर-उधर भटकता है और भीख मांगता है। बली और मनुको धमकाता है। इसमें भी नीयत रुपया ऐंठनेकी दीखती है। मुझे भी बड़ी उद्धत धमकियोंके पत्र लिखे हैं। मनुपर अधिकार करनेके लिए बलीपर नालिश करनेकी धमकी दी है। मुझे दुःख नहीं होता, दया आती है। हंसी भी आती है। ऐसे और बहुत लोग हैं, उनका क्या होगा? उनके लिए भी मुझे उतना ही खयाल होना चाहिए न? ये सब भी स्वभाव नियत कर्म करते हैं। क्या करें? हमारा बरताव सीधा होगा तो वह अंतमें ठिकाने आ जायगा। हरिलाल जैसा है वैसा बननेमें मैं अपना हाथ कम नहीं मानता। उसका बीज बोया तब मैं मूढ़ दशामें था। जब उसका पालन हुआ, वह समय शृंगारका कहा जा सकता है। मैं शराबका नशा नहीं करता था। यह कमी हरिलालने पूरी कर दी। मैं एक ही स्त्रीके साथ खेल खेलता था तो हरिलाल अनेकके साथ खेलता है। फर्क सिर्फ मात्राका है, प्रकारका नहीं। इसलिए मुझे प्रायश्चित्त करना चाहिए। प्रायश्चित्तका अर्थ है आत्मशुद्धि। वह बीरबहूटीकी गतिसे हो रही है। (म० डा०, भाग १, २३.६.३२)

... ...

मैं जब बिलकुल साहब था, हरिलाल उस समयका है। उसे क्या पता था कि साहब होते हुए भी मेरा दिल साहबीमें जरा भी नहीं था? उसने मेरा बाह्यरूप देखा और वैसी ही मौज-शौक करनेकी उसमें इच्छा हो गई। उसने मुझसे कहा—मुझे बैरिस्टर बना दीजिए। फिर देखिए, मैं क्या-क्या करता हूं। इतना त्याग करता हूं या नहीं? (म० डा०, भाग २, ११.१०.३२)

तूने हरिलालके बारेमें पूछा है। वह पांडेचेरी गया था। वहां भी पैसोंकी भीख मांगकर खूब शराब पीता था। कुछ पैसे मिले भी। आज-कल कहां है, पता नहीं। उसका योंही चलेगा। ईश्वर जब उसे सुबुद्धि

दे तब सही। इसमें हमारे पाप-पुन्य भी तो काम करते ही हैं न ? हरिलालके गर्भके समय मैं कितना मूढ़ था ? जैसा मैंने और तूने किया होगा, वैसा ही हमें भरना होगा। इस तरह बच्चोंके आचरणके लिए मां-बाप जिम्मेदार हैं ही। अब तो हम यही कर सकते हैं कि हम शुद्ध बनें। सो वैसी कोशिश हम दोनों कर रहे हैं और उससे हम संतोष मानें। हमारी शुद्धिका प्रभाव जाने-अनजाने भी हरिलालपर पड़ता ही होगा। ('हमारी बा,' १३.२.३४.)

: ५४ :

डा० गिल्डर

महान् पारसी कौमने शराबबंदीके बुरी तरह विरुद्ध होते हुए भी जो संयम रक्खा उसके लिए वह धन्यवादकी पात्र है। स्पष्ट ही उन्होंने बुद्धिमानीसे काम लिया और उनके द्वारा कोई विरोधी प्रदर्शन हुआ मालूम नहीं पड़ता। मेरी यह आशा ठीक ही सिद्ध हुई मालूम पड़ती है कि पारसी कौमकी उदारताने उसके विरोध-भावको दबा दिया। शराबबंदीकी पूरी सफलताके लिए पारसियोंके दिली सहयोगकी आशा करना क्या कोई बहुत बड़ी बात है ? उन्हें यह याद रखना चाहिए कि बम्बईके इस प्रयत्नका असर न केवल सारे प्रांतपर, बल्कि समस्त भारतवर्षपर पड़ेगा। मैं तो यह कहनेका भी साहस करता हूं कि अभी तो यद्यपि उन्हें ऐसा लगता है कि उनके साथ बेजा व्यवहार हुआ है, लेकिन पारसियोंकी भावी संतति डॉ० गिल्डरको अपना सच्चा प्रतिनिधि और हितैषी मानकर उन्हें दुआएं देंगी। जैसे भारतको इस बातका गर्व है, उसी तरह पारसियोंको भी सचमुच इस बातका फख्र होना चाहिए कि उन्होंने डॉ० गिल्डर-जैसा

आदमी पैदा किया जो कि महाभयंकर विरोध, यहांतक कि बहिष्कार आदिकी बुरी-से-बुरी धमकियोंके बावजूद चट्टानकी तरह दृढ़ रहा। (ह० से०, १२.८.३९)

आज अखबारमें बापू और वर्किंग कमेटीके साथवालोंको छोड़कर बाकी कैदियोंको महीनेमें एक मुलाकात मिलनेकी खबर थी। डा० गिल्डर-के लिए अवश्य ही एक समस्या खड़ी हो गई। मुलाकातकी इजाजतसे लाभ उठाना हो तो उनको वापस यरवदा जानेके लिए सरकारके साथ झगड़ा करना चाहिए। क्या ऐसा करना उचित है? यरवदा जाकर एक तो जेलकी जेल, दूसरे खर्च और तीसरे बापूका साथ छोड़ना। वैसे भी यहांका वातावरण उन्हें अनुकूल है। यह सब छोड़ना या मुलाकात छोड़ना? मैंने कहा, "खर्चकी उन्हें क्या परवाह है?" बापू कहने लगे:

"ऐसा नहीं, कौन जाने कबतक यहां रहना है। वे प्रतिष्ठावाले आदमी हैं। अब कांग्रेसको कभी छोड़ेंगे नहीं। यह भी जानते हैं कि मैं लोगोंको भिखारी बनानेवाला हूं। सो जो धन है उसे संभालकर रखेंगे ताकि वह उनकी लड़कीको मिल सके।" (का० क०, २.९.४३)

: ५५ :

सतीशचन्द्र दास गुप्ता

बंगालमें शुद्ध त्यागके दृष्टांत देखकर मैं तो आनंद रसके घूंट पीने लगा। एक जमींदारका सारा कुटुंब खादीमय है। तमाम स्त्रियां कातती हैं। समस्त स्त्री-पुरुष खादी पहनते हैं। उन्होंने अपनी जमीन और अपना घर खादी प्रतिष्ठानको उपयोगके लिए दे दिया है। प्रति-ष्ठानके प्राण सतीशबाबूका त्याग ऐसा-वैसा नहीं। डा० रायके रसायनके

कारखानेमें हर माह १५००) की उनकी आमदनी थी। वहां रहनेके लिए बंगला भी था। अधिक मांगनेसे और भी मिल सकता था। वहां रहकर भी वे खादीका काम तो करते ही थे; परंतु इससे उन्हें संतोष न हुआ। उनके कोमल हृदयने अनुभव किया कि इस तरह दो काम करनेसे दोनोंके बिगड़ जानेकी संभावना है। रसायनके कारखानेके तो वे प्राण ही थे। यदि उसके लिए पूरा समय न दें तो जरूर धक्का पहुंचे, और इधर खादीके द्वारा गरीबोंकी सेवा होती है। फुरसतके समयमें इस कामको करना भी उन्हें अच्छा न मालूम हुआ। एक पुरुषका दो पत्नी रखना जिस तरह पाप है उसी तरह एक पुरुषका दो कामोंको अपना प्राण बनाना भी अनर्थ-कर है। फिर खादीके लिए जितना त्याग किया, उतना कम ही है। ऐसी दलीलें अपने मनके साथ करके खुद जिस कारखानेको जमाया था उसीको उन्होंने एक क्षणमें छोड़ दिया और अपने पास जो कुछ थोड़ा द्रव्य रहा है उसीकी आमदनीसे अपना घर-खर्च चलाते हैं और चौबीसों घंटे खादी-कार्यमें ही लगाते हैं। अपने कामकी अबतक वे ११ जगह शाखाएं खोल चुके हैं। इनमें पाँच हैं खादी पैदा करनेवाली, अभी और भी खोलनेका इरादा कर रहे हैं। उनके द्वारा ५,०६० चरखे चल रहे हैं। शुद्ध खादीके करघे ५९७ चलते हैं।

उनके इस कार्यमें उनकी धर्मपत्नी भी उनका साथ देती हैं। जहां रुपयेकी कमी न थी तहां आज तंगीसे काम चलाना पड़ता है, यह उस बाई-को खलता तो होगा; जहां रहनेके लिए अलहदा बंगला था तहां आज एक छोटे-से मकानकी एक छोटी-सी मंजिलपर संतोष मानना कठिन तो पड़ता होगा, किंतु ये बाई इन तमाम तकलीफोंको प्रफुल्ल वदन हो कर सह रही हैं। (हि० न० जी०, २८.५.२५)

* * * * * * * * *

वह (सतीश बाबू) तो कुंदन जैसा है। और कुंदनके क्या कभी जेवर बने हैं? सोनेके गहने बनते हैं, क्योंकि सोनेमें थोड़ी कुधातु मिली हुई

होती है। इस तरह काम देनेके लिए थोड़ी कुधातुकी जरूरत पड़ती है, मगर सुधातु होना तो अपने आप ही शोभा देता है। (म० डा०, भाग २ २.१२.३२)

... ...

खादी प्रतिष्ठानके श्रीसतीशचन्द्र दास गुप्ता भारत-रक्षा कानूनकी २६ (१) धाराके अनुसार जारी किए गए हुक्मको न माननेके लिए गिरफ्तार किए गए हैं और उन्हें दो सालकी सजा दी गई है। उनका अपराध यह था कि उन्होंने संकटग्रस्त लोगोंको तबतक अपने घर वगैरह न छोड़नेकी सलाह दी, जबतक कि खाली किए गए घरों आदिके बदलेमें वैसा ही दूसरा प्रबंध सरकारकी ओरसे न कर दिया जाय। इस संबंधमें 'हरिजन' में मैंने जो लेख लिखे हैं और हाल ही कांग्रेसकी कार्य-समितिने जो प्रस्ताव पास किया है, श्रीसतीशबाबूका यह कार्य ठीक उसीके अनुरूप था।

इसमें कोई शक नहीं कि श्रीसतीशबाबूने जान-बूझकर हुक्मका अनादर किया था। जिला मजिस्ट्रेटके नाम लिखे गए पत्र से स्पष्ट ही यह मालूम होगा कि उन्होंने यह अनादर मानवताके खातिर, उसके तकाजेसे, किया। उस प्रदेशमें श्रीसतीशबाबू और उनके आदमी बरसोंसे काम कर रहे हैं और उन्होंने उधरके कतवैयों व जुलाहोंमें हजारों रुपये बतौर मजूरीके बांटे हैं। सतीश-बाबूके पत्रसे साफ ही यह मालूम होता है कि जनताकी शिकायत बिलकुल सच्ची है। जिस महान् युद्धके लिए यह दावा किया जाता है कि वह मानव-मन और मानव-शरीरकी मुक्तिके लिए लड़ा जा रहा है, वह उन लोगोंका दमन करके कभी जीता नहीं जा सकता, जिनका स्वेच्छापूर्ण सहयोग चाहा जाता है और चाहने योग्य है। इसमें कोई शक नहीं कि हिन्दुस्तान-की आम जनता अज्ञानमें डूबी हुई है। वह स्वभावसे गरीब है और इति-हासकारोंने उसे दुनियामें अधिक-से-अधिक भली और नम्र माना है। उनका पथ-प्रदर्शन आसानीसे किया जा सकता है। वह अपने नेताओंके

बताए रास्तेपर चलती है। इसलिए उससे काम लेनेकी उचित रीति यह है कि उसके नेताओंसे काम लिया जाय, उनसे बातचीत की जाय।

नेता दो तरहके होते हैं: एक वे, जो अपनेको नेता मानकर अपने नेतृत्व द्वारा जनताका शोषण करते हैं, उसकी आड़में अपना मतलब गांठते हैं, और दूसरे वे, जो अपनी सेवाके बल जनताके नेता बनते हैं। वे विश्वासपात्र होते हैं और जनता उन्हें मानती है। इन दोनों प्रकारोंको पहचानना बहुत आसान है। इन दूसरे प्रकारके नेताओंको जनतासे अलग करना अनुचित है।

श्रीसतीशबाबू दूसरे प्रकारकी श्रेणीमें आते हैं। गोकि वे राजनीति जानते हैं; पर राजनैतिक पुरुष नहीं हैं। वे व्यवसायी हैं और उन सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक और आजीवन लोकसेवाव्रती आचार्य पी० सी० रायके प्रिय शिष्योंमें से हैं, जिन्होंने अपने लिए कभी एक पाई भी नहीं कमाई। सुप्रसिद्ध बंगाल केमीकल वर्क्स, आचार्य रायकी अनेकानेक कृतियोंमें एक कृति है और श्रीसतीशबाबू उसके निर्माताओंमें हैं। वे इस केमीकल वर्क्सके मैनेजर थे और वहां ऊंचा वेतन पाते थे। उन्होंने वह काम छोड़ दिया और खादीके कामको अपनाकर गरीबोंकी तरह रहने लगे। उनकी धर्मपत्नीने उनका पूरा-पूरा साथ दिया और उनकी कठोर साधनामें वे उनके सुख-दुःखकी साथिन बनीं। उनके भाई और होनहार लड़कोंने भी यही किया। उनमेंसे एकका सेवा करते-करते ही देहांत हो गया। श्रीसतीशबाबूके भाई श्री क्षितीशचंद्र दास गुप्ता भी एक केमिस्ट (रसायन-शास्त्री) हैं और उन्होंने अपने आपको खादी प्रतिष्ठानकी सेवामें खपा दिया है। वे अपना सारा समय और सारी शक्ति मधुमक्खी पालने, हाथका कागज बनाने और इसी तरहके दूसरे गृह-उद्योगोंमें लगा रहे हैं। श्रीसतीशबाबूने अपने लड़कोंको उस उच्च शिक्षासे वंचित रक्खा, जो स्वयं उन्होंने प्राप्त की थी। अपने नए कार्यमें वे इतने उत्साह और शक्तिके साथ जुट गए कि खादी कार्यके विशेषज्ञ बन गए। उन्होंने खादी-

प्रतिष्ठानको जन्म दिया, जो कि उत्तर लोकसेवाकी प्रवृत्तियोंका एक महान् केन्द्र बन गया है। श्रीसतीशबाबू उन सच्चे-से-सच्चे और नम्र-से-नम्र लोगोंमें हैं, जिनके साथ मुझे काम करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। वे अपनी सारी शक्तिके साथ सत्य और अहिंसाके आदर्शके अनुसार जीवन बितानेका यत्न करते रहते हैं। इन दोनोंको उन्होंने राजनैतिक उपयोगिताकी दृष्टिसे नहीं, बल्कि जीवनके एक ध्येयकी दृष्टिसे अपनाया है। अगर इस देशका शासन इसके विजेताओंकी तरफसे जनताका शोषण करनेवाले कानूनों द्वारा न होकर देशके लोकप्रिय प्रतिनिधियों द्वारा होता तो जरूरतके वक्त श्रीसतीशबाबू-जैसे व्यक्तियोंकी सरकारी अधिकारियोंको बड़ी आवश्यकता रहती, और यह समय तो बहुत ही बड़ी जरूरतका समय है। लेकिन हमारे शासक उनका जो अधिक-से-अधिक उपयोग कर सकते हैं, सो यही है कि उन्हें उनके उन कानूनोंका अनादर करनेके लिए सजा दें, जो समूचे राष्ट्रकी इच्छाको नहीं, बल्कि एक ऐसे आदमीकी इच्छाको व्यक्त करते हैं, जिसकी हुकूमत मुल्कपर जबरदस्ती लादी गई है। श्रीसतीशबाबूने वह जोत जलाई है, जो कभी बुझेगी नहीं। कानून झूठा है, जनताके सेवक सतीशबाबू सच्चे हैं। (ह० से० २.८.४२)

: ५६ :

गोपालकृष्ण गोखले

उनका जन्म सन् १८६६ में कोल्हापुरमें एक गरीब मराठा ब्राह्मण-कुटुंबमें हुआ था। वहींके कालेजमें पढ़कर उन्होंने एफ० ए० परीक्षा पास की। इसके बाद वे बंबईके एलफिन्स्टन कालेजमें भरती हुए और

वहां से सन् १८८४ में उन्होंने बी० ए० परीक्षा पास की।

बी०ए० होने के बाद उन्हें किसी काम-धंधेसे लगनेका विचार करना पड़ा और उन्होंने शिक्षकका धंधा ही पसंद किया। उस समय 'डेकन एजुकेशन सोसाइटी' अच्छा काम कर रही थी। श्रीगोखले इस संस्थामें सम्मिलित हो गये। इस संस्थाने अपनी देख-रेखमें पूनामें चलनेवाले फर्ग्यूसन कालेजमें सत्तर रुपये मासिक पर उन्हें अर्थ-शास्त्र और इतिहासका अध्यापक नियुक्त किया। श्रीगोखलेने यहां बीस वर्षोंतक पढ़ानेकी शपथ ली। इस प्रतिज्ञाका उन्होंने पालन किया। इस प्रकारके सेवा-वृत्तिपरायण लोग जब शिक्षाके लिए अपना जीवन अर्पण करते हैं तभी शिक्षा फलदायी निकलती है और बालकोंके संस्कार तभी गढ़े जाते हैं। श्रीगोखलेने फर्ग्यूसन कालेजमें बीस वर्ष विताए। उस बीच यद्यपि सभाओं और समाचारपत्रों द्वारा उनके दर्शन अधिक नहीं हुए, तथापि बहुतसे युवकोंको अपने मनका विकास करने और अपने आचरणको दृढ़ करनेके लिए आगेका पोषण उन्हीं वर्षोंमें उन्हींसे प्राप्त हुआ।

श्रीगोखले जब फर्ग्यूसन कालेजमें थे तब शिक्षाके कामके सिवा अन्य कार्यमें भी ध्यान दे रहे थे। जिस समय वे कालेजमें दाखिल हुए, उस समय स्वर्गीय श्रीमहादेव गोविन्द रानडेके संपर्कमें आए थे और विशेषकर उन्हींकी देख-रेखमें उनका चारित्र्य गढ़ा गया था। न्यायमूर्ति रानडेके प्रवीण हाथके नीचे बारह वर्षों या इससे भी अधिक समय तक श्रीगोखलेने अर्थ-शास्त्रका अध्ययन किया था। परिणाम-स्वरूप श्रीगोखले उन थोड़े-से लोगोंमें से हैं, जिनके शब्द हिन्दुस्तानमें आर्थिक प्रश्नोंपर आधार-भूत माने जाते हैं। श्रीगोखलेका स्वर्गीय श्रीरानडेके प्रति बहुत ही पूज्य भाव है और वे उन्हें गुरुके रूपमें मानते हैं। १८८७ में श्रीरानडेकी इच्छा-से पूना सार्वजनिक सभाकी ओरसे प्रकाशित होनेवाले 'क्वार्टर्ली जरनल' का संचालकत्व उन्होंने स्वीकार कर लिया। इसके बाद शीघ्रही वे डेकन

सभाके अवैतनिक मंत्री नियुक्त किये गए। पूनाके अंग्रेजी-मराठी साप्ताहिक 'सुधारक' के भी वे संचालक थे। बंबईकी प्रांतीय कान्फ्रेन्सके वे चार साल तक मंत्री थे। १८९५ में पूनामें हुई कांग्रेसके भी वे मंत्री नियुक्त किये गए थे। सार्वजनिक कार्योंमें उनकी रुचि और उत्कंठाने इतनी अधिक ख्याति प्राप्त की कि उन्हें 'दक्षिणके उदीयमान् तारे' की उपमा दी जाती। उनकी प्रसिद्धि इतनी फैली कि भारतके खर्चके संबंधमें विचार करनेके लिए विलायतमें नियुक्त किये गए वेल्बी-कमीशनके सामने गवाही देनेके लिये बंबईकी जनताने श्री वाच्छाके साथ उन्हें भी चुना था। वहां उन्होंने कीमती बयान दिया था।

जिस समय वे इंगलैंडमें थे, उस समय उन्होंने हिंदुस्तानके मामलेके बारेमें कई भाषण दिए थे। प्लेगके संबंधमें बंबई सरकार जिस ढंगसे काम कर रही थी और कामपर रोके गए सैनिकोंने जो थर्रा देनेवाले काम किए थे, उनकी कड़ी टीका छपवाकर उन्होंने वहां निकाली थी। इसके कुछ समय बाद वे बंबईकी धारासभाके सदस्य चुने गए। १९०२ में २५) की पेन्शन लेकर वे फर्ग्यूसन कालेजसे पृथक् हुए। उसी समय बंबईके प्रतिनिधि सर फीरोजशा मेहताकी बीमारीके कारण केन्द्रीय धारासभामें उनकी जगह श्रीगोखले चुने गए। यह काम उन्होंने इतनी सुंदरतासे किया कि उस समयसे लेकर अबतक उस जगहके लिए वे बार-बार चुने जाते रहे हैं।

बड़ी धारासभामें चुने जानेके बादसे उनकी कार्य-कुशलताका नया प्रकरण आरंभ हुआ। स्वदेश-सेवामें उनकी भारी-से-भारी जीतके इतिहास-रूपमें वह बना हुआ है। बजटके समयका उनका पहला ही भाषण प्रेरणाप्रद माना जाता है। उस समयसे बजटके अवसरपर उनके भाषणोंके बारेमें सब लोगोंको बड़ी आतुरता रहती है। साल-दरसाल वे बताते रहे हैं कि साल-भरके हिसाबमें जो रकम शेष बताई जाती है, वह कितनी गलत होती है और उससे जनसंख्या कितनी अप्रामाणिक हो जाती है।

साल-दरसाल वे यह मांग करते रहे हैं कि सरकारी विभागोंमें अधिक परिमाणमें भारतीयोंको नौकरी दी जाय। साल-दरसाल फौजी खर्च घटानेकी वे हिमायत करते रहे हैं। साल-दरसाल नमक-कर रद करने और कृषि तथा उद्योग-धंधोंकी शिक्षाके प्रसारकी वे मांग करते रहे हैं और निःशुल्क तथा अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा जारी करने एवं इसी प्रकारके अन्य सुधार करनेका वे साल-दरसाल आग्रह करते रहे हैं। नमक-करमें जो कमी हुई है, वह अधिकांशतः उनकी हिमायतसे ही हुई है।

हिंदुस्तानके अनेक उच्च-से-उच्च पदाधिकारियोंकी उनसे मित्रता है और मिजाज़ के तेज़ वाइसराय लार्ड कर्जन भी उन्हें अपने बराबरीके प्रतिस्पर्द्धीके रूपमें मानते थे। उन्होंने कहा था कि श्रीगोखलेके साथ पटाना एक आनंददायक बात है। उन्हें यह भी कहते सुना गया है कि उनके संपर्कमें आये मनुष्योंमें श्रीगोखले सबसे बलवान हैं। यद्यपि श्रीगोखले कौन्सिलमें लार्ड कर्जनके ऐसे विरोधी थे जो कभी उन्हें ढील न देते थे, तथापि उनकी योग्यता और सुंदर व्यवहारके प्रति सम्मानके प्रतीक-स्वरूप उन्हें सी० आई० ई० का खिताब दिया था और खिताब दिए जानेके अवसरपर उन्हें बधाईका एक व्यक्तिगत पत्र भी लिखा था।

श्रीगोखले कांग्रेसकी गति-विधिमें शुरूसे ही शामिल थे। कांग्रेस-की बहुत-सी सभाओंमें वे उपस्थित रहे हैं और उन्होंने भाषण दिए हैं। उनका सबसे अधिक उल्लेखनीय भाषण बंबईकी कांग्रेसके अंदर हिंदुस्तानके कोषकी सिलकके बारेमें दिया गया भाषण था। सर हेनरी काटनके कथनानुसार वह भाषण आम सभा (हाउस आव कामन्स) में सुने गए सुंदर-से-सुंदर भाषणकी बराबरी करनेवाला था।

हिंदुस्तानकी राजनैतिक स्थितिसे विलायतकी जनताको अवगत करनेके लिए बंबईकी जनताने एक प्रतिनिधिके रूपमें उन्हें १९०५ में वहां भेजा था। वह काम उन्होंने बहुत संतोषजनक रूपमें पूरा किया

था। पचास दिनोंमें कुछ नहीं तो पैंतालीस भाषण दिए। हिंदुस्तानके ब्रिटिश राज्यके विषयमें लोकमत प्रकट करनेकी उनकी खूबीसे बहुतसे चालाक अंग्रेज भी आश्चर्यचकित रह गए थे। वे इंगलैंडसे रवाना हुए, उसके पहले ही बनारसकी पुण्य-भूमिमें होनेवाली कांग्रेसके अध्यक्ष चुने जा चुके थे। बनारसमें कांग्रेसमें अध्यक्षपदसे दिया गया उनका भाषण अत्यन्त स्पष्ट और प्रवीणताका नमूना था। बनारस कांग्रेसके बाद शीघ्र ही वे फिर विलायत गए और इस बार लार्ड मार्लेके साथ उनकी बहुत बार मुलाकातें हुईं। लार्ड मिन्टोकी नए सुधारोंकी योजनाके संबंधमें १९०९ में वे फिर विलायत गए थे।

श्रीगोखलेने बार-बार जोर देकर कहा है कि इस बातकी अत्यंत आवश्यकता है कि राजनैतिक कामके लिए शरीर अर्पण कर देनेवाले थोड़े-बहुत लोग हर प्रांतमेंसे निकल पड़ें। सच तो यह है कि ऐसे राजनैतिक संन्यासियोंका मार्ग रचनेकी उनकी दीर्घकालीन अभिलाषा थी, जिनका ध्येय ही स्वदेश-सेवा हो। यह अभिलाषा हालमें ही प्रकट हुई है। 'भारत-सेवक-समिति' से हिंदुस्तानकी जनता वाकिफ हो गई है। इस समिति हेतु बहुत अच्छे हैं और हम सबकी कामना है कि भविष्यमें इस देशकी बड़ी-से-बड़ी सेवा करनेमें वह अधिक-से-अधिक शक्तिमान होती जाय।

श्रीगोखलेकी भाषण देनेकी पद्धतिके बारेमें दो शब्द कह दूं। वे कोई वक्ता नहीं हैं। श्रोताओंकी भावनाओंको उभाड़नेकी ओर उनका विशेष लक्ष्य नहीं रहता। अपनी बात सामनेवालेके मनमें पूरी तरह उतारना ही उनका उद्देश्य रहता है। वे शीघ्रतासे बोलते हैं। भरपूर आंकड़े और विवरण उनका सरंजाम है। उनकी समझनेकी शक्ति बहुत तीक्ष्ण और उत्साहपूर्ण है। उनका बोलनेका ढंग सादा, किंतु स्पष्ट और जोरदार है।

श्रीगोखले बहुत उत्साही सुधारक हैं। वे पूनासे प्रकाशित होने वाले

मराठी दैनिक 'ज्ञानप्रकाश' को भी चलाते हैं और उसके द्वारा अपने सामाजिक और राजनैतिक विचारोंका प्रचार करते हैं। ऐसा कहा जा सकता है कि उनका रहन-सहन अत्यंत सादा और उग्र तपवाला है। सच कहें तो, जैसा कि प्रसिद्ध पत्रकार श्री नेविन्सनने कहा है, एक सच्चे ब्राह्मणके रूपमें उन्होंने अपना जीवन गरीबी और ज्ञानमें होम दिया है। अत्यंत प्राचीन भारतीय रीति, सादा जीवन और उच्च विचारका इससे अच्छा नमूना दूसरा नहीं मिल सकता।

श्रीगोखलेके अंतिम बड़े कार्योंमें शिक्षाका बिल और भारतीय मजदूरोंकी अनिवार्य गुलामीको बंद करनेका प्रयास है। शिक्षाका बिल वाइसरायकी धारासभाके सामने पेश किया गया था। अन्य प्रजाकीय बिलोंकी जो दशा होती है, वही दशा श्रीगोखलेके बिलकी हुई है, फिर भी उन्हें हिंदके सभी भागों और सभी जातियोंकी ओरसे इतना अधिक सहयोग प्राप्त हुआ है कि उस एकत्र बलके सामने सरकार ज्यादा दिनों तक टिक नहीं सकेगी।

इस देशमें 'गिरमिट'[१] बंद हो गया, इसके लिए हम श्रीगोखलेके बहुत आभारी हैं। स्वयं अनेक कार्योंमें फंसे रहने और बीमार रहनेपर भी इस प्रश्नका उन्होंने कितना गहरा अध्ययन किया है, यह जाननेके लिए हिंदकी धारासभामें दिया गया उनका भाषण आईनेकी तरह है।

गिरमिटके प्रश्नके उपरांत हमारी तकलीफोंकी ओर उन्होंने हार्दिकतासे नजर रखी है और सत्याग्रहकी लड़ाईमें कीमती मदद दी है। हमारे प्रति उनकी सहानुभूति बढ़कर इस सीमातक पहुंच गई है कि उन्होंने इस देशमें (दक्षिण अफ्रीकामें) आकर हमारी स्थितिको जाननेका निश्चय किया है।

---

[१] मजदूरीके लिए विदेश जानेवाले भारतीयोंसे करवाया जानेवाला इकरार।

मातृभूमिकी सेवामें अपनी पूरी जिंदगी अर्पण करनेवाले माननीय गोखले जैसा बुद्धिमान और तेजस्वी बनना हमारे बसकी बात नहीं; किंतु उनकी भांति अपने काममें एकरस हो जाना हममेंसे प्रत्येकके बसकी बात है। श्रीगोखले स्वयं जो कुछ मानते हैं, उसमें एकरस हैं, इसीलिए सारा देश और मित्र और सब लोग समान रूपसे उनका सम्मान करते हैं।....वे दीर्घायु हों और हम कामना करेंगे कि उनकी छाप हमारे हृदयमें कभी मंदी न पड़े। (इं० ओ०, १६१२)

... ...

श्रीगोखलेके उद्देश्यको मैं पवित्र मानता हूं। किंबरलीमें प्रमुख-से-प्रमुख गोरे और भारतीय मिलकर भोजन करने एक मेजपर बैठे, इस प्रसंगमें श्रीगोखले कारणरूप बने, यह मेरे मनमें गर्वका विषय है। टाल्स्टायके जीवन और शिक्षणके एक नम्र अभ्यासीके रूपमें मुझे ऐसा भी लगता है कि ऐसे समारोह अनावश्यक हैं और अनेक बार इससे बहुतसे नुकसान—कुछ नहीं तो पाचन-क्रियामें खलल डालनेका नुकसान—होने लगता है; किंतु मैं टाल्स्टायके जीवनका अभ्यासी हूं, फिर भी यदि इससे एक-दूसरेको अधिक अच्छी तरह पहचाननेका अवसर मिलता हो तो इसमें खामी निकालनेके लिए मैं तैयार नहीं। इस प्रसंगपर मुझे एक सुंदर अंग्रेजी भजन—वी शैल नो ईचअदर व्हेन दि मिस्ट्स हैव् रोल्ड अवे (We shall know each other when the mists have rolled away)—याद आता है। हममेंसे अज्ञान दूर हो जाय, हम एक-दूसरेके बीच मतभेद होनेपर भी एक-दूसरेके भाव अधिक समझ सकें। मेरे प्रख्यात देशी भाई यहां जो आए हैं, सो इस अज्ञानकी आंधीको दूर करनेके लिए ही आए हैं। कीमती-से-कीमती जवाहरके रूपमें, हिंद जिसे यहां भेज सकता था, वे यहां आए हैं। मैं जानता हूं कि जब श्रीगोखलेके कार्योंके बारेमें मैं कुछ कहता हूं तो उनकी भावनाओंको ठेस पहुंचती है, फिर भी मुझे कर्त्तव्यका पालन करना चाहिए। हिंदुस्तानमें श्रीगोखलेने राजनैतिक

क्षेत्रमें जो कीर्त्ति प्राप्त की है, उसके विषयमें यहां मेरे बराबर और कोई कह सके, ऐसा नहीं है । हिंदुस्तानके वाइसराय तो सिर्फ पांच बरसतक ही हिंदुस्तानकी सल्तनतका बोझ अपने सिरपर उठाते हैं (कभी-कभी लार्ड कर्जन-जैसे सात बरस तक उठाते हैं) और सो भी अनगिनत अफसरोंकी मददसे; किंतु ये मेरे एक विख्यात देशी भाई इस प्रकार की किसी भी सहायताके बिना, नौकरोंके बिना और मान-पदके बिना, सल्तनतका बोझ अकेले उठाए हुए हैं । यह सही है कि इनके पास सी० आई० ई० का खिताब है; किंतु मेरे मतसे उससे बहुत अधिक बड़े-बड़े पदोंके वे पात्र हैं । श्रीगोखले जिस पदको चाहते हैं, वह उनके देशी भाइयोंके प्रति प्रेम और अपनी अंतरात्माकी सम्मति है । पश्चिमकी शिक्षा पाए हुए भारतीयोंके लिए वे नम्रता और भलमनसाहतके उदाहरण-स्वरूप हैं ।*. . .

. . .   .

माननीय गोखलेजीकी 'गिरमिट'-संबंधी प्रवृत्ति उनकी तन्मयताकी जैसी झांकी कराती है, वैसी दूसरी कोई प्रवृत्ति नहीं कराती । उनका दक्षिण अफ्रीकाका प्रवास और उसके बाद हिंदमें की जानेवाली उनकी गतिविधि, अपने कार्यमें ओतप्रोत हो जानेकी उनकी शक्तिका हमें अच्छा दिग्दर्शन कराती है, और उनकी इस शक्तिके कारण ही अनेक बार मैंने कहा है कि उनके कार्योंमें हम छिपी हुई धर्मवृत्तिको देख सकते थे ।

अब हम उनके दक्षिण अफ्रीकाके कार्यको जरा देखें । जब उन्होंने दक्षिण अफ्रीका जानेके विषयमें अपना मत प्रकट किया तब हिंदुस्तानकी सरकारके अफसरोंमें खलबली मच गई । दक्षिण अफ्रीकामें गोखलेजी-जैसे मनुष्यका अपमान हो तो उसे क्या कहा जायगा ? दक्षिण अफ्रीका

---

* महात्मा गोखलेका सम्मान करनेके लिए किंबरलीके मेयरके सभापतित्वमें नवंबर १९१२में हुए भारी समारोहके अवसरपर गांधीजी द्वारा दिए गए भाषणका अंश ।

जानेका विचार यदि वे छोड़ दें तो कितना अच्छा हो ? किंतु उनसे इस बारेमें कहनेकी कौन हिम्मत करे ? दक्षिण अफ्रीका जाना क्या है, इसका अनुभव गोखलेजीको इंग्लैंडमें ही हुआ। उन्होंने अपने लिए टिकट मंगवाया; किंतु यूनियन केसल कंपनीके अधिकारियोंने कुछ भी ध्यान न दिया। यह खबर इंडिया आफिसमें पहुंची। इंडिया आफिसने सर ओवन ट्यूडरको, जो यूनियन केसल कंपनीके मैनेजर थे, सख्त ताकीद की कि कंपनीको गोखलेजीका उनके पदके योग्य सम्मान करना चाहिए। परिणाम यह निकला कि गोखलेजी एक सम्मानित अतिथिके रूपमें स्टीमरमें प्रवास कर सके। इस प्रसंगका वर्णन करते हुए उन्होंने मुझसे कहा, "मुझे अपने व्यक्तिगत सम्मानकी आवश्यकता नहीं; किंतु अपने देशका सम्मान मेरे लिए प्राणके समान है और इस समय मैं एक प्रमुख व्यक्तिके रूपमें आ रहा था, इसलिए मेरा अपमान हुआ तो वह हिंदका अपमान होनेके समान है, यह मानकर मैंने स्टीमरमें अपने मानके योग्य सुविधा प्राप्त करनेके लिए प्रयत्न किया।" उपर्युक्त घटनाके फलस्वरूप इंडिया आफिसने कोलोनियल आफिसके मार्फत ऐसी तजवीज की थी कि दक्षिण अफ्रीकामें भी गोखलेजीका पूरा-पूरा सत्कार हो। इसलिए यूनियन सरकारने पहलेसे ही उनके सत्कारकी व्यवस्था कर रक्खी थी। उनके लिए एक सैलून तैयार करवा रक्खा था और यात्राके समय रसोइये आदि रखनेका भी इंतजाम किया था। उनकी सार-संभालके लिए एक अफसर तैनात किया गया था। भारतीय जनताने तो स्थान-स्थानपर ऐसा सम्मान करनेकी तजवीज कर रक्खी थी, जो बादशाहको भी न मिल सके। गोखलेजीने यूनियन सरकारका आतिथ्य केवल यूनियनकी एक राजधानी प्रिटोरियामें ही स्वीकार किया। शेष सभी स्थानोंपर वे भारतीयोंके अतिथि रहे। केपटाउनमें दाखिल हुए कि तुरंत उन्होंने दक्षिण अफ्रीकाके प्रश्नका विशेष अध्ययन शुरू कर दिया। इस विषयका जो सामान्य ज्ञान लेकर

वे केपटाउनमें उतरे थे, वह भी ऐसा-वैसा नहीं था; किंतु उनके हिसाबसे वह पर्याप्त न था। दक्षिण अफ्रीकाके अपने चार सप्ताहके प्रवासमें उन्होंने वहांके भारतीयोंकी समस्याका इतना गहरा अध्ययन किया कि जो लोग भी उनसे मिलते, वे उनके ज्ञानसे आश्चर्यचकित हो जाते। जब जनरल बोथा और जनरल स्मट्ससे मिलनेका समय आया तब उन्होंने इतने अधिक विवरण तैयार करवाये कि मुझे लगा कि इतना परिश्रम वे किस लिए कर रहे हैं। उनकी तबीयत बराबर बहुत खराब थी, अत्यंत सार-संभाल रखनेकी जरूरत थी। लेकिन ऐसी तबीयत रहनेपर भी रातके बारह-बारह बजे तक काम करते और फिर दो बजे या चार बजे उठ जाते और कासिदको बुलाने लगते। परिणाम-स्वरूप जनरल बोथा और जनरल स्मट्ससे हुई उनकी मुलाकातमेंसे गिरमिटके तीन पौंडके वार्षिक करकी सत्याग्रहकी लड़ाई पैदा हुई। यह कर १८९३ से गिरमिट-मुक्त पुरुषों, उनकी स्त्रियों और उनके लड़के-लड़कियोंपर लगाया जाता था। यदि गिरमिट मुक्त-व्यक्ति कर न देना चाहता तो कानून द्वारा उसका भारत वापस जाना अनिवार्य बना रक्खा था। इसलिए गिरमिटमें, वास्तवमें, गुलामीमें पड़े हुए भारतीयोंकी दशा बहुत ही संकटपूर्ण बनी हुई थी। सर्वस्व त्यागकर बाल-बच्चोंतकके साथ दक्षिण अफ्रीका आया हुआ भारतीय हिंदुस्तान वापस जाकर क्या करे? यहां तो उसके भाग्यमें भुखमरी ही रही। जीवन-पर्यंत गिरमिटमें भी कैसे रहा जा सके? उसके आस-पासके स्वतंत्र मनुष्य हर महीने चार पौंड, पांच पौंड, १० पौंड कमाते हों तो स्वयं १४ से १५ शिलिंग मासिक लेकर कैसे संतुष्ट रह सके? और अलग होना चाहता हो तो मान लीजिए कि उसके एक लड़का और एक लड़की हो तो स्त्री-सहित सब मिलाकर उसे हर साल १२ पौंडका कर देना चाहिए। यह भारी कर वह किस प्रकार दे? जबसे यह कर चालू हुआ तबसे भारतीय कौम उसके विरुद्ध भारी लड़ाई चला रही थी। हिंदुस्तानमें भी

उसकी प्रतिक्रिया हुई थी ; किंतु अभी तक यह कर समाप्त न हो सका था। गोखलेजीको बहुत-सी मांगोंमें इस करको उठानेकी भी मांग करनी थी। वे इस प्रकार व्यथित हो उठे थे, जैसे अपने गरीब भाइयों-के ऊपरका यह बोझ स्वयं उन्हीं पर हो। जनरल बोथाके सामने उन्होंने अपने आत्माकी संपूर्ण शक्तिका प्रयोग किया। उनके बोलनेका प्रभाव जनरल बोथा और जनरल स्मट्सपर ऐसा पड़ा कि वे पिघल गए और उन्होंने वचन दिया कि आगामी यूनियन पार्लामेंटमें यह कर रद कर दिया जायगा। गोखलेजीने यह खुशखबरी बहुत हर्ष-पूर्वक मुझे दी। इन अधिकारियोंने और भी वचन दिए थे; किंतु अभी हम गिरमिटके विषयपर ही विचार कर रहे हैं, अतः यूनियन सरकारके साथके उनके मिलापका इतना ही अंश मैं यहां देता हूं। पार्लामेंट बैठी। गोखलेजी तो दक्षिण अफ्रीकामें थे नहीं और दक्षिण अफ्रीकामें बसे भारतीयोंको मालूम हुआ कि तीन पौंडका कर तो नहीं उठाया जा सकता। जनरल स्मट्सने नेटालके सदस्योंको समझानेका थोड़ा-बहुत प्रयत्न किया था। मेरे हिसाबसे यह काफी न था। भारतीय कौमने यूनियन सरकारको लिखा कि तीन पौंड वाला कर, चाहे जैसे हो, उठानेको यूनियन सरकार गोखलेजीके साथ वचनबद्ध थी। अतः यदि उसने यह कर नहीं उठाया तो जो सत्याग्रह १९०६ से चल रहा था, उसके अंदर इस करकी बात भी दाखिल हो जायगी। दूसरी तरफ तारसे गोखलेजीको खबर दी गई। उन्होंने यह कदम पसंद किया। यूनियन सरकारने भारतीय कौमकी चेतावनीपर ध्यान नहीं दिया। उसका परिणाम सब लोग जानते हैं। गिरमिटमें रहनेवाले ४० हजार भारतीय सत्याग्रहकी लड़ाईमें शामिल हुए। उन्होंने हड़ताल की, असह्य दुःख सहन किए, बहुत-से मारे गए; किंतु अंत में गोखलेजीको दिए गए वचनका पालन किया गया और वह कर उठा लिया गया। ('धर्मात्मा गोखले', पृष्ठ २४)

... ...

आप लोगोंने मुझे गोखले पुस्तकालयके उद्‌घाटन और उनके चित्रके अनावरणके लिए बुलाया है। यह काम बहुत पवित्र है और उतना ही गंभीर भी है।

................गोखले नामके भूखे तो न थे। इतना ही नहीं, वरन् उन्हें यह भी अच्छा न लगता था कि उनका मान हो। अनेक बार मान मिलते समय वे नीचे देखने लगते। यदि ऐसा माना जाता हो कि गोखलेके चित्रके अनावरणसे ही उनकी आत्माको शांति मिलेगी तो यह धारणा सच्ची नहीं। मरते समय उस महात्माने अपना आदर्श कह सुनाया था, और वह यह कि मेरे बाद मेरा जीवनचरित लिखा जायगा या मेरे लिए स्मारक बनेगा और शोक-प्रदर्शक सभाएं होंगी; किंतु उससे मेरी आत्माको शांति मिलनेवाली नहीं है। मेरी यही अभिलाषा है कि मेरा जीवन ही समस्त हिंदका जीवन बने और भारत-सेवक-समिति की प्रगति हो। इस वसीयतनामेको जो लोग मंजूर करते हों, उन्हें गोखले-का चित्र रखनेका अधिकार है।

गोखलेके जीवनका विस्तार विशाल है। उनके जीवनके कुछ कौटुं-बिक प्रसंग आज यहां आई हुई बहनोंको सुनाऊंगा। यह बात बहनोंके याद रखने लायक है कि गोखलेने अपने कुटुंबकी सेवा अच्छी तरह की है। उनका आचरण ऐसा न था कि जिससे कुटुंबके लोगोंका जी दुखे। जैसा कि आज हिंदू-संसारमें गुड़ियाके विवाहकी भांति लड़कीको आठ बरसकी करके उसे दरियामें धकेल दिया जाता है, वैसा गोखलेने नहीं किया। उनकी लड़की अभी कुमारी है। उसे ऐसा रखनेमें उन्होंने बहुत सहन-शीलता दिखाई है। इसके सिवा भरी जवानीमें उनकी पत्नी चल बसी थीं। फिरसे उन्हें पत्नी मिल सकती थी; किंतु उन्होंने ऐसा नहीं किया। कुटुंब-सेवा तो उन्होंने अनेक प्रकारसे की है और सामान्य रूपसे तो सभी लोग कुटुंब-सेवा करते होंगे; किंतु स्वार्थ-दृष्टिसे और स्वदेश-हितकी वृत्तिसे, दो प्रकारसे कुटुंब-सेवा होती है। गोखले ने स्वार्थवृत्तिको तिलां-

जलि दे दी थी। कुटुंबके प्रति, उसके बाद ग्रामके प्रति और अनंतर देशके प्रति, इस प्रकार जिस समय जो प्रसंग आया, वैसे ही कर्त्तव्य-का पालन उन्होंने संपूर्ण साहस, लगन और श्रमसे किया।

गोखलेके मनमें हिंदू-मुसलमानका भेद-भाव न था। वे सभीको समदृष्टिसे और स्नेह-भावसे देखते थे। कभी-कभी वे गुस्सा भी हो जाते थे; किंतु उनका वह क्रोध स्वदेश-हितसे संबंध रखनेवाला और सामनेवालेके मनपर अच्छा ही असर डालनेवाला सिद्ध होता था। वह गुस्सा ऐसा था कि उसके असरसे बहुत-से यूरोपियन भी, जो शत्रुता प्रकट करते थे, घनिष्ट मित्र-जैसे बन गए थे।

गोखलेके समग्र जीवनपर दृष्टि डालनेवालेको मालूम होगा कि उन्होंने अपना सारा जीवन स्वदेश-सेवामय बना दिया था। पचास वर्षके अंदरकी उम्रमें ही वे इस नश्वर जगत्‌को छोड़कर चले गये। इसका कारण यही है कि वे दिनके चौबीसों घंटे मानसिक और शारीरिक शक्ति बहुत श्रम-पूर्वक स्वदेश-सेवामें खर्च करते थे। उनके मनमें ऐसी संकुचित भावना न थी कि मैं स्वहित या स्वकुटुंबके लिए क्या करके जा रहा हूं; किन्तु देशके लिए क्या करके जा रहा हूं, ऐसी ही उनकी भावना थी।

हमारे हिंदके एक समर्थ बलरूप अंत्यजवर्गके उद्धारका प्रश्न भी महात्मा गोखलेको रोज खटकता था और उनकी उन्नतिके लिए बहुत-से कार्य उन्होंने किये थे। कोई उनके वैसा करनेपर आपत्ति करता तो वे स्पष्ट शब्दोंमें कह देते कि हमारे भाई अंत्यजको छूनेसे हम भ्रष्ट नहीं होते; किंतु न छूनेकी दुष्ट भावनासे ही घोर पापमें गिरते हैं।...

उमरेठके नेताओंका कर्त्तव्य है कि अपने देशी उद्योगोंको पनपावें और उन्हें उत्तेजन दें। यदि ऐसी भावना न हो तो उन्हें गोखले-जैसे परमार्थी संतका चित्र रखनेका हक नहीं। महात्मा गोखलेके प्रति वे

सद्भाव प्रदर्शित करते हैं और उनके कर्त्तव्यको उमरेठ जान गया है, यह संतोषकी बात है।*

. . . .

उन्हीं दिनों स्वर्गीय गोखले दक्षिण अफ्रीका आए। तब हम फार्मपर ही रहते थे। उस प्रवासके वर्णनके लिए एक स्वतंत्र अध्याय की जरूरत है। अभी तो एक कड़ुवा-मीठा संस्मरण है, उसीको यहां लिख देता हूं। फार्ममें खाटके जैसी कोई वस्तु ही नहीं थी। पर गोखलेजीके लिए हम एक खाट मांगकर लाए। वहांपर ऐसा एक भी कमरा नहीं था, जिसमें रहकर उन्हें पूरा एकांत मिल सके। बठनेके लिए पाठशालाके बेंच थे। पर इस स्थितिमें भी कोमल शरीरवाले गोखलेजीको फार्मपर बिना लाए हम कैसे रह सकते थे? और वह भी उसे बिना देखे क्योंकर रह सकते थे? मेरा खयाल था कि उनका शरीर एक रातभरके लिए कष्ट उठा सकेगा और वह स्टेशनसे फार्मतक करीब डेढ़ मील पैदल भी चल सकेंगे। मैंने उन्हें पहले हीसे पूछ रक्खा था। अपनी सरलताके कारण उन्होंने बिना बिचारे मुझपर विश्वास रख सब व्यवस्थाको कबूल भी कर लिया था। संयोगसे उसी दिन बारिश आगई। ऐन वक्तपर एकाएक मैं भी कोई फेरफार नहीं कर पाया। इस तरह अज्ञानमय प्रेमके कारण मैंने उनको उस दिन जो कष्ट दिया, वह कभी नहीं भुलाया जा सकता। वह भारी परिवर्त्तनको तो कदापि नहीं सह सकते थे। उन्हें खूब जाड़ा लगा। खाना खानेके लिए पाकशालामें भी उन्हें नहीं ले जा सके। मि० कैलनबेकके कमरेमें उन्हें रक्खा गया था। वहां पहुंचते-पहुंचते तो सब खाना ठंडा हो जाता। उनके लिए खुद मैं 'सूप' बना रहा था और भाई कोतवालने रोटियां बनाईं। पर यह सब गरम कैसे रहे? ज्यों-त्यों करके भोजना-

---

* नवंबर १९१७ में उमरेठके भारतीयों द्वारा महात्मा गोखलेके नाम पर स्थापित पुस्तकालयका उद्घाटन-भाषण)

ध्याय समाप्त हुआ। पर उन्होंने मुझे एक शब्द भी नहीं कहा। हां, उनके चेहरेपरसे मैं सबकुछ और अपनी मूर्खताको भी जान गया। जब देखा कि हम सब जमीनपर सोते थे तब तो उन्होंने भी खाटको अलग कर दिया और अपना बिस्तर जमीनपर ही लगवा लिया। रातभर मैं पड़ा-पड़ा पश्चात्ताप करता रहा। गोखलेजीको एक आदत थी, जिसे मैं कुटेव कहता था, वह केवल नौकरसे ही काम लेते थे। ऐसे लंबे प्रवासोंमें वह नौकरोंको साथ नहीं रखते थे। मि० कैलनबेकने और मैंने कई बार उनके पैर दबा देनेके लिए प्रार्थना की; पर वह टस-से-मस नहीं हुए। अपने पैरोंको हमें स्पर्शतक नहीं करने दिया। उल्टा कुछ गुस्सेमें और कुछ हँसीमें कहा—"मालूम होता है, आप सब लोगोंने समझ रखा कि दुःख और कष्ट उठानेके लिए केवल आप ही पैदा हुए हैं और मुझ-जैसे आपको केवल कष्ट देनेके लिए। लो, भुगतो अब अपनी 'अति' की सजा! मैं तुम्हें अपने शरीरको स्पर्श तक नहीं करने दूंगा। आप सब लोग तो नित्य-क्रियाके लिए मैदानमें जावेंगे और मेरे लिए कमोड रख छोड़ा है! क्यों? खैर, परवाह नहीं। आज तो मैं जरूर आपका गर्व दूर करूंगा, चाहे इसके लिए कितना ही कष्ट हो।" यह वचन तो वज्रके समान थे। कैलनबेक और मैं दोनों उदास हो गए। पर उनके चेहरे पर कुछ-कुछ हँसी भी थी। बस यही हमें आश्वासन दे रही थी। अर्जुनने अज्ञानवश श्रीकृष्णको कितना ही कष्ट क्यों न दिया हो, पर क्या यह सब श्रीकृष्णने याद रक्खा होगा? गोखलेजीने तो केवल सेवाको ही याद रक्खा और खूबी यह कि सेवा तो करने भी न दी। मोंबासासे लिखा हुआ उनका वह प्रेम-भरा पत्र मेरे हृदयपर अंकित है। उन्होंने आप कष्ट उठा लिया, पर हम उनकी जो सेवा कर सकते थे, वह भी उन्होंने नहीं करने दी। हमारा बनाया भोजन तो खैर खाना ही पड़ा, नहीं तो और करते ही क्या!

दूसरे दिन सुबह न तो उन्होंने खुद ही आराम लिया, न हमें लेने दिया। उनके भाषणोंको, जिन्हें हम पुस्तक रूपमें छपानेवाले थे, उन्होंने दुरुस्त

किया। उन्हें कुछ भी लिखना होता तो पहले वह यहांसे वहांतक टहलते-टहलते विचार कर लेते। उन्हें एक छोटा-सा पत्र लिखना था। मेरा ख्याल था कि वह फौरन लिख डालेंगे, पर नहीं। मैंने टीका की, इसलिए मुझे व्याख्यान सुनना पड़ा। "मेरा जीवन तुम क्या जानो! मैं छोटी-से-छोटी बातमें भी जल्दी नहीं करता। उसपर विचार करता हूं। उसके मध्यबिंदुपर ध्यान देता हूं, विषयोचित भाषा गढ़ता हूं और फिर कहीं लिखता हूं। इस तरह यदि सभी करें तो कितना समय बच जाय और समाजका कितना लाभ हो। आज समाजको जो इन अपरिपक्व विचारोंके कारण हानि उठानी पड़ती है उससे वह बच जाय।" (द० अ० स०, १९२५)

. . . .

गोखलेजी तथा अन्य नेताओंसे मैं प्रार्थना कर रहा था कि वे दक्षिण अफ्रीका आकर यहांके भारतीयोंकी स्थितिका अध्ययन करें। इस बातमें पूरा-पूरा संदेह था कि कोई आवेगा भी या नहीं। मि० रिच भी किसी नेताको भेजनेकी कोशिश कर रहे थे। पर ऐसे समयमें वहां आनेकी हिम्मत कौन कर सकता था जब लड़ाई बिलकुल मंद हो गई हो? सन् १९११ में गोखले इंग्लैंडमें थे। दक्षिण अफ्रीकाके युद्धका अध्ययन तो उन्होंने अवश्य ही कर लिया था; बल्कि धारासभाओंमें चर्चा भी की थी। गिरमिटियाओंको नेटाल भेजना बंद करनेका प्रस्ताव उन्होंने धारासभामें पेश किया था, जो स्वीकृत भी हो गया था। उनके साथ मेरा पत्र-व्यवहार बराबर जारी था। भारत-सचिवके साथ वह इस विषयमें कुछ मशविरा कर रहे थे और उन्होंने दक्षिण अफ्रीका जाकर उस प्रश्नका ठीक-ठीक अध्ययन करनेकी इच्छा भी प्रकट की थी। भारत-सचिवने उनके इस विचारको पसंद भी किया था। गोखलेजीने छः सप्ताहके प्रवासकी योजना और कार्यक्रम बनानेके लिए मुझे लिख भेजा और साथ ही वह अंतिम तारीख भी लिख भेजी, जब वह दक्षिण अफ्रीकासे विदा होना चाहते थे। उनके

शुभागमनकी वार्ता पढ़कर हमें तो इतना आनंद हुआ कि जिसकी हद नहीं। आजतक किसी नेताने दक्षिण अफ्रीकाका सफर नहीं किया था। दक्षिण अफ्रीकाकी तो ठीक; पर प्रवासी भारतवासियोंकी दशाका अवलोकन और ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छासे भी किसी विदेशी रियासतकी यात्रा तक नहीं की थी। इसलिए गोखले-जैसे महान् नेताके शुभागमनके महत्वको हम सब पूरी तरह समझ गए। हमने यह निश्चय किया कि गोखलेजीका ऐसा स्वागत-सम्मान किया जाय जैसा अब तक बादशाहका भी न हुआ हो। यह भी तय हुआ कि दक्षिण अफ्रीकाके मुख्य-मुख्य शहरोंमें भी उन्हें ले जाना चाहिए। सत्याग्रही और दूसरे भी उनके स्वागतकी तैयारियों में बड़े उत्साहपूर्वक काम करने लगे। गोरोंको भी इस स्वागतमें भाग लेनेके लिए निमंत्रित किया गया था और लगभग सभी जगह वे शामिल भी हुए थे। यह भी निश्चय किया गया कि जहां-जहां सार्वजनिक सभाएँ हों, उन-उन शहरोंके मेयरोंको, यदि वे स्वीकार करें तो, अध्यक्ष-स्थान दिया जाय। साथ ही जहांतक हो सके, कोशिश करके प्रत्येक शहरमें सभा-स्थानके लिए वहांके टाउन हॉलका ही उपयोग किया जाय। हमने यह निश्चय कर लिया कि रेलवे-विभागकी इजाजत प्राप्त करके मुख्य-मुख्य स्टेशनोंको भी सजाया जाय। तदनुसार कितने ही स्टेशनोंको सजानेकी इजाजत भी हमें मिल गई। यद्यपि सामान्यतया ऐसी इजाजत नहीं दी जाती; पर हमारी स्वागतकी तैयारियोंका असर सत्ताधिकारियों-पर भी पड़ा। इसलिए उन्होंने भी जितनी उनसे बन पड़ी, सहानुभूति दिखाई। मसलन केवल जोहान्सबर्गके स्टेशनको सजानेमें ही हमें लगभग १५ दिन लग गये। वहां हम लोगोंने एक सुंदर प्रवेश-द्वार बनाया था।

दक्षिण अफ्रीकाके विषयमें बहुत कुछ जानकारी तो उन्हें इंग्लैंडमें ही मिल चुकी थी। भारत-सचिवने दक्षिण अफ्रीकाकी सरकारको गोखले-का दरजा, साम्राज्यमें उनका स्थान, इत्यादि पहले ही बता दिया था।

किंतु स्टीमर कंपनीमें टिकट तथा व्यवस्था आदि करनेकी बात किसीको कैसे सूझ सकती थी ? गोखलेजीकी तबियत नाजुक थी। इसलिए उनको अच्छी कैबिन और एकांतकी बड़ी आवश्यकता रहती; पर उन्हें तो साफ उत्तर मिल गया कि ऐसी कैबिन है ही नहीं। मुझे ठीक-ठीक पता नहीं है कि स्वयं गोखलेजीने या उनके और किसी मित्रने इंडिया आफिस-में इस बातकी इत्तिला की। पर कंपनीके डायरेक्टरके नाम इंडिया आफिसकी तरफसे पत्र पहुंचा। और जहां कोई कैबिन ही नहीं थी वहीं उनके लिए एक बढ़िया कैबिन तैयार हो गई। उस प्रारंभिक कटुताका अंत इस मधुरताके साथ हुआ। स्टीमरके कैप्टनको भी गोखलेजीका बढ़िया स्वागत करनेके लिए सूचना पहुंची थी। इसलिए उनके इस सफर-के दिन बड़ी शांति और आनंदके साथ बीते। गोखले उतने ही आनंद और विनोदशील भी थे, जितने वह गंभीर थे। स्टीमरके खेल वगैरहमें वह खूब भाग लेते थे। इसलिए स्टीमरके मुसाफिरोंमें वह बड़े प्रिय हो गए। गोखलेजीको यूनियन सरकारका यह विनय-संदेश भी पहुंचा कि वह यूनियन सरकारके महमान हों और रेलवेके स्टेट सेलूनमें ही सफर करें; किंतु स्टेट सेलूनका तथा प्रिटोरियामें सरकारी महमान होना स्वीकार करनेका निश्चय उन्होंने मेरे साथ मशविरा करनेके बाद किया।

जहाजसे वह केपटाउनमें उतरनेवाले थे। उनका मिजाज तो मेरी अपेक्षासे भी अधिक नाजुक साबित हुआ। वह एक खास तरहका भोजन ही कर सकते थे। अधिक परिश्रम भी नहीं उठा सकते थे। निश्चित कार्य-क्रम भी उनके लिए असह्य हो गया। जहां तक हो सका उसमें परि-वर्तन किया गया। जहां कहीं परिवर्तन नहीं हो सका, वहां स्वास्थ्य बिग-ड़नेकी आशंका होते हुए भी उन्होंने उसे कबूल कर लिया। मुझे इस बातका बड़ा पश्चात्ताप हुआ कि उनसे बिना पूछे ही मैंने इतना सख्त कार्य-क्रम क्यों तैयार कर डाला ! कार्य-क्रममें कितनी ही जगह परिवर्तन किया गया, पर अधिकांश तो ज्यों-का-त्यों ही रखना पड़ा। यह बात मेरे खयालमें

नहीं आई थी कि उन्हें एकांतकी अत्यन्त आवश्यकता रहती है। अतः एकांत स्थानका प्रबंध करनेमें मुझे ज्यादा-से-ज्यादा कठिनाई हुई। पर साथ ही नम्रता-पूर्वक मुझे यह तो सत्यके लिए जरूर कहना पड़ेगा कि बीमार और बुजुर्गोंकी सेवा करनेका मुझे खास अभ्यास और शौक भी था। इसलिए अपनी मूर्खताका ज्ञान होनेके बाद मैं उसमें इतना सुधार कर सका था कि उन्हें बहुत काफी एकांत और शांति भी मिल सकी। प्रवासमें शुरूसे आखिर तक उनके मंत्रीका काम स्वयं मैंने ही किया। स्वयं-सेवक भी ऐसे थे जो सांय-सांय करती अंधेरी रातमें भी चिट्ठीका उत्तर ला सकते थे। इसलिए मेरा खयाल है कि उन्हें सेवकोंके अभावके कारण कोई कष्ट नहीं उठाना पड़ा होगा। कैलनबेक भी इन स्वयंसेवकोंमें थे।

यह तो प्रकट ही था कि केपटाउनमें बढ़िया-से-बढ़िया सभा होनी चाहिए। श्राइनर कुटुंबके डब्ल्यू० पी० श्राइनरसे अध्यक्ष-स्थान स्वीकार करनेके लिए प्रार्थना की गई। हमारी प्रार्थनाको उन्होंने मंजूर कर लिया। विशाल सभा हुई। भारतीय और गोरे भी अच्छी तादादमें आए। मि० श्राइनरने मधुर शब्दोंमें गोखलेजीका स्वागत किया और दक्षिण अफ्रीका-के भारतीयोंके प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की। गोखलेजीका भाषण छोटा, परिपक्व विचारोंसे भरा हुआ और दृढ़ था, किंतु विनयपूर्ण भी ऐसा था कि जिसने भारतीयोंको प्रसन्न कर दिया और गोरोंका दिल भी चुरा लिया। गोखलेजीने जिस दिन दक्षिण अफ्रीकाकी भूमिपर पैर रक्खा उसी दिन वहांकी पचरंगी प्रजाके हृदयमें उन्होंने अपना स्थान प्राप्त कर लिया।

केपटाउनसे जोहान्सबर्ग जाना था। रेलसे दो दिनका प्रवास था। युद्धका कुरुक्षेत्र ट्रान्सवाल था। केपटाउनसे आते समय राहमें हमें ट्रान्स-वालके बड़े सरहदी स्टेशन क्लार्कस्डार्पपर से गुजरना पड़ता था। खास क्लार्कस्डार्प तथा राहमें आनेवाले अन्य शहरोंमें भी ठहरकर हमें सभाओंमें जाना था। इसलिए क्लार्कस्डार्पसे एक स्पेशल ट्रेनकी व्यवस्था की गई।

दोनों शहरोंमें वहांके मेयर ही अध्यक्ष थे। किसी भी शहरको एक घंटेसे अधिक समय नहीं दिया गया था। ट्रेन जोहान्सवर्ग बिलकुल ठीक समय पर पहुंची। एक मिनटका भी फर्क नहीं पड़ने पाया। स्टेशनपर खासे कालीन वगैरह बिछाए गए थे। एक मंच भी बनाया गया था। जोहान्स-बर्गके मेयर और दूसरे अनेक गोरे भी हाजिर थे। गोखलेजी जितने दिन जोहान्सबर्गमें रहे, उतने दिन तक उनके उपयोगके लिए मेयरने उन्हें अपनी मोटर दे दी थी। स्टेशनपर ही उन्हें मानपत्र भी दिया गया। प्रत्येक स्थानपर मान-पत्र तो दिए ही जाते थे। जोहान्सबर्गका मानपत्र बड़ा सुंदर था। दक्षिण अफ्रीकाकी लकड़ीपर जड़ी हुई सोनेकी हृदया-कार तख्तीपर खुदा हुआ था--तख्तीका सोना भी जोहान्सबर्गकी खान का ही था। लकड़ीपर भारतके कितने ही दृश्योंके सुंदर चित्र खुदे हुए थे। गोखलेजीका परिचय, मानपत्रको पढ़ना और उसका उत्तर दिया जाना तथा अन्य मानपत्रोंका लेना यह सब काम २२ मिनिटके अंदर कर लिए गए थे। मानपत्र इतना छोटा था कि उसे पढ़नेमें पांच मिनटसे अधिक समय नहीं लगा होगा। गोखलेजीका उत्तर भी पांच ही मिनिटका था। स्वयंसेवकोंका इंतजाम इतना बढ़िया था कि पूर्व निश्चित मनुष्योंके सिवा एक भी आदमी प्लेटफार्मपर नहीं आ सका। शोर-गुल जरा भी नहीं था। बाहर लोगोंकी खूब भीड़ थी। फिर भी किसीके आने-जानेमें कोई कठिनाई नहीं हुई।

उनके ठहरनेकी व्यवस्था मि० कैलनबेकके एक छोटे-से सुंदर बंगलेमें की गई थी, जो जोहन्सबर्गसे पांच मीलकी दूरी पर एक टेकड़ीपर था। वहांका दृश्य ऐसा भव्य था, वहांकी शांति ऐसी आनंददायक थी और बंगला सादा होते हुए भी कलासे इतना परिपूर्ण था कि गोखलेजी खुश हो गए। मिलने-जुलनेकी व्यवस्था सबके लिए शहरमें ही की गई थी। उसके लिए एक खास आफिस किरायेपर ले लिया गया था। उनमें एक कमरा केवल उनके आराम करनेके लिए रक्खा गया था, दूसरा मिलने-

जुलनेके लिए और तीसरा कमरा मिलने आने वाले सज्जनोंके बैठनेके लिए। जोहान्सबर्गके कितने ही प्रसिद्ध गृहस्थोंसे खानगी मुलाकात करनेके लिए भी गोखलेजीको ले गए थे। गण्यमान्य गोरोंकी भी एक खानगी सभा की गई थी, जिससे गोखलेजीको उनके दृष्टि-बिंदुका पूरी तरह खयाल हो जाय। इसके अलावा जोहान्सबर्गमें उनके सम्मानार्थ एक विशाल भोज भी दिया गया था, जिसमें कोई ४०० आदमियोंको निमंत्रित किया गया था। उनमें लगभग १५० गोरे थे। भारतीय टिकिट लेकर आ सकते थे। टिकटकी कीमत एक गिनी रक्खी गई थी। टिकटोंकी आयमेंसे उस भोजका खर्च निकल आया। भोज केवल निरामिष और मद्यपान-रहित था। खाना भी केवल स्वयंसेवकों द्वारा ही बनाया गया था। इसका वर्णन यहां करना कठिन है। दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंमें हिंदू-मुसलमान, छूत-अछूत आदिका कोई खयाल ही नहीं होता। सब एकसाथ बैठकर खा लेते हैं। निरामिष आहार करनेवाले भारतीय भी अपने नियमका पालन करते हैं। भारतीयोंमें कितने ही क्षत्रिय भी थे। दूसरोंकी तरह उनसे भी मेरा तो गाढ़ परिचय था। उनमेंसे अधिकांश गिरमिटिया माता-पिताकी प्रजा ही होते हैं। कई होटलोंमें खाना पकाने और परोसनेका काम करते हैं। इन्हीं लोगोंकी सहायतासे इतने मनुष्योंकी रसोईकी व्यवस्था हो सकी। तरह-तरहके कोई पंद्रह व्यंजन थे। दक्षिण अफ्रीकाके गोरोंके लिए यह एक नवीन और अजीब अनुभव था। इतने भारतीयोंके साथ एक पंक्तिमें खानेके लिए बैठना, निरामिष भोजन करना और मद्यपान बिना काम चलाना ये तीनों अनुभव उनमेंसे कइयोंके लिए नवीन थे। दो तो अवश्य ही सबके लिए नवीन थे।

इस सम्मेलनमें गोखलेजीका बड़े-से-बड़ा और महत्वपूर्ण भाषण हुआ। पूरे ४५ मिनट वह बोले। इस भाषणकी तैयारीके लिए उन्होंने हमारा खूब समय लिया था। पहले उन्होंने अपना जीवनभरका यह निश्चय

सुनाया कि एक तो स्थानीय मनुष्योंके दृष्टि-बिंदुकी अवगणना नहीं होनी चाहिए। दूसरे, जहांतक उनसे मिलकर रहा जाय, हम मिलकर रहनेकी कोशिश करें। इन दो बातोंको ध्यानमें रखकर मैं उनसे जो कहलाना चाहूं वह उन्हें बता दूं; पर यह मुझे उन्हें लिखकर देना चाहिए। साथ ही उनकी यह भी शर्त थी कि इनमेंसे एक भी वाक्य या विचारका वह उपयोग न करें तो मुझे बुरा न मानना चाहिए। लेख न लंबा होना चाहिए और न छोटा। कोई महत्वपूर्ण बात भी छूटने न पावे। इन सब बातोंका खयाल रखते हुए मुझे उनके लिए स्मरणार्थ टिप्पणियां लिखनी पड़ती थीं। यह तो मैं सबसे पहले कह देता हूं कि उन्होंने मेरी भाषाका तो जरा भी उपयोग नहीं किया। वह तो अंग्रेजीके पारंगत विद्वान् थे। फिर मैं यह आशा भी क्यों करूं कि वह मेरी भाषाका उपयोग करें। पर मैं यह भी नहीं कह सकता कि उन्होंने मेरे विचारोंका भी उपयोग किया। हां, मेरे विचारोंकी उपयुक्तताको उन्होंने जरूर स्वीकार किया। इसलिए मैंने अपने दिलको समझा लिया कि आखिर उन्होंने मेरे विचारोंका भी किसी तरह उपयोग किया होगा; क्योंकि उनकी विचार-शैली ऐसी अजीब थी कि उससे हमें यही पता नहीं चलता था कि उन्होंने हमारे विचारोंको कहां स्थान दिया है, अथवा दिया भी है, या नहीं। गोखलेजीके सभी भाषणोंके समय मैं हाजिर था, पर मुझे ऐसा एक भी प्रसंग याद नहीं कि जिसमें मुझे यह इच्छा हुई हो कि अमुक विशेषण या अमुक विचारका उपयोग वह न करते तो अच्छा होता। उनके विचारोंकी स्पष्टता, दृढ़ता, विनय, इत्यादि उनके अथक परिश्रम और सत्यपरायणताके फल-स्वरूप थे।

जोहान्सबर्गमें केवल भारतीयोंकी एक विराट सभा भी तो हो जाना जरूरी था। मेरा यह आग्रह पहलेसे ही चला आ रहा है कि भाषण मातृभाषा ही में अथवा राष्ट्र-भाषा हिंदुस्तानीमें ही होना चाहिए। इस आग्रहके कारण दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंके साथ मेरा अधिक सरल और निकट

का संबंध हो गया। इसलिए मैं चाहता था कि भारतीयोंकी सभामें गोखले-जी भी हिंदुस्तानीमें भाषण दें तो बड़ा अच्छा हो, किंतु इस विषयमें उनके विचार मैं जानता था। टूटी-फूटी हिंदीसे काम चलाना तो उन्हें पसंदही नहीं था। अर्थात् वह या तो मराठीमें भाषण दे सकते थे या अंग्रेजीमें। मराठीमें भाषण देना उन्हें कृत्रिम मालूम हुआ। यदि मराठीमें बोलते भी तो गुजरातियों तथा उत्तर हिंदुस्तानके निवासी भारतीयोंके लिए उसका अनुवाद करना अनिवार्य था। यदि ऐसा था तो फिर अंग्रेजीमें ही क्यों न बोला जाय? पर मेरे पास एक ऐसी दलील थी, जिसको गोखले-जी स्वीकार कर सकते थे। जोहान्सबर्गमें कोंकणके कई मुसलमान भी बसते थे। कुछ महाराष्ट्रीय हिंदू भी थे। ये सब गोखलेजीका मराठी भाषण सुननेके लिए बड़े लालायित थे और उन लोगोंने मुझे यह भी कह रखा था कि मैं गोखलेजीसे मराठीमें भाषण देनेके लिए अनुरोध करूं। इसलिए मैंने गोखलेजीसे कहा, "यदि आप मराठीमें भाषण देंगे तो इन लोगोंको बड़ा आनंद होगा। आप जो कुछ कहेंगे उसका मैं हिंदुस्तानीमें अनुवाद करके सुना दूंगा।" यह सुनकर वह जोरसे खिलखिलाकर हँस पड़े। "तुम्हारा हिंदुस्तानीका ज्ञान तो मैंने अच्छी तरह जांच लिया, वह तुम्हींको मुबारक हो! पर याद रखो अब तुम्हें मराठीसे अनुवाद करना होगा। भला बताओ तो सही कि इतनी अच्छी मराठी तुम कहांसे सीख गए?" मैंने कहा—"जो हाल मेरी हिंदुस्तानीका है वही मराठीके विषयमें भी समझिए। मराठीमें एक अक्षर भी मैं नहीं बोल सकता। पर आप जिस विषयपर आज कुछ कहेंगे उसका भावार्थ मैं जरूर कह दूंगा। आप देखिएगा कि मैं लोगोंके सामने उसका उलट-सुलट अर्थ तो हरगिज नहीं करूंगा। भाषणका अनुवाद करके सुनानेके लिए मैं ऐसे लोग तो आपको अवश्य ही दे सकता हूं, जो अच्छी तरह मराठी जानते हैं। पर शायद आप इस प्रस्तावको मंजूर नहीं करेंगे। इसलिए मुझीको निबाह लीजिए, पर बोलिएगा मराठीमें। कोंकणी भाइयोंके साथ-साथ मुझे भी आपकी मराठी

सुननेकी बड़ी अभिलाषा है।" "भाई, अपनी ही टेक रक्खो। अब यहां तुम्हारे ही तो पाले पड़ा हुआ हूं न ? अब कहीं यों थोड़े छुट्टी मिल सकती है!" यह कहकर उन्होंने मुझे खुश कर दिया। इसके बाद जंजीबार तक इस तरहकी प्रत्येक सभामें वह मराठी हीमें बोले और मैं खास उन्हींका नियुक्त किया हुआ अनुवादक रहा। मेरा खयाल है कि प्रत्येक भारतीयको यथा-संभव अपनी मातृ-भाषामें अथवा व्याकरण-शुद्ध अंग्रेजीकी बनिस्बत व्याकरण-रहित टूटी-फूटी हिंदीहीमें भाषण देना चाहिए। मैं कह नहीं सकता कि यह बात मैं उनको कहां तक समझा सका, किंतु इतना तो मैं जरूर कहूंगा कि मुझे प्रसन्न करनेके लिए उन्होंने दक्षिण अफ्रीकामें तो मराठी हीमें भाषण दिए। मैं यह भी जान सका कि अपने भाषणके बाद उसके प्रभावसे वह खुश भी हुए। दक्षिण अफ्रीकामें अनेक प्रसंगोंपर किए हुए अपने बर्तावसे गोखलेजीने यह बता दिया कि सिद्धांतकी कठिनाई न हो तो मनुष्यको अपने सेवकोंको जरूर राजी रखना चाहिए। यह भी एक गुण है। (द० अ० स०, १९२५)

... ...

जोहान्सबर्गसे हमें प्रिटोरिया जाना था। प्रिटोरियामें गोखलेजीको यूनियन सरकारका निमंत्रण था। तदनुसार होटलमें उनके लिए सुरक्षित जगहमें ही हम ठहरे। यहांपर उन्हें यूनियन सरकारके मंत्रिमंडलसे, जिसमें जनरल बोथा और जनरल स्मट्स भी थे, मिलना था। जैसा कि ऊपर लिख चुका हूं, मैंने उनका कार्यक्रम ऐसा बनाया था कि उन्हें हमेशा करने योग्य कामोंकी सूचना मैं प्रतिदिन सुबह कर दिया करता था। यदि वह चाहते तो अगली रातको भी बता देता। मंत्रि-मंडलसे मिलनेका काम उत्तरदायित्व-पूर्ण था। हम दोनोंने निश्चय कर लिया था कि मुझे उनके साथ नहीं जाना चाहिए, जानेकी आज्ञा भी नहीं मांगनी चाहिए। मेरी उपस्थितिके कारण मंत्रि-मंडल और गोखलेजीके बीचमें जरूर ही एक हद तक परदा पड़ जानेकी संभावना थी। मंत्रिगण उन्हें न तो पेट-

भर स्थानीय भारतीयोंकी और न मेरी ही ऐसी बातें बता सकते जिनको वे गलत समझते थे। और यदि वे कुछ कहना चाहते तो उसे भी खुले दिलसे नहीं कह सकते थे; किंतु इसमें एक असुविधा भी थी। गोखलेजीकी जिम्मेदारी दुगुनी हो जाती थी। यदि किसी बातको वह भूल जायं, या मंत्रि-मंडलकी तरफसे कोई ऐसी बात कही जाय जिसका उत्तर उनके पास न हो, तो क्या किया जाय? अथवा भारतीयोंकी तरफसे किसी बातको कबूल करना हो तब क्या किया जाय? येदोनों बातें बिना मेरी या दक्षिण अफ्रीकाके किसी जिम्मेदार नेताकी उपस्थितिके कैसे तय हो सकती थीं? पर इसका निर्णय स्वयं गोखलेजीने ही फौरन कर डाला। यही कि मैं उनके लिए शुरूसे आखिर तक संक्षेपमें भारतीयोंकी स्थितिका वृत्तांत लिख दूं। उसमें यह भी हो कि भारतीय अपनी मांगोंमें कहांतक कम-ज्यादा करनेको तैयार हैं। इसके बाहरकी कोई बात उपस्थित हो तो उसमें गोखलेजी अपना अज्ञान कुबूल कर लें। इस निश्चयके साथ ही वह निश्चित भी हो गए। अब रहा यह कि मैं ऐसा एक कागज तैयार करलूं और वे उसे पढ़ लें। पर पढ़ने इतना समय तो मैंने रक्खा ही नहीं था। कितना ही संक्षेपमें लिखूं तो भी १८-२० वर्षका, चार रियासतोंकी भारतीय जनताकी स्थितिका इतिहास मैं १०-२० सफेसे कममें कैसे दे सकता था? फिर उसके पढ़ लेनेपर उनको कुछ सवाल तो अवश्य ही सूझते। पर उनकी स्मरण-शक्ति जितनी तीव्र थी, उतनी ही उनकी मेहनत करनेकी शक्ति भी अगाध थी। रातभर जागते रहे। पोलकको और मुझे भी सोने नहीं दिया। प्रत्येक बातकी पूरी-पूरी जानकारी प्राप्त कर ली। उलट-सुलट रीतिसे सवाल करके इस बातकी जांच भी कर ली कि वह स्थितिको बराबर समझ गए या नहीं। अपने विचार मेरे सामने कह सुनाये। अंत में उन्हें पूरा संतोष हो गया। मैं तो निर्भय ही था।

लगभग दो घंटे मंत्रि-मंडलके पास वह बैठे और वहांसे आनेपर

मुझसे कहा, "तुम्हें एक सालके अंदर भारतवर्ष आना है। सब बातोंका फैसला हो गया है। खूनी कानून रद होगा, इमिग्रेशन कानूनसे वर्ण-भेद निकाल दिया जायगा और तीन पौंडका कर भी रद होगा।" मैंने कहा, "इसमें मुझे पूरा संदेह है। मंत्रि-मंडलको जितना मैं जानता हूं, उतना आप नहीं जानते। आपका आशावाद मुझे प्रिय है; क्योंकि स्वयं मैं भी आशावादी हूं। पर अनेक बातोंमें धोखा खानेपर अब मैं इस विषयमें आपके इतनी आशा नहीं रख सकता। पर मुझे भय भी नहीं है। आप वचन ले आए, यही मेरे लिए काफी है। मेरा धर्म तो केवल यही है कि आवश्यकता उपस्थित होने पर युद्ध ठान दूं और यह सिद्ध कर दूं कि वह न्याय है। इसकी सिद्धिमें आपको दिया गया वचन हमारे लिए बड़ा फायदेमंद होगा। और यदि लड़ना ही पड़ा तो वह हमें दूनी शक्ति देगा। पर मुझे न तो इस बातका विश्वास होता है कि बिना अधिक तादादमें भारतीयोंके जेल गए इसका निबटारा हो सकता है और न इस बातका भी कि एक सालके अंदर मैं भारतवर्ष जा सकूंगा।" तब वह बोले, "मैं तुम्हें जो कुछ कहता हूं इसमें कभी फर्क नहीं हो सकता। जनरल बोथाने मुझे वचन दिया है कि खूनी कानून और वह तीन पौंडवाला कर भी रद होगा। तुम्हें एक सालके अंदर भारत लौटना ही होगा। मैं अब इस विषयमें तुम्हारी एक भी दलील नहीं सुनूंगा।"

जोहान्सबर्गका भाषण प्रिटोरियाकी मुलाकातके बाद हुआ था।

ट्रान्सवालसे डरबन, मैरित्सबर्ग आदि स्थानोंको गए। वहां कई गोरोंसे काम पड़ा। कैम्बरलीकी हीरोंकी खान देखी। कैम्बरली और डरबनके स्वागत-मंडलोंने भी जोहान्सबर्गके जैसे भोज दिए थे। उनमें अनेक अंग्रेज भी आए थे। इस तरह भारतीयों और गोरोंका दिल चुरा कर गोखलेजीने दक्षिण अफ्रीकाका किनारा छोड़ा। उनकी आज्ञा प्राप्त कर कैलनबेक और मैं उन्हें जंजीबार तक छोड़नेके लिए गए थे। स्टीमरमें इनके लिए ऐसे भोजनकी व्यवस्था कर दी गई जो उनको

मुआफिक हो। रास्तेमें डेलागोआ बे, इन्हामबेन, जंजीबार, आदि बंदरगाहोंपर भी उनका बड़ा सम्मान किया गया।

रास्तेमें हमारे बीच जो बातें होतीं उनका विषय भारतवर्ष और उसके प्रति हमारा धर्म ही रहता। प्रत्येक बातमें उनका कोमल भाव, सत्यपरायणता, स्वदेशाभिमान चमकता था। मैंने देखा कि स्टीमरमें वह जो खेल खेलते उनमें भी खेलोंकी बनिस्बत भारतवर्षकी सेवाका भाव ही विशेष रहता। भला उनके खेलमें भी संपूर्णता क्यों न हो!

स्टीमरमें शांतिके साथ बातें करनेके लिए हमें समय मिल ही गया। उसमें उन्होंने मुझे भारतवर्षके लिए तैयार किया। भारतवर्षके प्रत्येक नेताका पृथक्करण करके दिखाया। वे वर्णन इतने हूबहू थे कि मुझे बादमें उन नेताओंका जो प्रत्यक्ष अनुभव हुआ, उसमें और उसके चरित्र-चित्रणमें शायद ही कोई फर्क दिखाई दिया।

गोखलेजीके दक्षिण अफ्रीकाके प्रवासमें उनके साथ मेरा जो संबंध रहा, उसके ऐसे कितने ही पवित्र संस्मरण हैं, जिनको मैं यहां दे सकता हूं; किंतु सत्याग्रहके इतिहासके साथ उनका कोई संबंध नहीं है। इसलिए मुझे अनिच्छापूर्वक अपनी कलमको रोकना पड़ता है। जंजीबारमें हमारा जो वियोग हुआ वह हम दोनोंके लिए बड़ा दुखदायी था; किंतु यह सोचकर कि देह-धारियोंके घनिष्ट-से-घनिष्ट संबंध भी अंतमें टूटते ही हैं, कैलनबेकने और मैंने अपना समाधान किया। हम दोनोंने यह आशा की कि गोखलेजीकी वाणी सत्य हो और हम दोनों एक सालके अंदर ही भारतवर्ष जा सकें; पर यह असंभव सिद्ध हुआ।

इतना होते हुए भी गोखलेजीके दक्षिण अफ्रीकाके प्रवासने हमें अधिक दृढ़ बना दिया। युद्धका जब अधिक रंग चढ़ा तब इस मुलाकातका रहस्य और आवश्यकता हम और भी अच्छी तरह समझे। यदि गोखलेजी दक्षिण अफ्रीका नहीं आते, मंत्रि-मंडलसे नहीं मिलते तो हम तीन पौंडवाले करको अपने युद्धका विषय ही नहीं बना सकते थे। यदि खूनी

कानून रद होते ही सत्याग्रह बंद कर दिया जाता तो तीन पौंडके करके लिए हमें नया सत्याग्रह शुरू करना पड़ता और उसमें असंख्य कष्ट उठाने पड़ते। इतना ही नहीं, बल्कि इस बातमें भी भारी संदेह था कि लोग उसके लिए शीघ्र तैयार होते भी या नहीं। इस करको रद कराना स्वतंत्र भारतीयोंका कर्तव्य था। उसको रद करानेके लिए अर्जियां वगैरह सब उपाय काममें लाये जा चुके थे। सन् १८९५ के सालसे कर दिया जा रहा था। चाहे कितना ही घोर दुःख क्यों न हो; किंतु यदि वह दीर्घ-कालीन हो जाता है तो लोग उसके आदी हो जाते हैं। फिर उन्हें यह समझाना महा कठिन होता कि उन्हें उसका प्रतिकार करना चाहिए। गोखलेजीको जो वचन दिया गया उसने सत्याग्रहियोंके मार्गको बड़ा सरल बना दिया। या तो सरकारको अपने वचनके अनुसार उस करको रद कर देना चाहिए था, या नहीं तो स्वयं वह वचन-भंग ही सत्याग्रहके लिए एक काफी बलवान कारण हो जाता, और हुआ भी ठीक यही। सरकारने एक सालके अंदर उस करको रद नहीं किया। यही नहीं; बल्कि यह भी साफ-साफ कह दिया कि वह कर रद नहीं किया जा सकता।

इसलिए गोखलेजीके प्रवाससे हमें तीन पौंडवाले करको सत्याग्रहके द्वारा रद करानेमें बड़ी सहायता मिली। दूसरे, उनके उस प्रवासके कारण वह दक्षिण अफ्रीकाके प्रश्नके एक विशेषज्ञ समझे जाने लगे। दक्षिण अफ्रीका संबंधी अब उनके कथनका वजन भी कहीं अधिक बढ़ गया। साथ ही दक्षिण अफ्रीकामें रहनेवाले भारतीयोंकी स्थितिका प्रत्यक्ष ज्ञान हो जानेके कारण वह इस बातको अधिक अच्छी तरह समझ सके कि भारतवर्षको उन लोगोंके लिए क्या करना चाहिए, और उसे यह बात समझानेमें उनकी शक्ति तथा अधिकार भी बहुत बढ़ गया। फलतः अब की बार जब युद्ध चेता तो भारतसे धनकी वर्षा होने लग गई। लॉर्ड हार्डिंज तकने सत्याग्रहियोंके साथ अपनी सहानुभूति प्रकट कर उन्हें

उत्साहित किया। भारतसे मि० एण्ड्रूज और मि० पियर्सन दक्षिण अफ्रीका आए। यह सब बिना गोखलेजीके प्रवासके नहीं हो सकता था। (द० अ० स०, १९२५)

... ...

मैं गोखलेजीके पास गया। वह फर्ग्यूसन कालेजमें थे। बड़े प्रेमसे मुझसे मिले और मुझे अपना बना लिया। उनका भी यह ही प्रथम परिचय था; पर ऐसा मालूम हुआ मानों हमें पहले मिल चुके हों। सर फिरोजशाह तो मुझे हिमालय जैसे मालूम हुए, लोकमान्य समुद्रकी तरह। गोखलेजी गंगाकी तरह। उसमें मैं नहा सकता था। हिमालय पर चढ़ना मुश्किल है, समुद्रमें डूबनेका भय रहता है; पर गंगाकी गोदीमें खेल सकते हैं, उसमें डोंगीपर चढ़कर तैर सकते हैं। गोखलेजीने खोद-खोदकर बातें पूछीं, जैसी कि मदरसेमें भरती होते समय विद्यार्थीसे पूछी जाती हैं। किस-किससे मिलूं और किस प्रकार मिलूं, यह बताया और मेरा भाषण देखनेके लिए मांगा। मुझे अपने कालेजकी व्यवस्था दिखाई। कहा, "जब मिलना हो, खुशीसे मिलना और डाक्टर भांडारकरका उत्तर मुझे जताना।" फिर मुझे विदा किया। राजनैतिक क्षेत्रमें गोखलेजीने जीते-जी जैसा आसन मेरे हृदयमें जमाया और जो उनके देहांतके बाद अब भी जमा हुआ है वैसा फिर कोई न जमा सका। (आ०, १९२७)

... ...

पहले ही दिन गोखलेजीने मुझे मेहमान न समझने दिया, मुझे अपने छोटे भाईकी तरह रक्खा। मेरी तमाम जरूरतें मालूम कर लीं और उनका प्रबंध कर दिया। खुश-किस्मतीसे मेरी जरूरतें बहुत कम थीं। सब काम खुद कर लेनेकी आदत डाल ली थी, इसलिए औरोंसे मुझे बहुत ही कम काम कराना पड़ता था। स्वावलंबनकी मेरी इस आदतकी, उस समयके मेरे कपड़े-लत्तेकी सुघड़ताकी, मेरी उद्योगशीलता और

नियमितताकी बड़ी गहरी छाप उनपर पड़ी और वे उसकी इतनी स्तुति करने लगे कि मैं परेशान हो जाता।

मुझे यह न मालूम हुआ कि उनकी कोई बात मुझसे गुप्त थी। जो कोई बड़े आदमी उनसे मिलने आते उनका परिचय वह मुझसे कराते थे। इन परिचयोंमें जो आज सबसे प्रधानरूपसे मेरी नजरोंके सामने खड़े हो जाते हैं वह हैं डा० प्रफुल्लचंद्र राय। वह गोखलेके मकानके पास ही रहते थे और प्रायः हमेशा आया करते थे।

"यह हैं प्रोफेसर राय, जो ८००) मासिक पाते हैं, पर अपने खर्चके लिए सिर्फ ४०) लेकर बाकी सब लोक-सेवामें लगा देते हैं। इन्होंने शादी नहीं की, न करना ही चाहते हैं।" इन शब्दोंमें गोखलेने मुझे उनका परिचय कराया।

आजके डा० रायमें और उस समयके प्रो० रायमें मुझे थोड़ा ही भेद दिखाई देता है। जैसे कपड़े उस समय पहनते थे आज भी लगभग वैसे ही पहनते हैं। हां, अब खादी आ गई है। उस समय खादी तो थी ही नहीं। स्वदेशी मिलोंके कपड़े होंगे। गोखले और प्रो० रायकी बातें सुनते हुए मैं न अघाता था, क्योंकि उनकी बातें या तो देश-हितके संबंधमें होतीं या होती ज्ञान-चर्चा। कितनी ही बातें दुःखद भी होतीं; क्योंकि उनमें नेताओंकी आलोचना भी होती थी। जिन्हें मैं महान् योद्धा मानना सीखा था, वे छोटे दिखाई देने लगे।

गोखलेकी काम करनेकी पद्धतिसे मुझे जितना आनंद हुआ उतना ही बहुत कुछ सीखा भी। वह अपना एक भी क्षण व्यर्थ न जाने देते थे। मैंने देखा कि उनके तमाम संबंध देश-कार्यके ही लिए होते थे। बातें भी तमाम देश-कार्यके ही निमित्त होती थीं। बातोंमें कहीं भी मलिनता, दंभ या असत्य न दिखाई दिया। हिंदुस्तानकी गरीबी और पराधीनता उन्हें प्रतिक्षण चुभती थी। अनेक लोग उन्हें अनेक बातोंमें दिलचस्पी कराने आते। वे उन्हें एक ही उत्तर देते, "आप इस कामको कीजिए,

मुझे अपना काम करने दीजिए। मुझे देशकी स्वाधीनता प्राप्त करनी है। उसके बाद मुझे दूसरी बातें सूझेंगी। अभी तो इस कामसे मुझे एक क्षण-को भी फुरसत नहीं रहती!"

रानडेके प्रति उनका पूज्य भाव बात-बातमें टपका पड़ता था। 'रानडे ऐसा कहते थे'—यह तो उनकी बातचीतका मानो 'सूत-उवाच' ही था। मेरे वहां रहते हुए रानडेकी जयंती (या पुण्यतिथि, अब ठीक याद नहीं है) पड़ती थी। ऐसा जान पड़ा, मानों गोखले सर्वदा उसको मनाते हों। उस समय मेरे अलावा उनके मित्र प्रोफेसर काथवटे तथा दूसरे एक सज्जन थे। उन्हें उन्होंने जयंती मनानेके लिए निमंत्रित किया और उस अवसरपर उन्होंने हमें रानडेके कितने ही संस्मरण कह सुनाये; रानडे, तैलंग और मांडलिककी तुलना की। ऐसा याद पड़ता है कि तैलंगकी भाषाकी स्तुति की थी। मांडलिककी सुधारकके रूपमें प्रशंसा की थी। अपने मवक्किलोंकी वह कितनी चिंता रखते थे, इसका एक उदाहरण दिया। एक बार गाड़ी चूक गई तो मांडलिक स्पेशल ट्रेन करके आये। यह घटना कह सुनाई। रानडेकी सर्वाङ्गीण शक्तिका वर्णन करके बताया कि वह तत्कालीन अग्रणियोंमें सर्वोपरि थे। रानडे अकेले न्यायमूर्ति न थे। वह इतिहासकार थे, अर्थ-शास्त्री थे। सरकारी जज होते हुए भी कांग्रेसमें प्रेक्षकके रूपमें निर्भय होकर आते। फिर उनकी समझ-दारीपर लोगोंका इतना विश्वास था कि सब उनके निर्णयोंको मानते थे। इन बातोंका वर्णन करते हुए गोखलेके हर्षका ठिकाना न रहता था।

गोखले घोड़ा-गाड़ी रक्खे हुए थे। मैंने उनसे इसकी शिकायत की। मैं उनकी कठिनाइयोंको न समझ सका था। "क्या आप सब जगह ट्राममें नहीं जा सकते? क्या इससे नेताओंकी प्रतिष्ठा कम हो जायगी?"

कुछ दुःखित होकर उन्होंने उत्तर दिया, "क्या तुम भी मुझे नहीं पह-चान सके? बड़ी धारा-सभासे जो कुछ मुझे मिलता है उसे मैं अपने काममें नहीं लेता। तुम्हारी ट्रामके सफरपर मुझे ईर्ष्या होती है। पर मैं ऐसा

नहीं कर सकता। जब तुमको मेरे जितने लोग पहचानने लग जावेंगे तब तुम्हें भी ट्राममें बैठना असंभव नहीं तो मुश्किल हो जायगा। नेता लोग जो कुछ करते हैं, केवल आमोद-प्रमोदके ही लिए करते हैं, यह माननेका कोई कारण नहीं। तुम्हारी सादगी मुझे पसंद है। मैं भरसक सादगीसे रहता हूं; पर यह बात निश्चित समझना कि कुछ खर्च तो मुझ-जैसोंके लिए अनिवार्य हो जाता है।"

इस तरह मेरी एक शिकायत तो ठीक तरहसे रद हो गई; पर मुझे एक दूसरी शिकायत भी थी और उसका वह संतोष-जनक उत्तर न दे सके।

"पर आप घूमने भी तो पूरे नहीं जाते। ऐसी हालतमें आप बीमार क्यों न रहें? क्या देश-कार्यसे व्यायामके लिए फुरसत नहीं मिल सकती?" मैंने कहा।

"मुझे तुम कब फुरसतमें देखते हो कि जिस समय मैं घूमने जाता?" उत्तर मिला।

गोखलेके प्रति मेरे मनमें इतना आदर-भाव था कि मैं उनकी बातोंका जवाब न देता था। इस उत्तरसे मुझे संतोष न हुआ, पर मैं चुप रहा। मैं मानता था और अब भी मानता हूं कि जिस तरह हम भोजन-पानेके लिए समय निकालते हैं उसी तरह व्यायामके लिए भी निकालना चाहिए। मेरी यह नम्र सम्मति है कि उससे देश-सेवा कम नहीं, अधिक होती है।

(आ०, १९२७)

. . . .

ब्रह्मदेशसे लौटकर मैंने गोखलेसे बिदा मांगी। उनका वियोग मेरे लिए दुःसह था; परंतु मेरा बंगालका, अथवा सच पूछिए तो यहां कलकत्तेका, काम समाप्त हो गया था।

मेरा विचार था कि काममें लगनेसे पहले मैं थोड़ा-बहुत सफर तीसरे दर्जेमें करूं, जिससे तीसरे दर्जेके मुसाफिरोंकी हालत मैं जान लूं और

दुःखोंको समझ लूं। गोखलेके सामने मैंने अपना यह विचार रक्खा। पहले तो उन्होंने इसे हँसीमें टाल दिया, पर जब मैंने यह बताया कि इसमें मैंने क्या-क्या बातें सोच रक्खी हैं तब उन्होंने खुशीसे मेरी योजना-को स्वीकार किया। सबसे पहले मैंने काशी जाकर विदुषी ऐनी बेसेंटके दर्शन करना तै किया। वह उस समय बीमार थीं।

तीसरे दर्जेकी यात्राके लिए मुझे नया साज-सामान जुटाना था। पीतलका एक डिब्बा गोखलेने खुद ही दिया और उसमें मेरे लिए मगदके लड्डू और पूरी रखवा दीं। बारह आनेका एक केनवासका बैग खरीदा। छाया (पोरबंदरके नजदीकके एक गांव) के ऊनका एक लंबा कोट बनवाया था। बैगमें यह कोट, तौलिया, कुरते और धोती रक्खे। ओढ़नेके लिए एक कंबल साथ लिया। इसके अलावा एक लोटा भी साथ रक्खा। इतना सामान लेकर मैं रवाना हुआ।

गोखले और डा० राय मुझे स्टेशन पहुंचाने आये। मैंने दोनोंसे अनुरोध किया था कि वे न आवें; पर उन्होंने एक न सुनी। "तुम यदि पहले दर्जेमें सफर करते तो मैं नहीं आता, पर अब तो जरूर चलूंगा।"—गोखले बोले।

प्लेटफार्मपर जाते हुए गोखलेको तो किसी ने न रोका। उन्होंने सिरपर अपनी रेशमी पगड़ी बांध रक्खी थी और धोती तथा कोट पहने हुए थे। डा० राय बंगाली लिबासमें थे। इसलिए टिकटबाबूने अंदर आते हुए पहले तो रोका, पर गोखलेने कहा—"मेरे मित्र हैं।" तब डा० राय भी अंदर आ सके। इस तरह दोनोंने मुझे विदा दी। (आ०, १९२७)

. . . .

विलायतमें मुझे पसलीके वरमकी शिकायत हो गई थी। इस बीमारी-के वक्त गोखले विलायतमें आ पहुंचे थे। उनके पास मैं व कैलनबेक हमेशा जाया करते। उनसे अधिकांशमें युद्धकी ही बातें हुआ करतीं। जर्मनीका भूगोल कैलनबेककी जबानपर था, यूरोपकी यात्रा भी उन्होंने

बहुत की थी। इसलिए वह नक्शा फैलाकर गोखलेको लड़ाईकी छावनियां दिखाते।

जब मैं बीमार हुआ था तब मेरी बीमारी भी हमारी चर्चाका एक विषय हो गई थी। मेरे भोजनके प्रयोग तो उस समय भी चल ही रहे थे। उस समय मैं मूंगफली, कच्चे और पक्के केले, नीबू, जैतूनका तेल, टमाटर, अंगूर इत्यादि चीजें खाता था। दूध, अनाज, दाल, वगैरह चीजें बिलकुल न लेता था। मेरी देखभाल जीवराज मेहता करते थे। उन्होंने मुझे दूध और अनाज लेनेपर बड़ा जोर दिया। इसकी शिकायत ठेठ गोखलेतक पहुंची। फलाहार-संबंधी मेरी दलीलोंके वह बहुत कायल न थे। तंदुरुस्तीकी हिफाजतके लिए डाक्टर जो-जो बतावे वह लेना चाहिए, यही उनका मत था।

गोखलेके आग्रहको न मानना मेरे लिए बहुत कठिन बात थी। जब उन्होंने बहुत ही जोर दिया तब मैंने उनसे २४ घंटेतक विचार करनेकी इजाजत मांगी। कैलनबेक और मैं घर आए। रास्तेमें मैंने उनके साथ चर्चा की कि इस समय मेरा क्या धर्म है। मेरे प्रयोगमें वह मेरे साथ थे। उन्हें यह प्रयोग पसंद भी था। परंतु उनका रुख इस बातकी तरफ था कि यदि स्वास्थ्यके लिए मैं इस प्रयोगको छोड़ दूं तो ठीक होगा। इसलिए अब अपनी अंतरात्माकी आवाजका फैसला लेना ही बाकी रह गया था।

सारी रात मैं विचारमें डूबा रहा। अब यदि मैं अपना सारा प्रयोग छोड़ दूं तो मेरे सारे विचार और मंतव्य धूलमें मिल जाते थे। फिर उन विचारोंमें मुझे कहीं भी भूल न मालूम होती थी। इसलिए प्रश्न यह था कि किस अंशतक गोखलेके प्रेमके अधीन होना मेरा धर्म है, अथवा शरीर-रक्षाके लिए ऐसे प्रयोग किस तरह छोड़ देने चाहिए। अंतको मैंने यह निश्चय किया कि धार्मिक दृष्टिसे प्रयोगका जितना अंश आवश्यक है उतना रक्खा जाय और शेष बातोंमें डाक्टरोंकी आज्ञाका पालन किया

जाय। मेरे दूध त्यागनेमें धर्म-भावनाकी प्रधानता थी। कलकत्तेमें गाय-भैंसका दूध जिन घातक विधियों द्वारा निकाला जाता है, उसका दृश्य मेरी आंखोंके सामने था। फिर यह विचार भी मेरे सामने था कि मांसकी तरह पशुका दूध भी मनुष्यकी खुराक नहीं हो सकता। इसलिए दूध-त्यागका दृढ़ निश्चय करके मैं सुबह उठा। इस निश्चयसे मेरा दिल बहुत हलका हो गया था, किंतु फिर भी गोखलेका भय तो था ही; किंतु साथ ही मुझे यह विश्वास था कि वह मेरे निश्चयको उलटनेका उद्योग न करेंगे।

शामको 'नेशनल लिबरल क्लब' में हम उनसे मिलने गए। उन्होंने तुरंत पूछा, "क्यों डाक्टरकी सलाहके अनुसार चलनेका निश्चय किया है न?"

मैंने धीरेसे जवाब दिया, "और सब बात मान लूंगा, परंतु आप एक बातपर जोर न दीजिएगा। दूध और दूधकी बनी चीजें और मांस, इतनी चीजें मैं न लूंगा, और इनके न लेनेसे यदि मौत भी आती हो तो मैं समझता हूं उसका स्वागत कर लेना मेरा धर्म है।"

"आपने यह अंतिम निर्णय कर लिया है?" गोखलेने पूछा।

"मैं समझता हूं कि इसके सिवा मैं आपको दूसरा उत्तर नहीं दे सकता। मैं जानता हूं कि इससे आपको दुःख होगा; परंतु मुझे क्षमा कीजिएगा।" मैंने जवाब दिया।

गोखलेने कुछ दुःखसे, परंतु बड़े ही प्रेमसे कहा, "आपका यह निश्चय मुझे पसंद नहीं। मुझे इसमें धर्मकी कोई बात नहीं दिखाई देती। पर अब मैं इस बातपर जोर न दूंगा।" यह कहते हुए जीवराज मेहताकी ओर मुखातिब होकर उन्होंने कहा—"अब गांधीजीको ज्यादा दिक न करो। उन्होंने जो मर्यादा बांध ली है उसके अंदर उन्हें जो-जो चीजें दी जा सकती हैं, वही देनी चाहिए।"

डाक्टरने अपनी अप्रसन्नता प्रकट की; पर वह लाचार थे। मुझे

मूंगका पानी लेनेकी सलाह दी । कहा, "उसमें हींगका बघार दे लेना।" मैंने इसे मंजूर कर लिया । एक-दो दिन मैंने वह पानी लिया भी; परंतु इससे उलटे मेरा दर्द बढ़ गया । मुझे वह मुआफिक नहीं हुआ । इससे मैं फिर फलाहारपर आ गया । ऊपरके इलाज तो डाक्टरने जो मुनासिब समझे किए ही । उससे अलबत्ता कुछ आराम था । परंतु मेरी इन मर्यादाओंपर वह बहुत बिगड़ते । इसी बीच गोखले भारतको रवाना हुए, क्योंकि वह लंदनका अक्तूबर-नवंबरका कोहरा सहन नहीं कर सके । (आ० १९२७)

. . . .

मेरे बंबई पहुंचते ही गोखलेने मुझे तुरंत खबर दी कि बंबईके गवर्नर आपसे मिलना चाहते हैं और पूना आनेके पहले आप उनसे मिल आवें तो अच्छा होगा । इसलिए मैं उनसे मिलने गया ।

× × ×

अब मैं पूना पहुंचा । वहांके तमाम संस्मरण लिखना मेरे सामर्थ्यके बाहर है । गोखलेने और भारत-सेवक-समितिके सदस्योंने मुझे प्रेमसे पाग दिया । जहांतक मुझे याद है, उन्होंने तमाम सदस्योंको पूना बुलाया था । सबके साथ दिल खोलकर मेरी बातें हुईं । गोखलेकी तीव्र इच्छा थी कि मैं भी समितिमें आजाऊं । इधर मेरी तो इच्छा थी ही; परंतु उसके सदस्योंकी यह धारणा हुई कि समितिके आदर्श और उसकी कार्य-प्रणाली मुझसे भिन्न थी । इसलिए वे दुविधामें थे कि मुझे सदस्य होना चाहिए या नहीं । गोखलेकी यह मान्यता थी कि अपने आदर्शपर दृढ़ रहनेकी जितनी प्रवृत्ति मेरी थी उतनी ही दूसरोंके आदर्शकी रक्षा करने और उनके साथ मिल जानेका स्वभाव भी था । उन्होंने कहा, "परंतु हमारे साथी आपके दूसरोंको निभा लेनेके इस गुणको नहीं पहचान पाए हैं । वे अपने आदर्शपर दृढ़ रहनेवाले स्वतंत्र और निश्चित विचारके लोग हैं । मैं आशा तो यही रखता हूं कि वे आपको सदस्य बनाना मंजूर

कर लेंगे; परंतु यदि न भी करें तो आप इससे यह तो हरगिज न समझेंगे कि आपके प्रति उनका प्रेम या आदर कम है। अपने इस प्रेमको अखंडित रहने देनेके लिए ही वे किसी तरहकी जोखिम उठानेसे डरते हैं; परंतु आप समितिके बाकायदा सदस्य हों, या न हों, मैं तो आपको सदस्य मानकर ही चलूंगा।"

मैंने अपना संकल्प उनपर प्रकट कर दिया था। समितिका सदस्य बनूं या न बनूं, एक आश्रमकी स्थापना करके फिनिक्सके साथियोंको उसमें रखकर मैं बैठ जाना चाहता था। गुजराती होनेके कारण गुजरातके द्वारा सेवा करनेकी पूंजी मेरे पास अधिक होनी चाहिए, इस विचारसे गुजरातमें ही कहीं स्थिर होनेकी इच्छा थी। गोखलेको यह विचार पसंद आया और उन्होंने कहा—"जरूर आश्रम स्थापित करो। सदस्योंके साथ जो बातचीत हुई है उसका फल कुछ भी निकलता रहे, परंतु आपको आश्रमके लिए धन तो मुझ ही से लेना है। उसे मैं अपना ही आश्रम समझूंगा।"

यह सुनकर मेरा हृदय फूल उठा। चंदा मांगनेकी झंझटसे बचा, यह समझकर बड़ी खुशी हुई और इस विचारसे कि अब मुझे अकेले अपनी जिम्मेदारीपर कुछ न करना पड़ेगा, बल्कि हरेक उलझनके समय मेरे लिए एक पथ-दर्शक यहां है। ऐसा मालूम हुआ मानों मेरे सिरका बोझ उतर गया।

गोखलेने स्वर्गीय डाक्टर देवको बुलाकर कह दिया, "गांधीका खाता अपनी समितिमें डाल लो और उनको अपने आश्रमके लिए तथा सार्वजनिक कामोंके लिए जो कुछ रुपया चाहिए, वह देते जाना।"

अब मैं पूना छोड़कर शांतिनिकेतन जानेकी तैयारी कर रहा था। अंतिम रातको गोखलेने खास मित्रोंकी एक पार्टी इस विधिसे की, जो मुझे रुचिकर होती। उसमें वही चीजें अर्थात् फल और मेवे मंगाए थे, जो मैं खाया करता था। पार्टी उनके कमरेसे कुछ ही दूरपर थी। उनकी

हालत ऐसी न थी कि वे बहांतक भी आ सकते; परंतु उनका प्रेम उन्हें कैसे रुकने देता ! वह जिद करके आए थे; परंतु उनको गश आ गया और वापस लौट जाना पड़ा। ऐसा गश उन्हें बार-बार आ जाया करता था, इसलिए उन्होंने कहलाया कि पार्टीमें किसी प्रकारकी गड़बड़ न होनी चाहिए। पार्टी क्या थी, समितिके आश्रममें अतिथि-घरके पासके मैदानमें जाजम बिछाकर हम लोग बैठ गये थे और मूंगफली, खजूर वगैरह खाते हुए प्रेम-वार्ता करते थे एवं एक-दूसरेके हृदयको अधिक जाननेका उद्योग करते थे।

किंतु उनकी यह मूर्छा मेरे जीवनके लिए कोई मामूली अनुभव नहीं था। (आ० १९२७)

. . . .

राजनैतिक क्षेत्रमें मैंने अपने आपको उस महात्माका शिष्य कहा है और मैं उसे राजनैतिक बातोंमें अपना गुरू मानता हूं और यह बात मैं भारतवासियोंकी ओरसे कहता हूं। सन् १८९६ में मैंने अपने शिष्य होनेकी बात कही थी और मुझे अपनी इस पसंदके लिए कभी दुःख नहीं हुआ।

मि० गोखलेने मुझे इस बातकी शिक्षा दी थी कि प्रत्येक भारतवासीको, जो अपने देशके प्रेमका दम भरता हो, सदा राजनैतिक क्षेत्रमें कार्य करनेका ध्यान रखना चाहिए। उसे केवल जबानी जमा-खर्च ही नहीं करना चाहिए, बल्कि उसे देशके राजनैतिक जीवन तथा राजनैतिक संस्थाओंको आध्यात्मिक बनाना चाहिए। उन्होंने मेरे जीवनमें उत्तेजना उत्पन्न की तथा वे अब भी उत्तेजना उत्पन्न कर रहे हैं। उस उत्तेजनासे मैं अपने आपको पवित्र करना चाहता हूं तथा अपने आपको आध्यात्मिक बनाना चाहता हूं। मैंने उस आदर्शके लिए अपने आपको समर्पित कर दिया है। मुझे इसमें विफलता हो सकती है और जिस सीमा तक मुझे उसमें विफलता होगी उस सीमातक मैं अपने आपको अपने गुरुका अयोग्य शिष्य समझूंगा। . . .

मैं उस महात्मा राजनीतिज्ञके समीप उनके जीवनके अंत समय तक रहा और मैंने उनमें कभी अहंभाव नहीं पाया। जातीय-सेवा-सभाके आप सभासदोंसे मैं प्रश्न करता हूं कि आप लोगोंमें किसी प्रकारका अहंभाव तो नहीं है? यदि महात्मा गोखलेने कीर्त्तिशाली होना चाहा तो केवल देशके राजनैतिक क्षेत्रमें कीर्तिशाली होना चाहा। उनकी यह इच्छा इसलिए नहीं थी कि सर्वसाधारण मेरी प्रसंशा करें, बल्कि यह इच्छा इसलिए थी कि मेरे देशका लाभ—मेरे देशका कल्याण—हो। उन्होंने सर्वसाधारणकी प्रशंसाकी कभी कामना नहीं की थी, पर स्वयं सर्वसाधारण ही उन पर प्रशंसाकी वर्षा करते थे, वे जबरदस्ती उनकी तारीफें करते थे। वे चाहते थे कि मेरे देशका लाभ हो और यही उनका बहुत बड़ा दैवी बल था।...

आज आप लोग मुझसे इस चित्रको उद्घाटित करनेके लिए कहते हैं। मैं यह काम पूरी ईमानदारी, हृदयकी पूरी सत्यता और शुद्धताके साथ करूंगा और यही ईमानदारी या हृदयकी शुद्धता जीवनका अंतिम उद्देश्य होना चाहिए।* ('महात्मा गांधी'–रामचंद्र वर्मा, पृष्ठ ४१)

... ...

गोखलेकी पुण्यतिथिके अवसरपर उस स्वर्गस्थ महात्माके भाषणों तथा लेखोंका गुजराती अनुवाद प्रकाशित करनेका विचार पहलेपहल मेरे ही मनमें उत्पन्न हुआ था। इसलिए उसके पहले भागकी प्रस्तावना अधिकांशमें मुझको ही लिखना उचित था। हम लोगोंने नियम किया है कि हरसाल गोखलेकी पुण्यतिथि मनावेंगे। भजन, कीर्त्तन, व्याख्यान और तदनंतर सभाका विसर्जन—यह हर साल ही होता है। इससे कालक्षेप तो बहुत होता है, पर उससे कोई वास्तविक लाभ नहीं होता। अतः

---

*बंगलौरमें गोखलेकी मूर्ति-अनावरणके समय प्रकट किये गए उद्गार।

भाषणोंकी अपेक्षा कार्यको अधिक महत्व देने तथा ऐसे उत्सवोंको सर्व-साधारणके लिए सचमुच लाभदायक बनानेके लिए गत वर्ष पुण्य-तिथिके प्रबन्ध-कर्ताओंने इस अवसर पर मातृभाषामें कोई उपयोगी पुस्तक प्रकाशित करना निश्चित किया था। पुस्तक चुननेमें भी देर नहीं लगी। स्वभावतः ही पहली पुस्तक स्वर्गीय गोखले के भाषणोंका संग्रह पसन्दकी गई।...

स्व० गोखलेके विषयमें दो-चार शब्द लिखना ही सच्ची प्रस्तावना हो सकता है; परंतु गुरुके विषयमें शिष्य क्या लिखे और कैसे लिखे? उसका लिखना एक प्रकारकी धृष्टतामात्र है। सच्चा शिष्य वही है जो गुरुमें अपनेको लीन कर दे, अर्थात् वह टीकाकार हो ही नहीं सकता। जो भक्ति दोष देखती हो वह सच्ची भक्ति नहीं और दोषगुणके पृथक्करणमें असमर्थ लेखक द्वारा की हुई गुरु-स्तुतिको यदि सर्वसाधारण अंगीकार न करें तो इसपर उसे नाराज होनेका अधिकार नहीं हो सकता। शिष्यके आचरणों हीसे गुरुकी टीका होती है। गोखले राजनैतिक विषयोंमें मेरे गुरु थे, इस बातको मैं अनेक बार कह चुका हूं। इस कारण उनके विषयमें कुछ लिखनेमें मैं अपनेको असमर्थ समझता हूं। मैं चाहे जितना लिख जाऊं, मुझे थोड़ा ही मालूम होगा। मेरे विचारसे गुरु-शिष्यका संबंध शुद्ध आध्यात्मिक संबंध है। वह अंकशास्त्रके नियमानुसार नहीं होता। कभी-कभी वह हमारे बिना जाने भी हो जाता है। उसके होनेमें एक क्षणसे अधिक नहीं लगता, पर एक बार होकर वह फिर टूटना जानता ही नहीं।

१८९६ ई० में पहले-पहल हम दोनों व्यक्तियोंमें यह संबंध हुआ। उस समय न मुझे उनका ख्याल था और न उन्हें मेरा। उसी समय मुझे गुरुजीके भी गुरु लोकमान्य तिलक, सर फिरोजशाह मेहता, जस्टिस बदरुद्दीन तैयबजी, डा० भांडारकर तथा बंगाल और मद्रास प्रांतके और भी अनेक नेताओंके दर्शनोंका सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैं उस समय बिल्कुल

नवयुवक था, मुझपर सबने प्रेम-वृष्टि की। सबके एकत्र दर्शनका वह प्रसंग मुझे कभी न भूलेगा; परंतु गोखलेसे मिलकर मेरा हृदय जितना शीतल हुआ उतना औरोंसे मिलनेसे नहीं हुआ। मुझे याद नहीं आता कि गोखलेने मुझपर औरोंकी अपेक्षा अधिक प्रेम-वृष्टि की थी। तुलना करनेसे मैं कह सकता हूं कि डा० भांडारकर ने मुझपर जितना अनुराग प्रकट किया उतना और किसीने नहीं किया। उन्होंने कहा--यद्यपि मैं आजकल सार्वजनिक कार्योंसे अलग रहता हूं, पर फिर भी केवल तुम्हारी खातिर मैं उस सभाका अध्यक्ष बनना स्वीकार करता हूं, जो तुम्हारे प्रश्नपर विचार करनेके लिए होनेवाली है। यह सब होते हुए भी केवल गोखले हीने मुझे अपने प्रेम-पाशमें आबद्ध किया। उस समय मुझे इस बातका बिलकुल ज्ञान नहीं हुआ। पर सन् १९०२ वाली कलकत्तेकी कांग्रेसमें मुझे अपने शिष्य-भावका पूरा-पूरा अनुभव हुआ। उपर्युक्त नेताओंमेंसे अनेकके दर्शनोंका उस समय मुझे फिर सौभाग्य प्राप्त हुआ। किंतु मैंने देखा कि गोखलेको मेरी याद बनी हुई थी। देखते ही उन्होंने मेरा हाथ पकड़ लिया। वे मुझे अपने घर खींच ले गए। मुझे भय था कि विषय-निर्वाचिनी-समितिमें मेरी बात न सुनी जायगी। प्रस्तावोंकी चर्चा शुरू हुई और खतम भी हो गई, पर मुझे अंततक यह कहनेका साहस न हुआ कि मेरे मनमें भी दक्षिण अफ्रीका संबंधी एक प्रश्न है। मेरे लिए रातको कौन बैठा रहता! नेतागण कामको जल्दी निपटानेके लिए आतुर हो गए। उनके उठ जानेके डरसे मैं कांपने लगा। मुझे गोखलेको याद दिलानेका भी साहस न हुआ। इतनेमें वे स्वयं ही बोले--मि० गांधी भी दक्षिण अफ्रीकाके हिंदुस्तानियोंकी दशाके संबंधमें एक प्रस्ताव करना चाहते हैं। उस पर अवश्य विचार किया जाय। मेरे आनंदकी सीमा न रही। राष्ट्रसभाके संबंधमें मेरा यह पहला ही अनुभव था। इसलिए उसमें स्वीकृत होनेवाले प्रस्तावोंका मैं बड़ा महत्व समझता था। इसके बाद भी उनके दर्शनके कितने ही अवसर उपस्थित हुए और वे सभी पवित्र हैं। पर इस समय जिस बातको मैं उनका महामंत्र

मानता हूं, उसका उल्लेखकर, इस प्रस्तावनाको पूर्ण करना उत्तम होगा।

इस कठिन कलिकालमें किसी विरले ही मनुष्यमें शुद्ध धर्मभाव देख पड़ता है। ऋषि, मुनि, साधु आदि नाम धारणकर भटकते फिरनेवालोंको इस भावकी प्राप्ति शायद ही कभी होती है। आजकल उनका धर्म-रक्षक पदसे च्युत हो जाना सभी लोग देख रहे हैं। यदि एक ही सुंदर वाक्यमें धर्मकी पूरी व्याख्या कही है तो वह भक्त-शिरोमणि गुजराती कवि नरसिंह मेहताके इस वाक्यमें है :

"ज्यां लगी आतमा तत्व चीन्यो नहीं, त्यां लगी साधना सर्व जूठी।"

अर्थात्––जबतक आत्मतत्वकी पहचान न हो तबतक सभी साधनाएं निरर्थक हैं। यह वचन उसके अनुभव-सागरके मंथनसे निकला हुआ रत्न है। इससे ज्ञात होता है कि महातपस्वी तथा योगी जनोंमें भी (सच्चा) धर्मभाव होना अनिवार्य नहीं है। गोखलेको आत्मतत्वका उत्तम ज्ञान था, इसमें मुझे तनिक भी संदेह नहीं। यद्यपि वे सदा ही धार्मिक आडंबरसे दूर रहे, फिर भी उनका संपूर्ण जीवन धर्ममय था। भिन्न-भिन्न युगोंमें मोक्ष-मार्ग पर लगानेवाली प्रवृत्तियां देखी गई हैं। जब-जब धर्मबंधन ढीला पड़ता है तब-तब कोई एक विशेष प्रवृत्ति धर्म-जागृतिमें विशेष उपयोगी होती है। यह विशेष प्रवृत्ति उस समयकी परिस्थितिके अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकारकी होती है। आजकल हम अपनेको राजनैतिक विषयोंमें अवनत देखते हैं। एकांगी दृष्टिसे विचार करनेसे जान पड़ेगा कि राजनैतिक सुधारसे ही अन्य बातोंमें हम उन्नति कर सकेंगे। यह बात एक प्रकारसे सच भी है। राजनैतिक अवस्थाके सुधारके बिना उन्नति होना संभव नहीं। पर राजनैतिक स्थितिमें परिवर्तन होने हीसे उन्नति न होगी। परिवर्तनके साधन यदि दूषित तथा घृणित हुए तो उन्नतिके बदले और अवनति ही होनेकी अधिकतर संभावना है। जो परिवर्त्तन शुद्ध और पवित्र साधनोंसे किया जाता है वही हमें उच्च मार्गपर ले जा सकता है।

सार्वजनिक कामोंमें पड़ते ही गोखलेको इस तत्वका ज्ञान हो गया था और इसको उन्होंने कार्यमें भी परिणत किया। यह बात सभी लोग जानते थे कि यह भव्य विचार उन्होंने अपने भारत-सेवक-समिति तथा संपूर्ण जन-समुदायके सम्मुख रक्खा कि यदि राजनीतिको धार्मिक स्वरूप दिया जायगा तो वही मोक्ष-मार्गपर ले जानेवाली हो जायगी। उन्होंने साफ कह दिया कि जबतक हमारे राजनैतिक कार्योंको धर्मभावकी सहायता न मिलेगी तब-तक वे सूखे, रसहीन, ही बने रहेंगे। उनकी मृत्युपर 'टाइम्स आव इंडिया' में जो लेख प्रकाशित हुआ था उसके लेखकने इस बातका स्पष्ट उल्लेख किया था और राजनैतिक संन्यासी उत्पन्न करनेके उनके प्रयत्नकी सफलता पर अविश्वास प्रकट करते हुए, उनकी यादगार 'भारत-सेवक-समिति' का ध्यान इसकी ओर आकर्षित किया था। वर्त्तमान कालमें राजनैतिक संन्यासी ही संन्यासाश्रमकी गौरववृद्धि कर सकते हैं। अन्य गेरुवा वस्त्र-धारी संन्यासी उसकी अपकीर्त्तिके ही कारण हैं। शुद्धधर्म मार्गमें चलने-वाले किसी भारतवासीका राजनैतिक कामोंसे परे रहना कठिन है। इसी बातको मैं दूसरी तरह अंगीकार किए बिना रह ही नहीं सकता। और आजकलकी राज्य-व्यवस्थाके जालमें हम इस तरह फंस गए हैं कि राजनीतिसे अलग रहते हुए, लोक-सेवा करना सर्वथा असंभव ही है। पूर्व समयमें जो किसान इस बातको जाने बिना भी कि जिस देशमें हम बसते हैं उसका अधिकारी कौन है, अपनी जीवन-यात्रा भलीभांति निर्वाह कर लेता था, वह आज ऐसा नहीं कर सकता। ऐसी दशामें उसका धर्माचरण राजनैतिक परिस्थितिके अनुसार ही होना चाहिए। यदि हमारे साधु, ऋषि, मुनि, मौलवी और पादरी इस उच्च तत्वको स्वीकार कर लें तो जहां देखिए वहीं भारत-सेवक-समितियां ही दिखाई देने लगें और भारतमें धर्म-भाव इतना व्यापक हो जाय कि जो राजनैतिक चर्चा आज लोगोंको अरुचिकर होती है वही उन्हें पवित्र और प्रिय मालूम होने लगे, फिर पहले ही की तरह भारतवासी धार्मिक साम्राज्यका उपभोग

करने लगें। भारतका बंधन एक क्षणमें दूर हो जाय और वह स्थिति प्रत्यक्ष आंखोंके सामने आ जाय, जिसका दर्शन एक प्राचीन कविने अपनी अमरवाणीमें इस प्रकार किया है---फौलादसे तलवार बनानेका नहीं बल्कि (हल की) फाल बनानेका काम लिया जायगा और सिंह और बकरे साथ-साथ विचरण करेंगे। ऐसी स्थिति उत्पन्न करनेवाली प्रवृत्ति ही गुरुवर गोखलेका जीवन-मंत्र थी। यही उनका संदेश है और मुझे विश्वास है कि शुद्ध और सरल मनसे विचार करनेपर उनके भाषणोंके प्रत्येक शब्दमें यह मंत्र लक्षित होगा।*

. . . .

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय! तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

श्रीकृष्णने अर्जुनको जो उपदेश दिया था, वही उपदेश भारत-माताने महात्मा गोखलेको दिया था और उनके आचरणोंसे सूचित होता है कि उन्होंने उसका पालन भी किया है। यह सर्वमान्य बात है कि उन्होंने जो-जो किया, जिस-जिसका उपभोग किया, जो स्वार्थ त्याग किया, जिस तपका आचरण किया, वह सभी कुछ उन्होंने भारत-माताके चरणोंमें अर्पण कर दिया।

केवल देश ही के लिए जन्म लेनेवाले इस महात्माका अपने देश-बंधुओंके प्रति क्या संदेश है? 'भारत-सेवक-समिति' के जो सेवक महात्मा गोखलेके अंतिम समयमें उनके पास उपस्थित थे, उन्हें उन्होंने निम्नलिखित वाक्य कहे थे :

"(तुम लोग) मेरा जीवन-चरित्र लिखने न बैठना, मेरी मूर्त्ति बनवानेमें भी अपना समय मत लगाना। तुम लोग भारतके सच्चे सेवक

*स्वर्गीय [illegible] उनके भाषणों तथा लेखोंके गुजराती संग्रहकी भूमिका।

होंगे तो अपने सिद्धांतके अनुसार आचरण करते अर्थात् भारतकी ही सेवा करनेमें अपनी आयु व्यतीत करोगे।"

सेवाके संबंधमें उनके आंतरिक विचार हमें मालूम हैं। राष्ट्रीय सभाका कार्य संचालन, भाषण तथा लेख द्वारा जनताको देशकी सच्ची स्थितिका ज्ञान कराना, प्रत्येक भारतवासीको साक्षर बनानेका प्रयत्न कराना, ये सब काम सेवा ही हैं। पर किस उद्देश्य और किस प्रणालीसे यह सेवा की जाय? इस प्रश्नका वे जो उत्तर देते वह उनके इस वाक्यसे प्रकट होता है। अपनी संस्था ('भारत-सेवक-समिति') की नियमावली बनाते हुए उन्होंने लिखा है: "सेवकोंका कर्त्तव्य भारतके राजनैतिक जीवनको धार्मिक बनाना है।" इसी एक वाक्यमें सब-कुछ भरा हुआ है। उनका जीवन धार्मिक था। मेरा विवेक इस बातका साक्षी है कि उन्होंने जो-जो काम किए, सब धर्मभाव हीकी प्रेरणासे किए। बीस साल पहले उनका कोई-कोई उद्गार या कथन नास्तिकोंका-सा होता था। एक बार उन्होंने कहा था—"क्या ही अच्छा होता यदि मुझमें भी वही श्रद्धा होती, जो रानडेमें थी।" पर उस समय भी उनके कार्योंके मूलमें उनकी धर्म-बुद्धि अवश्य रहती थी। जिस पुरुषका आचरण साधुओंके सदृश्य है, जिसकी वृत्ति निर्मल है, जो सत्यकी मूर्त्ति है, जो नम्र है, जिसने सर्वथा अहंकारका परित्याग कर दिया है, वह निस्संदेह धर्मात्मा है। गोखले इसी कोटिके महात्मा थे। यह बात मैं उनके लगभग २० वर्षोंकी संगतिके अनुभवसे कह सकता हूं।

१८९६ में मैंने नेटालकी शर्त्तबंदीकी मजदूरीपर भारतमें वाद-विवाद आरंभ किया। उस समय कलकत्ता, बंबई, पूना, मद्रास आदि स्थानोंके नेताओंसे मेरा पहले-पहल संबंध हुआ। उस समय सब लोग जानते थे कि महात्मा गोखले रानडेके शिष्य हैं। फर्ग्यूसन कालेजको वे अपना जीवन भी अर्पण कर चुके थे, और मैं उस समय एक निरा अनुभव-हीन युवक था। मैं पहले-पहल पूनेमें उनसे मिला। इस पहली ही भेंटमें हम

लोगोंमें जितना घनिष्ट संबंध हो गया उतना और किसी नेतासे नहीं हुआ। महात्मा गोखलेके विषयमें जो बातें मैंने सुनी थीं वे सब प्रत्यक्ष देखनेमें आईं। उनकी वह प्रेम-युक्त और हास्यमय मूर्त्ति मुझे कभी न भूलेगी। मुझे उस समय मालूम हुआ कि मानो वे साक्षात् धर्म की ही मूर्त्ति हैं। उस समय मुझे रानडेके भी दर्शन हुए थे। पर उनके हृदयमें मैं स्थान न पा सका। मैं उनके विषयमें केवल इतना ही जान सका कि वे गोखलेके गुरु हैं। अवस्था और अनुभवमें वे मुझसे बहुत अधिक बड़े थे, इस कारण अथवा और किसी कारणसे मैं रानडेको उतना न जान सका, जितना कि गोखलेको मैंने जाना।

१८९६ ई० के अवसरसे ही गोखलेका राजनैतिक जीवन मेरे लिए आदर्श-स्वरूप हुआ। उसी समयसे उन्होंने राजनैतिक गुरुके नाते मेरे हृदयमें निवास किया। उन्होंने सार्वजनिक सभा (पूना) की त्रैमासिक पुस्तकका संपादन किया। उन्होंने फर्ग्यूसन-कालेजमें अध्यापन कार्य करके उसे उन्नत दशाको पहुंचाया। उन्होंने वेल्बी-कमीशनके सामने गवाही देकर अपनी वास्तविक योग्यताका प्रमाण दिया, उनकी बुद्धिमत्ताकी छाप लार्ड कर्जनपर---उन लार्ड कर्जनपर जो अपने सामने किसीको कुछ न गिनते थे---बैठी और वे उनसे शंकित रहने लगे।

उन्होंने बड़े-बड़े काम करके मातृभूमिकी कीर्तिको उज्ज्वल किया। पब्लिक-सर्विस-कमीशनका काम करते समय उन्होंने अपने जीने-मरने तककी परवा न की। उनके इन तथा अन्य कार्योंका दूसरे व्यक्तियोंने उत्तम रीतिसे वर्णन किया है।

× × ×

जनरल बोथा तथा स्मट्ससे जब उन्होंने दक्षिण अफ्रीकाकी राजधानी प्रिटोरियामें मुलाकात की थी उस समय इस मुलाकातके लिए तैयार होनेमें उन्होंने जितना परिश्रम किया था वह मुझे इस जन्ममें नहीं भूल

सकता। मुलाकातके पहले दिन उन्होंने मेरी और मि० कैलनबेककी परीक्षा ली। वे स्वयं रातके तीन ही बजे जाग पड़े और हम लोगोंको भी उन्होंने जगाया। उन्हें जो पुस्तकें दी गई थीं उनको उन्होंने अच्छी तरह पढ़ लिया था। अब हम लोगोंसे जिरह करके वे इस बातका निश्चय करना चाहते थे कि उनकी तैयारी पूरी हुई या अभी उसमें कसर है। मैंने उनसे विनयपूर्वक कहा कि इतना परिश्रम अनावश्यक है। हम लोगोंको तो कुछ मिले या न मिले, लड़ना ही होगा; पर अपने आरामके लिए मैं आपका बलिदान नहीं करना चाहता। पर जिस पुरुषने सर्वदा काममें लगे रहनेकी आदत ही बना रक्खी थी, वह मेरी बातोंपर कब ध्यान देता! उनकी जिरहोंका मैं क्या वर्णन करूं। उनकी चिंताशीलताकी कितनी प्रशंसा करूं। इतने परिश्रमका एक ही परिणाम होना चाहिए था। मंत्रि-मंडलने वचन दिया कि आगामी बैठकमें सत्याग्रहियोंकी आकांक्षाओंको स्वीकार करनेवाला कानून पास किया जायगा और मजदूरोंको ४५ रुपयोंका जो कर देना पड़ता है वह माफ कर दिया जायगा।

पर इस वचनका पालन नहीं किया गया। तो क्या गोखले निश्चेष्ट हो बैठ रहे? एक क्षणके लिए भी नहीं। मेरा विश्वास है कि १९१३ई० में उक्त वचनको पूरा करानेके लिए उन्होंने जो अविराम श्रम किया, उससे उनके जीवनके दस वर्ष अवश्य छीजे होंगे। उनके डाक्टरकी भी यही राय है। उस वर्ष भारतमें जागृति उत्पन्न करने और द्रव्य एकत्र करनेके लिए उन्होंने जितने कष्ट सहे, उनका अनुमान कठिन है। यह महात्मा गोखलेका ही प्रताप था कि दक्षिण अफ्रीकाके प्रश्नपर भारतवर्ष हिल उठा। लार्ड हार्डिंजने मद्रासमें इतिहासमें यादगार होने योग्य जो भाषण दिया वह भी उन्हींका प्रताप था। उनसे घनिष्ट परिचय रखने-वालोंका कहना है कि दक्षिण अफ्रीकाके मामलेकी चिंताने उन्हें चारपाईपर डाल दिया, फिर भी अंततक उन्होंने विश्राम करना स्वीकार न किया।

दक्षिण अफ्रीकासे आधीरातको आनेवाले पत्र-सरीखे लंबे-चौड़े तारोंको उसी क्षण पढ़ना, जवाब तैयार करना, लार्ड हार्डिंजके नाम पर तार भेजना, समाचार-पत्रोंमें प्रकाशित कराए जानेवाले लेखका मसविदा तैयार करना और इन कामोंकी भीड़में खाने और सोने तककी याद न रहना, रात-दिन एक कर डालना, ऐसी अनन्य निस्स्वार्थ भक्ति वही करेगा जो धर्मात्मा हो।

हिंदू और मुसलमानके प्रश्नको भी वे धार्मिक दृष्टिसे ही देखते थे। एक बार अपनेको हिंदू कहनेवाला एक साधु उनके पास आया और कहने लगा कि मुसलमान नीच हैं और हिंदू उच्च। महात्मा गोखलेको अपने जालमें फसते न देख उसने उन्हें दोष देते हुए कहा कि तुममें हिंदुत्वका तनिक भी अभिमान नहीं। महात्मा गोखलेने भंवें चढ़ाकर हृदय-भेदी स्वरमें उत्तर दिया—"यदि तुम जैसा कहते हो वैसा करने हीमें हिंदुत्व है तो मैं हिंदू नहीं। तुम अपना रास्ता पकड़ो।"

महात्मा गोखलेमें निर्भयताका गुण बहुत अधिक था। धर्मनिष्ठामें इस गुणका स्थान प्रायः सर्वोच्च है। लेफ्टिनेंट रैंडकी हत्याके पश्चात् पूनामें हलचल मच गई थी। गोखले उस समय इंग्लैंडमें थे। पूनावालोंकी तरफसे वहां उन्होंने जो व्याख्यान दिए वे सारे जगतमें प्रसिद्ध हैं। उनमें वे कुछ ऐसी बातें कह गए थे, जिनका पीछे वे सबूत न दे सकते थे। थोड़े ही दिनों बाद वे भारत लौटे। अपने भाषणोंमें उन्होंने अंग्रेज सिपाहियोंपर जो इलजाम लगाया था उसके लिए उन्होंने माफी मांग ली। इस माफी मांगनेके कारण यहांके बहुतसे लोग उनसे नाराज भी हो गए। महात्माको कितने ही लोगोंने सार्वजनिक कामोंसे अलग हो जानेकी सलाह दी। कितने ही नासमझोंने उनपर भीरुताका आरोप करनेमें भी आगापीछा न किया। इन सबका उन्होंने अत्यंत गंभीर और मधुर भाषामें यही उत्तर दिया—"देश-सेवाका कार्य मैंने किसीकी आज्ञासे अंगीकार नहीं किया है और किसीकी आज्ञासे

उसे मैं छोड़ भी नहीं सकता। अपना कर्त्तव्य करते हुए यदि मैं लोकपक्षके साथ रहनेके योग्य समझा जाऊं तो अच्छा ही है, पर यदि मेरे भाग्य वैसे न हों तो भी मैं उसे अच्छा ही समझूंगा।" काम करना उन्होंने अपना धर्म माना था। जहांतक मेरा अनुभव है, उन्होंने कभी स्वार्थ-दृष्टिसे इस बातका विचार नहीं किया कि मेरे कार्योंका जनतापर क्या प्रभाव पड़ेगा। मेरा विश्वास है कि उनमें वह शक्ति थी जिससे यदि देशके लिए उन्हें फांसी पर चढ़ाना होता तो भी वे अविचलित चित्तसे हँसते हुए फांसी पर चढ़ जाते। मैं जानता हूं कि अनेक बार उन्हें जिन अवस्थाओं में रहना पड़ा है उनमें रहनेकी अपेक्षा फांसीपर चढ़ना कहीं सहज था। ऐसी विकट परिस्थितियोंका उन्हें अनेक बार सामना करना पड़ा, पर उन्होंने कभी पांव पीछे न हटाया।

इन सब बातोंसे तात्पर्य यह निकलता है कि यदि इस महान् देशभक्तके चरित्रका कोई अंश हमारे ग्रहण करने योग्य है तो वह उनका धर्म-भाव ही है। उसीका अनुकरण करना हमें उचित है। हम सब लोग बड़ी व्यवस्थापिका सभाके सदस्य नहीं हो सकते। हम यह भी नहीं देखते कि उसके सदस्य होनेसे देश-सेवा हो ही जाती है। हम सब लोग पब्लिक-सर्विस-कमीशनमें नहीं बैठ सकते। यह बात भी नहीं है कि उसमें के सब बैठनेवाले देशभक्त ही होते हैं। हम सब लोग उनकी बराबरीके विद्वान् नहीं हो सकते और विद्वानमात्रके देश-सेवक होनेका भी हमें अनुभव नहीं है। परंतु निर्भयता, सत्य, धैर्य, नम्रता, न्यायशीलता, सरलता और अध्यवसाय आदि गुणोंका विकास कर उन्हें देशके लिए अर्पण करना सबके लिए साध्य है, यही धर्मभाव है। राजनैतिक जीवनको धर्ममय करनेका यही अर्थ है। उक्त वचनके अनुसार आचरण करनेवालेको अपना पथ सदा ही सूझता रहेगा। महात्मा गोखलेकी संपत्तिका भी वह उत्तराधिकारी होगा। इस प्रकारकी निष्ठासे काम करनेवालेको और भी जिन-जिन विभूतियोंकी आवश्यकता होगी वे सब प्राप्त होंगी। यह ईश्वरका

वचन है और महात्मा गोखलेका चरित्र इसका ज्वलंत प्रमाण है।*
('महात्मा गांधी'—रामचंद्र वर्मा)

. . . .

मेरे पास एक गुमनाम पत्र आया है। उसमें मेरी प्रशंसा करते हुए लेखकने लिखा है, "आपने जिस कामको उठाया है वह लोकमान्यको अतिशय प्रिय था। मालूम होता है, उनकी आत्मा आपमें विराजती है। आपको साहस नहीं छोड़ना चाहिए। काम करते जाइए, स्वराज्य आपका है। पर आपने अपनेको गोखलेका शिष्य किस तरह माना है? यह लिखकर आपने अपनी अप्रतिष्ठा की है।"

अच्छा हो यदि लेखक गुमनाम पत्र लिखनेकी बुरी आदत छोड़ दें। यदि हम लोग स्वराज्यके लिए वाकई तत्पर हैं तो हमें उचित ही है कि भीरुता त्यागकर साहसीकी भांति अपना मत प्रकट करें। चूंकि पत्र सार्वजनिक दृष्टिसे महत्वपूर्ण है इसलिए इसका उत्तर दे देना आवश्यक प्रतीत होता है। मैं लोकमान्यका अनुयायी नहीं हूं। उनके करोड़ों देश-वासियोंकी तरह मैं उनके दृढ़ साहस, असीम पांडित्य और अगाध देश-प्रेम की हृदयसे प्रशंसा करता हूं। सबसे अधिक आदर मैं उनके पवित्र और निःस्वार्थ जीवनकी करता हूं। वर्तमान समाजके मनुष्योंमें उन्होंने जनताकी दृष्टि अपनी ओर सबसे अधिक आकृष्ट की है। उन्होंने हम लोगोंके हृदयमें स्वराज्यका बीजारोपण किया। वर्तमान शासनकी बुराइयोंको जितना अधिक लोकमान्यने समझा था उतना अधिक और किसीने नहीं, और मैं उनके संदेशको भारतकी झोंपड़ियोंतक उसी तरह पहुंचाना चाहता हूं और फैलानेका यत्न कर रहा हूं जिस तरह कि [illegible] शागिर्द। पर मेरे और उनके तरीकेमें भेद है। यही [illegible]

---

* बंबईकी 'भगिनी-समाज' नामक संस्थाने स्त्रियोंके लिए प्रकाशित एक सामयिक पुस्तिका से।

चंद महाराष्ट्र-नेता मेरे साथ एकमत नहीं हो सके हैं। पर मेरा यह भी दृढ़ मत है कि लोकमान्यको मेरे तरीकेपर अविश्वास नहीं था। मेरे ऊपर उनका दृढ़ विश्वास था। अपनी मृत्युके कोई दस दिन पहले अपने अनेक मित्रोंके सामने उन्होंने कहा था कि आपका तरीका सबसे अच्छा है, यदि जनताको समझाकर आप अपने साथ कर सकें। लेकिन उन्हें इस बातका संदेह था कि जनता मेरे तरीकेको समझ सकेगी। पर मैं दूसरा तरीका जानता ही नहीं। मैं यही चाहता हूं कि परीक्षाके समय देश अपनी योग्यता दिखलावे कि उसने अहिंसात्मक असहयोगके तत्वको समझ लिया है। मैं अपनी अन्य अयोग्यताओंको भी जानता हूं। मैं पांडित्यका दावा नहीं करता। मुझमें उनके समान संगटन-शक्ति भी नहीं है। मेरे कार्य-संचालनके लिए शागिर्द भी नहीं हैं और साथ ही बीस वर्षतक विदेशोंमें रहनेके कारण भारतका मुझे अनुभव भी उतना नहीं है जितना लोकमान्यको था। हम लोगोंमें दो बातोंमें समता थी: देशप्रेम तथा स्वराज्य। यह दोनोंके हृदयमें एक भावसे विद्यमान थे। इसलिए मैं इस गुमनाम पत्रके लेखकको बतला देना चाहता हूं कि लोकमान्यकी स्मृतिके लिए मेरे हृदयमें किसीसे कम आदर या मान नहीं है और स्वराज्यके प्रतिपादनमें मैं उनके उत्तम-से-उत्तम शिष्यके साथ आगे बढ़ता रहूंगा। मैं जानता हूं कि उनकी सबसे सच्ची उपासना यही है कि भारतको जल्दी-से-जल्दी स्वराज्य मिल जाय। केवलमात्र इसीसे उनकी आत्माको शांति मिल सकती है।

शिष्य होना परम पवित्र, पर व्यक्तिगत भाव है। मैंने १८८८ ई० में दादाभाईके चरणोंमें अपनेको समर्पित किया, पर मेरे आदर्शसे वे बहुत दूर थे। मैं उनके पुत्रके स्थानपर हो सकता था, उनका शागिर्द नहीं हो सकता था। शिष्यका दर्जा पुत्रसे ऊंचा है। शिष्य, पुत्र रूपसे, दूसरा जन्म ग्रहण करता है। शिष्य होना अपनी स्वकीय प्रेरणासे समर्पित करना है। १८९६ ई० में दक्षिण अफ्रीकाके संबंधमें भारतके सभी प्रधान नेताओंसे मिला। जस्टिस रानडेसे मुझे भय लगता था। उनके सामने मुझे बयान

करनेका भी साहस नहीं होता था। बदरुद्दीन तैयबजी पिताकी तरह प्रतीत हुए। उन्होंने मुझे सलाह दी कि फिरोजशाह मेहता और रानडेके परामर्शसे काम करो। सर फिरोजशाह तो हमारे संरक्षक बन गए। इसलिए उनकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य थी। जो कुछ वे कहते, मैं चुपचाप स्वीकार करता। उन्होंने मुझसे कहा, "२६ सितंबरको सार्वजनिक सभामें तुम्हें भाषण देना होगा।" मैंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। २५ सितंबरको मुझे उनसे मिलना था। मैं उनके पास गया। उन्होंने मुझसे पूछा, "क्या तुमने अपना भाषण लिखकर तैयार कर डाला है?" मैंने उत्तर दिया, "जी, नहीं।"

उन्होंने कहा, "इस तरह काम नहीं चलेगा। क्या आज रातभरमें लिखकर तैयार कर सकते हो?" इतना कहकर उन्होंने अपने मुंशीसे कहा, "तुम मिस्टर गांधीके साथ जाओ और व्याख्यान लिखवाकर ले आओ और इसे तुरंत छपवा डालो और फौरन एक प्रति मेरे पास भेज दो।" इतना कहनेके बाद उन्होंने मुझसे कहा, "लंबा-चौड़ा भाषण मत लिखना। बंबईके नागरिक देरतक नहीं ठहर सकते।" मैंने चुपचाप स्वीकार कर लिया।

बंबईके उस शेरने मुझे आज्ञापालनका मर्म सिखाया। उन्होंने मुझे अपना शागिर्द नहीं बनाया। उन्होंने आजमाइश भी नहीं की।

वहांसे मैं पूना गया। मैं एकदम अजनबी था। जिनके यहां मैं टिका था वे मुझे पहले-पहल लोकमान्य तिलकके पास ले गए। जिस समय मैं उनसे मिला, वे अपने साथियोंसे घिरे बैठे थे। उन्होंने मेरी बातें सुनीं और कहा, "आपका भाषण सार्वजनिक सभामें होना जरूरी है। पर आप जानते हैं कि यहां दलबंदी है। इससे ऐसा सभापति चाहिए जो किसी दल-विशेषका न हो। यदि इसके लिए आप डाक्टर भांडारकर से मिलें तो उत्तम हो।" मैंने उनकी सलाह स्वीकार की और लौट आया। सिवा इसके कि स्नेहमय मिलापके भावका प्रदर्शन करके उन्होंने मेरी घबराहट

दूर की, नहीं तो लोकमान्यका उस समय मुझपर कोई अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा। वहांसे मैं श्रीयुत गोखलेके पास गया और तब डाक्टर भांडारकरके पास गया। डाक्टर भांडारकरने मेरा उसी तरह स्वागत किया, जिस तरह गुरु शिष्यका करता है।

मिलते ही उन्होंने मुझसे कहा, "आप बड़े उत्साही और तत्पर कार्यकर्त्ता प्रतीत होते हैं, नहीं तो इतनी गर्मीमें मुझसे कोई भी मिलने नहीं आता। मैंने सार्वजनिक सभाओंमें इधर जाना छोड़ दिया है। पर आपने जिन दयनीय शब्दोंमें अफ्रीकाकी दशाका वर्णन किया है, उससे मुझे लाचार होकर यह पद स्वीकार करना पड़ता है।

उनके चेहरेसे विद्वत्ता टपक रही थी। मेरे हृदयमें श्रद्धाका ज्वार उमड़ आया, पर गुरुभक्तिका भाव फिर भी न भरा। वह हृदय-सिंहासन उस समय भी खाली रह गया। मुझे अनेक धीर-वीर मिले; पर राजाकी पदवी तक कोई न पहुंच सका।

पर जिस समय मैं श्रीयुत गोखलेसे मिलने गया, बातें एकदम बदल गईं। मैं नहीं कह सकता कि इसका क्या कारण था। मैं उनके घरपर मिलने गया। यह मिलन ठीक उसी प्रकार था जैसा दो चिर बिछोही मित्रों या माता और पुत्रका होता है। उनकी नम्र आकृति देखकर मेरा हृदय शांत हुआ। दक्षिण अफ्रीका तथा मेरे संबंधमें उन्होंने जिस तरह पूछताछ की उससे मेरा हृदय श्रद्धासे भर गया। उनसे विदा होते समय मैंने अपने दिलमें कहा, "बस मेरे मनका आदमी मिल गया।" उसी समयसे श्रीयुत गोखले मेरे हृदयसे अलग न हो सके। १९०१ में दूसरी बार दक्षिण अफ्रीकासे लौटा। इस बार मेरी घनिष्टता और भी प्रगाढ़ हो गई। उन्होंने अपने हाथमें मेरा हाथ लेकर पूछना शुरू किया, "किस तरह रहते हो? क्या कपड़ा पहनते हो? भोजन कैसा होता है?" मेरी माता भी इतनी तत्पर नहीं थी। मेरे और उनके बीच कोई अंतर नहीं था। यह चक्षु-राग था, अर्थात् प्रथम दर्शनसे ही हृदयमें प्रगाढ़ प्रेमका अंकुर जम गया

था। १९१३ में इसे कड़ी परीक्षामें उतरना पड़ा। उस समय मुझे मालूम हुआ कि उनमें सभी गुण वर्तमान हैं। चाहे इसके पहले उनमें वे सब गुण न रहे हों, पर इसकी मुझे कोई परवाह नहीं। मेरे लिए उतना ही काफी था कि मुझे उनमें कोई दोष नहीं दिखलाई दिए। राजनैतिक क्षेत्रमें वे मुझे सबसे उत्तम व्यक्ति प्रतीत हुए। पर इससे यह न समझना चाहिए कि उनमें और मुझमें मतभेद नहीं था। सामाजिक नियमोंमें मेरा उनका १९०१ तक मतभेद रहा। पश्चिमी सभ्यताके प्रभावपर भी हम लोगोंका मतभेद था। अहिंसापर मेरा जो अटल विश्वास था उससे भी उनका मतभेद था। पर इससे हम लोगोंमें किसी तरहका अंतर नहीं आ सका। ये सब बातें किसी तरहका मतभेद नहीं उपस्थित कर सकीं। यदि आज वे जीते रहते तो क्या होता, यह कहना व्यर्थ है। मैं जानता हूं कि मैं उनकी आज्ञाका पालन करता होता। मैंने इसे इसलिए लिखा है कि उस गुमनाम पत्रमें शागिर्दी-संबंधी बातोंसे मुझे हार्दिक पीड़ा हुई। क्या मुझपर इस बातका दोषारोपण किया जा सकता है कि मैंने इस संबंधको स्वीकार करनेमें देर की? इस समय जबकि लोग यह कह रहे हैं कि मैं स्वर्गीय गोखलेके दलसे एकदम विरुद्ध हो गया हूं तो मेरे लिए उस पवित्र संबंधको व्यक्त कर देना नितांत आवश्यक था। (यं० इं०, पृष्ठ ९०५)

. . . .

मेरे इस दक्षिणके प्रवासमें कई नवयुवकोंने मुझे लिखा है कि अस्पृश्यता तथा अन्य कुरीतियोंके, जिनसे हिंदू-समाज पीड़ित हो रहा है, ब्राह्मण ही दोषी हैं। ये सारी बुराइयां उन्हींकी बदौलत विद्यमान हैं। स्व० गोखलेके १९ वें पुण्य-वर्षके दिन मैं यह लेख लिख रहा हूं। इसलिए स्वभावतः ही मुझे उनका हरिजन-प्रेम याद आ रहा है। अस्पृश्यताके कलंकसे सर्वथा मुक्त श्री गोखलेको छोड़कर मुझे कोई अन्य व्यक्ति याद नहीं आता। वह मनुष्य-मनुष्यके बीचमें किसी प्रकारकी असमानताकी कल्पना भी नहीं कर सकते थे। उनकी दृष्टिमें तो मनुष्यमात्र समान थे।

एक बार दक्षिण अफ्रीकामें एक सज्जन उन्हें एक सांप्रदायिक सभामें लिवा ले जानेके लिए उनके पास आए; पर उन्होंने इन्कार कर दिया। तब उनके हिंदू-धर्मके प्रति अपील की गई। इसपर वह बिगड़ उठे। उन्होंने इसे अपना अपमान समझा और जरा गर्म पड़कर उक्त सज्जनसे बोले, "अगर यही हिंदू-धर्म है तो मैं हिंदू नहीं हूं।" लोग तो यह सुनकर आश्चर्य-चकित रह गये। किसी व्यक्ति या संप्रदायकी उच्चताकी कल्पनाको वह सहन नहीं कर सकते थे। विश्वबंधुत्वकी भावना उन्होंने स्वयं अपने जीवनमें चरितार्थ करके दिखा दी, इस बातको उनके साथी खूब जानते हैं। पारिया (अंत्यज) कहे जानेवाले भाइयोंसे वह खूब दिल खोलकर मिलते थे। यह बात उनमें नहीं थी कि वह किसी पर कृपा या अहसान कर रहे हैं। उनके हृदयमें तो केवल एक सेवाका ही आदर्श था। उनका विश्वास था कि सार्वजनिक आदमी जनताके नेता नहीं, बल्कि सेवक हैं। उनकी दृष्टिमें सबसे बड़ा सेवक ही सबसे बड़ा नेता था। और स्व० गोखले हर तरह एक सच्चे जन्मना ब्राह्मण थे। वह जन्म-जात अध्यापक भी थे। उनसे जब कोई 'प्रोफेसर' कहता तो बड़े प्रसन्न होते थे। विनम्रता-की तो वह मूर्ति थे। राष्ट्रको उन्होंने अपना सर्वस्व दे दिया था। चाहते तो वह मालामाल हो जाते, लेकिन उन्होंने तो स्वेच्छासे गरीबीका ही बाना पसंद किया। गोखले जैसे जन-सेवक पर क्या इन ब्राह्मण-निंदकों-को गर्व नहीं होगा? और यह बात नहीं कि ऐसे ब्राह्मण एक गोखले ही थे। मनुष्य-मनुष्यके बीचमें समानताको माननेवाले ऐसे ब्राह्मणोंकी एक खासी लंबी सूची बनाई जा सकती है। ब्राह्मणमात्रको दोषी ठहरानेका तो यह अर्थ हुआ कि जो ब्राह्मण आज खास तौरसे स्वयं निस्स्वार्थ लोक-सेवा करनेको तैयार हैं, उनकी उस सेवाके मधुर फलको हम खुद अस्वी-कार कर रहे हैं। उन लोगोंको किसीके प्रशंसा-पत्र की जरूरत नहीं है। उनकी सेवा ही उनका पुरस्कार है। गोखलेने एक महान् अवसरपर लिखा था कि 'जो सेवा किसी व्यक्तिके कहनेसे हाथमें नहीं ली जाती, वह

किसी दूसरेकी आज्ञासे त्यागी भी नहीं जा सकती। इसलिए सबसे निरापद नियम तो यह है कि मनुष्यको हम उसके वर्तमान रूपमें ही ग्रहण करें, फिर चाहे जिस कुलमें वह पैदा हुआ हो और उसकी जाति या उसका रंग चाहे जो हो। अस्पृश्यता-निवारणके इस आंदोलनमें हमें किसीकी सेवाकी चाहे वह कितनी ही छोटी हो, अवगणना नहीं करनी चाहिए, जहांतक कि उसमें सेवाकी भावना है, न कि उद्धार या कृपा की। (ह० से० ६.३.३४)

... ...

(सरोजिनी नायडूकी बात करते-करते गोखलेकी बात बताने लगे। गोखलेका उनके बारेमें मत बताने लगे। कहने लगे,)

"मैं तुमसे बहुत सी बातें कर लेता हूं जो किसीसे नहीं करता। करने की हैं भी नहीं। ऐसे ही गोखले मेरे साथ सब बातें कर लिया करते थे। उनके मित्र तो बहुत थे, मगर ऐसा कोई नहीं था कि जिसके सामने निःसंकोच अपने मनकी सारी बातें वे कह सकें। मुझे उन्होंने विश्वास-पात्र समझा और एक-एक आदमीका पृथक्करण करके बता दिया।" (का० क०, २४.८.४२)

: ५७ :

घोषाल

कांग्रेसके अधिवेशनको एक-दो दिनकी देर थी। मैंने निश्चय किया था कि कांग्रेसके दफ्तरमें यदि मेरी सेवा स्वीकार हो तो कुछ सेवा करके अनुभव प्राप्त करूं।

जिस दिन हम आए उसी दिन नहा-धोकर कांग्रेसके दफ्तरमें गया।

श्रीभूपेन्द्रनाथ बसु और श्रीघोपाल मंत्री थे। भूपेनबाबूके पास पहुंचकर कोई काम मांगा। उन्होंने मेरी ओर देखकर कहा, "मेरे पास तो कोई काम नहीं है, पर शायद मि० घोपाल तुमको कुछ बतावेंगे। उनसे मिलो।"

मैं घोपालबाबूके पास गया। उन्होंने मुझे नीचेसे ऊपर तक देखा। कुछ मुस्कराए और बोले, "मेरे पास कारकुनका काम है। करोगे?"

मैंने उत्तर दिया, "जरूर करूंगा। अपने बस भर सबकुछ करनेके लिए मैं आपके पास आया हूं।"

"नवयुवक, सच्चा सेवा-भाव इसीको कहते हैं।"

कुछ स्वयं-सेवक उनके पास खड़े थे। उनकी ओर मुखातिब होकर कहा, "देखते हो, इस नवयुवकने क्या कहा?"

फिर मेरी ओर देखकर कहा, "तो लो, यह चिट्ठियोंका ढेर, और यह मेरे सामने पड़ी है कुरसी। उसे ले लो। देखते हो न, सैकड़ों आदमी मुझसे मिलने आया करते हैं। अब मैं उनसे मिलूं या जो लोग फालतू चिट्ठियां लिखा करते हैं उन्हें उत्तर दूं? मेरे पास ऐसे कारकुन नहीं कि जिनसे मैं यह काम करा सकूं। इन चिट्ठियोंमें बहुतेरी तो फिजूल होंगी; पर तुम सबको पढ़ जाना। जिनकी पहुंच लिखना जरूरी हो उनकी पहुंच लिख देना और जिनके उत्तरके लिए मुझसे पूछना हो पूछ लेना।"

उनके इस विश्वाससे मुझे बड़ी खुशी हुई।

श्रीघोपाल मुझे पहचानते न थे। नाम-ठाम तो मेरा उन्होंने बादको जाना। चिट्ठियोंके जवाब आदिका काम आसान था। सारे ढेरको मैंने तुरंत निपटा दिया। घोपालबाबू खुश हुए। उन्हें बात करनेकी आदत बहुत थी। मैं देखता था कि वह बातोंमें बहुत समय लगाया करते थे। मेरा इतिहास जाननेके बाद तो कारकुनका काम देनेमें उन्हें जरा शर्म मालूम हुई; पर मैंने उन्हें निश्चिन्त कर दिया।

"कहां मैं और कहां आप ! आप कांग्रेसके पुराने सेवक, मेरे नजदीक तो आप मेरे बुजुर्ग हैं। मैं ठहरा अनुभवहीन नवयुवक ! यह काम सौंपकर मुझपर तो आपने अहसान ही किया है; क्योंकि मुझे आगे चलकर कांग्रेसमें काम करना है। उसके काम-काजका समझनेका अलभ्य अवसर आपने मुझे दिया है।"

"सच पूछो तो यही सच्ची मनोवृत्ति है। परंतु आजकलके नवयुवक ऐसा नहीं मानते। पर मैं तो कांग्रेसको उसके जन्मसे जानता हूं। उसकी स्थापना करनेमें मि० ह्यूमके साथ मेरा भी हाथ था।" घोषालबाबू बोले।

हम दोनोंमें खासा संबंध हो गया। दोपहरके खानेके समय वह मुझे साथ रखते। घोषालबाबूके बटन भी 'बेरा' लगाता। यह देखकर 'बेरा' का काम खुद मैंने लिया। मुझे वह अच्छा लगता। बड़े-बूढ़ोंकी ओर मेरा बड़ा आदर रहता था। जब वह मेरे मनोभावोंसे परिचित हो गए तब अपना निजी सेवाका सारा काम मुझे करने देते थे। बटन लगवाते हुए मुंह पिचकारकर मुझसे कहते, "देखो न, कांग्रेसके सेवकको बटन लगाने तककी फुरसत नहीं मिलती; क्योंकि उस समय भी वे काममें लगे रहते हैं।" इस भोलेपनपर मुझे मनमें हंसी तो आई, परंतु ऐसी सेवाके लिए मनमें अरुचि बिलकुल न हुई। उससे जो लाभ मुझे हुआ उसकी कीमत नहीं आंकी जा सकती। (आ०, १९२७)

: ५८ :

चक्रैया

वह (चक्रैया) सेवाग्रामका आश्रमवासी था। नई तालीमके तरीकेपर सीखा था। बड़ा परिश्रमी और दस्तकार था। झूठ, फरेब, क्रोध-जैसे दोष

उसमें नहीं थे। दैववश उसके दिमागमें कुछ रोग पैदा हो गया। खुद निसर्गोपचारमें ही विश्वास करता था, पर दोस्तोंने और डाक्टरोंने उसका आपरेशन करनेका आग्रह किया। इस रोगसे उसकी आंखोंका तेज जाता रहा था। फिर भी उसने आपरेशन-मेजपर जानेसे पहले मुझे बड़ी कोशिश-से पत्र लिखा था कि प्राकृतिक चिकित्सा मुझे प्रिय है, पर आपरेशनका प्रयोग करानेके लिए भी मैं तैयार हूं और मौत आएगी तो राम-नाम लेता हुआ मरूंगा। आखिर बंबईके अस्पतालमें आपरेशन किया गया और आपरेशन-मेजपर ही उसके प्राण छूट गए।

उसके जानेपर रोना आता है; पर मैं रो नहीं सकता, क्योंकि मैं रोऊं तो किसके लिए रोऊं और किसके लिए न रोऊं? भारतमाताको अगर बच्चे चाहिए तो वकील तुलसीदासजी, ऐसे ही चाहिए, जो या तो दाता हों, या शूर। चकैया दाता था, क्योंकि वह निःस्वार्थ सेवक और परम संतोषी था और शूर भी था, क्योंकि उसने अपने हाथसे मृत्युको अपना लिया। वह हरिजन था; पर उसके दिलमें हरिजन-सवर्ण, हिंदू-मुसलमान-जैसे भेद न थे। वह सबको इंसान मानता था और स्वयं सच्चा इंसान था। (प्रा० प्र०, ३१.५.४७)

: ५६ :

विन्स्टन चर्चिल

मेरे पास एक बुलंद चीज है और वह है लोकमत। लोकमतमें बड़ी प्रचंड शक्ति है। अभी हमारे यहां इस शब्दका अर्थ पूरे जोरसे प्रकट नहीं हुआ है; पर अंग्रेजीमें उस शब्दका अर्थ बड़ा जोरदार है। अंग्रेजीमें इसे 'पब्लिक ओपिनियन' कहते हैं और उसके सामने बादशाह भी कुछ

नहीं कर सकता। चर्चिल जो इतना बड़ा बहादुर है और जो ऊंचे खानदान-का, बड़ा भारी वक्ता, बहुत ही विद्वान---मेरे जैसा अनजान बिलकुल नहीं है---यह सबकुछ होते हुए भी अपनी गद्दी न संभाल सका। इसका मतलब यह है कि वहांका लोकमत बहुत जाग्रत है। इसलिए उसके सामने किसीकी नहीं चल सकती। (प्रा० प्र०, १०.६.४७)

... ...

आज सुबहके अखबारोंमें रायटरद्वारा तारसे भेजा हुआ मि० चर्चिलके भाषणका जो सार छपा है, उसे मैं हिंदुस्तानीमें आपको समझाता हूं। वह सार इस तरह है :

"आज रातको यहां अपने एक भाषणमें मि० चर्चिलने कहा, 'हिंदुस्तानमें भयंकर खूंरेजी चल रही है, उससे मुझे कोई अचरज नहीं होता। अभी तो इन बेरहमीभरी हत्याओं और भयंकर जुल्मोंकी शुरुआत ही है। यह राक्षसी खूंरेजी वे जातियां कर रही हैं, ये जुल्म एक-दूसरी पर वे जातियां ढा रही हैं, जिनमें ऊंची-से-ऊंची संस्कृति और सभ्यताको जन्म देनेकी शक्ति है और जो ब्रिटिश ताज और ब्रिटिश पार्लमेंटके रवादार और गैर-तरफदार शासनमें पीढ़ियोंतक साथ-साथ पूरी शांतिसे रही हैं। मुझे डर है कि दुनियाका जो हिस्सा पिछले ६० या ७० बरससे सबसे ज्यादा शांत रहा है, उसकी आबादी भविष्यमें सब जगह बहुत ज्यादा घटनेवाली है, और आबादीके घटावके साथ ही उस विशाल देशमें सभ्यताका जो पतन होगा, वह एशियाकी सबसे बड़ी निराशापूर्ण और दुःखभरी बात होगी।"

आप सब जानते हैं कि मि० चर्चिल खुद एक बड़े आदमी हैं। वे इंग्लैंडके ऊंचे कुलमें पैदा हुए हैं। मार्लबरो-परिवार इंग्लैंडके इतिहास-में मशहूर है। दूसरे विश्व-युद्धके शुरू होनेपर जब ग्रेट ब्रिटेन खतरेमें था तब मि० चर्चिलने उसकी हुकूमतकी बागडोर संभाली थी। बेशक उन्होंने उस समयके ब्रिटिश साम्राज्यको खतरेसे बचा लिया। यह दलील

गलत होगी कि अमेरिका या दूसरे मित्र-राष्ट्रोंकी मदद के बिना ग्रेट ब्रिटेन लड़ाई नहीं जीत सकता था। मि० चर्चिलकी तेज सियासी बुद्धिके सिवा मित्र-राष्ट्रोंको एक साथ कौन मिला सकता था ? मि० चर्चिलने जिस महान् राष्ट्रकी लड़ाईके दिनोंमें इतनी शानसे नुमाइंदगी की, उसने उनकी सेवाओंकी कदर की। लेकिन लड़ाई जीत लेनेके बाद उस राष्ट्रने ब्रिटिश द्वीपोंको, जिन्होंने लड़ाईमें जन-धनका भारी नुकसान उठाया था, नया जीवन देनेके लिए चर्चिलकी सरकारकी जगह मजदूर-सरकारको तरजीह देनेमें कोई हिचकिचाहट नहीं दिखाई। अंग्रेजोंने समयको पहचान कर अपनी इच्छासे साम्राज्यको तोड़ देने और उसकी जगह बाहरसे न दिखाई देनेवाला दिलोंका ज्यादा मशहूर साम्राज्य कायम करनेका फैसला कर लिया। हिंदुस्तान दो हिस्सोंमें बंट गया है, फिर भी दोनों हिस्सोंने अपनी मरजीसे ब्रिटिश कामनवेल्थके सदस्य बननेका ऐलान किया है। हिंदुस्तानको आजाद करनेका गौरव-भरा कदम पूरे ब्रिटिश राष्ट्रकी सारी पार्टियोंने उठाया था। इस कामके करनेमें मि० चर्चिल और उनकी पार्टीके लोग शरीक थे। भविष्य अंग्रेजोंद्वारा उठाए गए इस कदमको सही साबित करेगा या नहीं, यह अलग बात है। और इसका मेरी इस बातसे कोई ताल्लुक नहीं है कि चूंकि मि० चर्चिल सत्ताके फेरबदलके काममें शरीक रहे हैं, इसलिए उनसे उम्मीद की जाती है कि वे ऐसी कोई बात नहीं कहें या करें, जिससे इस कामकी कीमत कम हो। यकीनन आधुनिक इतिहासमें तो ऐसी कोई मिसाल नहीं मिलती, जिसकी अंग्रेजोंके सत्ता छोड़नेके कामसे तुलना की जा सके। मुझे प्रियदर्शी अशोकके त्यागकी बात याद आती है। मगर अशोक बेमिसाल हैं और साथ ही वे आधुनिक इतिहासके व्यक्ति नहीं हैं। इसलिए जब मैंने राॅयटरद्वारा प्रकाशित किया हुआ मि० चर्चिल-के भाषणका सार पढ़ा तो मुझे दुःख हुआ। मैं मान लेता हूं कि खबरें देनेवाली इस मशहूर संस्थाने मि० चर्चिलके भाषणको गलत तरीकेसे बयान नहीं किया होगा। अपने इस भाषणसे मि० चर्चिलने उस देशको

हानि पहुंचाई है, जिसके वे एक बहुत बड़े सेवक हैं। अगर वे यह जानते थे कि अंग्रेजी हुकूमतके जुएसे आजाद होनेके बाद हिंदुस्तानकी यह दुर्गति होगी तो क्या उन्होंने एक मिनटके लिए भी यह सोचनेकी तकलीफ उठाई कि उसका सारा दोष साम्राज्य बनानेवालोंके सिरपर है, उन 'जातियों' पर नहीं जिनमें चर्चिल साहबकी रायमें 'ऊंची-से-ऊंची स्फूर्तिको जन्म देनेकी ताकत है।' मेरी रायमें मि० चर्चिलने अपने भाषणमें सारे हिंदुस्तानको एक साथ समेट लेनेमें बेहद जल्दबाजी की है। हिंदुस्तानमें करोड़ोंकी तादादमें लोग रहते हैं। उनमेंसे कुछ लाखने जंगलीपन अख्तियार किया है, जिनकी कि कोई गिनती नहीं है। मैं मि० चर्चिलको हिंदुस्तान आने और यहांकी हालतका खुद अध्ययन करनेकी हिम्मतके साथ दावत देता हूं। मगर वे पहलेसे ही किसी विषयमें निश्चित मत रखनेवाले एक पार्टीके आदमीकी हैसियतसे नहीं, बल्कि एक गैरतरफदार अंग्रेजकी तरह आएं, जो अपने देशकी इज्जतका किसी पार्टीसे पहले खयाल रखता है और जो अंग्रेज सरकारको अपने इस काममें शानदार सफलता दिलानेका पूरा इरादा रखता है। ग्रेट ब्रिटेनके इस अनोखे कामकी जांच उसके परिणामोंसे होगी। हिंदुस्तानके विभाजनने बेजाने उसके दो हिस्सोंको आपसमें लड़नेका न्यौता दिया। दोनों हिस्सोंको अलग-अलग स्वराज देना आजादीके इस दानपर धब्बे-जैसा मालूम होता है। यह कहनेसे कोई फायदा नहीं कि दोनोंमेंसे कोई भी उपनिवेश ब्रिटिश कामनवेल्थसे अलग होनेके लिए आजाद है। ऐसा करनेसे कहना सरल है। मैं इस पर और ज्यादा कुछ नहीं कहना चाहता। मेरा इतना कहना यह बतलानेके लिए काफी होगा कि मि० चर्चिलको इस विषयपर ज्यादा सावधानीसे बोलनेकी जरूरत क्यों थी। परिस्थितिकी खुद जांच करनेके पहले ही उन्होंने अपने साथियोंके कामकी निंदा की है।

आप लोगोंमेंसे बहुतोंने मि० चर्चिलको ऐसा कहनेका मौका दिया है। अभी भी आपके लिए अपने तरीकोंको सुधारने और मि० चर्चिलकी

भविष्यवाणीको झूठ साबित करनेके लिए काफी वक्त है। मैं जानता हूं कि मेरी बात आज कोई नहीं सुनता। अगर ऐसा नहीं होता और लोग उसी तरह मेरी बातोंको मानते होते, जिस तरह आजादीकी चर्चा शुरू होनेसे पहले मानते थे तो मैं जानता हूं कि जिस जंगलीपनका मि० चर्चिलने बड़ा रस लेते हुए बढ़ा-चढ़ाकर बयान किया है, वह कभी नहीं हो पाता और आप लोग अपनी माली और दूसरी घरेलू मुश्किलोंको सुलझानेके ठीक रास्तेपर होते। (प्रा० प्र०, २८.९.४७)

: ६० :

सी० वाई० चिन्तामणि

(आज सुबह निर्णयपर बातें हुईं। जयकर, सप्रू और चिंतामणिकी रायोंपर चर्चा हुई। बापू कहने लगे :)

यह आशा रख सकते हैं कि जयकर सप्रूसे यहां अलग हो जायंगे।

वल्लभभाई—बहुत आशा रखने जैसी बात नहीं है।

बापू—आशा इसलिए रख सकते हैं कि विलायतमें भी इस मामलेमें इनके विचार अलग ही रहे थे। वैसे तो क्या पता ?

वल्लभभाई—चिंतामणिने इस बार अच्छी तरह शोभा बढ़ाई।

बापू—क्योंकि चिंतामणि हिंदुस्तानी हैं, जबकि सप्रूका मानस यूरोपियन है। चिंतामणि समझते हैं कि इस निर्णयमें ही बहुत कुछ विधान आ जाता है। सप्रू यह मानते हैं कि विधान मिल गया तो फिर इन बातोंकी चिंता ही नहीं (म० डा०, २१.८.३२)

: ६१ :

जगदीशन्

जगदीशन्को खुद भी कोढ़ हो गया था। वे मद्रासके रहनेवाले हैं। वे बड़े सज्जन और विद्वान पुरुष हैं। वे श्रीनिवास शास्त्रीजीके भक्त थे। तो उन्होंने अपना जीवन इस काममें लगा दिया है। (प्रा० प्र०, २३.१०.४७)

. . . .

जिनको कुष्ट रोग रहता है उनके बारेमें मैंने कल एक बात कही थी। जगदीशन्का भी नाम लिया था। वे बड़े विद्वान् आदमी हैं। उनको यह रोग था। वह बिलकुल नाबूद तो नहीं हुआ है; लेकिन काफी अंकुशमें आ गया है। वे इसमें काफी काम करते हैं, काफी दिलचस्पी लेते हैं, उनसे मिलते-जुलते हैं। मेहनती तो जबरदस्त हैं ही। वे मद्रासमें रहते हैं, वर्धामें नहीं, लेकिन कई दिनोंसे वर्धामें हैं। उन्होंने इस बारेमें मुझसे खतो-किताबत की थी। उनका पत्र मिले कई दिन हो गए। उसको आज मैंने पढ़ लिया। मैंने उसमें एक बात देखी है, जिसे मैं यहां साफ कर देना चाहता हूं। वे कहते हैं कि जिसको कुष्ट रोग हो गया है उसको कोढ़ी मत कहो। लोग उससे बुरा अर्थ निकाल लेते हैं। उसको वे अछूतसे भी बदतर मान लेते हैं। अछूत बदी थोड़ा करता है। उनको छूनेसे हम पतित हो जाते हैं, ऐसा हम मान लेते हैं। मैं कह चुका हूं कि सच्चा कोढ़ तो मनकी मलिनता है। अपने भाइयोंसे घृणा करना, किसी जाति या वर्गके लोगोंको बुरा कहना, रोगी मनका चिह्न है और वह कोढ़से भी बुरा है। ऐसे लोग उससे भी बदतर हैं। तो फिर ऐसा नाम क्यों लेना चाहिए? कुष्ट रोगसे पीड़ित कहो, लेकिन कोढ़ी मत कहो। अगर बुरा कहनेसे बुरा बन जाय तो नहीं कहना चाहिए। गुलाबके पुष्पको आप चाहे किसी भी

नामसे कहें, लेकिन उसमें जो सुवास या सुगंध भरी है उसको वह कभी नहीं छोड़ेगा, बुरे-से-बुरा नाम दो तो भी नहीं। यदि यह जगदीशन् ऐसा कहता है, ठीक है; पर जो छूतकी बीमारी है वह कोई एक तो है नहीं। किसीको खुजली हो जाती है, उसको जो स्पर्श करेगा उसको खुजली हो जायगी। सर्दी है, हैजा है, प्लेग है, इसी तरहसे कुष्ट रोग है। फिर उसके प्रति घृणा क्या करनी? एक आदमी जब सचमुच कुष्ट रोगी बन जाता है तो लोग उसका तिरस्कार करते हैं। वे कहते हैं कि वह तो कमजात है। कमजात तो वे हुए जो तिरस्कार करते हैं। यह घृणा करनेका जो कोढ़ है वह निकल जाना चाहिए। (प्रा० प्र०, २४.१०.४७)

: ६२ :

हीरजी जयराम

धलालाके पंड्या खादी-कार्यालयके श्री नागरदासभाई लिखते हैं:

"श्री हीरजीभाई जयराम मिस्त्री, जिन्होंने हमें थानामें श्री स्वामी आनंदके आश्रमवाली जमीन दी थी, गुजर गए हैं।

"जब चर्खा-संघने और श्री रामजीभाई हंसराजने काठियावाड़में खादीका काम बंद किया तो हीरजीभाईने ही उस कामको टिकाये रक्खा था। सन् १९३७के अंतमें जब मैं यहां आया तो हीरजीभाई करीब दस चर्खोंका काम संभाले हुए थे और उनके लिए वे पींजने भी चलवा रहे थे। उन्होंने इस कामको इतना जिंदा रक्खा, उसीका यह नतीजा है कि आज काठियावाड़में हर साल करीब एक लाख रुपयेकी व्यापारी खादी पैदा होती है। धलालाके और उसकी शाखाओंके कुल मिलाकर २५ केंद्रोंमें

इस समय काम हो रहा है। व्यापारी खादीके साथ-साथ स्वावलंबी खादीका काम भी बढ़ रहा है। जिस समय हमने अपने खादी-कामको फैलाया, हीरजीभाई अपने कताई-पिंजाईके कामको जारी रक्खे हुए थे। कपड़ेके लिहाजसे उनका सारा परिवार स्वावलम्बी था, अपने खेतसे वे अच्छा फूटा हुआ कपास खुद चुन लाते थे और अपने हाथों उसे ओटते थे। वे नियमसे रोज दो गुंडी सूत तो कातते ही थे।

"काठियावाड़के खादी और हरिजन कार्यको उन्होंने समय-समयपर सहायता पहुंचाई थी। हमें उनका पूरा-पूरा आधार था। मरनेसे पहले उन्होंने अपनी वसीयत लिखी है, जिसमें मोरबीमें खादी-कार्य शुरू करनेके लिए एक हजार रुपए की मंजूरी दी है। मोरबीमें खादी-कार्य चलानेकी उनकी तीव्र इच्छा थी, परंतु वह सफल न हो सकी। मिस्त्रीजीने दो साल पहले अपनी दूसरी पत्नीके देहांतके बाद तीसरी बार विवाह किया था। पहली पत्नीसे उनके तीन लड़के हैं।

"वे नीचे लिखे सज्जनोंको अपनी वसीयतका ट्रस्टी बना गये हैं:

१. श्री रामजीभाई हंसराज
२. श्री जगजीवनभाई मेहता
३. श्री छगनलाल जोशी
४. श्री नागरदास
५. एक स्थानीय व्यापारी

"वसीयतके दस्तावेजकी रजिस्ट्री हो चुकी है। सब मिलाकर स्थावर, जंगम और नकद मिल्कियत ५२ हजारकी है।"

मुझे तो भाई हीरजीके इस वसीयतनामेकी कोई खबर ही न थी। मुझे उनका चेहरा अच्छी तरह याद है। भाई हीरजीकी सारी सेवा मूक थी। थानेके नजदीकवाली जमीन भी उन्होंने सकुचाते-सकुचाते ही दी थी। उनकी सेवामें तनिक भी आडंबर न था। वे साधारण स्थितिके मामूली पढ़े-लिखे आदमी थे, परंतु उनकी सब सेवाएं ठोस थीं। नाम या यशका उन्हें कभी लोभ न रहा, उनकी सेवा ही उनका इनाम और प्रमाण-पत्र था। ऐसी आत्मा सदा ही अमर होती है। (ह० से०, १२.४.४२)

: ६३ :

श्रीकृष्णदास जाजू

नए अध्यक्षके रूपमें संघको पूर्व अध्यक्षकी भांति ही एक सुपरीक्षित और धर्मबुद्धिवाला कार्यकर्ता मिल गया है। जाजूजी दर्शनशास्त्री नहीं हैं, वह लेखक भी नहीं हैं; किंतु वह अधिक व्यवहारदक्ष हैं। वह अखिल भारतीय चर्खा संघकी महाराष्ट्र शाखाके प्रधान व्यवस्थापक रहे हैं। उनके परिश्रमसे ही उसे आज इतनी सफलता मिली है। (ह० से०, २.३.४०)

: ६४ :

मोहम्मद अली जिन्ना

जिन्नासाहबने जिस मुक्ति-दिवसका ऐलान किया था उस दिन मुझे गुलबर्गाके मुसलमानोंकी तरफसे यह तार मिला—"नजात-दिवसका मुबारकबाद, काइदे-आजम जिन्ना जिंदाबाद।" मैंने समझा कि यह संदेश मुझे चिढ़ानेके उद्देश्यसे भेजा गया है। मगर भेजनेवाले क्या जानें कि इस तारका उद्देश्य पूरा नहीं हुआ। जब मुझे वह मिला तो मैं भी मन-ही-मन भेजनेवालोंकी इस प्रार्थनामें शामिल होगया—"काइदे-आजम जिन्ना बहुत दिन जिएं।" काइदे-आजम हमारे पुरानी साथी हैं। आज कुछ बातोंमें हमारे-उनके विचार नहीं मिलते तो इससे क्या हुआ? उनके लिए मेरे सद्भावमें कोई अंतर नहीं आ सकता।

मगर काइदे-आजमकी तरफसे एक विशेष कारण उन्हें बधाई देनेके लिए और मिल गया है। ईदके दिन रेडियोपर उन्होंने जो बढ़िया भाषण दिया था उसपर बधाईका तार भेजनेकी मुझे खुशी हासिल हुई थी।

अब वे और भी मुबारकबादके हकदार हो गए हैं, क्योंकि वे कांग्रेसकी नीति और राजनीतिके विरोधी दलोंके साथ करारनामे कर रहे हैं। इस तरह वे मुस्लिम-लीगको साम्प्रदायिक चक्करसे निकालकर उसे राष्ट्रीय स्वरूप दे रहे हैं। मैं उनके इस कदमको पूरी तरह उचित समझता हूं। मैं देखता हूं कि मद्रासकी जस्टिस पार्टी और डॉक्टर अंबेडकरका दल जिन्नासाहबसे पहले ही मिल चुका है। अखबारोंमें खबर है कि हिंदू महासभाके प्रधान श्रीसावरकर उनसे बहुत जल्द मिलनेवाले हैं। जिन्नासाहबने खुद जनताको सूचना दी है कि बहुत-से गैर-कांग्रेसी हिंदुओंने उनके साथ सहानुभूति प्रकट की है। ऐसा होना मैं पूरी तरह लाभदायक समझता हूं। इससे अच्छी बात और क्या हो सकती है कि हमारे देशमें दो ही बड़े-बड़े दल रह जायं, एक कांग्रेसियोंका और दूसरा-गैरकांग्रेसियोंका या कांग्रेस-विरोधी शब्द ज्यादा पसंद हो तो, कांग्रेस-विरोधियोंका। जिन्नासाहबकी कृपासे कम तादादवाली जाति शब्द का नया और अच्छा अर्थ हो रहा है। कांग्रेसका बहुमत सवर्ण हिंदुओं, अवर्ण हिंदुओं, मुसलमानों, ईसाइयों, पारसियों और यहूदियोंके मेलसे बना है। इसलिए यह एक ऐसा बहुमत है जिसमें एक खास तरहकी राय रखनेवाले सब वर्गोंके लोग शामिल हैं। जो नया दल बनने जा रहा है वह एक खास तरहकी राय रखनेवाले तादादके लोगोंका दल है। निर्वाचकोंको पसंद आनेपर इनका किसी भी दिन बहुमत हो सकता है। इस तरह दलोंका एक होना ऐसी बात है जिसे हम सबको दिलसे चाहना चाहिए। अगर काइदे-आजम इस तरहका मेल साध सकें तो मैं ही नहीं, सारा हिंदुस्तान एक आवाजसे पुकारकर कहेगा—"काइदे-आजम जिन्ना जुग-जुग जिएं"; क्योंकि वे ऐसी स्था[illegible] स्थापित कर देंगे, जिसके लिए मुझे विश्वास है कि [illegible] है। (ह० से०, २०.१.४०)

: ६५ :

छोटेलाल जैन

साबरमती-सत्याग्रहाश्रमके निवासी और संबंधी कुछ इस तरह बिखरे पड़े हैं कि उन्हें एक-दूसरेकी प्रवृत्तिका पता तक नहीं रहता। खास संबंध जोड़ने या उसे यत्नपूर्वक रखनेकी प्रथा नहीं डाली गई। संबंध केवल सेवा-संबंधी रहा है। कहनेका यह आशय नहीं कि सब ऐसा ही करते हैं; किंतु मूक सेवामें स्व० मगनलाल गांधीके साथ बराबरी करने-वाले आश्रमवासी श्री छोटेलाल जैन का आत्मघात, इन शब्दोंको लिखते हुए अंदरसे मुझे काट रहा है। छोटेलालकी मूक सेवाका वर्णन भाषाबद्ध नहीं हो सकता। ऐसा करना मेरी शक्तिसे बाहर है। छोटेलालका कोई परिचय देता तो वह भागते थे। उनकी मृत्युसे उनके विषयमें उनके सगे-संबंधी भी जानना चाहेंगे। लेकिन आश्रममें आनेके बाद छोटेलालका कभी किसी दिन अपने संबंधियोंके पास जानेका या आश्रममें उनके रिश्ते-दारोंके आनेका मुझे स्मरण नहीं आता। उनके नाम व पते-ठिकाने भी नहीं जानता तो भी उनके पास आश्रमकी खबर पहुंचानेका तो मेरा कर्तव्य है ही। उनकी खातिर भी इस टिप्पणीका लिखना उचित है और छोटे-लालकी मृत्युसंबंधी इस टिप्पणीके साथ भला कौन ईर्ष्या करेगा?

मेरे सौभाग्यसे मुझे कुछ ऐसे योग्य साथी मिल हैं कि उनके बिना मैं अपनेको अपंग अनुभव करता हूं। छोटेलाल मेरे ऐसे ही साथी थे। उनकी बुद्धि तीव्र थी। उन्हें कोई भी काम सौंपते मुझे हिचकिचाहट नहीं होती थी। वे भाषाशास्त्री भी थे। राजपूताना-निवासी होनेसे उनकी मातृभाषा हिंदी थी। पर वह गुजराती, मराठी, बंगाली, तमिल, संस्कृत और अंग्रेजी भी जानते थे। नई भाषा या नया काम हाथमें लेनेकी उनकी

जैसी शक्ति मैंने और किसीमें नहीं देखी। आश्रमके स्थापना-कालसे ही छोटेलालने उससे अपना संबंध जोड़ लिया था।

रसोई बनाना, पाखाना साफ करना, कातना, बुनना, हिसाब-किताब रखना, अनुवाद करना, चिट्ठी-पत्री लिखना आदि सब कामोंको वह स्वाभाविक रीतिसे करते और वे उन्हें शोभते थे। मगनलालके लिखे 'बुनाई-शास्त्र' में छोटेलालका हिस्सा मगनलालके जितना ही था, यह कहा जा सकता है। चाहे जैसे जोखमका काम उन्हें सौंपा जाय उसे वह प्रयत्नपूर्वक करते और जबतक वह पूरा न हो जाय, उन्हें शांति नहीं मिलती थी। अविश्रांत रीतिसे काम करते हुए भी छोटेलाल दूसरा काम लेनेको हमेशा तैयार रहते थे। उनके शब्दकोषमें 'थकान' के लिए स्थान नहीं था। सेवा करना और दूसरोंसे सेवा-कार्य लेना यह उनका मंत्र था। ग्राम-उद्योग-संघ स्थापित हुआ तो घानीका काम दाखिल करनेवाले छोटेलाल, धान दलनेवाले छोटेलाल और मधुमक्खियां पालने वाले भी छोटेलाल। जिस तरह छोटेलालके बगैर मैं अपंग जैसा हो गया हूं ऐसी ही स्थिति आज उनकी मधुमक्खियोंकी भी होगी; क्योंकि यह नोट लिखते समय मुझे पता नहीं कि उनके इस परिवारकी अब इतनी सार-संभाल कौन रखेगा।

छोटेलाल मधुमक्खियोंके पीछे जैसे दीवाने हो गए थे। उनकी शोधमें उन्हें हलके प्रकारके मियादी बुखार (टाइफाइड) ने पकड़ लिया। यह उनके प्राणोंका गाहक निकला। मालूम होता है, उन्हें छःसात दिन अपनी सेवा कराना भी असह्य लगा। अतः ३१ अगस्त, मंगलवारकी रात-को ग्यारह और दो बजेके बीचमें सबको सोता हुआ छोड़कर वह मगन-वाड़ीके कुएंमें कूद पड़े। आज पहली तारीखको शामके चार बजे लाश हाथमें आई। मैं सेगांवमें बैठा रातके आठ बजे यह लिख रहा हूं। छोटेलालकी देहका इस समय वर्धामें अग्नि-दाह हो रहा होगा।

इस आत्मघातके लिए छोटेलालको दोष देनेकी मुझमें हिम्मत नहीं।

छोटेलाल तो वीर पुरुष थे। उनका नाम १९१५ के दिल्ली-षड्यंत्र-केस-में आया था; पर उसमें वह बरी हो गए थे। किसी आफिसरको मार-कर खुद फांसीके तख्तेपर चढ़नेका स्वप्न वह उन दिनों देखते थे। इतनेमें मेरे लेखोंके पाशमें आ फंसे। दक्षिण अफ्रीकाके मेरे जीवनसे उन्होंने परिचय प्राप्त कर लिया था। अपनी तीव्र हिंसक बुद्धिको उन्होंने बदल दिया और अहिंसाके पुजारी बन गए। जिस तरह सांप केंचुल उतार देता है उसी तरह उन्होंने अपने हिंसक जीवनकी खोल उतारकर फेंक दी। इतना होते हुए भी वह अपने मनसे क्रोधको नहीं जीत सके। उन्हें इस बीमारीमें अपनी सेवा लेना असह्य मालूम दिया और गहरी पैठी हुई हिंसा-को खुद अपनी बलि दे दी। इसके सिवाय, दूसरा अर्थ मैं इस आत्मघातका नहीं लगा सकता।

छोटेलाल मुझे अपना देनदार बनाकर ४५ वर्षकी उम्रमें चल बसे। उनसे मैं अनेक आशाएं रखता था। उनकी अपूर्णता मैं सहन नहीं कर सकता था, इससे छोटेलालने मेरे वाग्बाण जितने सहन किए उतने तो शायद मैंने एक-दो को ही सहन कराये होंगे। पर छोटेलालने उन्हें सदैव सहन किया। परंतु ऐसे वचन सुनानेका मुझे क्या अधिकार था? मुझे तो उन्हें हिंदू-मुसलमानकी लड़ाईमें, या हिंदूधर्ममें से अस्पृश्यता-रूपी कचरा निकाल बाहर करनेमें या गोमाताकी सेवामें होमकर उनका लहना चुकाना था। ऐसा करनेकी शक्ति रखनेवाले साथियोंमें छोटेलाल एक ऊंचा स्थान रखते थे। मेरे लिए तो ये सब स्वराजकी वेदियां हैं।

पर छोटेलालकी मृत्युका रोना रोकर अब क्या करूं? ऐसे अनेक मूक योद्धाओंकी आवश्यकता होगी। रामराज-रूपी स्वराज लेना आसान नहीं। छोटेलालके जीवनके इस छोटे-से टुकड़ेका परिचय पाकर दूसरे मूक सेवक आगे आवें। (ह० से०, ११.९.३७)

: ६६ :

पुरुषोत्तमदास टंडन

एक भाईने मेरे पास इस आशयका एक बहुत सख्त पत्र भेजा है कि क्या तुम अब भी पागल ही रहोगे ? अब तो थोड़े दिनोंमें इस दुनियासे चले जाओगे, तब भी कुछ सीखोगे नहीं ? यदि पुरुषोत्तमदास टंडनने यह कहा कि 'सबको तलवार लेनी चाहिए, सिपाही बनना चाहिए और अपना बचाव करना चाहिए' तो तुमको इस बातमें चोट क्यों लगती है ? तुम तो गीताके पढ़नेवाले हो ? तुम्हें तो इन द्वंद्वोंसे परे हो जाना चाहिए और बात-बातमें चोट लगा लेने या खुश होनेकी झंझट छोड़ देनी चाहिए। तुम उस कहानीवाले भोले साधु बाबा-जैसी बात करते हो जो पानीमें बहते हुए बिच्छूके डंक लगानेपर भी उसे हाथसे पकड़कर बचानेकी कोशिश करता था। अगर तुमसे अहिंसाका गीत गाए बिना रहा नहीं जाता तो कम-से-कम जो दूसरे रास्तेसे जाते हैं उन्हें तो जाने दो ! उनके बीचमें रोड़ा क्यों बनते हो ?

अगर मैं स्थितप्रज्ञ रह सका तो अपनी एक सौ पच्चीस वर्षकी उम्रमें से एक भी वर्ष कम जिंदा नहीं रहूंगा। अगर हम सब स्थितप्रज्ञ बनें तो हममेंसे एक भी आदमीको १२५ वर्षसे जरा भी कम जीनेका कोई कारण नहीं है। वैसे भगवान चाहे तो भले मुझे आज ही उठा ले, पर अभी तुरंत मैं चलनेवाला नहीं हूं। मुझे अभी रहना है और काम करना है। पुरुषोत्तमदास टंडन मेरे पुराने साथी हैं। हम वर्षोंतक साथ-साथ काम करते आए हैं। मेरे जैसे ही ईश्वरके वे भक्त हैं। जब मैंने यह सुना कि वे ऐसी बात कर रहे हैं तब मुझे दुःख हुआ। मैंने कहा कि आज तीस बरससे भी अधिक समयसे जो हमने सीखा है और जिसकी हमने लगनसे साधना की है, वह क्या इस तरह गंवा दिया जायगा ? बचावके लिए

तलवार पकड़नेकी बात की जाती है; पर आजतक मुझे दुनियामें एक आदमी ऐसा नहीं मिला है, जिसने बचावसे आगे बढ़कर प्रहार न किया हो। बचावके पेटमें ही वह पड़ा है। अब रही मेरे दिलपर चोट लगनेकी बात। अगर मैं पूरा स्थितप्रज्ञ बन गया होता तो मुझे चोट न लगती। अब भी चोट न लगे ऐसी कोशिश मैं कर रहा हूं। कल जहां था वहांसे आज कुछ-न-कुछ आगे ही बढ़ता हूं। अगर ऐसा नहीं हो तो रोज-रोज गीता-में से स्थितप्रज्ञके ये श्लोक बोलनेमें मैं दंभी ठहरता हूं; पर ऐसा नहीं हो सकता कि इन श्लोकोंके बोलने भरसे ही कोई एक ही दिनमें स्थितप्रज्ञ बन जाय। (प्रा० प्र०, १३.६.४७)

... ...

आज सवेरे जब मेरा मौन था तो श्री पुरुषोत्तमदास टंडन आए। मैंने आपको बताया था कि जब टंडनजी ने कहा कि हरेक स्त्री-पुरुषको शस्त्रधारी बनना चाहिए और स्वरक्षा करनी चाहिए तो यह सुनकर मुझे कैसा बुरा लगा था। एक पत्र-लेखकने मुझसे पूछा था कि गीता पढ़ते रहनेपर भी इस तरह आपको बुरा कैसे लग सकता है? उस पत्रसे यह भी पता चलता था कि टंडनजी 'शठं प्रति शाठ्यं' का सिद्धांत मानते हैं। तब टंडनजीसे मैंने पूछा कि आप क्या मानते हैं? इसका खुलासा देते हुए टंडनजीने बताया कि मैं 'शठं प्रति शाठ्यं' के सिद्धांतको तो नहीं मानता हूं, लेकिन स्वरक्षाके लिए शस्त्रधारी बनना जरूरी है, ऐसा मैं मानता हूं। गीताने भी यही सिखाया है।

तब मैंने टंडनजीसे कहा कि इतना तो आप उस भाईको लिख दीजिए कि आप 'शठं प्रति शाठ्यं' के माननेवाले नहीं हैं ताकि वे भ्रममें न रहें। और स्वरक्षाके लिए हिंसा करनेकी बात गीतामें कही है, यह मैं नहीं मानता। मैंने तो गीताका अलग ही अर्थ निकाला है। मेरी समझमें गीता ऐसा नहीं सिखाती है। गीतामें या दूसरे किसी संस्कृत ग्रंथमें अगर ऐसी बात लिखी है तो मैं उसे धर्मशास्त्र माननेको तैयार नहीं हूं। महज

संस्कृतमें कुछ लिख देनेसे कोई वाक्य शास्त्र-वाक्य नहीं बन जाता।

टंडनजीने मुझसे कहा—'तुमने तो उन बंदरोंको मारनेके लिए भी लिखा था, जो बेहद पीड़ा पहुंचाते हैं और खेती उजाड़ देते हैं।' लेकिन मैं तो किसी भी प्राणीको और यहां तक कि चींटीतकको भी मारना पसंद नहीं करता। फिर भी खेती-बाड़ीका सवाल अलग है और मनुष्य-मनुष्यका अलग है।

तब टंडनजीने कहा कि 'शठं प्रति शाठ्यं' यानी एक दांतके बदलेमें दो दांत निकालनेकी बात हम न करें और एक दांतके बदलेमें एक दांत तथा एक थप्पड़के बदलेमें एक थप्पड़की बात भी नहीं करेंगे; परंतु हाथमें शस्त्र नहीं लेंगे, अपनी शक्ति नहीं दिखाएंगे तो स्वरक्षा किस तरह होगी ?

इसके बारेमें मेरा यह जवाब है कि स्वरक्षा जरूर की जाय; पर मेरी स्वरक्षा कैसे होगी ? कोई मेरे पास आता है और कहता है कि बोल, राम-नाम लेता है या नहीं ? नहीं लेगा तो यह तलवार देख ! तब मैं कहूंगा, यद्यपि मैं हरदम राम-नाम लेता हूं, लेकिन तलवारके बलपर मैं हरगिज न लूंगा, चाहे मारा क्यों न जाऊं ? और इस तरह स्वरक्षाके लिए मैं मरूंगा। वैसे कलमा पढ़नेमें मेरा कोई धर्म जानेवाला नहीं है। क्या हो गया, अगर मैं ठेठ अरबीमें बोलूं कि अल्लाह एक है और उसका रसूल एक ही मुहम्मद पैगंबर है। ऐसा बोलनेमें कोई पाप नहीं और इतने भरसे वे मुझे मुसलमान माननेको तैयार हैं तो मैं अपने लिए फख्र-की बात समझूंगा। लेकिन जब तलवारके जोरसे कोई कलमा पढ़वाने आवेगा तब कभी भी कलमा न पढ़ूंगा। अपनी जान देकर मैं स्वरक्षा करूंगा। इस बहादुरीको सिद्ध करनेके लिए मैं जिंदा रहना चाहता हूं। इसके अलावा और तरीकेसे मैं जीना नहीं चाहता। (प्रा० प्र०, १६. ६.४७)

: ६७ :

काउंट लियो टाल्स्टाय

टाल्स्टायके लेख तो इतने सरस और इतने सरल हैं कि चाहे जो धर्म-प्रेमी उन्हें पढ़कर उनसे लाभ उठा सकता है। उसकी पुस्तक पढ़कर साधारणतः यह विश्वास अधिक होता है कि वह मनुष्य जैसा कहता था वैसा ही करता भी रहा होगा। ('मेरे जेलके अनुभव'—महात्मा गांधी)

. . . .

सवाल—काउंट टाल्स्टायको आप किस दृष्टिसे देखते हैं ?

जवाब—मैं उनको अत्यंत आदरकी दृष्टिसे देखता हूं। अपने जीवनकी कितनी ही बातोंके लिए मैं उनका ऋणी हूं। (यं० इं०, पृष्ठ २०६)

. . . .

मेरी वर्त्तमान मानसिक दशा ऐसी नहीं है कि मैं एक भी पर्व पुण्य-तिथि या एक भी उत्सव मनानेके योग्य रहा होऊं। कुछ दिनों पहले 'नव-जीवन' या 'यंग इंडिया' के किसी पाठकने मुझसे प्रश्न पूछा था, "आप श्राद्धके विषयमें लिखते हुए कह चुके हैं कि पुरुखोंका सच्चा श्राद्ध उनकी पुण्य-तिथिके दिवस उनके गुणोंका स्मरण करने से और उन्हें अपने जीवन-में ओतप्रोत कर लेनेसे हो सकता है। इसीसे मैं पूछता हूं कि आप खुद अपने पुरुखोंकी श्राद्धतिथि कैसे मनाते हैं ?" पुरुखोंकी श्राद्धतिथि जब मैं जवान था तब मनाया करता था। परंतु मैं अभी तुम्हें यह कहनेमें शर्माता नहीं हूं कि मुझे अपने पूज्य पिताजीकी श्राद्धतिथिका स्मरण तक नहीं है। कई वर्ष व्यतीत हो चुके। एक भी श्राद्धतिथि मनानेकी मुझे याद नहीं है, यहां तक कि मेरी कठिन स्थिति या कहिए कि सुंदर स्थिति है, अथवा जैसेकि कई एक मित्र मानते हैं, मोहकी स्थिति है, कि ऐसा मेरा

मंतव्य है कि जिस कार्यको सिरपर लिया हो उसीमें चौवीस घंटे लगे रहना, उसका मनन करना और जहां तक बन पड़े उसे सुव्यवस्थित रूपसे करनेमें ही सबकुछ आ जाता है। उसीमें पुरखोंकी श्राद्धतिथिका मनाना भी आ जाता है। टाल्स्टाय-जैसोंके उत्सव भी आ जाते हैं।.... तीन महीने पहले **एल्मर माड** एवं **टाल्स्टाय**का साहित्य इकट्ठा करनेवाले दूसरे सज्जनोंके पत्र आए थे कि इस शताब्दीके अवसरपर मैं भी कुछ लिख भेजूं और इस दिन की याद हिंदुस्तानमें दिलाऊं। **एल्मर माड**के पत्रका सारांश या सारा पत्र तुमने मेरे अखबारोंमें देखा होगा। उसके बाद मैं यह बात बिलकुल भूल गया था। यह प्रसंग मेरे लिए एक शुभ अवसर है।

तीन पुरुषोंने मेरे जीवनपर बहुत ही बड़ा प्रभाव डाला है। उसमें पहला स्थान मैं राजचन्द्र कविको देता हूं, दूसरा टाल्स्टायको और तीसरा रस्किनको। टाल्स्टाय और रस्किनके दरम्यान स्पर्धा खड़ी हो और दोनोंके जीवनके विषयमें मैं अधिक बातें जान लूं तो नहीं जानता कि उस हालतमें प्रथम स्थान मैं किसे दूंगा। परंतु अभी तो दूसरा स्थान टाल्स्टायको देता हूं। टाल्स्टायके जीवनके विषयमें बहुतेरोंने जितना पढ़ा होगा उतना मैंने नहीं पढ़ा है। ऐसा भी कह सकते हैं कि उनके लिखे हुए ग्रंथोंका वाचन भी मेरा बहुत कम है। उनकी पुस्तकोंमेंसे जिस किताबका प्रभाव मुझपर बहुत अधिक पड़ा उसका नाम है 'Kingdom of Heaven is Within You.' उसका अर्थ यह है कि ईश्वरका राज्य तुम्हारे हृदयमें है। उसे बाहर खोजने जाओगे तो वह कहीं न मिलेगा। इसे मैंने चालीस वर्ष पहले पढ़ा था। उस वक्त मेरे विचार कई एक बातोंमें शंकाशील थे। कई मर्तबा मुझे नास्तिकताके विचार भी आते थे। विलायत जानेके समय तो मैं हिंसक था, हिंसापर मेरी श्रद्धा थी और अहिंसापर अश्रद्धा। यह पुस्तक पढ़नेके बाद मेरी यह अश्रद्धा चली गई। फिर मैंने उनके दूसरे कई एक ग्रंथ पढ़े। उनमें से प्रत्येकका

क्या प्रभाव पड़ा सो मैं नहीं कह सकता, परंतु उनके समग्र जीवनका क्या प्रभाव पड़ा वह तो कह सकता हूं।

उनके जीवनमेंसे मैं अपने लिए दो बातें भारी समझता हूं। वे जैसा कहते थे वैसा ही करनेवाले पुरुष थे। उनकी सादगी अद्भुत थी, बाह्य सादगी तो थी ही। वे अमीर-वर्गके मनुष्य थे। इस जगतके छप्पन भोग उन्होंने भोगे थे। धन-दौलतके विषयमें मनुष्य जितनी इच्छा रख सकता है, उतना उन्हें मिला था। फिर भी उन्होंने भरी जवानीमें अपना ध्येय बदला। दुनियाके विविध रंग देखनेपर भी, उनके स्वाद चखनेपर भी, जब उन्हें प्रतीत हुआ कि इसमें कुछ नहीं है तो उससे मुंह मोड़ लिया और अंत तक अपने विचारोंपर पक्के रहे। इसीसे मैंने एक जगह लिखा है कि टाल्स्टाय इस युगकी सत्यकी मूर्ति थे। उन्होंने सत्यको जैसा माना, वैसा ही पालनेका उग्र प्रयत्न किया। सत्यको छिपाने या कमजोर करनेका प्रयत्न नहीं किया। लोगोंको दुःख होगा या अच्छा लगेगा कि नहीं, इसका विचार किए बिना ही उन्हें जिस माफिक जो वस्तु दिखाई दी उसी माफिक कह सुनाई। टाल्स्टाय अपने युगके लिए अहिंसाके बड़े भारी प्रवर्तक थे। अहिंसाके विषयमें परिश्रमके लिए जितना साहित्य टाल्स्टायने लिखा है, जहां तक मैं जानता हूं, उतना हृदयस्पर्शी साहित्य दूसरे किसीने नहीं लिखा है। उससे भी आगे जाकर कहता हूं कि अहिंसाका सूक्ष्म दर्शन जितना टाल्स्टायने किया था और उसका पालन करनेका जितना प्रयत्न टाल्स्टायने किया था, उतना प्रयत्न करनेवाला आज हिंदुस्तानमें कोई नहीं। ऐसे किसी आदमीको मैं नहीं जानता।

मेरे लिए यह दशा दुःखदायक है, मुझे यह भाती नहीं है। हिंदुस्तान कर्मभूमि है। हिंदुस्तानमें ऋषि-मुनियोंने अहिंसाके क्षेत्रमें बड़ी-से-बड़ी खोजें की हैं; परंतु हम केवल बुजुर्गोंकी ही प्राप्त की हुई पूंजीपर नहीं निभ सकते। उसमें यदि वृद्धि न की जाय तो हम उसे खा जाते हैं।

इस विषयमें न्यायमूर्ति रानडेने हमें सावधान कर दिया है। वेदादि साहित्यमेंसे या जैन साहित्यमेंसे हम बड़ी-बड़ी बातें चाहे जितनी करते रहें अथवा सिद्धांतोंके विषयमें चाहे जितने प्रमाण देते रहें और दुनिया को आश्चर्य-मग्न करते रहें फिर भी दुनिया हमें सच्चा नहीं मान सकती। इसलिए रानडेने हमारा धर्म यह बताया है कि हम इस पूंजीमें वृद्धि करते जायं। दूसरे धर्म-विचारकोंने जो लिखा हो, उसके साथ मुकाबिला करें,ऐसा करनेमें कुछ नया मिल जाय या नया प्रकाश मिलना हो तो उसका तिरस्कार न करना चाहिए; किंतु हमने ऐसा नहीं किया। हमारे धर्माध्यक्षोंने एक पक्षका ही विचार किया है। उनके पठन, कथन और बरतनमें समानता भी नहीं है। प्रजाको अच्छा लगे या नहीं, जिस समाजमें वे स्वयं काम करते थे उस समाजको भला लगे या बुरा, फिर भी टाल्स्टायके समान खरी-खरी सुना देनेवाले हमारे यहां नहीं मिलते। हमारे इस अहिंसा प्रधान देशकी ऐसी दयाजनक दशा है!

हमारी अहिंसाकी निंदा ही योग्य है। खटमल, मच्छर, बिच्छू, पक्षी और पशुओंको हर किसी तरहसे निभानेमें ही मानों हमारी अहिंसा पूर्ण हो जाती है। वे प्राणी कष्टमें तड़पते हों तो उसकी हम परवा नहीं करते, दुःखी होनेमें यदि स्वयं हिस्सा देते हों तो उसकी भी हमें चिंता नहीं। परंतु दुःखी प्राणीको कोई प्राणमुक्त करे अथवा हम उसमें शरीक हों तो उसमें हम घोर पाप मानते हैं। ऐसा मैं लिख चुका हूं कि यह अहिंसा नहीं है। टाल्स्टायका स्मरण कराते हुए फिर कहता हूं कि अहिंसाका यह अर्थ नहीं है। अहिंसाके मानी हैं प्रेमका समुद्र, अहिंसाके मानी हैं वैरभावका सर्वथा त्याग। अहिंसामें दीनता, भीरुता न हो, डर-डरके भागना भी न हो। अहिंसामें दृढ़ता, वीरता, निश्चलता होनी चाहिए।

यह अहिंसा हिंदुस्तानमें शिक्षित समाजमें दिखाई नहीं देती। उनके लिए टाल्स्टायका जीवन प्रेरक है। उन्होंने जो वस्तु मान ली, उसका पालन करनेमें भारी प्रयत्न किया और उससे कभी डिगे तक नहीं। मैं

यह नहीं मानता कि उन्हें वह हरी छड़ी (सिद्धि) न मिली हो। 'नहीं मिली' यह तो उन्होंने स्वयं कहा है। ऐसा कहना उनको सुहाता था; परंतु यह मैं नहीं मानता कि उन्हें यह छड़ी न मिली हो, जैसा कि उनके टीकाकार लिखते हैं। मैं यह मान सकता हूं, यदि कोई कहे कि उन्होंने सब तरहसे उस अहिंसाका पालन नहीं किया जिसका उन्हें दर्शन हुआ था। इस जगतमें ऐसा पुरुष कौन है कि जो अपने सिद्धांतोंपर पूरा अमल कर सका हो? **मेरा मानना है कि देह-धारीके लिए संपूर्ण अहिंसाका पालन अशक्य है।** जबतक शरीर है तबतक कुछ-न-कुछ तो अहंभाव रहता ही है। जबतक अहंभाव है, शरीरको भी तभीतक धारण करना है ही। इसलिए शरीरके साथ हिंसा भी रही हुई है। टाल्स्टायने स्वयं कहा है कि जो अपनेको आदर्श तक पहुंचा हुआ समझता है, उसे नष्टप्राय ही समझना चाहिए। बस यहींसे उसकी अधोगति शुरू होती है। ज्यों-ज्यों हम आदर्शके समीप पहुंचते हैं, आदर्श दूर भागता जाता है। जैसे-जैसे हम उसकी खोजमें अग्रसर होते हैं, यह मालूम होता है कि अभी तो एक मंजिल और बाकी है। कोई भी जल्दीसे मंजिलें तय नहीं कर सकता, ऐसा माननेमें हीनता नहीं है, निराशा नहीं है, किंतु नम्रता अवश्य है। इसीसे हमारे ऋषियोंने कहा है कि मोक्ष तो शून्यता है। मोक्ष चाहनेवालेको शून्यता प्राप्त करना है। यह ईश्वर-प्रसादके बिना नहीं मिल सकती। यह शून्यता जबतक शरीर है, आदर्शरूप ही रहती है। इस बातको टाल्स्टायने साफ देख लिया, उसे बुद्धिमें अंकित किया, उसकी ओर दो डग आगे बढ़े और उसी वक्त उन्हें वह हरी छड़ी मिल गई। उस छड़ीका वे वर्णन नहीं कर सकते, सिर्फ मिली इतना ही कह सकते हैं। फिर भी अगर कहा होता कि मिली तो उनका जीवन समाप्त हो जाता।

टाल्स्टायके जीवनमें जो विरोधाभास दीखता है वह टाल्स्टायका कलंक या कमजोरी नहीं है; किंतु देखनेवालोंकी त्रुटि है। एमर्सनने कहा है कि अविरोध तो छोटे-से आदमीका पिशाच है। हमारे जीवनमें कभी विरोध

आनेवाला ही नहीं, अगर यह हम दिखलाना चाहें तो हमें मरा ही समझें। ऐसा करनेमें अगर कलके कार्यको याद रखकर उसके साथ आजके कार्यका मेल करना पड़े तो कृत्रिम मेलमें असत्याचरण हो सकता है। सीधा मार्ग यह है कि जिस वक्त जो सत्य प्रतीत हो उसका आचरण करना चाहिए। यदि हमारी उत्तरोत्तर वृद्धि ही हो जाती हो तो हमारे कार्योंमें दूसरोंको विरोध दीखे भी तो उससे हमें क्या संबंध है। सच तो यह है कि वह हमारा विरोध नहीं है, हमारी उन्नति है। उसीके अनुसार टाल्स्टायके जीवनमें जो विरोध दीखता है वह विरोध नहीं है; बल्कि हमारे मनका विरोधाभास है। मनुष्य अपने हृदयमें कितने प्रयत्न करता होगा, राम-रावणके युद्धमें कितनी विजयें प्राप्त करता होगा, उनका ज्ञान उसे स्वयं नहीं होता, देखनेवालोंका तो हो ही नहीं सकता। यदि वह कुछ फिसला तो वह जगतकी निगाहमें कुछ भी नहीं है, ऐसा प्रतीत होना अच्छा ही है। उसके लिए दुनिया निंदाकी पात्र नहीं है। इसीसे तो संतोंने कहा है कि जगत जब हमारी निंदा करे तब हमें आनंद मनाना चाहिए और स्तुति करे तब कांप उठना चाहिए। जगत दूसरा नहीं करता। उसे तो जहां मैल दीखा कि वह उसकी निंदा ही करेगा। परंतु महापुरुषके जीवनको देखने बैठें तो मेरी कही हुई बात याद रखनी चाहिए। उसने हृदयमें कितने युद्ध किए होंगे और कितनी जीतें प्राप्त की होंगी, इसका गवाह तो प्रभु ही है। यही निष्फलता और सफलताके चिह्न हैं।

इतना कहकर मैं यह समझाना नहीं चाहता कि तुम अपने दोषोंको छिपाओ या पहाड़से दोषोंको तनिकसे गिनो। यह तो मैंने दूसरोंके विषयमें कहा है। दूसरोंके हिमालय-से बड़े दोषोंको राईके समान समझना चाहिए और अपने राई-से दोषोंको हिमालयके समान बड़ा समझना चाहिए। अपनेमें अगर जरा-सा भी दोष मालूम हो, जाने-अनजाने असत्य हो गया हो तो हमें ऐसा होना चाहिए कि अब जलमें डूब मरें। दिलमें आग सुलग जानी चाहिए। सर्प या बिच्छूका डंक तो कुछ नहीं है, उनका

जहर उतारनेवाले बहुत मिल सकते हैं; परंतु असत्य और हिंसाके दंशसे बचानेवाला कौन है ? ईश्वर हमें उससे मुक्ति दे सकता है और हममें अगर पुरुषार्थ हो तभी वह मिल सकती है। इसलिए अपने दोषोंके बारेमें हम सचेत रहें। वे जितने बड़े देखे जा सकें उन्हें हम देखें और अगर जगत हमें दोषित ठहरावे तो हम ऐसा न मानें कि जगत कितना कंजूस है कि छोटे-से दोषको बड़ा बतलाता है। टाल्स्टायको कोई उनका दोष बतलाता तो वे उसे बड़ा भयंकर रूप दे देते थे। उनका दोष बतानेका प्रसंग दूसरेको शायद ही उपस्थित हुआ हो; क्योंकि वे बहुत आत्मनिरीक्षण किया करते थे। दूसरोंके बतानेके पहले ही वे अपने दोष देख लेते थे और उसके लिए जिस प्रायश्चितकी कल्पना उन्होंने स्वयं की हो वह भी वे कर डाले हुए होते थे। यह साधुताकी निशानी है। इसीसे मैं मानता हूं कि उन्हें वह छड़ी मिली थी।

दूसरी एक अद्भुत वस्तुका खयाल टाल्स्टायने लिखकर और उसे अपने जीवनमें ओत-प्रोत करके कराया है। वह वस्तु है 'ब्रेड लेबर'। यह उनकी स्वयं की हुई खोज न थी। किसी दूसरे लेखकने यह वस्तु रूसके सर्व-संग्रहमें लिखी थी। इस लेखकको टाल्स्टायने जगतके सामने ला रक्खा और उसकी बातको भी वे प्रकाशमें ले आये। जगतमें जो असमानता दिखाई पड़ती है, दौलत व कंगालियत नजर आती है उसका कारण यह है कि हम अपने जीवनका कानून भूल गये हैं। यह कानून 'ब्रेड लेबर' है। गीताके तीसरे अध्यायके आधारपर मैं उसे यज्ञ कहता हूं। गीताने कहा है कि बिना यज्ञ किए जो खाता है वह चोर है, पापी है। वही चीज टाल्स्टायने बतलाई है। 'ब्रेड लेबर' का उलटा-सुलटा भावार्थ करके हमें उसे उड़ा नहीं देना चाहिए। उसका सीधा अर्थ यह है कि जो शरीर खपाकर मजदूरी नहीं करता उसे खानेका अधिकार नहीं है। हम भोजनके मूल्यके बराबर मेहनत कर डालें तो जो गरीबी जगतमें दिखाई देती है वह दूर हो जाय। एक आलसी दो भूखोंको मारता है, क्योंकि

उसका काम दूसरेको करना पड़ता है। टाल्स्टायने कहा कि लोग परोप-कार करनेके लिए प्रयत्न करते हैं, उसके लिए पैसे खरचते हैं और इलकाब लेते हैं; परंतु ऐसा न करके थोड़ा-सा ही काम करें अर्थात् दूसरोंके कंधोंपर-से नीचे उतर जायं तो बस यही काफी है। और यही सच्ची बात है। यह नम्रताका वचन है। करें तो परोपकार; किंतु अपने ऐशोआराममेंसे लेश-मात्रभी न छोड़ें तो यह वैसा ही हुआ जैसा कि अखा भक्तने कहा है: 'निहायकी चोरी और सुईका दान।' ऐसे क्या विमान आ सकता है?

बात ऐसी नहीं है कि टाल्स्टायने जो कहा वह दूसरोंने नहीं कहा हो; परंतु उनकी भाषामें चमत्कार था, क्योंकि जो कहा उसका उन्होंने पालन किया। गद्दी-तकियोंपर बैठनेवाले, मजदूरीमें जुट गये, आठ घंटे खेती का या दूसरा मजदूरीका काम उन्होंने किया। इससे यह न समझें कि उन्होंने साहित्यका कुछ काम ही नहीं किया था। जबसे उन्होंने शरीरकी मेहनतका काम शुरू किया तबसे उनका साहित्य अधिक शोभित हुआ। उन्होंने अपने पुस्तकोंमें जिसे सर्वोत्तम कहा है, वह है 'कला क्या है', यह उन्होंने इस यज्ञकालकी मजदूरीमेंसे बचते वक्तमें लिखा था। मजदूरीसे उनका शरीर न घिसा और ऐसा उन्होंने स्वयं मान लिया था कि उनकी बुद्धि अधिक तेजस्वी हुई और उनके ग्रंथोंके अभ्यासी कह सकते हैं कि यह बात सच्ची है।

यदि टाल्स्टायके जीवनका उपयोग करना हो तो उनके जीवनसे उल्लि-खित तीन बातें जान लेनी चाहिए। युवक-संघके सभ्योंको ये वचन कहते हुए मैं उन्हें याद दिलाना चाहता हूं कि तुम्हारे सामने दो मार्ग हैं: एक स्वेच्छाचारका और दूसरा संयमका। यदि तुम्हें यह प्रतीत होता हो कि टाल्स्टायने जीना और मरना जाना था तो तुम देख सकते हो कि दुनिया-में सबके लिए और विशेषत: युवकोंके लिए: संयमका मार्ग ही सच्चा मार्ग है। हिंदुस्तानमें तो खास तौरपर है ही। . . . . देशमें पश्चिमसे तरह-तरहकी हवाएं, मेरी दृष्टिमें जहरी हवायें, आती हैं। टाल्स्टायके जीवनके समान

सुंदर हवा भी आती है सही; परंतु वह प्रत्येक स्टीमरमें थोड़े ही आती है। प्रत्येक स्टीमरमें कहो या प्रतिदिन कहो। कारण कि प्रतिदिन कोई-न-कोई स्टीमर बम्बई या कलकत्तेके बंदरगाहमें आता ही है। दूसरे परदेशी सामानके समान उसमें परदेशी साहित्य भी आता ह। उनके विचार मनुष्य-को चकनाचूर करनेवाले होते हैं, स्वेच्छाचारकी तरफ लेजानेवाले होते हैं। ....तिलक महाराज कह गये हैं कि हमारे यहां 'कान्श्यन्स' का पर्याय-वाची शब्द नहीं है। हम यह नहीं मानते कि प्रत्येक व्यक्तिके 'कान्श्यन्स' होता है। पश्चिममें यह बात मानते हैं। व्यभिचारीके लिए, लंपटके लिए, कान्श्यन्स क्या हो सकता है? इसीलिए तिलक महाराजने 'कान्श्यन्स' की जड़ ही उड़ा दी। हमारे ऋषि-मुनियोंने कहा है कि अंतर्नाद सुननेके लिए अंतर्कर्ण भी चाहिए, अंतर्चक्षु भी चाहिए और उसे प्राप्त करनेके लिए संयमकी अवश्यकता है। इसलिए पातंजल योगदर्शनमें योगाभ्यास करनेवालोंके लिए, आत्मदर्शनकी इच्छा रखने वालोंके लिए, पहला पाठ यम-नियम पालन करनेका बताया है। सिवाय संयमके मेरे, तुम्हारे या अन्य किसीके पास कोई दूसरा मार्ग ही नहीं है। यही टाल्स्टायने अपने लम्बे जीवनमें संयमी रहकर बताया। मैं चाहता हूं, प्रभुसे प्रार्थना करता हूं कि यह चीज हम उसी तरह साफ देख सकें जैसे कि आंखोंके आगेका दीया स्पष्ट देखते हैं और आज एकत्र हुए हैं तो ऐसा निश्चय करके बिखरें कि टाल्स्टायके जीवनमेंसे हम संयमकी साधना करनेवाले हैं।

निश्चय करलो कि हम सत्यकी आराधना छोड़नेवाले नहीं हैं। सत्यके लिए दुनियामें सच्ची अहिंसा ही धर्म है। अहिंसा प्रेमका सागर है। उसका नाम जगतमें कोई ले सका ही नहीं। उस प्रेमसागरसे हम सराबोर हो जायं तो हममें ऐसी उदारता आ सकती है कि उसमें सारी दुनियाको हम विलीन कर सकते हैं। यह बात कठिन अवश्य है; किंतु है साध्य ही। इसीसे हमने प्रारंभमें प्रार्थनामें सुना कि शंकर हों या विष्णु; ब्रह्मा हों

या इंद्र; बुद्ध हों या सिद्ध; मेरा सिर तो उसीके आगे झुकेगा जो रागद्वेष-रहित हों; जिसने कामको जीता हो; जो अहिंसा, प्रेमकी प्रतिमा हो। यह अहिंसा लूले-लंगड़े प्राणियोंको न मारनेमें समाप्त नहीं होती। उसमें धर्म हो सकता है, परन्तु प्रेम तो उससे भी बहुत आगे बढ़ा हुआ है। उसके दर्शन जिसको नहीं हुए वह लूले-लंगड़े प्राणियोंको बचावे तो उससे क्या होना जाना था! ईश्वरके दरबारमें इसकी कीमत बहुत कम कूती जायगी। तीसरी बात है 'ब्रेड लेबर'—यज्ञ। शरीरको कष्ट देकर मेहनत करके ही खानेका हमें अधिकार है। पारमार्थिक दृष्टिसे किया हुआ काम यज्ञ है। मजदूरी करके भी सेवाके हेतु जीना है। लम्पट होनेको या दुनियाके भोगोंका उपभोग करनेको जीवित रहना नहीं कहते हैं। कोई कसरतबाज नौजवान आठ घंटे कसरत करे तो यह 'ब्रेड लेबर' नहीं है। तुम कसरत करो, शरीरको मजबूत बनाओ तो इसकी मैं अवगणना नहीं करता; परंतु जो यज्ञ टाल्स्टायने कहा है, गीताके तीसरे अध्यायमें जो बताया गया है, वह यह नहीं है। जीवन यज्ञकी खातिर है, सेवाके लिए है। जो ऐसा समझेगा वह भोगोंको कम करता जावेगा। इस आदर्श साधनमें ही पुरुषार्थ है। भले ही इस वस्तुको किसीने सर्वांशमें प्राप्त न किया हो, भले ही वह दूर-ही-दूर रहे; किंतु फरहादने जिस तरह शीरींके लिए पत्थर फोड़े उसी तरह हम भी पत्थर तोड़ें। हमारी यह शीरीं अहिंसा है। उसमें हमारा छोटा-सा स्वराज्य तो शामिल है ही, बल्कि उसमें तो सभी कुछ समाया है।[1] (हि० न० २०.९.२८)

* * *

रस्किनका Fors Clavigera (फोर्स क्लेविजेरा) बापूने बहुत रसके साथ पढ़ना शुरू किया और आज कहने लगे—"यह पुस्तक तो बार-बार

---

[1]गत १० सितंबरको महर्षि टाल्स्टायकी जन्म-शताब्दीके अवसरपर सत्याग्रहाश्रममें दिए गये व्याख्यानका सारांश।

पढ़ें तो भी थकान नहीं मालूम होती। इसमेंसे तो नई-नई बातें सूझती हैं।"

शिक्षाकी बुनियादके बारेमें कुछ विचार बहुत सुन्दर लगनेके कारण इस विषय पर एक छोटा-सा लेख आश्रमको भेजा।[1] मैंने (महादेवभाई) रस्किन

---

[1] जॉन रस्किन एक उत्तम प्रकारका लेखक, अध्यापक और धर्मज्ञ था। उसका देहांत १८८०के आसपास हुआ। उसकी एक पुस्तकका मुझपर बहुत ही गहरा असर पड़ा और उसीके सुझाये हुए रास्तेपर मैंने एक क्षणमें जिंदगीमें महत्वपूर्ण परिवर्तन कर डाला। यह बात ज्यादातर आश्रमवासी तो जानते ही होंगे। उसने सन् १८७१में सिर्फ मजदूर-वर्गको ध्यानमें रखकर एक मासिक पत्र लिखना शुरू किया था। उन पत्रोंकी तारीफ मैंने टॉल्स्टॉयकी किसी रचनामें पढ़ी थी। मगर वे पत्र मैं आजतक जुटा नहीं सका। उसकी प्रवृत्ति और रचनात्मक कार्यके विषयमें एक पुस्तक मेरे साथ आ गयी थी, उसे यहां पढ़ा। उसमें भी उन पत्रोंका उल्लेख था। इस परसे मैंने रस्किनकी एक शिष्याको विलायतमें लिखा। वही इस पुस्तककी लेखिका है। वह बेचारी गरीब, इसलिए ये पुस्तकें कहांसे भेज सकती थी? मूर्खतासे या झूठे विनयसे मैंने उसे आश्रमसे रुपया मंगा लेनेको नहीं लिखा। इस भली स्त्रीने अपनेसे ज्यादा समर्थ मित्रको मेरा खत भेज दिया। वे 'स्पेक्टेटर'के मालिक हैं। उनसे मैं विलायतमें मिला भी था। उन्होंने ये पत्र पुस्तकाकार चार भागोंमें छपाये हैं, सो भेज दिये। इनमेंसे पहला भाग मैं पढ़ रहा हूं। इनके विचार उत्तम हैं और हमारे बहुतसे विचारोंसे मिलते-जुलते हैं—यहांतक कि अनजान आदमी तो यही मान लेगा कि मैंने जो कुछ लिखा है और आश्रममें हम जो भी आचरण करते हैं, वह रस्किनकी इन रचनाओंसे चुराया हुआ है। 'चुराया हुआ' शब्दका अर्थ तो समझमें आ ही गया होगा। जो विचार या आचार जिससे लिया हो उसका नाम छिपाकर

और टॉल्स्टॉयके बीच एक समानता सुझाई, "टाल्स्टायने अपना कलानिष्ठ जीवन छोड़कर सेवानिष्ठ जीवनकी शुरुआत की और कलाकी पुस्तकोंका लिखना बिलकुल त्याग कर ऐसी घरेलू पुस्तकें और कहानियां लिखना शुरू किया, जिनसे आम लोगोंकी उन्नति हो। रस्किनके जीवनका पहला हिस्सा भी कलानिष्ठाका था। इस कलानिष्ठाके कालमें उसने मॉडर्न

यह बताया जाय कि यह हमारी अपनी कृति है, तो वह चुराया हुआ माना जाता है।

रस्किनने बहुत लिखा है। उसमेंसे इस बार तो थोड़ा ही देना चाहता हूं। वह कहता है कि इस कथनमें गंभीर भूल है कि बिलकुल अक्षरज्ञान न होनेसे कुछ होना अच्छा ही है। रस्किनकी साफ राय यह है कि जो सच्ची है, आत्माका ज्ञान करानेवाली है, वही शिक्षा है और वही लेनी चाहिए। और बादमें वह कहता है कि इस दुनियामें मनुष्यमात्रको तीन चीजोंकी और तीन गुणोंकी आवश्यकता है। जो इन्हें हासिल करना नहीं जानता, वह जीनेका मंत्र ही नहीं जानता। और इसलिए ये छः चीजें शिक्षाका आधार होनी चाहिए। इस तरह मनुष्य-मात्रको बचपनसे---फिर भले वह लड़का हो या लड़की---जानना ही चाहिए कि साफ हवा, साफ पानी और साफ मिट्टी किसे कहते हैं; इन्हें किस तरह रखा जाय और इनका उपयोग क्या है। इसी तरह तीन गुणोंमें उसने गुणज्ञता, आशा और प्रेमको गिना है। जिनमें सत्यादिकी कद्र नहीं, जो अच्छी चीजको पहचान नहीं सकते, वे अपने घमंडमें फिरते हैं और आत्मानंद नहीं पा सकते। इसी तरह जिनमें आशावाद नहीं यानी जो ईश्वरके न्यायके बारेमें शंका रखते हैं, उनका हृदय कभी प्रफुल्लित नहीं रह सकता, और जिनमें प्रेम नहीं यानी अहिंसा नहीं, जो जीवमात्रको अपने कुटुंबी नहीं मान सकते, वे जीनेका मंत्र कभी नहीं साध सकते।

पेण्टर्स, स्टोन्स ऑव वेनिस आदि पुस्तकें लिखीं। बादमें उसे लगा कि सौन्दर्यकी उपासना चीज तो अच्छी है, मगर आसपास दुःख, दारिद्रय और फूट हो, तो सौन्दर्यका आनंद कैसे लूटा जा सकता है ? इसलिए उसने अपनी कलम खून और आंसुओंमें डुबोई और 'अण्टु दिस लास्ट' ('सर्वोदय') लिखा। जो आलोचना टाल्स्टायकी हुई वह रस्किनकी भी हुई।" बापूने कहा—

यह तुलना एक खास हदके बाद नहीं रहती; क्योंकि टाल्स्टायने तो कला-जीवनकी यानी अपने भूतकालकी निंदा की, उससे इन्कार किया, जबकि रस्किनने Unto this Last (अण्टु दिस लास्ट) और Fors (फोर्स) लिखकर अपने कला-जीवन पर कलश चढ़ा दिया।

इस बातपर रस्किनने अपनी चमत्कारी भाषामें बहुत विस्तारसे लिखा है। यह तो फिर किसी वक्त समाजके समझने लायक ढंगसे दे सकूं तो ठीक ही है। आज तो इतनेसे ही संतोष कर लेता हूं। साथ ही इतना और कह दूं कि जो कुछ हम अपने देहाती शब्दोंमें विचारते रहे हैं और आचरणमें लानेका प्रयत्न कर रहे हैं, लगभग वही सब रस्किनने अपनी प्रौढ़ और विकसित भाषामें और अंग्रेज जनता समझ सके इस ढंगसे पेश किया है। यहां मैंने तुलना दो अलग भाषाओंकी नहीं की है, बल्कि दो भाषा-शास्त्रियोंकी की है। रस्किनके भाषा-शास्त्रके ज्ञानके साथ मेरे जैसा आदमी मुकाबला नहीं कर सकता। मगर ऐसा समय जरूर आयेगा जब भाषा-मात्रका प्रेम व्यापक होगा। तब भाषाके पीछे धूनी रमानेवाले रस्किन-जैसे शास्त्री निकल आयेंगे और वे उतनी ही प्रभावशाली गुजराती लिखेंगे, जितनी प्रभावशाली अंग्रेजी रस्किनने लिखी है।

२८.३.३२

यरवदा मंदिर

मैंने कहा—"टाल्स्टाय तो क्रान्तिकारी था, इसलिए उसने जीवनमें भी परिवर्त्तन किया, और रस्किन विचार देकर बैठा रहा।"

बापू बोले—

यह तो बहुत बड़ा फर्क है न ? टाल्स्टायका-सा जीवन-परिवर्तन रस्किनमें नहीं है।

वल्लभभाईने कहा—"लेकिन आज रस्किनका नाम तो विलायतमें सचमुच कोई नहीं लेता न ?"

बापू बोले—

हां, नहीं लेता, मगर रस्किन भुलाया नहीं जा सकता। उसका जमाना आ रहा है। ऐसा समय आ रहा है कि जिसने रस्किनको नहीं सुना और उसके बारेमें लापरवाही दिखाई, वह रस्किनकी तरफ मुड़ेगा। (म० डा०, २८.३.३२)

... ...

टाल्स्टाय एक बड़ा योद्धा था, पर जब उसने देखा कि लड़ाई अच्छी चीज नहीं है तब लड़ाईको मिटा देनेकी कोशिश करते-करते वह मर गया। उसने कहा है कि दुनियामें सबसे बड़ी शक्ति लोकमत है और वह सत्य और अहिंसासे पैदा हो सकता है। (प्रा० प्र०, १०.६.४७)

: ६८ :

अमृतलाल वि० ठक्कर

ठक्करबापा आगामी २७ नवंबरको ७० वर्षके हो जायंगे। बापा हरिजनोंके पिता हैं और आदि-वासियों और उन सबके भी, जो लगभग

हरिजनोंकी ही कोटिके हैं और जिनकी गणना अर्द्धसभ्य जातियोंमें की जाती है। दिल्लीके हरिजन-निवास-वासियोंकी तजवीज इस प्रकार उनकी ७० वीं जयंती मनानेकी है कि जिससे ठक्करबापाके हृदयको सात्विक संतोष प्राप्त हो। ये लोग ठक्करबापाके जन्म-दिवसपर, हरिजन-कार्यके निमित्त, उन्हें ७०००) की एक विनम्र थैली भेंट करना चाहते हैं। इसके लिए उन्होंने मेरा आशीर्वाद मांगा है। यह भी चाहते हैं कि उनके इस शुभ प्रयत्नको में प्रकाशमें ला दूं। पर मैंने तो उन्हें झिड़का है कि उनमें आत्म-श्रद्धाकी कमी है। ठक्करबापा एक विरल लोकसेवक हैं। वे विनम्र स्वभावके हैं। वे प्रशंसाके भूखे नहीं। उनका जीवन-कार्य ही उनका एकमात्र संतोष और विश्राम है। वृद्धावस्था उनके उत्साहको मंद नहीं कर सकी है। वे स्वयं एक संस्था हैं। एक बार जब मैंने उनसे कहा कि वे थोड़ा आराम ले लें तो तुरंत उनका जवाब आया, "जब इतना तमाम काम करनेको पड़ा है, तब मैं आराम कैसे ले सकता हूं? मेरा काम ही मेरा आराम है।" अपने जीवन-कार्यमें वे जिस प्रकार अपनी शक्ति लगा रहे हैं, उसे देखकर तो उनके आस-पास रहनेवाले नवयुवक भी लज्जित हो जाते हैं। इतने महान् कार्यके लिए और उस जन-सेवकके लिए, जो अपने विशाल वृद्ध कंधोंपर इतना भारी भार वहन कर रहा है, ७०००) की थैली एक प्रकारका अपमान है। कार्यकर्त्ताओंका तो यह लक्ष्य होना चाहिए कि सारे हिंदुस्तानसे वे ७०,०००) रु० से कम तो किसी हालतमें इकट्ठे नहीं करेंगे। महान् सेवा-प्रवृत्ति और उसके सेवा-रत पिताको देखते हुए, यह ७०,०००) की रकम भी कोई चीज नहीं है। लेकिन एक महीनेके अंदर यह रकम इकट्ठी करनी है, इस दृष्टिसे यह ठीक ही है।
(ह० से०, २१.१०.३९)

. . . .

भारत-सेवक-समितिको अपने प्राणोंकी तरह प्रिय समझनेवाले एक मित्र श्रीठक्करबापा-कोषके लिए दस रुपयेका चंदा भेजते हुए लिखते हैं:

"श्री ठक्करबापाकी प्रशंसामें लिखे गये आपके एक-एक शब्दका मैं समर्थन करता हूं। इस संबंधमें मेरी एक ही सूचना है और वह यह कि बापाके पुण्य कार्योंका सारा श्रेय भारत-सेवक-समितिको महज इसलिए नहीं मिलना चाहिए कि बापा उसके एक सदस्य हैं। समितिने बिना किसी हिचकिचाहटके उनको अपना सदस्य माना है और बापाके द्वारा मानव-जातिकी जो महान् सेवा हुई है, उसपर उसने हमेशा ही गर्व किया है।"

यह शिकायत बिलकुल ठीक है। दरअसल; बात तो यह है कि बापाकी कई विशेषताओंका उल्लेख करते हुए मैं उनकी एक खास विशेषताका उल्लेख करना भूल गया हूं, इसका मुझे खयाल ही न रहा। बात यह है कि भारत-सेवक-समितिकी सदस्यता स्वीकार करनेसे पहले बापा म्युनिसिपल कॉरपोरेशन, बंबईके रोड-इंजीनियरका काम करते थे। हरिजन सेवक-संघको उनकी सेवाएं भारत-सेवक-समितिकी ओरसे ही बतौर कर्जके मिली हैं। मैं मानता हूं कि मेरी ओरसे समितिको किसी प्रकारके विज्ञापनकी जरूरत नहीं है और चूंकि मैं अपने आपको इस समितिका एक स्वतः नियुक्त और अनियमित सदस्य समझता हूं, इसलिए समितिकी प्रशंसामें कुछ लिखना मैं अपनी ही प्रशंसा करनेके समान समझता हूं। लेकिन जरूरत पड़नेपर मैं ऐसे नाजुक काम भी अच्छी तरह कर सकता हूं। समितिके नामका उल्लेख तो अकस्मात् ही छूट गया था। मुझपर कामका काफी बड़ा बोझ रहता है। मैंने सोचा तो था कि मैं बापाका जिक्र करते हुए भारत-सेवक-समितिका भी जिक्र करूंगा; लेकिन आखिर जैसा कि जाहिर है, बात ध्यानमें न रही। (ह० से०, ४.११.३९)

. . . .

बापाकी इकहत्तरवीं जयंती मनानेमें मुझे हाजिर होना चाहिए। लेकिन मैं इस लायक नहीं रहा हूं। मेरी तो हार्दिक आशा है कि बापा सौ वर्ष पूरे करें। बापाका जन्म ही दलितोंकी सेवाके लिए है, वे भले ही अस्पृश्य हों या भिल्ल या संथाल या खासी इत्यादि। उनकी कदर करनेमें

भी हम दलितोंकी कुछ-न-कुछ सेवा करते हैं। बापाकी सेवाने हिंदुस्तानको बढ़ाया है। (ह० से० ६.१२.३६)

: ६६ :

एस० वी० ठकार

श्री एस० वी० ठकार एक मूक परंतु कुशल सेवक हैं। हरिजनोंकी सेवाके उपरांत उन्होंने और भी कई क्षेत्रोंमें काफी काम किया है। उन्होंने मुझे एक सविस्तर रिपोर्ट भेजी है। उसमें उन्होंने वर्णन दिया है कि कैसे एक जगह भिल्लोंके दो पक्षोंमें सख्त झगड़ा पैदा हो गया था; परंतु सरकार की मदद लेकर वह बीचमें पड़े, उससे फसाद होते-होते रुक गया। भिल्लोंके एक अत्यंत प्रभावशाली सुधारक स्वर्गस्थ श्रीगुले महाराज थे, वह खुद भिल्ल थे। उनकी सरलता और हृदयकी सच्ची लगनके कारण उनकी गहरी छाप भिल्ल जनतापर पड़ी थी। उससे प्रेरित होकर उन्होंने हजारों-की संख्यामें शराब पीना और दूसरी कई बुराइयोंको छोड़ दिया था। साल पहले उनका देहांत होनेपर एक और आदमीने उनकी जगह ली। सुधारक पक्षने, जिन लोगोंने बुराइयोंको नहीं छोड़ा था उनका बहिष्कार किया, इससे काफी वैमनस्य उनमें पैदा हो गया है। एक समय तो ऐसा लगने लगा था कि अभी मारपीट शुरू होगी। श्रीठकारके ठीक समयपर प्रयत्नसे वह तो रुक गई; परंतु उसके साथ सुधारकी प्रवृत्तिको भी धक्का पहुंचा है। अभी सुधारकोंके विरोधियोंका पक्ष प्रबल है और अगर पहलेकी तरह आंदोलनमें शुद्ध धार्मिक प्रेरणा फिरसे पैदा न हो सकी तो अंदेशा है कि आंदोलन बिल्कुल बैठ जायगा। इसमेंसे जैसे कि श्री-ठकार लिखते हैं हमें पाठ तो यह मिलता है कि हमारा हेतु चाहे कितना नेक हो अगर उसमें हिंसाका मिश्रण हो तो सब काम बिगड़ जाता है।

किसी भी सुधारक प्रवृत्तिकी सफलताके लिए यह आवश्यक है कि स्वेच्छा और ज्ञानपूर्वक उसे जनताका सहकार मिले। बलात्कारसे हम लोगोंकी आदतें सुधार नहीं सकते। (ह० से०, १८.१.४२)

: ७० :

द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर

रवींद्रनाथ ठाकुरके बड़े भाई द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर जो 'बड़े दादा' के नामसे पहचाने जाते हैं उनका, पिताका जैसा पुत्रके प्रति प्रेम होता है वैसा ही, मुझपर प्रेम है। वे मेरे दोष देखनेके लिए साफ इन्कार करते हैं। उनके खयालसे तो मैंने कोई गलती ही नहीं की। मेरा असहयोग, मेरा चरखा, मेरा सनातनीपन, हिंदू-मुसलमान ऐक्यकी मेरी कल्पना, अस्पृश्यताका मेरा विरोध सब यथायोग्य हैं और इसीमें स्वराज्य है, यह मेरी मान्यता उनकी भी मान्यता है। पुत्रपर मोहित पिता उसके दोष नहीं देखता है, उसी प्रकार बड़े दादा भी मेरे दोष देखना नहीं चाहते हैं। उनके मोह और प्रेमका तो भला मैं यहांपर उल्लेख ही कर सकता हूं उसका वर्णन मुझसे हो ही नहीं सकता। उस प्रेमके योग्य बननेका मैं प्रयत्न कर रहा हूं। उनकी उम्र ८० से भी ज्यादा है। लेकिन छोटी-से-छोटी बातकी वे खबर रखते हैं। उन्हें यह भी खबर है कि हिंदुस्तानमें आज क्या चल रहा है। वे दूसरोंसे पढ़ाकर सुनते हैं और यह सब खबर प्राप्त करते हैं। दोनों भाइयोंको वेदादिका गहरा अभ्यास है। दोनों संस्कृत जानते हैं। दोनोंकी बातचीतमें उपनिषद और गीताके मंत्र और श्लोक बराबर सुनाई देते हैं। (हि० न०, ११.६.२५)

. . . .

इस बातपर विश्वास लाना कि द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर अब नहीं रहे, बड़ा ही कठिन है। शांतिनिकेतनके तारसे यह शोकजनक समाचार मिला है कि बड़े दादाको चिरशांति प्राप्ति हुई है। उनकी उम्र ९० वर्षके लगभग थी, फिर भी उनमें जो आनंद और उत्साह दिखाई देता था उसके कारण उनके पास जानेवालेको कभी यह मालूम ही नहीं होता था कि उनके भौतिक अस्तित्वके अब थोड़े ही दिन बाकी हैं। प्रतिभासंपन्न पुरुषोंके उस कुटुंबमें बड़े दादाका स्थान महत्वका था। वे विद्वान थे, संस्कृत और अंग्रेजी दोनों अच्छी तरह जानते थे; लेकिन इसके अलावा वे बड़े धार्मिक मनुष्य थे और उनका हृदय भी विशाल था। वे श्रद्धासे उपनिषदोंको ही मानते थे, फिर भी संसारकी दूसरी धर्म-पुस्तकोंसे प्रकाश पानेके लिए भी वे स्वतंत्र थे। उन्हें अपने देशसे बड़ा प्रेम था, फिर भी उनकी देशभक्ति दूसरे गुणोंकी विरोधिनी न थी। वे अहिंसात्मक असहयोगके आध्यात्मिक रहस्यको समझते थे; लेकिन इसके साथ यह नहीं कि वे उसके राजनैतिक महत्वको भी न समझते हों। वे चरखेमें दिलसे विश्वास रखते थे और अपनी वृद्धावस्थामें भी उन्होंने खादी धारण की थी। एक युवकमें जितना उत्साह होता है उतने ही उत्साहके साथ वे वर्तमान बातोंको जाननेके लिए प्रयत्न करते थे। बड़े दादाकी मृत्युसे हम लोगोंमेंसे एक साधु, तत्वज्ञानी और स्वदेशभक्त उठ गया है। मैं कवि और शांति-निकेतनवासियोंके प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करता हूं। (हि० न०, २१.१.२६)

: ७१ :

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

लार्ड हार्डिजने डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुरको एशियाके महाकविकी पदवी दी थी; पर अब रवीन्द्रबाबू न सिर्फ एशियाके बल्कि संसार भरके महाकवि गिने जा रहे हैं। यदि अभी नहीं तो कम-से-कम बहुत जल्द उनका नाम संसारभरके महाकवियोंमें गिना जाने लगेगा। दिन-पर-दिन उनकी प्रतिष्ठा और प्रभाव बढ़ रहा है, जिससे उनकी जिम्मेदारी भी दिन-पर-दिन बढ़ती जा रही है। उनके हाथसे भारतवर्षकी सबसे बड़ी सेवा यह हुई है कि उन्होंने अपनी कविता द्वारा भारतवर्षका संदेश संसारको सुनाया है। इसीसे रवीन्द्रबाबूको सच्चे हृदयसे इस बातकी चिंता है है कि भारतवासी भारत-माताके नामसे कोई झूठा या सारहीन संदेशा संसारको न सुनावें। हमारे देशका नाम न डूबने पावे, इस बातकी चिंता करना रवीन्द्रबाबूके लिए स्वाभाविक ही है। उन्होंने लिखा है कि मैंने इस आंदोलनकी तानके साथ अपनी तान मिलानेकी भरसक कोशिश की; पर मुझे निराश होना पड़ा। उन्होंने यह भी लिखा है कि असहयोग आंदोलनके शोरगुलमें मुझे अपनी हृदय-वीणाके लिए कोई उचित स्वर नहीं मिल सका। तीन जोरदार पत्रोंमें उन्होंने इस आंदोलनके संबंधमें अपना संदेह प्रकट किया है। अंतमें वह इस नतीजेपर पहुंचे हैं कि असहयोगका आंदोलन ऐसा गंभीर और गौरवपूर्ण नहीं है कि वह उस भारतवर्षके योग्य हो सके, जिसे वह अपनी कल्पनाका आदर्श समझे हुए हैं। उनका मत है कि असहयोगका सिद्धांत खंडन और निराशाका सिद्धांत है। रवीन्द्रबाबूकी समझमें वह सिद्धांत भेदभाव और अनुदारतासे भरा हुआ है।

रवीन्द्रबाबूके हृदयमें भारतवर्षकी प्रतिष्ठाके लिए जो चिंता है उसके लिए हर हिंदुस्तानीको अभिमान होना चाहिए। यह बहुत अच्छी

बात हुई है कि उन्होंने अपना संदेह ऐसी सुंदर और सरल भाषामें प्रकट कर दिया।

मैं रवीन्द्रबाबूके संदेहोंका उत्तर बड़ी नम्रताके साथ देनेका प्रयत्न करूंगा। मैं रवीन्द्रबाबू या उन लोगोंको जिनके हृदयपर रवीन्द्रबाबूकी कवितापूर्ण भाषाका प्रभाव पड़ा है शायद विश्वास न दिला सकूं, पर मैं उनको और कुल भारतवर्षको यह विश्वास दिलाना चहता हूं कि असहयोगके उद्देश्यके संबंधमें उनका जो कुछ संदेह है वह बिल्कुल निर्मूल है। मैं उन्हें यह विश्वास दिलाना चाहता हूं कि यदि उनके देशने असहयोगके सिद्धांतको स्वीकार किया है तो इसमें उनके शर्मानेकी कोई बात नहीं है। अगर यह सिद्धांत अमली तौरपर काममें आनेमें असफल हो तो सिद्धांतका दोष न कहा जायगा, क्योंकि अगर सच्चाईको अमली तौरपर काममें लानेवाले आदमी सफल होते हुए न दिखाई पड़ें तो इसमें सच्चाईका कोई दोष नहीं है। हां, यह संभव है कि असहयोग-आंदोलन शायद अपने समयके पहले ही शुरू हो गया हो। तब हिंदुस्तान और संसार दोनोंको उस उचित समयकी प्रतीक्षा करनी चाहिए। पर हिंदुस्तानके सामने तलवार और असहयोग इन दोनोंको छोड़कर और कोई उपाय नहीं था। अपनी सहायताके लिए कोई उपाय चुनना है तो वह इन्हीं दोनोंमेंसे चुन सकता है।

रवीन्द्रबाबूको इस बातसे भी न डरना चाहिए कि असहयोग-आंदोलन भारतवर्ष तथा यूरोपके बीचमें एक बड़ी भारी दीवार खड़ी करना चाहता है। इसके विरुद्ध असहयोग आन्दोलन का मंशा यह है कि आपसके आदर और विश्वासकी बुनियादपर बिना किसी दबावके सच्चे तथा प्रतिष्ठित सहयोगके लिए पक्का रास्ता तैयार किया जाय। यह आंदोलन इसलिए चलाया गया है कि जिसमें हमसे कोई जबरदस्ती सहयोग न करा सके। हमारे विरुद्ध दल बांधकर हमें कोई नुकसान न पहुंचा सके और सभ्यताके नामसे तथा तलवारके जोरसे आजकल जो तरीके हमारा खून चूसनेके लिए काममें लाये जा रहे हैं वे न लाये जा सकें। असहयोग-आंदोलन

इस बातके विरोधमें किया गया है कि हमारी इच्छा बिना और हमारे जाने बिना हमसे बुराईमें सहयोग कराया जा रहा है।

रवीन्द्रबाबूको अधिकतर चिंता विद्यार्थियोंके बारेमें है। उनका मत यह है कि जबतक दूसरे स्कूल न खुल जायं तबतक उनसे सरकारी स्कूल छोड़नेको न कहा जाय। इस बातमें मेरा उनसे पूरा मतभेद है। मैंने कोरी साहित्यकी शिक्षाको कभी परम आवश्यक नहीं समझा है। अनुभवसे मुझे यह मालूम हो गया है कि अकेली साहित्यकी शिक्षासे मनुष्यके चरित्रकी उन्नति रत्तीभर भी नहीं होती। मेरा यह भी विश्वास है कि चरित्रनिर्माणसे साहित्यकी शिक्षाका कोई संबंध नहीं है। मेरा यह पक्का विश्वास है कि सरकारी स्कूलोंने हमें बुजदिल, लाचार और अविश्वासी बना दिया है। उनके सबबसे हमारे हृदयमें असंतोष तो उत्पन्न हो गया है; पर उस असंतोषको दूर करनेके लिए कोई दवा हमें नहीं बतलाई गई है, जिससे हमारे हृदयोंमें निराशाने घर कर लिया है। सरकारी स्कूलोंका उद्देश्य हमें क्लर्क और दुभाषिया बनाना था। वह पूरा हो गया है। किसी सरकारकी धाक तभी कायम रहती है जब प्रजा स्वयं अपनी इच्छासे उस सरकारसे सहयोग करती है। अगर सरकार हमें गुलाम बनाये हुए है और ऐसी सरकारके साथ सहयोग करना और उसे सहायता देना अनुचित है, तो हमारे लिए यह जरूरी है कि हम उन संस्थाओंसे अपना नाता तोड़ दें जिनमें हम स्वयं अपनी इच्छासे अबतक सहयोग दे रहे हैं। जातिकी आशा उसके नौजवानोंपर निर्भर होती है। मेरा यह मत है कि अगर हमें इस बातका पता लग जाय कि यह सरकार पूरी तरहसे मरी हुई है तो अपने लड़कोंको उसके स्कूलों और कालेजोंमें भेजना हमारे लिए पापका काम होगा।

मैंने जो प्रस्ताव राष्ट्रके सामने रखा है उसका खंडन इस बातसे नहीं हो सकता कि अधिकतर विद्यार्थी पहली बारका जोश ठंडा होते ही अपने स्कूलोंमें फिरसे वापस चले गये। उनका अपनी बातोंसे टल जाना इस

बातका सबूत नहीं है कि हमारा यह प्रस्ताव गलत है; बल्कि इस बातका सबूत है कि हम किस कदर नीचे गिर गये हैं। अनुभवसे यह पता लगा है कि राष्ट्रीय स्कूलोंके खुलनेसे बहुत ज्यादा विद्यार्थी उनमें भरती नहीं हुए। जो विद्यार्थी सच्चे और अपने विश्वासके पक्के थे वे बिना कोई राष्ट्रीय स्कूल खुले हुए भी सरकारी स्कूलोंसे बाहर निकल आये। मेरा पक्का निश्चय है कि जिन विद्यार्थियोंने पहले-पहल स्कूल-कालेज छोड़ा है उन्होंने देशकी बहुत बड़ी सेवा की है।

वास्तवमें रवीन्द्रबाबू जड़से ही असहयोग सिद्धांतके विरुद्ध हैं। ऐसी हालतमें अगर उन्होंने स्कूल और कालेजोंसे विद्यार्थियोंके निकलनेका विरोध किया तो कोई बड़ी बात नहीं है। उनका ऐसा करना तो स्वाभाविक ही था। रवीन्द्रबाबूके हृदयमें ऐसी हरएक वस्तुसे धक्का पहुंचता है जिसका उद्देश्य खंडन करना है। उनकी आत्मा धर्मकी उन आज्ञाओंके विरोधमें उठ खड़ी होती है जो हमें किसी वस्तुका खंडन करनेके लिए कहती है। मैं उनका मत उन्हींके शब्दोंमें आपके सामने रख देता हूं—"एक महाशयने इस वर्तमान आंदोलनके पक्षमें मुझसे अक्सर यह कहा है कि प्रारंभमें किसी उद्देश्यको स्वीकार करनेकी अपेक्षा उसे अस्वीकार करनेका भाव प्रबल रहता है। यद्यपि मैं यह मानता हूं कि वास्तवमें बात ऐसी ही है, पर मैं इस बातको सच्ची नहीं मान सकता। भारतवर्षमें ब्रह्मविद्याका उद्देश्य मुक्ति या मोक्ष है; पर बौद्ध धर्मका उद्देश्य निर्वाण प्राप्त करना है। मुक्ति हमारा ध्यान सत्यके मंडनात्मक पक्षकी ओर और निर्वाण उसके खंडनात्मक पक्षकी ओर खींचता है। इसीलिए बुद्ध भगवानने इस बात पर जोर दिया कि संसार दुःखमय है तथा उससे छुटकारा पाना हमारा धर्म है और ब्रह्मविद्याने इस बातपर जोर दिया कि संसार आनंदमय है और उस आनंदको प्राप्त करना हमारा परम कर्तव्य है।" इन वाक्यों और इसी तरहके दूसरे वाक्योंसे पाठकगण रवीन्द्रबाबूकी मानसिक वृत्तिका पता लगा सकते हैं। मेरी नम्र रायमें किसी बातका खंडन या अस्वीकार करना

वैसा ही आदर्श है जैसा किसी बातका स्वीकार करना या मंडन करना। असत्यका अस्वीकार करना उतना ही जरूरी है जितना सत्यका स्वीकार करना। सब धर्म हमें यही शिक्षा देते हैं कि दो विरोधी शक्तियां हमपर अपना प्रभाव डाल रही हैं, और मनुष्य जीवनका प्रयत्न इसी बातमें रहता है कि वह लगातार स्वीकार करने योग्य वस्तुको स्वीकार और अस्वीकार करने योग्यको अस्वीकार करता रहे। बुराईके साथ असहयोग करना हमारा उतना ही कर्तव्य है जितना भलाईके साथ सहयोग करना। मैं साहससे कह सकता हूं कि रवीन्द्रबाबूने निर्वाणको केवल एक खंडनात्मक या अभाव-सूचक दिशा बतलाकर बौद्ध धर्मके साथ बड़ा अन्याय किया है। हां, मैं मानता हूं कि उन्होंने यह अन्याय जान-बूझकर नहीं किया। मैं साहसके साथ यह भी कह सकता हूं कि जिस तरह निर्वाण एक अभावात्मक दशा है, उसी तरहसे मुक्ति भी अभावको सूचित करनेवाली एक अवस्था है। शरीरके बंधनसे छुटकारा पाना या उस बंधनका बिलकुल नाश हो जाना, आनंद प्राप्त करना है। मैं अपनी दलीलके इस हिस्सेको खतम करते हुए इस बातकी ओर ध्यान खींचना चाहता हूं कि उपनिषदोंके रचयिताओंने ब्रह्मका सबसे अच्छा वर्णन 'नेति' किया है।

इसलिए मेरी समझमें रवीन्द्रबाबूको असहयोग-आंदोलनके अभावात्मक या खंडनात्मक रूपपर चौंकनेकी कोई जरूरत न थी। हम लोगोंने 'नहीं' कहनेकी शक्ति बिलकुल गंवा दी है। सरकारके किसी काममें 'नहीं' कहना पाप और अराजकता गिना जाने लगा था। जिस तरहसे कि बोनेके पहले निराई करना बहुत जरूरी है उसी तरहसे सहयोग करनेके पहले जान-बूझकर पक्के इरादेके साथ असहयोग करना हम लोगोंने जरूरी समझा है। खेतीके लिए जितनी बुआई जरूरी है, उतनी ही निराई जरूरी है। वास्तवमें उस समय भी हर रोज निराई जरूरी है जबकि फसलें उगती रहती हैं। इस असहयोग-आंदोलनके रूपमें जातिकी ओरसे सरकारको इस बातका निमंत्रण दिया है कि जिस

तरहसे हरएक जातिका हक और हरएक अच्छी सरकारका धर्म है, उसी तरहसे इस सरकारको भी चाहिए कि वह जातिके साथ सहयोग करे। असहयोग-आंदोलन जातिकी ओरसे इस बातका नोटिस है कि वह अब और ज्यादा दिनोंतक दूसरोंकी संरक्षकतामें रहकर संतोष न करेगी। हिंदुस्तानने तलवार या मारकाटके अस्वाभाविक और अधार्मिक सिद्धांतके स्थानपर असहयोगके निर्दोष प्राकृतिक और धार्मिक सिद्धांतको ग्रहण किया है। अगर हिंदुस्तान कभी उस स्वराज्यको प्राप्त करेगा जिसका स्वप्न रवीन्द्रबाबू देख रहे हैं तो वह सिर्फ शांतिपूर्ण असहयोग आंदोलनके द्वारा प्राप्त करेगा। वे चाहें तो संसारको अपना शांतिपूर्ण संदेशा सुनावें और इस बातका भरोसा रखें कि हिंदुस्तान अगर अपनी बातका धनी बना रहेगा तो अपने असहयोग द्वारा उनके संदेशको अवश्य सच्चा साबित करेगा। रवीन्द्रबाबू जिस देशभक्तिके लिए उत्सुक हो रहे हैं, उसे असली तौरपर पैदा करनेको ही यह आंदोलन किया गया है। हिंदुस्तान जो यूरोपके पैरोंके नीचे पड़ा हुआ है, संसारको कोई आशा नहीं दिला सकता। स्वतंत्र और जाग्रत भारत ही दुखी संसारको शांति और सुखका संदेशा सुना सकता है। असहयोग-आंदोलन इसीलिए चलाया गया है कि जिसमें भारतवर्ष एक ऊंचे स्थानसे अपना संदेशा संसारको सुना सके। (यं० इं०, १.६.२१)

... ...

..टैगोरकी क्या बात! उन्होंने क्या नहीं साधा? साहित्यका एक भी क्षेत्र उन्होंने छोड़ा है? और सबमें कमाल..एसी अलौकिक शक्ति-वाला आदमी हमारे यहां तो है ही नहीं, लेकिन दुनियामें भी होगा या नहीं, इसमें मुझे शक है।

वल्लभभाई बोले—"मगर उनका शांतिनिकेतन चलेगा? वे तो बूढ़े हो गये और उनकी जगह लेनेवाला कोई रहा नहीं।" बापूने कहा—

....बात तो जरूर मुश्किल है। मगर यह तो कैसे कहा जा सकता

है। भगवानने इतनी असाधारण प्रतिभावाला आदमी पैदा किया तो उसे यह तो मंजूर नहीं होगा कि उसका काम योंही बंद हो जाय।

वल्लभभाई कहने लगे—यह तो ठीक है। मगर उनकी जो असाधारणताएं हैं उन सबको कौन किस क्षेत्रमें ला सकेगा? मैंने (महादेवभाई) कहा—नंदलाल बोस, असित हलदार-जैसे उत्तम चित्रकार वहां मौजूद हैं। विधुशेखर शास्त्री भी हैं। वल्लभभाई बोले—चित्रकला तो ठीक है। मगर उसकी पाठशालाएं कितनी चल सकती हैं? हमारा तो खादी और चरखा है। उसके लिए बापू थोड़े ही चाहिए! ये तो बापू न होंगे तो दूधाभाई भी आकर चलाते रहेंगे। उन्होंने कोई ऐसी चीज नहीं दी, जिसे लोग अपने हाथोंमें ले सकें और जो अखंड रूपमें चलती ही रहे।

मैंने तुरंत कहा—टैगोरके बारेमें यह कहा जा सकता है कि आज तक उनके यहां असाधारण प्रतिभावाले लोग खिंचकर न आये हों तो शायद अब उनके कामको जारी रखनेके लिए वे आ जायं। शांतिनिकेतनको उनके आदर्शके अनुसार ही जारी रखनेके लिए नये आदमी क्यों न शरीक होंगे? बापूने कहा—

आज उनकी प्रचंड शक्तिसे ज्यादा लोग आकर्षित न हों तो भविष्यमें आकर्षित हो सकते हैं। आज भी रामानंद चटर्जी-जैसे लोग तो हैं ही और ईश्वर कृपा हो तो और लोग भी आ सकते हैं। और उनका श्रीनिकेतनका काम तो जारी ही रहेगा। एमहर्स्ट-जैसा आदमी विलायत छोड़कर इसे चलानेके लिए चला आए तो मुझे आश्चर्य नहीं होगा। (म० डा०)

... ...

आप (डा० कागावा) शांतिनिकेतन देखे बगैर चले जायें, यह कैसे हो सकता है

कागावा—मैंने कविके काव्योंको पढ़ा है। मुझे वे बहुत प्रिय हैं।

गांधीजी—किंतु कवि आपको प्रिय हैं न?

कागावा—मैं रोज 'गीतांजली' पढ़ा करता हूं तो क्या रोज कविका

सान्निध्य अनुभव नहीं करता ? हो सकता है कि कवि अपने काव्योंसे महान् हों ।

गांधीजी—कभी-कभी इसका उल्टा सत्य होता है; पर रवीन्द्रनाथ ठाकुरके विषयमें यह कहूंगा कि अपने महाकाव्योंसे भी वे महान् हैं । अब एक दूसरा प्रश्न पूछता हूं । आपके प्रवासक्रममें पांडिचेरी है या नहीं ? आप अगर अर्वाचीन भारतवर्षका अध्ययन करना चाहते हैं, तो शांतिनिकेतन और अरविंद-आश्रम आपको देखने ही चाहिए । (ह० से०, २८.१.३९)

. . . .

शांतिनिकेतनमें आगमन मेरे लिए एक तीर्थ-यात्राके समान था । बहुत दिनोंसे मेरी इच्छा वहां जानेकी थी, लेकिन यह अवसर मलिकन्दा जाते समय ही मुझे मिल सका । मेरे लिए शांतिनिकेतन नया नहीं है । १९१५ में जब इसकी रूपरेखा बन रही थी तब मैं वहीं था । इसका मतलब यह नहीं कि अब इसका निर्माण-क्रम रुक गया है । गुरुदेव खुद विकसित हो रहे हैं । वृद्धावस्थाके कारण उनके मनके लचीलेपनमें कोई अंतर नहीं पड़ा है । इसलिए जबतक गुरुदेवकी भावनाकी छाया उसके ऊपर है तबतक शांतिनिकेतनकी वृद्धि रुक नहीं सकती । वहां प्रत्येक मनुष्यकी उनके प्रति जो श्रद्धा है वह ऊपर उठानेवाली है, क्योंकि वह सहज है । मुझे तो इसने अवश्य ही ऊंचा उठाया । कृतज्ञ छात्रों और अध्यापकोंने उनको जो उपाधि 'गुरुदेव' की दे रखी है उससे शांतिनिकेतनमें उनकी स्थिति ठीक-ठीक व्यक्त होती है । यह स्थिति उनकी इसलिए है कि वह उस स्थान और वहांके समूहमें निमग्न हो गये हैं, अपनेको भूल गये हैं । मैंने देखा कि वह अपनी प्रियतम कृति 'विश्व-भारती' के लिए जी रहे हैं । वह चाहते हैं कि यह फूले-फले और अपने भविष्यके विषयमें निश्चिन्त हो जाये । इसके बारेमें उन्होंने मुझसे देरतक बातचीत की । लेकिन इतना भी उनके लिए काफी नहीं था, इसलिए जब हम विदा हो रहे थे तब उन्होंने मुझे नीचे लिखा बहुमूल्य पत्र दिया :

प्रिय महात्माजी,

आपने आज सुबह ही हमारे कार्यके 'विश्व-भारती'-केंद्रका विहंगाव-लोकन किया है। मैं नहीं जानता कि आपने इसकी अर्हताका क्या अंदाज लगाया है। आप जानते हैं कि यद्यपि अपने वर्तमान रूपमें यह संस्था राष्ट्रीय है, तथापि अन्तःभावनाकी दृष्टि से यह एक सार्वदेशिक—अन्तर्राष्ट्रीय संस्था है और अपने साधनोंके अनुसार भरसक शेष जगतको भारतकी संस्कृतिका आतिथ्य प्रदान करती है।

एक बड़े गाढ़े अवसरपर आपने बिल्कुल टूटनेसे इसे बचाया और अपने पांवपर खड़े होनेमें इसकी सहायता की; आपके इस मित्रतापूर्ण कार्यके लिए हम आपके निकट सदा आभारी हैं।

और अब शांतिनिकेतनसे आपके विदा होनेके पहले मैं आपसे जोरदार अपील करता हूं कि यदि आप इसे एक राष्ट्रीय संपत्ति समझते हैं तो इस संस्थाको अपने संरक्षणमें लेकर इसे स्थायित्व प्रदान करें। 'विश्वभारती' उस नौकाके समान है जो मेरे जीवनके सर्वोत्तम रत्नोंसे भरी हुई है और मुझे आशा है कि अपनी रक्षाके लिए अपने देशवासियोंसे यह विशेष देख-रेख पानेका दावा कर सकती है।

प्रेमपूर्वक

रवींद्रनाथ ठाकुर

इस संस्थाको अपने संरक्षणमें लेनेवाला मैं कौन होता हूं? चूंकि यह एक ईमानदार आत्माकी कृति है, इसलिए ईश्वरका संरक्षण इसके साथ है। यह कोई दिखावेकी चीज नहीं है। गुरुदेव स्वयं सार्व-देशिक—अंतर्राष्ट्रीय हैं, क्योंकि वह सच्चे रूपमें राष्ट्रीय हैं। इसलिए उनकी संपूर्ण कृतियां सार्वदेशिक हैं और 'विश्वभारती' उन सबमें श्रेष्ठ है। मुझे इसमें किसी तरहका संदेह नहीं कि जहांतक आर्थिक बोझका संबंध है इसके भविष्यके बारेमें गुरुदेवको संपूर्ण चिंतासे मुक्त कर देना चाहिए।

उनकी हृदयग्राही अपीलके जवाबमें जो कुछ सहायता करने लायक मैं हूं, करनेका मैंने उनको वचन दिया है। (ह० से०, २-३-४०)

... ...

"मैं यहां आप लोगोंके लिए कोई अतिथि या महमान बनकर नहीं आया हूं। शांतिनिकेतन तो मेरे लिए घरसे भी अधिक है। जब १९१४ में मैं इंगलैंडसे लौटनेवाला था तब यहीं तो मेरे दक्षिण अफ्रिकावाले कुटुंबका प्रेमपूर्वक आतिथ्य हुआ था और यहां मुझे भी करीब एक महीनेतक आश्रय मिला था। जब मैं आप सब लोगोंको अपने सामने एकत्रित देखता हूं तो उन दिनोंकी याद मेरे हृदयपर छा जाती है। मैं कितना चाहता हूं कि यहां ज्यादा दिन ठहरूं, पर अफसोस कि यह संभव नहीं। यहां कर्तव्यका प्रश्न है। उस दिन एक मित्रको एक पत्रमें मैंने लिखा था कि शांतिनिकेतन और मलिकांदा की यह यात्रा मेरे लिए तीर्थ-यात्रा है। सचमुच इस बार शांतिनिकेतन मेरे लिए 'शांति' का 'निकेतन' सिद्ध हुआ। मैं यहां राजनीतिकी सब चिंता और झंझट छोड़कर मात्र गुरुदेवके दर्शन और आशीर्वाद लेने आया हूं। मैंने अक्सर एक कुशल भिक्षुक होनेका दावा किया है। लेकिन आज गुरुदेवका मुझे जो आशीर्वाद मिला है उससे बढ़कर दान मेरी झोलीमें कभी किसीने नहीं डाला। मैं जानता हूं कि उनका आशीर्वाद तो मुझे हमेशा ही है। मगर आज मेरा खास सौभाग्य है कि उन्हींके हाथों रूबरू मुझे आशीर्वाद मिला और इस कारण मेरे हर्षका पार नहीं। (ह० से०, ३०-३-४०)

... ...

डा० रवीन्द्रनाथ टैगोरके निधनमें हमने न केवल अपने युगके सबसे बड़े कविको ही, बल्कि एक उत्कट राष्ट्रवादीको, जो कि मानवताका पुजारी भी था, खो दिया है। शायद ही कोई ऐसी सार्वजनिक प्रवृत्ति होगी, जिसपर उनके शक्तिशाली व्यक्तित्वकी छाप न पड़ी हो। शांतिनिकेतन और श्रीनिकेतनके रूपमें उन्होंने समस्त राष्ट्रके लिए ही नहीं,

अपितु समस्त संसारके लिए विरासत छोड़ी है। प्रभु उस महान् आत्माको शांति दें और शांतिनिकेतनके जिन संचालकोंपर इसका उत्तरदायित्व आ पड़ा है, वे उसके योग्य सिद्ध हों (७-८-४१)

. . . .

१७ तारीख गुरुदेवका श्राद्ध-दिवस है। जो लोग श्राद्धको धार्मिक महत्व देते हैं, वे निसंदेह उस दिन निर्जल उपवास करेंगे या केवल फलोंपर रहेंगे और अपना समय प्रार्थनामें बितायेंगे। प्रार्थना व्यक्तिगत रूपमें की जा सकती है अथवा सामूहिक रूपमें। प्रत्येक नगर और प्रत्येक ग्रामके निवासी, जिन्होंने उनके उस ऊंचा उठानेवाले संदेशको सुना है, जो उन्होंने अपनी कृतियोंद्वारा दिया तथा जिसे उन्होंने अपने जीवनमें जिया, सुविधानुसार किसी समय एकत्र होंगे और उस दिव्यजीवनके बारेमें चिंतन करेंगे और अपने आपको देश-सेवाके लिए समर्पित कर देंगे।

गुरुदेवका ध्येय शांति और सद्भावना था। वे साम्प्रदायिक बंधनोंसे अपरचित थे। इसलिए मैं आशा करता हूं कि सब वर्ग एक स्वरसे इस पवित्र दिनको मनायेंगे और साम्प्रदायिक ऐक्यको बढ़ावा देंगे।

मैं लोगोंको यह भी याद दिलाना चाहूंगा कि दीनबंधु-स्मारक-कोषका अधिकांश अभी इकट्ठा किया जाना है। यह कहते दुःख होता है कि यह कोष अब गुरुदेव-स्मारक-कोष भी बन गया है, कारण कि स्मारकके लिए इकट्ठा किया जानेवाला सब धन केवल शांतिनिकेतनके, जिसमें विश्वभारती और श्रीनिकेतन भी सम्मिलित हैं, संचालन और संवर्द्धनके लिए व्यय किया जायगा। इससे गुरुदेवके लिए अलग और विशेष स्मारककी आवश्यकता समाप्त नहीं हो जाती। लेकिन इसपर विचार करना उस समयतक विडम्बनामात्र होगी जबतक कि वह स्मारक पूरा न हो जाय, जिसका बीजारोपण स्वयं गुरुदेवने किया था। (१२-८-४१)

. . . .

दीनबंधु एंड्रचूज-स्मारक और गुरुदेव-स्मारक दोनों पर्यायवाची शब्द हैं। गुरुदेवने दीनबंधु-स्मारकका आरंभ किया था, लेकिन उसकी पूर्त्तिके पहले ही वे दीनबंधुके अनुगामी बन गये। इसलिए दीनबंधुका स्मारक अब गुरुदेवका भी स्मारक बन गया है। स्मारकका हेतु इन दो महान आत्माओं-के अनुरूप ही है। शांतिनिकेतन, विश्वभारती और श्रीनिकेतनकी समृद्धि और रक्षा ही वह हेतु है। ये तीनों संस्थाएं वास्तवमें एक ही हैं। यह बड़े दुःख और शर्मकी बात है कि पांच लाखकी यह छोटी-सी रकम धनिकों, विद्यार्थियों या मजदूरोंकी ओरसे अभी तक इकट्ठा नहीं हो पाई है। हर कोई यह मानता है कि गुरुदेवके और उनकी संस्थाके कारण हिंदुस्तानको वह यश और प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है जो किसी व्यक्ति या संस्थाके कारण उसे कभी प्राप्त नहीं हुई। शांतिनिकेतनका ही यह प्रभाव था कि जिससे प्रभावित होकर चीनके सेनाध्यक्ष चांगकाई शेक और श्रीमती चांगकाई शेकने उसे इतनी बड़ी रकम भेंट की थी। शांतिनिकेतनमें जो काम हो रहा है, उसको देखते हुए उसका खर्च न कुछ-सा है। कारण यह है कि जो लोग शुद्ध अवैतनिक काम नहीं करते, वे भी अपेक्षाकृत कम वेतन लेकर काम कर रहे हैं। अबतक स्मारक निधिमें कुल करीब एक लाख रुपए इकट्ठे हुए हैं। मुझे आशा है कि स्मारककी बाकी रकम जल्दी ही जमा हो जायगी और मुझको धन-संग्रहके लिए दौरा करनेकी कोई जरूरत न रह जायगी। स्मारककी रकमको पूरी करनेके लिए मैं वचनबद्ध हूं। जब गुरुदेव मृत्यु-शय्यापर थे, मैंने उन्हें अपने आखिरी पत्रमें लिखा था कि अगर ईश्वरकी मर्जी हुई तो मैं दीनबंधु-स्मारककी पूरी रकम वसूल कर लूंगा। दीनबंधुको शांतिनिकेतनकी आर्थिक स्थितिकी चिंता दिन-रात बनी रहती थी। वे इस चिंताको मेरे पास बतौर धरोहरके छोड़ गये हैं। हिंदुस्तानके और मानवताके इन दो सेवकोंकी इस पुकारकी मैं जरा भी उपेक्षा नहीं कर सकता। जिनके मनमें इन दोनों महापुरुषोंकी स्मृतिके लिए आदर है और जो गुरुदेवकी सजीव कृतिके मूल्यको समझते हैं, उनसे निवेदन

है कि वे स्वेच्छासे लिये हुए इस दायित्वको निबाहनेमें मेरी मदद करें।
(ह० से०, २६-४-४२)

. . . .

गुरुदेवकी देह खाकमें मिल चुकी है, लेकिन उनके अंदर जो जोत थी, जो उजेला था, वह तो सूरजकी तरह था, जो तबतक बना रहेगा जबतक धरतीपर जानदार रहेंगे। गुरुदेवने जो रोशनी फैलाई वह आत्मा-के लिए थी। सूरजकी रोशनी जैसे हमारे शरीरको फायदा पहुंचाती है, वैसे गुरुदेवकी फैलाई रोशनीने हमारी आत्माको ऊपर उठाया है। वे एक कवि थे और प्रथम श्रेणीके साहित्यिक थे। उन्होंने अपनी मातृ-भाषामें लिखा और सारा बंगाल उनकी कविताके झरनेसे काव्यरसका गहरा पान कर सका। उनकी रचनाओंके अनुवाद बहुत-सी भाषाओंमें हो चुके हैं। वे अंग्रेजीके भी बहुत बड़े लेखक थे और शायद बिना अंग्रेजी जाने ही वे उस जबानके इतने बड़े लेखक बन गये थे। मदरसेकी पढ़ाई तो उन्होंने की थी, लेकिन युनिवर्सिटीकी कोई डिग्री उन्होंने नहीं ली थी। वे तो बस गुरुदेव ही थे। हमारे एक वाइसरायने उनको एशियाका कवि कहा था। उससे पहले किसीको ऐसी पदवी नहीं मिली थी। वे समूची दुनियाके भी कवि थे। यही क्यों, वे तो ऋषि थे। हमारे लिए वे अपनी 'गीतांजलि' छोड़ गये हैं, जिसने उनको सारी दुनियामें मशहूर कर दिया। तुलसीदासजी हमारे लिए अपनी अमर रामायण छोड़ गये हैं। वेदव्यासजीने महाभारतके रूपमें हमारे लिए मानव-जातिका इतिहास छोड़ा है। ये सब निरे कवि नहीं थे। ये तो गुरु थे। गुरुदेवने भी सिर्फ कविके नाते ही नहीं, ऋषिकी हैसियतसे भी लिखा है। लेकिन सिर्फ लिखना ही उनकी अकेली खासियत नहीं थी। वे एक कलाकार थे, नृत्यकार थे और गायक थे। बढ़िया-से-बढ़िया कलामें जो मिठास और पवित्रता होनी चाहिए, वह सब उनमें और उनकी चीजोंमें थी। नई-नई चीजें पैदा करनेकी उनकी ताकतने हमको शांतिनिकेतन,

शांतिनिकेतन और विश्वभारती जैसी संस्थाएं दी हैं। अपनी इन संस्थाओंमें वे भावरूपसे विराजमान हैं, और ये अकेले बंगालको ही नहीं, बल्कि समूचे हिंदुस्तानको उनकी विरासतके रूपमें मिली हैं। शांतिनिकेतन तो हम सबके लिए असलमें यात्राका एक धाम ही बन गया है। गुरुदेव अपने जीतेजी इन संस्थाओंको वह रूप नहीं दे पाये जो वे देना चाहते थे, जिसका वे सपना देखते थे। कौन है, जो ऐसा कर पाया हो? आदमीके मनोरथको पूरा करना तो भगवानके हाथमें है। फिर भी ये संस्थाएं हमें उनकी कोशिशोंकी याद दिलायेंगी और हमेशा हमको यह बताती रहेंगी कि गुरुदेवके मनमें अपने देशके लिए कितनी गहरी प्रीति थी और उन्होंने उसकी कितनी-कितनी सेवाएं की हैं। उनके रचे कौमी गीतको आप अभी-अभी सुन चुके हैं। हमारे देशके जीवनमें इस गीतकी अपनी एक जगह बन गई है। हजारों-लाखों लोग एकसाथ इसकी प्रेरणा पहुं-चानेवाली कड़ियोंको अक्सर गाते रहते हैं। यह सिर्फ गीत ही नहीं है, बल्कि भक्ति-भावसे भरा भजन भी है। (ह० से०, १९-५-४६)

: ७२ :

जनरल डायर

आर्मी कौंसिलने जनरल डायरको समझकी भूलका दोषी ठहराया और परामर्श दिया कि उसे सरकारी सेनामें कहीं नौकरी न मिले। मि० मांटेगूने भी जनरल डायरके आचरणकी कड़ी आलोचना करनेमें कोई बात उठा नहीं रखी। इसपर भी किसी कारणवश मुझसे यह कहे बिना रहा नहीं जाता कि जनरल डायर ही सबसे बड़ा अपराधी नहीं है। उसकी बर्बरता स्पष्ट है। आर्मी कौंसिलके सामने जनरल डायरने अपने बचावकी

जो बातें कही हैं, उनमेंसे हरएकमें उसकी महा नीच तथा असैनिक कायरता-के चिह्न पाये जाते हैं। निहत्थे स्त्री, पुरुष और बच्चोंको जो खेल-तमाशा तथा छुट्टी मनानेका ही काम जानते थे, उसने बागी सेना बताया है। जनरल डायरने इसलिए अपनेको पंजाबका रक्षक बताया है कि उसने घिरे हुए आदमियोंको खरहोंकी तरह गोलियोंसे मार डाला। ऐसा मनुष्य योद्धा कहलानेके योग्य नहीं है। उसके कार्यमें कोई वीरता नहीं पाई जाती। उसने कोई जोखिम नहीं उठाई। बिना छेड़-छाड़के और बिना सूचना दिये ही उसने गोलियां चलाई, यह समझकी भूल नहीं है। कल्पित विपदके सामने यह उसकी थरथराहट है। इससे बहुत बुरी अयोग्यता तथा कठोर हृदयता ही प्रकट होती है। किंतु जनरल डायर पर जो खर्च किया गया है वह बहुत करके बे-मार्ग हुआ है। इसमें संदेह नहीं कि जनरल डायरकी गोलीबारी भयंकर थी। उसकी करतूतसे जितने निर्दोष आदमी मरे, वह घटना भी बड़ी शोकजनक थी। किंतु पीछे धीरे-धीरे जो अत्याचार, जो बेइज्जती और जो धरपकड़ हुई वह बहुत बुरी और आत्माका नाश करनेवाली थी और जिन अफसरोंने यह कार्य किया उन्हें जलियांवाला बागमें हत्याएं करनेवाले जनरल डायरकी अपेक्षा अधिक दोषी समझना चाहिए। जनरल डायरने तो थोड़ेसे आदमियोंको ही मार डाला, पर इसके बाद अत्याचार करने-वाले अफसरोंने राष्ट्रके प्राण हर लिये। कर्नल फ्रैंक जानसन बड़ा भारी अपराधी है; पर कौन आदमी इसका नाम लेता है? इसने निर्दोष लाहौरमें आतंक फैला दिया और अपनी निष्ठुर आज्ञासे फौजी कानूनके समस्त अफसरोंको कड़ी कार्रवाई करनेको बाध्य किया। किंतु मुझे इस जान-सनपर भी उतना कहना नहीं है। पंजाब तथा भारतके समस्त मनुष्योंका पहला कर्तव्य है कि वे कर्नल ओब्रायन, मि० बास्वर्थ स्मिथ, राय श्रीराम तथा मि० मलिक खांको नौकरीसे निकाल बाहर करावें। ये अभी तक सरकारी नौकरीमें बने हैं। इनका दोष वैसा ही सिद्ध हुआ है जैसा जनरल डायरपर

सिद्ध किया गया है। यदि हम संतुष्ट होकर पंजाबके शासनको अन्य अत्याचारियोंसे परिष्कृत करना भूल जायं तो हम अपने कर्तव्यमें चूक जायेंगे। यह केवल मंच परसे व्याख्यान देने या प्रस्ताव पास करनेसे नहीं होगा। यदि हम सरकारी कर्मचारियोंपर प्रभाव डालकर उन्हें यह दिखाना चाहें कि वे प्रजाके मालिक नहीं, बल्कि रक्षक और नौकर हैं जो बुरा आचरण करनेपर अपने पदपर रह नहीं सकते तो हमें खूब कड़े उपायका अवलंबन करना चाहिए। (म० गां०—रामचंद्र वर्मा पृष्ठ ४०२)

: ७३ :

मिस डिक

टाइप-राइटरोंके एजेंटसे मेरा कुछ परिचय था। मैं उससे मिला और कहा कि यदि कोई टाइपिस्ट (भाई या बहन) ऐसा हो जिसे 'काले' आदमीके यहां काम करनेमें कोई उज्र न हो तो मेरे लिए तलाश कर दें। दक्षिण-अफ्रिकामें लघु-लेखन (शॉर्टहैंड) अथवा टाइपिंगका काम करने-वाली अधिकांश स्त्रियां ही होती हैं। पूर्वोक्त एजेंटने मुझे आश्वासन दिया कि मैं एक शोर्टहैंड-टाइपिस्ट आपको खोज दूंगा। मिस डिक नामक एक स्कॉच कुमारी उसके हाथ लगी। वह हाल ही स्काटलैंडसे आई थी। जहां भी कहीं प्रामाणिक नौकरी मिल जाय वहां करनेमें उसे कोई आपत्ति न थी। उसे काममें लगनेकी भी जल्दी थी। उस एजेंटने उस कुमा-रिकाको मेरे पास भेजा। उसे देखते ही मेरी नजर उसपर ठहर गई। मैंने उससे पूछा—

"तुमको एक हिंदुस्तानीके यहां काम करनेमें आपत्ति तो नहीं है?"

उसने दृढ़ताके साथ उत्तर दिया—"बिलकुल नहीं ।"

"क्या वेतन लोगी ?"

"साढ़े सत्रह पौंड अधिक तो न होंगे ?"

"तुमसे मैं जिस कामकी आशा रखता हूं वह ठीक-ठीक कर दोगी तो इतनी रकम बिलकुल ज्यादा नहीं है। तुम कब कामपर आ सकोगी ?"

"आप चाहें तो अभी ।"

इस बहनको पाकर मैं बड़ा प्रसन्न हुआ और उसी समय उसे अपने सामने बैठकर चिट्ठियां लिखवाने लगा । इस कुमारीने अकेले मेरे कारकुनका ही नहीं, बल्कि सगी लड़की या बहनका भी स्थान मेरे नजदीक सहज ही प्राप्त कर लिया । मुझे उसे कभी किसी बातपर डांटना-डपटना नहीं पड़ा । शायद ही कभी उसके काममें गलती निकालनी पड़ी हो । हजारों पौंडके देन-लेनका काम एक बार उसके हाथमें था और उसका हिसाब-किताब भी वह रखती थी । वह हर तरहसे मेरे विश्वासका पात्र हो गई थी । यह तो ठीक; पर मैं उसकी गुह्यतम भावनाओंको जानने योग्य उसका विश्वास प्राप्त कर सका था और यह मेरे नजदीक एक बड़ी बात थी । अपना जीवन-साथी पसंद करनेमें उसने मेरी सलाह ली थी । कन्या-दान करनेका सौभाग्य भी मुझीको प्राप्त हुआ था । मिस डिक जब मिसेज मैकडॉनल्ड हो गईं तब उन्हें मुझसे अलग होना आवश्यक था । फिर भी विवाहके बाद भी, जब-जब जरूरत होती मुझे उनसे सहायता मिलती थी । (आ० क०, १९२७)

: ७४ :

रेवरेंड डुड नीडु

एक तीसरे ख्यातनामा पादरी भी थे। उन्होंने पादरीपन छोड़कर पत्रका संपादन ग्रहण किया था। आप ब्लुमफोंटीनमें प्रकाशित होनेवाले 'फ्रैण्ड' नामक दैनिकके संपादक रेवरेंड डुडनीडु हैं। उन्होंने गोरोंके द्वारा अपमानित होकर भी अपने पत्रमें भारतीयोंका पक्ष किया था। दक्षिण अफ्रीकाके प्रसिद्ध वक्ताओंमें उनकी गणना होती थी। (द० अ० स० १६२४)

: ७५ :

श्री जोसेफ डोक

जोसेफ डोक बैप्टिस्ट संप्रदायके पादरी थे। दक्षिण अफ्रीकामें आने-से पहले वे न्यूजीलैंडमें थे। इस घटना¹के छः महीने पहले की बात है, एक दिन वह मेरे दफ्तरमें आये और अपना कार्ड भेजा। उसमें 'रेवरेण्ड' विशेषणका उपयोग किया गया था। इसपरसे मैंने झूठमूठ ही यह कल्पना कर ली कि जिस प्रकार अन्य कितने ही पादरी मुझे ईसाई बननेका उप-देश करने या आंदोलन बंद करनेको कहनेके लिए आते हैं, उसी प्रकार अथवा बुजुर्ग बनकर मेरे साथ सहानुभूति दिखानेके लिए वह आये होंगे। पर ज्योंही मि० डोक अंदर आये और बातचीत करने लगे त्योंही कुछ

---

¹दक्षिण अफ्रीकाके पहले समझौतेके अवसर पर मीर आलम द्वारा पिटनेकी घटना।

मिनटोंमें ही मैंने अपनी भूलको समझ लिया और दिल हीमें मैंने उनसे क्षमा मांग ली। उस दिनसे हम बड़े मित्र बन गए। युद्ध-संबंधी तमाम समाचारोंसे उन्होंने अपनेको परिचित बताया और कहा "इस युद्धमें आप मुझे अपना मित्र समझिए। मुझसे जो कुछ सेवा बनेगी, वह सब मैं अपना धर्म समझकर करनेकी इच्छा रखता हूं। ईसाके जीवना-दर्शका चिंतन-मनन करके मैंने तो यही सीखा है कि आपत्कालमें दीन-दुखियोंका साथ देना चाहिए।" यह हमारा पहला परिचय था। इसके बाद दिनोंदिन हमारा स्नेह-संबंध बढ़ता ही गया।...पर डोक-कुटुंबने मेरी जो सेवा की, उसका वर्णन करनेसे पहले उनका थोड़ा-बहुत परिचय दे देना भी आवश्यक था। रात हो या दिन, कोई-न-कोई मेरे पास जरूर बैठा रहता था। जबतक मैं उनके घरमें रहा तबतक उनका मकान केवल एक धर्मशाला ही बन गया था। भारतीयोंमें फेरीवाले लोग भी थे। उनके कपड़े मजदूरोंके-जैसे और मैले भी रहते। उनके साथमें एक गठरी या टोकरी भी अवश्य रहती। जूतोंपर सेर भर धूल भी। मि० डोकके मकानपर ऐसे लोगोंसे लगाकर अध्यक्ष तकके सभी दरजेके लोगोंकी एक भीड़ लगी रहती। सब मेरा हाल पूछने और डाक्टरकी आज्ञा मिलनेपर मुझसे मिलनेके लिए चले आते। सभीको वे समान भावसे और सम्मान-पूर्वक अपने दीवानखानेमें बैठाते और जबतक मैं उनके यहां रहा, तबतक उनका सारा समय मेरी शुश्रूषामें और मुझसे मिलनेके लिए आनेवाले सैकड़ों सज्जनोंके आदर-सत्कार हीमें जाता। रातको भी दो-तीन बार मि० डोक चुपचाप मेरे कमरेमें आकर जरूर देख जाते। उनके घरपर मुझे एक दिन भी ऐसा खयाल नहीं हुआ कि यह मेरा घर नहीं, या मेरे संबंधी होते तो इससे अच्छी सेवा करते। पाठक यह भी खयाल न कर लें कि इतने जाहिरा तौरपर भारतीय आंदोलनका पक्ष ग्रहण करने तथा मुझे अपने घरमें स्थान देनेके कारण उन्हें कुछ सहना न पड़ा होगा। वे अपने पंथके गोरोंके लिए एक गिरजाघर चला रहे थे।

उनकी आजीविका इन पंथवालोंके हाथोंमें थी। सभी लोग तो उदार दिल-के होते नहीं हैं। उन लोगोंके दिलमें भी भारतीयोंके खिलाफ कुछ भाव थे ही। पर डोकने इसकी कोई परवा नहीं की। हमारे परिचय-के आरंभहीमें एक दिन मैंने इस नाजुक विषयपर चर्चा छेड़ी थी। उनका उत्तर यहां लिख देने योग्य है। उन्होंने कहा---

"मेरे प्यारे दोस्त, ईसाके धर्मको आपने क्या समझ रखा है? मैं उस पुरुषका अनुयायी हूँ जो अपने धर्मके लिए फांसी पर लटक गया और जिसका प्रेम विश्वव्यापी था। जिन गोरोंके मुझे छोड़ देनेका आपको डर है, उनकी आंखोंमें ईसाके अनुयायीकी हैसियतमें जरा भी मैं शोभा पाना चाहूँ तो मुझे जाहिरा तौरसे अवश्य ही इस युद्ध-में भाग लेना चाहिए और इसके फलस्वरूप यदि वे मेरा त्याग भी कर दें तो मुझे इसमें जरा भी बुरा न मानना चाहिए। इसमें शक नहीं कि मेरी आजीविकाका आधार उनपर है; पर आप यह कदापि न समझ बैठें कि आजीविकाके लिए मैंने उनसे यह संबंध किया है या ये ही मेरी रोजी देनेवाले हैं। मेरी रोजीका देनेवाला तो परमात्मा है। ये हैं केवल निमित्तमात्र। मेरा उनका सम्बन्ध होते समय हमारा उनका यह ठहराव हो चुका है कि मेरी धार्मिक स्वतन्त्रतामें कोई हस्तक्षेप न करेगा। इसलिए आप मेरी ओरसे निश्चिन्त रहें। मैं भारतीयों पर अहसान करनेके लिए इस युद्धमें सम्मिलित नहीं हो रहा हूँ। मैं तो इसे अपना धर्म समझ-कर ही इसमें भाग ले रहा हूँ। पर असल बात यह है कि मैंने हमारे गिरजाके डीनके साथ बातचीत करके भी इस बातका खुलासा कर लिया है। मैंने उन्हें यह स्पष्ट कह दिया है कि अगर मेरा भारतीयों-से सम्बन्ध रखना आपको पसन्द न हो तो आप खुशीसे मुझे रुखसत दे सकते हैं और दूसरा पादरी तलाश कर सकते हैं। पर उन्होंने इस विषयमें मुझे बिल्कुल निश्चिन्त कर दिया है, बल्कि और उत्साहित

किया है। आपको यह कदापि नहीं समझ लेना चाहिए कि सभी गोरे आपकी तरफ एकसी तिरस्कारकी नजरसे ही देखते हैं। आप नहीं जानते कि अप्रत्यक्ष रूपसे आपके विषयमें वे कितना सद्भाव रखते हैं। इसे तो मैं ही जान सकता हूं और आपको भी यह कुबूल करना होगा।"

इतनी स्पष्ट बातचीत होनेपर फिर मैंने इस नाजुक विषयपर कभी बातचीत नहीं छेड़ी। इसके कुछ साल बाद डोक रोडेशियामें अपने धर्मकी सेवा करते हुए स्वर्गवासी हो गये। तब हमारा युद्ध समाप्त नहीं हुआ था। उनकी मृत्युके समाचार प्राप्त होनेपर उनके पंथवालोंने अपने गिरजाघरमें एक सभा निमंत्रित की थी। उसमें काछलिया तथा अन्य भारतीयोंके साथ-साथ मुझे भी बुलाया गया था। मुझे वहां भाषण देना पड़ा था।

अच्छी तरह चलने-फिरने लायक होनेमें मुझे करीब दस-ग्यारह दिन लगे होंगे। ऐसी स्थिति होते ही मैंने इस प्रेमी कुटुंबसे विदा मांगी। वह वियोग हम दोनोंके लिए बड़ा दुःखदाई था। (द० अ० स०, १९२५)

: ७६ :

श्रीमती ताराबहन

मिस मेरी चेस्ले नामकी एक अंग्रेज बहन सन् १९३४में हिंदुस्तानमें थी। उन दिनों बंबईमें कांग्रेसका अधिवेशन हो रहा था। जहाजसे उतरते ही वह कांग्रेस-केम्पमें पहुंची और मेरे झोंपड़ेमें आकर उसने मुझसे कहा, "मैं मीरा बहनको जानती हूं और मीरा बहनके साथ ही मैं

यहां आनेवाली थी, पर किसी कारणवश उनके एकाध हफ्ते पहले ही मैं विलायतसे रवाना हो गई।" गांवोंमें रहकर भारतकी सेवा करनेकी उसकी इच्छा थी। उसकी बातचीतसे मैं कुछ खास प्रभावित नहीं हुआ और मुझे लगा कि वह हिंदुस्तानमें कुछ ज्यादा महीने ठहरनेकी नहीं। पर मेरी यह भूल थी। मिस मेरी बार को, जिन्होंने बेतूल (मध्यप्रदेश) से कुछ मील दूर खेड़ी गांवमें पहलेसे ही काम करना शुरू कर दिया था, वह बहुत जानती थी। मेरी बार मिस चेस्लेको अपने साथ वर्धा ले आईं और कुछ दिन हम सब वहां एक साथ रहे। मिस चेस्लेका निश्चय देखकर तो मैं चकित रह गया। मेरी बारके साथ उसने खेड़ीमें ग्राम-सेवाका कार्य आरंभ कर दिया। भारतीय पोशाक पहन ली और अपना नाम ताराबहन रख लिया। खेड़ीमें उसने इस कदर सख्त परिश्रम-से काम किया कि बेचारी मेरी बार तो देखकर हकबका गईं। वह मिट्टी खोदती और सिरपर टोकरी रखकर ढोती। अपना भोजन उसने इतना सादा बना लिया था कि उसका स्वास्थ्यतक खराब हो गया। कनाडासे काफी पैसा आता था, पर उसमेंसे वह सिर्फ दस रुपयेके लगभग ही अपने लिए रखती और बाकी सब ग्राम-उद्योग-संघको या हिंदुस्तानके उन भाई-बहनोंको दे देती थी, जिनके संपर्कमें वह आती थी और जो उसे मालूम होते थे कि आगे चलकर वे अच्छे ग्राम-सेवक बन सकते हैं और जिन्हें रुपये-पैसेकी कुछ जरूरत होती थी। मैंने उसे बहुत ही निकटसे देखा। उसकी उदरताकी कोई सीमा नहीं थी। मानव-प्रकृतिकी अच्छाईमें उसकी बहुत श्रद्धा थी। अपराधको वह भूल जाती थी। वह सच्ची ईसाई थी। क्वेकर संप्रदायकी, पर उसमें कोई संकीर्णता नहीं थी। दूसरोंको अपने धर्ममें मिलानेमें उसका विश्वास नहीं था। 'लंदन-स्कूल आव इकनामिक्स' की वह ग्रेजुएट थी और एक अच्छी शिक्षिका थी। लंदनमें कई सालतक उसने एक स्कूल चलाया था। उसने फौरन यह महसूस कर लिया कि हिंदी उसे जरूर सीख लेनी चाहिए और नियमित

रीतिसे वह हिंदीका अभ्यास करने लगी। बोलचालकी हिंदी सीखनेके लिए वह कुछ महीने वर्धाके महिला-आश्रममें आकर रही और वहीं उसने दो बहनोंके साथ गरमियोंमें बद्री-केदार जानेका विचार किया। मैंने उसे इस खतरनाक यात्रासे आगाह कर दिया था। लेकिन जब वह एक बार निश्चय कर लेती थी तो ऐसे-ऐसे साहसिक कामोंसे उसका मन फेरना मुश्किल होता था। बद्री-केदारकी भयानक यात्रा उसे करनी ही थी। अतः अपने मित्रोंके साथ उस दिन वह रवाना हो गई। १५ मई को कनखलसे मुझे यह संक्षिप्त तार मिला--"ताराबहनका शरीरांत हो गया।"

हिंदुस्तानके गांवोंके लिए उसके हृदयमें जो प्रेम था उसमें कोई उससे बाजी नहीं मार सकता था। हिंदुस्तानकी आजादीके लिए हममेंसे अच्छे-से-अच्छे लोगोंमें जितना उत्साह है, उससे कम ताराबहनमें नहीं था। दरजेकी छुटाई जहां भी देखती, अधीर हो जाती थी। गरीब स्त्रियों और बच्चोंसे वह इतनी आजादीके साथ मिलती थी कि देखते ही बनता था। सेवा करके वह किसीका उपकार कर रही है, यह भावना तो उसमें थी ही नहीं। किसीसे उसने अपनी सेवा नहीं कराई, किंतु कोई भी हो, उसकी सेवा वह अत्यंत उत्साहके साथ करती थी। उसने अपना अहंकार धो डाला था। ऐसी मूक सेविका थी वह कि उसके बाएं हाथ-को पता नहीं लगता था कि दाहिने हाथने क्या काम किया है। ईश्वर उसकी दिवंगत आत्माको चिरशांति दे। (ह० से०, २३.५.३६)

. . . .

प्रायः हर विलायती डाकमें मेरे पास स्व० ताराबहन (मेरी चेस्ली) के सगे-संबंधियों और मित्रोंके पत्र आते रहते हैं। इनमें उनके अनेक गुणोंका वर्णन रहता है। कई सज्जन उनके अनेक प्रकारके उपकारोंका वर्णन करते हैं, जो स्व० ताराबहनने उनपर किये। कुछ लिखते हैं कि उन्होंने हमें फलां-फलां सहायता देनेका वचन दिया था और कुछ ताराबहन द्वारा

छोड़े गये एक या अनेक विरासतनामोंका भी उल्लेख करते हैं। हालांकि महादेव देसाई इन सब पत्र भेजनेवालोंको अपने थोड़े समयमें जितना उनसे बन पड़ता है ब्योरेवार जानकारी देनेकी कोशिश करते हैं, फिर भी तमाम संबंधित लोगोंके लाभके लिए यह जाहिर कर देना जरूरी है कि अपनी शोचनीय मृत्युके कुछ ही समय पहले उन्होंने मेरे नामपर जो विरासतनामा लिख दिया था, वह कानूनदां मित्रोंकी रायमें भारतीय विरासतके कानूनके अनुसार वैध नहीं मालूम होता। पर अगर यह साबित भी हो जाय कि वह वैध है तो भी उनके सगे-संबंधियों और मित्रोंकी अनुमतिके बिना उनकी संपत्तिका उपयोग हिंदुस्तानी ग्रामोद्योगोंके लिए करनेकी मुझे जरा भी इच्छा नहीं है, यद्यपि यह काम इधर उन्हें अत्यंत प्रिय था और इसके लिए वे एक गुलामकी तरह काम करते-करते वीरोचित मृत्युकी गोदमें सदाके लिए सो गईं। इस बातकी बहुत ही कम संभावना है कि स्व० ताराबहनकी वह सब संपत्ति मेरे हाथ आ जायगी, जिसका कि वे अपने जीवनकालमें किसी प्रकारका विनियोग नहीं कर गई हैं; पर अगर ऐसा हुआ तो उसे हाथ लगानेसे पहले मैं उन तमाम वचनों या वादोंकी जांच करूंगा जो उन्होंने पश्चिममें किये और उन्हें पूरा करनेकी कोशिश भी करूंगा।

बैंकसे उनके नामपर आये हुए कई चेक मेरे पास पड़े हुए हैं जिनका भुगतान भी नहीं हुआ है। उनके परिवारके बहन-भाइयोंसे, जिनकी संख्या मैं देखता हूं, बहुत बड़ी है, मेरी यह सलाह है कि उनमें जो सबसे नजदीकी हों, राज्यसे इस संबंधका एक कानूनी अधिकार-पत्र लेकर वह मेरे पास भेजें ताकि मैं और कुमारी मेरी बार हमारे पास रखी हुई, ताराबहनकी चीजें उन्हें सौंप सकें। मेरे पास तो अनभुने चेक पड़े हुए हैं और मेरी बारके पास उनके कुछ छोटे-मोटे जेवर हैं। हिंदुस्तानमें आनेपर अपनी जरूरतें उन्होंने इतनी कम कर दी थीं कि शायद ही ऐसी कोई चीज बची हो, जिसकी कोई कीमत आ सके। अपने जीवन-कालमें

उन्हें जो कुछ मिला उन्होंने ग्राम-सेवाके लिए मुझे दे डाला। उस स्वर्गीय उपकारशीला देवीसे संबंध रखनेवाली बातोंके विषयमें मेरे पास तो इतनी ही जानकारी है। आशा है, यह उनके तमाम संबंधित लोगोंके लिए काफी होगी। (ह० से०, २६.९.३६)

: ७७ :

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक अब संसारमें नहीं हैं। यह विश्वास करना कठिन मालूम होता है कि वे संसारसे उठ गये। हम लोगोंके समयमें ऐसा दूसरा कोई नहीं जिसका जनता पर लोकमान्यके-जैसा प्रभाव हो। हजारों देशवासियोंकी उनपर जो भक्ति और श्रद्धा थी वह अपूर्व थी। यह अक्षरशः सत्य है कि वे जनताके आराध्यदेव थे, प्रतिमा थे, उनके वचन हजारों आदमियोंके लिए नियम और कानून-से थे। पुरुषोंमें पुरुष-सिंह संसारसे उठ गया। केशरीकी घोर गर्जना विलीन हो गई।

देशवासियोंपर उनका इतना प्रभाव होनेका क्या कारण था? मैं समझता हूं, इस प्रश्नका उत्तर बड़ा ही सहज है। उनकी स्वदेशभक्ति ही उनकी इंद्रियवृत्ति थी। वे स्वदेशप्रेमके सिवा दूसरा धर्म नहीं जानते थे।

जन्मसे ही वे प्रजासत्तावादी थे। बहुमतकी आज्ञापर इतना अधिक विश्वास करते थे कि मुझे उससे भयभीत होना पड़ता था। पर यही वह बात है जिससे जनता पर उनका इतना अधिक प्रभाव था। स्वदेशके लिए वे जिस इच्छा-शक्तिसे काम लेते थे वह बड़ी ही प्रबल थी। उनका

जीवन वह ग्रंथ है जिसे खोलनेकी भी जरूरत नहीं, वह खुला हुआ ग्रंथ है। उनका खाना-पीना और पहनावा बिल्कुल साधारण था। उनका व्यक्तिगत जीवन बड़ा ही निर्मल और बेदाग है। उन्होंने अपनी आश्चर्य-जनक बुद्धि-शक्तिको स्वदेशको अर्पण कर दिया था। जितनी स्थिरता और दृढ़ताके साथ लोकमान्यने स्वराज्यकी शुभवार्ताका उपदेश किया उतना और किसीने नहीं किया। इसी कारण स्वदेशवासी उनपर अटूट विश्वास रखते थे। साहसने कभी उनका साथ नहीं छोड़ा। उनकी आशावादिता अदम्य थी। उनको आशा थी कि जीवनकालमें मैं ही संपूर्ण रूपसे स्वराज्य स्थापित हुआ देख सकूंगा। यदि वे इसे नहीं देख सके तो उनका दोष नहीं है। उन्होंने निस्संदेह स्वराज्य-प्राप्तिकी अवधि बहुत कम कर दी है। यह अब हम लोगोंके लिए है, जो अभीतक जी रहे हैं, कि अपने द्विगुणित उद्योगसे उसको जहांतक हो शीघ्र सत्य कर दिखावें।

मैं अंग्रेजोंको ऐसी धारणा बनानेसे मना करता हूं कि लोकमान्य अंग्रेजोंके शत्रु थे। या अधिकारी वर्ग या अंग्रेजी राज्यसे घृणा करते थे।

कलकत्ता-कांग्रेसके समय हिंदीके राष्ट्रभाषा होनेके संबंधमें उन्होंने जो कहा था, उसे सुननेका अवसर मुझे भी प्राप्त हुआ था। वे कांग्रेस पंडालसे तुरंत ही लौटे थे। हिंदीके संबंधमें उन्होंने अपने शांत भाषणमें जो कहा उससे बड़ी तृप्ति हुई। भाषणमें आपने देशी भाषाओंपर खयाल रखनेके कारण अंग्रेजोंकी बड़ी प्रशंसा की थी। विलायत जानेपर, यद्यपि उन्हें अंग्रेज जूररोंके विषयमें बुरा ही अनुभव हुआ तथापि उनका ब्रिटिश प्रजासत्तामें बड़ा ही दृढ़ विश्वास हो गया। उन्होंने यहां तक कहा था कि पंजाबके अत्याचारोंका चित्र 'सिनेमेटोग्राफ' यंत्र द्वारा ब्रिटिश प्रजासत्तावादियोंको दिखाना चाहिए। मैंने यहां इस बातका उल्लेख इसलिए नहीं किया कि मैं भी ब्रिटिश प्रजासत्तापर विश्वास रखता हूं

(जो कि मैं नहीं रखता); पर यह दिखानेके लिए कि वे अंग्रेज-जातिके प्रति घृणाका भाव नहीं रखते थे। पर वे भारत और साम्राज्यकी अवस्थाको इस पिछड़ी अवस्थामें न तो रखना ही चाहते थे और न रख सकते थे।

वे चाहते थे कि शीघ्र ही भारतसे समानताका भाव रक्खा जाय और इसे वे देशका जन्मसिद्ध अधिकार समझते थे। भारतकी स्वतंत्रताके लिए उन्होंने जो लड़ाई की उसमें सरकारको छोड़ नहीं दिया। स्वतंत्रताके इस युद्धमें उन्होंने न तो किसीकी मुरव्वतकी और न किसीकी प्रतीक्षा ही की। मुझे आशा है, अंग्रेज लोग उस महापुरुषको पहचानेंगे जिनकी भारत पूजा करता था।

भारतकी भावी संततिके हृदयमें भी यही भाव बना रहेगा कि लोकमान्य नवीन भारतके बनानेवाले थे। वे तिलक महाराजका स्मरण यह कहकर करेंगे कि एक पुरुष था जो हमारे लिए ही जन्मा और हमारे लिए ही मरा। ऐसे महापुरुषको मरता कहना ईश्वरकी निंदा करना है। उनका स्थायी तत्व सदाके लिए हम लोगोंमें व्याप्त हो गया। आओ, हम भारतके एकमात्र लोकमान्यका अविनाशी स्मारक अपने जीवनमें उनके साहस, उनकी सरलता, उनके आश्चर्य-जनक उद्योग और उनकी स्वदेश-भक्तिको सीखकर बनावें। ईश्वर उनकी आत्माको शांति प्रदान करे। (यं० इं०, ४-८-२०)

. . . .

लोकमान्य तो एक ही थे। लोगोंने तिलक महाराजको जो पदवी, जो उच्च स्थान दिया था वह राजाओंके दिये खिताबोंसे लाख गुना कीमती था। देशने आज यह बात सिद्ध कर दिखाई है। यह कहें तो अत्युक्ति नहीं होगी कि सारी बंबई लोकमान्यको पहुंचानेके लिए उलट पड़ी थी।

उनके आखिरी दिनोंमें जो दृश्य मैंने अपनी आंखोंसे देखा वह कभी भुलाया नहीं जा सकता। लोगोंके उस अगाध प्रेमका वर्णन करना असंभव है।

फ्रांसमें कहावत है कि 'राजा मर गये, राजा चिरंजीव रहें।' यह विचार इंगलैंड आदि सारे देशोंमें प्रचलित है और जब राजाकी मृत्यु होती है तब यह कहावत कही जाती है। उसका भावार्थ यह है कि राजा तो मरता ही नहीं। राजतंत्र एक मिनिट भी बंद नहीं रहता।

उसी प्रकार तिलक महाराज भी मर नहीं सकते, न मरे ही। बंबईकी जनताने यह दिखला दिया कि वे जीते हैं और बहुत समय तक जीयेंगे। उनके सगे-संबंधियोंको भले ही दुःख हुआ हो, उन्होंने भले ही आंखोंसे मोती टपकाए हों, परंतु दूसरे लोग तो उत्सव मनानेके लिए आये थे। बाजे और भजन लोगोंको चेतावनी दे रहे थे कि लोकमान्य मरे नहीं हैं। 'लोकमान्य तिलक महाराजकी जय' ध्वनिसे आकाश गूंज उठता था। उस समय लोग इस बातको भूल गए थे कि हम तो तिलक महाराजके देहके दाहकर्मके लिए आये हैं।

शनिवारकी रातको जब मैंने उनके स्वर्गवासकी खबर सुनी तब मेरा चित्त व्याकुल हो रहा था, पर जयघोष सुनकर मेरी बेचैनी जाती रही। मेरी भी यही धारणा हुई कि तिलक महाराज जीवित हैं। उनका क्षण-भंगुर देह छूट गया है, पर उनकी अमर आत्मा तो लाखों लोगोंके हृदयमें विराजमान है।

इस जमानेमें किसी भी लोकनायकको ऐसी मृत्युका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। दादाभाई गये, फिरोजशाह गये, गोखले भी चले गये। सबके साथ हजारों लोग श्मशान तक गये थे; पर तिलक महाराजने तो हद कर दी। उनके पीछे तो सारी दुनिया गई। रविवारको बंबई बावली हो गई थी।

यह कैसा चमत्कार! संसारमें चमत्कार नामकी कोई वस्तु ही नहीं। अथवा यों कहें कि जगत स्वयं ही एक चमत्कृति है। बिना कारणके कोई काम नहीं होता। इस सिद्धांतमें कोई अपवाद नहीं हो सकता। लोकमान्यका हिंदुस्तानपर असीम प्रेम था। इसी कारण लोक-

प्रेमकी भी मर्यादा नहीं रह गई थी। स्वराज्यके मंत्रका जितना जप उन्होंने किया है उतना दूसरा किसीने नहीं किया। जिस समय दूसरे लोग यह मानते थे कि हां, अब भारत स्वराज्यके योग्य होगा, उस समय लोकमान्य सच्चे दिलसे मानते थे कि भारत आज ही तैयार है। लोकमान्यकी इस धारणाने लोगोंके मनको हर लिया था। ऐसा मानकर वे बैठे नहीं रहे; बल्कि जिंदगीभर उसके अनुसार काम किया। उससे जनतामें नवीन चैतन्य नया जोश पैदा हुआ। उन्होंने स्वराज्य प्राप्त करनेकी अपनी अधीरताका स्वाद लोगोंको चखाया और ज्यों-ज्यों जनता को उसका स्वाद मालूम होने लगा त्यों-त्यों वह उनकी तरफ खिचती गई।

उनपर अनेक तरहकी आफतें आईं, तरह-तरहके कष्ट उन्हें सहने पड़े, तो भी उन्होंने उस मंत्रका अनुष्ठान नहीं छोड़ा। इस तरह वे कठिन परीक्षाओंमें भी पास हुए। इससे जनताने उन्हें अपने हृदयका सम्राट बनाया और उनका वचन उसके लिए कानूनकी तरह मान्य हो गया।

देहके नष्ट होजानेसे ऐसा महान जीवन नष्ट नहीं होता, बल्कि देह-पातके बाद से तो वह शुरू होता है।

जिसे हम पूजनीय मानते हैं उसकी सच्ची पूजा तो उसके सद्गुणोंका अनुकरण करना ही है। लोकमान्य अत्यंत सादगीके साथ रहते थे। उनके स्मरणके लिए हमें भी अपना जीवन सादा बनाना चाहिए। हमें उस सीमातक वस्तुओंका त्याग करना चाहिए जिस तकके लिए हमारा मन गवाही देता हो। अपने निश्चित कार्यको करनेसे कभी पीछे नहीं हटना चाहिए। वे विचारशील थे। हमें भी विचार करके ही बोलना और काम करना चाहिए। वे विद्वान् थे, अपनी मातृभाषा और संस्कृतिपर उनका खूब प्रभुत्व था। हमें भी उनकी तरह विद्वान् होनेका निश्चय करना चाहिए। व्यवहारमें विदेशी भाषाका त्याग करके मातृ-भाषाका काफी ज्ञान प्राप्त करना और उसीके द्वारा अपने विचारोंको

प्रकट करनेका अभ्यास करना चाहिए। हमें संस्कृत भाषाका अध्ययन करके अपने धर्म-शास्त्रोंमें छिपे धर्म-रहस्योंको प्रकट करना चाहिए। वे स्वदेशीके प्रेमी थे। हमें भी स्वदेशीका अर्थ समझकर उसका व्यवहार करना चाहिए। उनके हृदयमें अपने देशके प्रति अथाह प्रेम था। हम भी अपने हृदयमें ऐसा प्रेम उदय करें और दिन-प्रतिदिन देश-सेवामें अधिकाधिक तत्पर हों। इसी रीतिसे उनकी पूजा हो सकती है। जिससे इतना न हो सके वे उनकी यादगारके लिए जितना हो सके धन दें और वह स्वराज्यके कार्यमें खर्च किया जाय।

लोकमान्य वर्त्तमान राज्य-मंडलके कट्टर शत्रु थे। पर इससे यह न समझना चाहिए कि वे अंग्रेजोंसे द्वेष करते थे। जो लोग ऐसा समझते हैं वे भूल करते हैं। उन्हींके श्रीमुखसे मैंने कई बार अंग्रेजोंकी प्रशंसा सुनी है। वे अंग्रेजी-राज्यके संबंधको भी अनिष्ट नहीं मानते थे। वे तो सिर्फ अपने को अंग्रेजोंके बराबर मनवाना चाहते थे। किसीका भी गुलाम बनकर रहना उन्हें पसंद न था।

ऐसे प्रौढ़ देशभक्तके स्वर्गवासका उत्सव हम मना रहे हैं। ऐसे पुरुषका देह चाहे रहे या न रहे, पर देशकी सेवा तो किया ही करता है; देशको आगे बढ़ाया ही करता है। जिसने अपने कार्यकी रूपरेखा बना रखी हो, जिसने उसके अनुसार ४५ वर्षोंतक काम किया हो, जिसने अपनी देहको देशसेवाके ही अर्पण कर दिया हो, उसके देहका नाश भले ही हो जाय, उसकी स्मृति कभी नष्ट नहीं होती, उसकी मृत्यु कभी नहीं होती। अतएव लोकमान्य तिलक मर कर भी हमें जीवनका मंत्र सिखा गये हैं। (हिं० न०, ६-८-२२)

... ...

पहले मैं लोकमान्यसे मिला। उन्होंने कहा—'सब दलोंकी सहायता प्राप्त करनेका आपका विचार बिल्कुल ठीक है। आपके प्रश्नके संबंधमें मत-भेद हो नहीं सकता; परंतु आपके कामके लिए किसी तटस्थ

सभापतिकी आवश्यकता है। आप प्रोफेसर भांडारकरसे मिलिये। यों तो वह आजकल किसी हलचलमें पड़ते नहीं हैं; पर शायद इस कामके लिए 'हां' कर लें। उनसे मिलकर नतीजेकी खबर मुझे कीजिएगा। मैं आपको पूरी-पूरी सहायता देना चाहता हूं। आप प्रोफेसर गोखलेसे भी अवश्य मिलिएगा। मुझसे जब कभी मिलनेकी इच्छा हो जरूर आइयेगा।"

लोकमान्यके यह मुझे पहले दर्शन थे। उनकी लोक-प्रियताका कारण मैं तुरंत समझ गया। (आ० क०, १९२७)

... ...

वह मुझे रिपन कालेज ले गया। वहां बहुतेरे प्रतिनिधि ठहरे हुए थे। सौभाग्यसे जिस विभागमें मैं ठहरा था, वहीं लोकमान्य भी ठहराये गए थे। मुझे ऐसा स्मरण है कि वह एक दिन बाद आये थे। जहां लोकमान्य होते, वहां एक छोटा-सा दरबार लगा ही रहता था। यदि मैं चितेरा होऊं तो जिस चारपाईपर वह बैठते थे उसका चित्र खींचकर दिखा दूं, उस स्थानका और उनकी बैठकका इतना स्पष्ट स्मरण मुझे है। उनसे मिलने आनेवाले असंख्य लोगोंमें एकका नाम मुझे याद है—'अमृत-बाजार पत्रिका' के स्व० मोतीबाबू। इन दोनोंका कहकहा लगाना और राजकर्त्ताओंके अन्याय-संबंधी उनकी बातें कभी भुलाई नहीं जा सकतीं।

... ...

इस विशेष[1] अधिवेशनके अवसरपर मुझे लोकमान्यकी अनुपस्थिति बहुत ज्यादा खटकी थी। आज भी मेरा यह मत है कि अगर वह जिंदा रहते तो अवश्य ही कलकत्तेके प्रसंगका स्वागत करते। लेकिन अगर वह नहीं होता और वह उसका विरोध करते तो भी वह मुझे अच्छा लगता

[1] कलकत्ता-अधिवेशन, १९२०

और मैं उससे बहुत-कुछ शिक्षा ग्रहण करता। मेरा उनके साथ हमेशा मत-भेद रहा करता, लेकिन यह मत-भेद मधुर होता था। उन्होंने मुझे सदा यह मानने दिया था कि हमारे बीच निकटका संबंध है। ये पंक्तियां लिखते हुए उनके अवसान का चित्र मेरी आंखोंके सामने घूम रहा है। आधी रातके समय मेरे साथी पटवर्धनने टेलीफोन द्वारा मुझे उनकी मृत्युकी खबर दी थी। उसी समय मैंने अपने साथियोंसे कहा था—"मेरी बड़ी ढाल मुझसे छिन गई।" इस समय असहयोगका आंदोलन पूरे जोर पर था। मुझे उनसे आश्वासन और प्रेरणा पानेकी आशा थी। आखिर जब असहयोग पूरी तरह मूर्तिमान हुआ था तब उनका क्या रुख होता सो तो दैव ही जाने; लेकिन इतना मुझे मालूम है कि देशके इतिहासकी इस नाजुक घड़ीमें उनका न होना सबको खटकता था। (आ० क०, १९२७)

... ...

आपका यही सवाल है न कि लोग "शठं प्रति शाठ्यम्" को तिलक महाराजका सिद्धांत मानते हैं और हमें उनके जीवनमें इस सिद्धांतकी प्रतीति कहां तक होती है? हम इस प्रश्नमेंसे बहुत अधिक सार ग्रहण नहीं कर सकते। हां, इस बारेमें तिलक महाराजके साथ मेरा कुछ दिनों तक पत्र-व्यवहार हुआ था। उनके जीवनके नम्र विद्यार्थी और गुणोंके एक पुजारीके नाते मैं कह सकता हूं कि तिलक महाराजमें विनोदकी शक्ति थी। विनोदके लिए अंग्रेजीमें 'ह्यूमर' शब्द है। अबतक हम इस अर्थमें विनोदका उपयोग नहीं करने लगे हैं। इसीसे अंग्रेजी शब्द देकर अर्थ समझाना पड़ता है। अगर लोकमान्यमें यह विनोद-शक्ति न होती तो वह पागल हो जाते—राष्ट्रका इतना बोझ वह उठाते थे। लेकिन अपनी विनोद-प्रियताके कारण वह स्वयं अपनी रक्षा तो कर ही लेते थे, दूसरोंको भी विषम स्थितिमेंसे बचा लेते थे। दूसरे, मैंने यह देखा है कि वाद-विवाद करते समय वह कभी-कभी जान-बूझकर अतिशयोक्तिसे भी काम ले-लेते थे। प्रस्तुत प्रश्नके संबंधमें मेरा उनका जो पत्र-व्यवहार हुआ था, वह मुझे ठीक-ठीक याद नहीं, आप

उसे देख लें। "शठं प्रति शाठ्यम्" तिलक महाराजका जीवन-मंत्र नहीं था। अगर ऐसा होता तो वह इतनी लोकप्रियता प्राप्त न कर सकते। मेरी जानमें संसार-भरमें ऐसा एक भी उदाहरण नहीं है, जिसमें किसी मनुष्यने इस सिद्धांतपर अपना जीवन-निर्माण किया हो और फिर भी वह लोकमान्य बन सका हो। यह सच है कि इस बारेमें जितना गहरा मैं पैठता हूं, वह नहीं पैठते थे। हम शठके प्रति शाठ्यका कदापि उपयोग कर ही नहीं सकते। 'गीता-रहस्य'में एक-दो स्थानोंमें, सिर्फ एक-ही दो स्थानोंमें, इस बातका थोड़ा समर्थन जरूर मिलता है। लोकमान्य मानते थे कि राष्ट्रहितके लिए अगर कभी शाठ्यसे, दूसरे शब्दोंमें 'जैसे को तैसा' सिद्धांतसे, काम लेना पड़े तो ले सकते हैं। साथ ही वह यह भी मानते तो थे ही कि शठके सामने भी सत्यका प्रयोग करना अच्छा है, यही सत्य सिद्धांत है। मगर इस संबंधमें वह कहा करते थे कि साधु लोग ही इस सिद्धांतपर अमल कर सकते हैं। तिलक महाराजकी व्याख्याके मुताबिक साधु लोगोंसे अर्थ बैरागियोंका नहीं, बल्कि उन लोगोंसे होता है जो दुनियासे अलिप्त रहते हैं, दुनियादारी-के कामोंमें भाग नहीं लेते। इससे यह अर्थ नहीं निकलता कि अगर कोई दुनियामें रहकर इस सिद्धांतका पालन करे तो अनुचित होगा—हां, वह न कर सके यह दूसरी बात है—वह मानते थे कि शाठ्यका उपयोग करनेका उसे अधिकार है।

लेकिन ऐसे महान् पुरुषके जीवनका मूल्य ठहरानेका हमें कोई अधिकार हो तो हम विवादास्पद बातोंसे उसका मूल्य न ठहरावें। लोकमान्यका जीवन भारतके लिए, समस्त विश्वके लिए, एक बहुमूल्य विरासत है। उसकी पूरी कीमत तो भविष्यमें निश्चित होगी। इतिहास ही उसकी कीमतका अनुमान लगावेगा, वही लगा सकता है। जीवित मनुष्यका ठीक-ठीक मूल्य, उसका सच्चा महत्व, उसके समकालीन कभी ठहरा ही नहीं सकते। उनसे कुछ-न-कुछ पक्षपात तो हो ही जाता है, क्योंकि रागद्वेष-पूर्ण लोग ही इस कामके कर्ता भी होते हैं। सच पूछा जाय तो इतिहासकार भी राग-

द्वेष-रहित नहीं पाये जाते। गिबन प्रामाणिक इतिहासकार माना जाता है, मगर मैं तो उसकी पुस्तकके पृष्ठ-पृष्ठमें पक्षपात अनुभव कर सकता हूं। मनुष्य-विशेष या संस्था-विशेषके प्रति राग अथवा द्वेषसे प्रेरित होकर उसने बहुतेरी बातें लिखी होंगी। समकालीन व्यक्तिमें विशेष पक्षपात होनेकी संभावना रहती है। लोकमान्यके महान् जीवनका उपयोग तो यह है कि हम उनके जीवनके शाश्वत सिद्धांतोंका सदा स्मरण और अनुकरण करें।

तिलक महाराजका देशप्रेम अटल था। साथ ही उनमें तीक्ष्ण न्याय-वृत्ति भी थी। इस गुणका परिचय मुझे अनायास मिला था। १९१७ की कलकत्ता-महासभाके दिनोंमें, हिंदी साहित्य सम्मेलनकी सभामें, भी वह आये थे। महासभाके कामसे उन्हें फुर्सत तो कैसे हो सकती थी? फिर भी वह आये और भाषण करके चले गये। मैंने वहीं देखा कि राष्ट्रभाषा हिंदीके प्रति उनमें कितना प्रेम था। मगर इससे भी बढ़ कर जो बात मैंने उनमें देखी, वह थी अंग्रेजोंके प्रतिकी उनकी न्याय-वृत्ति। उन्होंने अपना भाषण ही यों शुरू किया था—"मैं अंग्रेजी शासनकी खूब निंदा करता हूं, फिर भी अंग्रेज विद्वानोंने हमारी भाषाकी जो सेवा की है, उसे हम भुला नहीं सकते"। उनका आधा भाषण इन्हीं बातोंसे भरा था। आखिर उन्होंने कहा था कि अगर हमें राष्ट्रभाषाके क्षेत्रको जीतना और उसकी वृद्धि करना हो तो हमें भी अंग्रेज विद्वानोंकी भांति ही परिश्रम और अभ्यास करना चाहिए। अपनी लिपिकी रक्षा और व्याकरणकी व्यवस्था-के लिए हम एक बड़ी हद तक अंग्रेज विद्वानोंके आभारी हैं। जो पादरी आरंभमें आये थे, उनमें पर-भाषाके लिए प्रेम था। गुजरातीमें टेलर-कृत व्याकरण कोई साधारण वस्तु नहीं है। लोकमान्यने इस बातका विचार भी नहीं किया कि अंग्रेजोंकी स्तुति करनेसे मेरी लोकप्रियता घटेगी। लोगोंका तो यही विश्वास था कि वह अंग्रेजोंकी निंदा ही कर सकते हैं।

तिलक महाराजमें जो त्याग-वृत्ति थी, उसका सौवां या हजारवां भाग भी हम अपनेमें नहीं बता सकते। और उनकी सादगी? उनके कमरेमें

न तो किसी तरहका फर्नीचर होता था, न कोई खास सजावट। अपरिचित आदमी तो खयाल भी नहीं कर सकता था कि वह किसी महान् पुरुषका निवास-स्थान है। रगरगमें भिदी हुई उनकी इस सादगीका हम अनुकरण करें तो कैसा हो? उनका धैर्य तो अद्भुत था ही। अपने कर्तव्यमें वह सदा अटल रहते और उसे कभी भूलते ही न थे। धर्मपत्नीकी मृत्युका संवाद पानेपर भी उनकी कलम चलती ही रही।.... क्या हम तिलक महाराजके जीवनका एक भी ऐसा क्षण बतला सकते हैं जो भोग-विलासमें बीता हो? उनमें जबर्दस्त सहिष्णुता थी। यानी वह चाहे जैसे उद्दंड-से-उद्दंड आदमीसे भी काम करवा लेते थे। लोकनायकमें यह शक्ति होनी चाहिए। इससे कोई हानि नहीं होती। अगर हम संकुचित हृदय बन जायं और सोच लें कि फलां आदमीसे काम लेंगे ही नहीं, तो या तो हमें जंगलमें जाकर बस जाना चाहिए, या घर बैठे-बैठे गृहस्थका जीवन बिताना चाहिए। इसमें शर्त यही है कि स्वयं अलिप्त रह सकें।

मुंहसे तिलक महाराजका बखान करके ही हम चुप न हो बैठें। काम, काम और काम ही हमारा जीवन-सूत्र होना चाहिए। जब कि हम स्वराज्य-यज्ञको चालू रखना चाहते हैं, हमें चाहिए कि हम निकम्मे साहित्यका पढ़ना बंद कर दें, निरर्थक बातें करना छोड़ दें और अपने जीवन-का एक-एक क्षण स्वराज्यके काममें बिताने लगें। आप पूछेंगे कि क्या पढ़ाई छोड़कर यह काम करें? १९२१ में भी विद्यार्थियोंके साथ मेरा यही झगड़ा था कि तिलक महाराजने क्या किया था? उन्होंने जो बड़े-बड़े ग्रंथ लिखे, वे बाहर रहकर नहीं, जेलमें रहकर लिखे थे। 'गीता रहस्य' और 'आर्क्टिक होम' वह जेलमें ही लिख सके थे। बड़े-बड़े मौलिक ग्रंथ लिखनेकी शक्ति होते हुए भी उन्होंने देशके लिए उसका बलिदान किया था। उन्होंने सोचा, "घरके चारों ओर आग भभक उठी है। इसे जितनी बुझा सकूं, उतनी तो बुझाऊं।" उन्होंने अगर हजार घड़े पानीसे वह बुझाई

हो, तो हम एक ही घड़ा डालें, मगर डालें तो सही । पढ़ाई आदि आवश्यक होते हुए भी गौण बातें हैं । अगर स्वराज्यके लिए इनका उपयोग होता हो तो करना चाहिए, अन्यथा इन्हें तिलांजलि देनी चाहिए । इसमें न हमारा नुकसान है और न संसारका ।

तिलक महाराज अपने जीवन द्वारा इसका प्रत्यक्ष उदाहरण छोड़ गये हैं । जिनके जीवनमेंसे इतनी सारी बातें ग्रहण करने योग्य हों, जिनकी विरासत इतनी जबर्दस्त हो, उनके संबंधमें उक्त प्रश्नके लिए गुंजाइश ही नहीं रहती है । हमारा धर्म तो गुणग्राही बननेका है ।

आज हमें जो काम करना है, वह मुर्दार आदमियोंके करनेसे तो हो नहीं सकता । स्वराज्यका काम कठिन है । भारतमें आज एक लहर बह रही है । उसमें खिंचकर हम भाषण करते हैं, धींगाधींगी मचाते हैं, तूफान खड़े करते हैं, मनमाने तौरपर संस्थाओंमें घुस जाते हैं और फिर उन्हें नष्ट करते एवं धारासभाओंमें जाकर भाषण करते हैं । तिलक महाराजके जीवनमें ये बातें हमारे देखनेमें भी नहीं आतीं । उनके जीवनके जो गुण अनुकरणीय हैं, सो तो मैं ऊपर कह ही चुका हूं ।[1]

. . . .

आप लोगोंने तिलक महाराजकी प्रसिद्ध पुस्तक 'गीता-रहस्य' का नाम सुना होगा । उसमें इतना ज्ञान भरा है कि उसके अनेक पारायण करने चाहिए । मैंने वह यरवदा जेलमें पढ़ी थी । यह बात सही है कि मैं उनकी सभी बातोंसे सहमत नहीं हूं, पर इसमें कोई संदेह नहीं कि तिलक महाराज बहुत बड़े विद्वान थे और उन्होंने संस्कृत साहित्यका बहुत गहरा अध्ययन किया था । उनकी वह गीता पढ़े मुझे बहुत समय हो गया, इसलिए उनके ठीक शब्द मुझे याद नहीं हैं; पर उनके लिखनेका भावार्थ मैं बताऊंगा । वह बात मुझे बहुत ठीक लगती है ।

---

[1]लोकमान्यकी पुण्य तिथिपर गुजरात विद्यापीठमें दिया गया भाषण ।

उन्होंने एक जगह कहा है कि अंग्रेजी भाषामें अंतरात्माके लिए 'कान्शंस' शब्द अच्छा है; पर जब यह कहा जाता है कि हम अपने 'कान्शंस'के मुताबिक चलते हैं तब इसका सही अर्थ यह नहीं होता कि हम अंतरात्माके कहनेपर चलते हैं। हमारे वैदिक धर्मके मुताबिक 'कान्शंस' सभीमें (जड़-चेतनमें) होता है। पर बहुतोंका 'कान्शंस' सोया हुआ रहता है, अर्थात् उनकी अंतरात्मा मूढ़ अवस्थामें होती है। तो उस अवस्थामें उसे 'कान्शंस' कैसे कहा जाय? हमारे धर्मके अनुसार मनुष्यकी अंतरात्मा तब जाग्रत होती है जब यम-नियमादिका पालन और दूसरी भी बहुत-सी चेष्टा आदि करें। तिलक महाराजकी इस बातको मैंने पचा लिया है। शास्त्रकी जो चीज हम पचा सकें वही सार्थक है। जैसे वही आहार हमारे लिए सार्थक बनता है जिसका हम रक्त बनाएं। तो तिलक महाराजकी इस बातको मैंने पचा लिया है, जिसके जरिये कौन-सी आवाज अंतरात्माकी है और कौन-सी नहीं, उसकी परख मैं कर लेता हूं। (प्रा. प्र., १.६.४७)

: ७८ :

अब्बास तैयबजी

सबसे पहले सन् १९१५ में मैं अब्बास तैयबजीसे मिला था। जहां कहीं मैं गया, तैयबजी-परिवारका कोई-न-कोई स्त्री-पुरुष मुझसे आकर जरूर मिला। ऐसा मालूम पड़ता है, मानो इस महान और चारों तरफ फैले हुए परिवारने यह नियम ही बना लिया था। हमारे बीच इस अटूट संबंधका खास कारण क्या था, यह सिवा इसके मुझे और कुछ मालूम नहीं कि जिस सुप्रतिष्ठित न्यायाधीशके कारण यह वंश प्रसिद्ध है उससे सन् १८९० में मेरी मित्रता हो गई थी, जब कि मैं दक्षिण अफ्रीकासे हिंदुस्तान

वापस आया था और बिल्कुल अनजान व्यक्ति था। कुछ लोगोंके विचार॰ में तो मैं संभवतः एक दुःसाहसी आदमी था, लेकिन बदरुद्दीन तैयबजी और कुछ अन्य व्यक्ति ऐसे भी थे जिनका यह खयाल नहीं था।

मगर मुझे तो बड़ौदाके अब्बास मियांके विषयपर ही आना चाहिए। जब हम एक-दूसरेसे मिलते और मैं उनके मुंहकी ओर देखता तो मुझे स्व॰ जस्टिस बदरुद्दीन तैयबजीका स्मरण हो आता था। हमारी उस मुलाकातसे हमारे बीच जन्मभरके लिए मित्रताकी गांठ बंध गई। मैंने उन्हें हरिजनोंका मित्र ही नहीं; बल्कि उन्हींमें का एक पाया। बहुत दिन पहले गोधरामें, शामको हरिजनोंकी बस्तीमें होनेवाले एक अस्पृश्यता-विरोधी सम्मेलनमें जब मैंने उन्हें बुलाया तो दर्शकोंको बड़ा आश्चर्य हुआ; लेकिन अब्बास मियांने हरिजनोंके काममें उसी उत्साहसे भाग लिया, जैसे कोई कट्टर हिंदू ले सकता है। इतनेपर भी वह कोई साधारण मुसलमान नहीं थे। इस्लामके लिए उन्होंने मुक्तहस्तसे दान दिया और कई मुस्लिम संस्थाओंको वह सहायता देते रहते थे। मगर हरिजनोंको मुसलमान बनाने जैसा कोई विचार उनके मनमें नहीं था। उनके इस्लाममें भूमंडलके तमाम महान् धर्मोंके लिए गुंजाइश थी। इसीलिए अस्पृश्यता-विरोधी-आंदोलन-में वह हिंदुओंकी ही तरह उत्साह-पूर्वक भाग लेते थे, और मैं जानता हूं कि जबतक वह जिंदा रहे तब तक उनका यह उत्साह बराबर वैसा ही बना रहा।

असल बात यह है कि उन्होंने आधे मन से कभी कोई काम नहीं किया। अब्बास तैयबजी अपने मनमें कोई बात छिपाकर नहीं रखते थे। पंजाब-की पुकारका उन्होंने तत्क्षण जवाब दिया। उनकी आयुके और ऐसे व्यक्तिके लिए, जिसने जीवनमें कभी कोई मुसीबत नहीं झेली, जेलोंकी सख्तियां बर्दाश्त करना कोई मजाक नहीं था। लेकिन उनकी श्रद्धाने हरएक कठिनाईको विजय कर लिया। हँसते-हँसाते खेड़ाके किसानोंकी तरह ही सादा जीवन व्यतीत करते, उन्हींका-सा खाना खाते और सब

मौसमोंमें उन्हींकी रद्दी-सद्दी गाड़ियोंमें सफर करनेकी क्षमतासे अनेक भीजवनोंको उनके सामने शर्मिन्दा होना पड़ा। ऐसी असुविधाओंके बारेमें, जिन्हें कि बचाया जा सकता हो, मैंने उनको कभी शिकायत करते हुए नहीं सुना। 'क्यों?' का प्रश्न करना उनका काम नहीं था, वह तो काम करने और अपनेको झोंक देनेकी बात जानते थे। हालांकि एक समय चीफ जज-की हैसियतसे उन्हें किसीको मृत्यु-दण्ड देने और अपनी आज्ञा-पालन करानेकी सत्ता प्राप्त थी, फिर भी बिना किसी उज्रके अनुशासन पालन करनेकी आश्चर्यजनक क्षमता उन्होंने प्रदर्शित की। वह मनुष्य-जातिके विरले सेवकोंमेंसे थे। भारत-सेवक भी वह इसीलिए थे कि वह मनुष्य-जातिके सेवक थे। ईश्वरको वह दरिद्रनारायणके रूपमें मानते थे। उनका विश्वास था कि परमेश्वर दीन-दुखियोंके बीच ही रहता है। अब्बास मियांका शरीर यद्यपि इस समय कब्रमें विश्राम कर रहा है, पर वह मरे नहीं हैं। उनका जीवन हम सबके लिए एक स्फूर्ति है, एक प्रेरणा है। (ह० से०, २०-८-३६)

: ७६ :

बदरुद्दीन तैयबजी

मैं श्री मोतीलाल नेहरू, सी० आर० दास, मनमोहन घोष, बदरुद्दीन तैयबजी इत्यादिकी याद आपको दिला दूंगा जिन्होंने अपनी कानूनी लियाकत बिल्कुल मुफ्त बांटी और अपने देशकी बड़ी अच्छी तथा विश्वस्त सेवा की। आप शायद मुझे ताना देंगे कि वे लोग इस कारण ऐसा कर सके थे कि वे अपने व्यवसायमें बड़ी लंबी-लंबी फीस लेते थे। मैं इस तर्कको इस कारण नहीं मान सकता कि मनमोहन घोषके सिवा मेरा

और सबसे परिचय रहा है। अधिक रुपया होनेकी वजहसे इन लोगोंने भारतको आवश्यकता पड़नेपर अपनी योग्यता उदारता-पूर्वक दी हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता। उसका उनकी आराम तथा विलाससे रहनेकी योग्यतासे कोई संबंध नहीं है। मैंने उनको बड़े संतोषसे दीनता-पूर्वक जीवन निर्वाह करते देखा है। (हिं० न०, १२-११-३१)

: ८० :

डॉक्टर दत्त

फोरमन क्रिश्चियन कालेजके प्रिंसिपल डॉक्टर दत्तके देहांतसे देशका एक कट्टर राष्ट्रवादी क्रिश्चियन उठ गया है। दक्षिण अफ्रीकासे लौटनेके बाद तुरंत ही उनको निकटसे जाननेका सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। वे स्वर्गीय दीनबंधु एण्ड्रूजके एक अंतरंग मित्र थे। उन्होंने अपने हरएक मित्रसे मेरा परिचय करा दिया था और तभी उन्हें संतोष हो पाया था। सन् १९२४ में एकता परिषद्के उन चिंताजनक दिनोंमें, जब मैं दिल्लीमें २१ दिनका उपवास कर रहा था, उन्होंने रात-दिन लगकर काम किया था। दूसरी गोलमेज परिषदके समय भी मैंने उन्हें उतनी ही लगनके साथ काम करते देखा था। देशके इतिहासके इस नाजुक अवसरपर उनका देहांत दुगुना कष्टदायक होगा। मैं श्रीमती दत्तके साथ अपनी समवेदना प्रकट करता हूं। डॉक्टर दत्तके अनेकानेक मित्र इस शोकमें उनके साथ हैं। (ह० से०, २८-६-४२)

: ८१ :

गोपबन्धुदास

पं० गोपबंधुदास, जो पहले एम० एल० सी०, वकील इत्यादि थे, अति त्यागी नेता हैं। उनसे मुझे विदित हुआ है कि ये और उनका दल केवल भात-दालपर गुजारा करते हैं, घी उन्हें शायद ही मिलता है। असहयोग करनेके अनंतर कार्यकर्ताओंने अपनी आवश्यकताएं एकबारगी कम कर दी हैं, यहांतक कि दस रुपये जैसी छोटी रकमपर ये अपना निर्वाह कर लेते हैं। मुझे तनिक भी संदेह नहीं कि ऐसे अदम्य उत्साही कार्यकर्ताओंके द्वारा स्वराज्य इसी वर्षमें प्राप्त हो सकता है। पंडित गोपबंधुदासकी एक पाठशाला साखी-गोपालमें पुरीसे १२ मील पर है। यह एक कुंज पाठशाला है। यह देखने योग्य है। मैंने उसके छात्रों और शिक्षकोंके बीच एक दिन बड़े आनंदसे काटा। यह खुले मैदानमें शिक्षापद्धतिकी बड़ी अच्छी परीक्षा है। वहांके कुछ छात्र जबर्दस्त कुश्तीबाज हैं। (यं० इं० ३.४.२१)

: ८२ :

देशबन्धु चित्तरंजन दास

फरीदपुरसे लौटकर सोमवारको ये संस्मरण मैं लिख रहा हूं। देशबंधुदासके पुराने महलकी छतपर बैठा हुआ हूं। बंगालमें आये आज मुझे चार रोज हुए हैं; परंतु इस महलमें मेरे दिलपर पहलेपहल जो चोट लगी है वह अभीतक मुझे छोड़ नहीं रही है। मैं

जानता था कि यह मकान देशबंधुने सार्वजनिक कामके लिए दे दिया है। मुझे पता था कि उनके सिरपर कर्ज था; पर उसके साथ ही मुझे इस बातका भी ज्ञान था कि वे यदि वकालत करें तो थोड़े समयमें यह कर्ज अदा करके अपने महलपर कब्जा कर सकते हैं। पर उन्हें वकालत तो करनी थी नहीं, या यों कहें कि वे तो बिना फीस लिये देशकी वकालत करना चाहते थे। इसलिए महलके सदृश मकानको दे डालनेका ही निश्चय उन्होंने किया और उसका कब्जा ट्रस्टियोंको दे दिया। उनकी इच्छा थी कि इस यात्रामें मैं कलकत्तेमें तो उन्हींके इसी पुराने मकानपर ठहरूं। इसीसे यहां आ कर रहा हूं।

परंतु जानना एक बात है और देखना दूसरी। घरमें प्रवेश करते समय मेरा हृदय रो उठा। आंखें छलछला उठीं। इस महलके मालिकके बिना और उनकी मालिकीके बिना वह मुझे जेलखाना मालूम हुआ। उसमें रहना मुश्किल हो गया और अभी तक इस भावका प्रभाव मुझपर बना हुआ है।

मैं जानता हूं कि यह मोह है। मकानका कब्जा देकर देशबन्धुने अपने सिरसे एक बोझ कम किया है। उस मकानसे, जिसमें ये दंपती न जाने कहां खो जायं, उन्हें क्या लाभ? यदि वे मनमें लावें तो झोंपड़ीको राजमहल बना सकते हैं। दोनोंने स्वेच्छासे उसे त्यागा है। इसपर खेद किसलिए? यह तो हुई ज्ञानकी बात। यह ज्ञान यदि मुझे न हो तो मुझे आजसे ही महल बनानेका उद्यम शुरू करना पड़े।

परंतु देहाध्यास कहीं जाता है? संसार कहीं दासकी तरह करता है? दुनिया तो यदि महल हो तो उसे चाहती है। पर इस पुरुषने उसका त्याग कर दिया। धन्य है उसे! मेरे आंसू प्रेमके हैं। चोट भी यह प्रेम ही लगाता है। और स्वार्थ क्यों न हो? यदि देशबंधुके साथ मेरा कुछ भी संबंध न होता तो यह आघात न पहुंचता। बहुतेरे महल देखे हैं, जिनके मालिक उन्हें छोड़कर दुनियासे ही चले गये हैं। परंतु उनमें प्रवेश करते

हुए आंखोंसे आंसू नहीं गिरे। इसलिए यह रोना स्वार्थ-मूलक भी है। चित्तरंजन दासने महलका परित्याग भले ही किया हो, पर उनकी सेवाकी कीमत बढ़ गई है।

परिषद्में देशबंधुका शरीर बहुत ही दुर्बल दिखाई दिया। आवाज बैठ गई है। कमजोरी खूब है। सच कहें तो अभी तबीयत ऐसे कामोंके योग्य नहीं हो पाई है। अभी तो डाक्टरोंने उन्हें सलाह दी है कि वे शक्ति प्राप्त करनेके लिए या तो यूरोप या दार्जिलिंग जावें, पर वहां तो वे मजबूरीकी अवस्थामें ही जाना चाहते हैं।

....देशबंधुका भाषण संक्षिप्त और दिलचस्प था। प्रत्येक वाक्यमें अहिंसाकी ध्वनि थी। उन्होंने उस भाषणमें साफ तौरपर बताया कि हिंदुस्तानका उद्धार अहिंसामय संग्रामसे ही हो सकता है। इस भाषणके नीचे यदि कोई मुझसे सही करनेके लिए कहे तो मुझे शायद ही कोई वाक्य या शब्द बदलनेकी जरूरत हो।

उनके भाषणके अनुसार ही प्रस्तावोंका होना स्वाभाविक था। इससे विषय-समितिमें खासा झगड़ा भी हुआ। अंतमें देशबंधुको त्याग-पत्र देना कहने तककी नौबत आगई थी। लेकिन आखिर उनके प्रभावकी जय हुई और परिषद्के महत्वपूर्ण प्रस्ताव निर्विघ्न पास हुए।

... ...

जब हृदय चोटसे व्यथित होता है तब कलमकी गति कुंठित हो जाती है। मैं यहां इस तरह शोकमय वायुमंडलमें हूं कि तार द्वारा पाठकोंके लिए अधिक कुछ भेजनेमें असमर्थ हूं। अभी दार्जिलिंगमें उस महान् देशभक्तके साथ ५ रोज तक मेरा समागम रहा। उसने हम एक दूसरेको पहलेसे अधिक एक-दूसरेके नजदीक कर दिया। मैंने केवल यही अनुभव नहीं किया कि देशबन्धु कितने महान् थे, बल्कि यह भी अनुभव किया कि वे कितने भले थे। भारतका एक लाल चला गया। हमें चाहिए कि हम स्वराज्य प्राप्त करके उसे पुनः प्राप्त करें। (हि० न०, १८.६.२५)

... ...

आप लोगोंने आचार्य रायसे सुन लिया कि हम लोगोंपर कैसा भीषण प्रहार हुआ है। परंतु मैं जानता हूं कि अगर हम सच्चे देशसेवक हैं तो कितना ही बड़ा वज्र-प्रहार हो, हमारे दिलको नहीं तोड़ सकता। आज सवेरे यह शोकसमाचार सुना तो मेरे सामने दो परस्पर विरुद्ध कर्तव्य आ खड़े हुए। मेरा कर्तव्य था कि पहले जो गाड़ी मिले उसीसे मैं कलकत्ते चला जाता; पर मेरा यह भी कर्त्तव्य था कि आपके निर्द्धारित कार्यक्रम-को पूरा करूं। मेरी सेवावृत्तिने यही प्रेरणा की कि यहांका कार्य पूरा किया जाय। यद्यपि मैं दूर-दूरसे आये हुए लोगोंसे मिलनेके लिए ठहर गया हूं तथापि उनके सामने महासभाके कार्यकी विवेचना न करके स्वर्गीय देशबंधुका ही स्मरण करूंगा। मुझे विश्वास है कि कलकत्ता दौड़ जानेकी अपेक्षा यहांका काम पूरा करनेसे उनकी आत्मा अधिक प्रसन्न होगी।

देशबन्धु दास एक महान् पुरुष थे।[1] मैं गत छः वर्षोंसे उन्हें जानता हूं। कुछ ही दिन पहले जब मैं दार्जिलिंगसे उनसे विदा हुआ था तब मैंने एक मित्रसे कहा था कि जितनी ही घनिष्टता उनसे बढ़ती है उतना ही उनके प्रति मेरा प्रेम बढ़ता जाता है। मैंने दार्जिलिंगमें देखा कि उनके मनमें भारतकी भलाईके सिवा और कोई विचार न था। वे भारतकी स्वाधीनताका ही सपना देखते थे, उसीका विचार करते थे और उसीकी बातचीत करते थे, और कुछ नहीं। दार्जि-लिंगसे विदा होते समय भी उन्होंने मुझसे कहा था कि आप बिछुड़े हुए दलोंको एक करनेके लिए बंगालमें अधिक समय तक ठहरिए, ताकि सब लोगोंकी शक्ति एक कार्यके लिए युक्त हो जाय। मेरी बंगाल-यात्रामें उनसे मतभेद रखनेवालोंने भी बिना हिचकिचाहटके इस बातको स्वीकार किया है कि बंगालमें ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जो उनका स्थान ले सके।

---

[1] इतना कहते-कहते गांधीजीकी आंखोंमें आंसू आगये और एक-दो मिनट तक कुछ बोल न सके।

वे निर्भीक थे, वीर थे। बंगालमें नवयुवकोंके प्रति उनका निस्सीम स्नेह था। किसी नवयुवकने मुझे ऐसा नहीं कहा कि देशबंधुसे सहायता मांगने पर कभी किसीकी प्रार्थना खाली गई। उन्होंने लाखों रुपया पैदा किया और लाखों रुपया बंगालके नवयुवकोंमें बांट दिया। उनका त्याग अनुपम था, और उनकी महान् बुद्धिमत्ता और राजनीतिज्ञताकी बात मैं क्या कह सकता हूं! दार्जिलिंगमें उन्होंने मुझसे अनेक बार कहा कि भारतकी स्वाधीनता अहिंसा और सत्यपर निर्भर है।

भारतके हिंदुओं और मुसलमानोंको जानना चाहिए कि उनका हृदय हिंदू और मुसलमानका भेद नहीं जानता था। मैं भारतके सब अंग्रेजोंसे कहता हूं कि उनके प्रति उनके मनमें बुरा भाव न था। उनकी अपनी मातृभूमिके प्रति यही प्रतिज्ञा थी—"मैं जीऊंगा तो स्वराज्यके लिए और मरूंगा तो स्वराज्यके लिए।" हम उनकी स्मृतिको कायम रखनेके लिए क्या करें? आंसू बहाना सहज है, परंतु आंसू हमारी या उनके स्वजनों-परिजनोंकी सहायता नहीं कर सकता। अगर हममेंसे हर कोई हिंदू, मुसलमान, पारसी और ईसाई उस कामको करनेकी प्रतिज्ञा करें जिसमें वे रहते थे तो समझा जायगा कि हमने कुछ किया। हम सब ईश्वरको मानते हैं। हमें जानना चाहिए कि शरीर अनित्य है और आत्मा नित्य है। देशबंधुका शरीर नष्ट हो गया; परंतु उनकी आत्मा कभी नष्ट न होगी। न केवल उनकी आत्मा, बल्कि उनका नाम भी—जिन्होंने इतनी बड़ी सेवा और त्याग किया है—अमर रहेगा और जो कोई जवान या बूढ़ा उनके आदर्शपर जरा भी चलेगा वह उनकी यादगार बनाये रखनेमें मदद देगा। हम सबमें उनके जैसी बुद्धिमत्ता नहीं है, पर हम उस भावको अपनेमें ला सकते हैं जिससे वे देशकी सेवा करते थे।

देशबंधुने पटना और दार्जिलिंगमें चरखा कातनेकी कोशिश की थी। मैंने उनको चरखाका पाठ पढ़ाया था और उन्होंने मुझसे वादा किया था कि मैं कातना सीखनेकी कोशिश करूंगा और जबतक शरीर रहेगा तबतक

कातूंगा। उन्होंने अपने दार्जिलिंगके निवास-स्थानको 'चरखाक्लब' बना दिया था। उनकी नेक पत्नीने वायदा किया कि बीमारीकी हालत छोड़कर मैं रोज आध घंटे तक स्वयं चरखा चलाऊंगी और उनकी लड़की, बहन और बहनकी लड़की तो बराबर ही चरखा कातती थी।

देशबंधु मुझसे अक्सर कहा करते—"मैं समझता हूं कि धारासभामें जाना जरूरी है मगर चरखा कातना भी उतना ही जरूरी है। न सिर्फ जरूरी है, बल्कि बिना चरखेके धारासभाके कामको कारगर बनाना असंभव है।" उन्होंने जबसे खादीकी पोशाक पहनना शुरू किया तबसे मरनेके दिनतक पहनते आए।

मेरे लिए यह कहनेकी बात नहीं है कि उन्होंने हिंदू-मुसलमानोंमें मेल करनेके लिए कितना बड़ा काम किया था। अछूतोंसे वे कितना प्रेम रखते थे। इसके विषयमें सिर्फ वही एक बात कहूंगा जो मैंने बारी-सालमें कल रातको एक नाम-शूद्र नेतासे सुनी थी। उस नेताने कहा—"मुझे पहली आर्थिक सहायता देशबंधुने दी और पीछे डाक्टर रायने।" आप सब लोग धारासभाओंमें नहीं जा सकते। परंतु उन तीन कामोंको कर सकते हैं जो उनको प्रिय थे। मैं अपनेको भारतका भक्तिपूर्वक सेवा करनेवाला मानता हूं। मैं घोषणा करता हूं कि मैं अपने सिद्धांतपर अटल रहकर, आगेसे संभव हुआ तो, देशबंधु दासके अनुयायियोंको उनके धारा-सभाके कार्यमें पहलेसे अधिक सहायता दूंगा। मैं ईश्वरसे प्रार्थना करता हूं कि वह उनके कामको हानि पहुंचानेवाला काम करनेसे मुझे बचाये रक्खे। हमारा धारासभा-संबंधी मतभेद बना हुआ था और है। फिर भी हमारा हृदय एक हो गया था। राजनैतिक साधनोंमें सदा मतभेद बना रहेगा। परंतु उसके कारण हम लोगोंको एक-दूसरेसे अलग न हो जाना चाहिए, या परस्पर शत्रु न बन जाना चाहिए। जो स्वदेश-प्रेम मुझे एक कामके लिए प्रेरित करता था वही उनको कुछ दूसरा काम करनेको उत्साहित करता था। और ऐसा पवित्र मत-भेद देशके काममें बाधक

नहीं हो सकता। साधन-संबंधी मतभेद नहीं, बल्कि हृदयकी मलिनता ही अनर्थकारी है। दार्जिलिंगमें रहते समय मैं देखता था कि देशबंधुके दिलमें अपने राजनैतिक विरोधियोंके प्रति नम्रता प्रतिदिन बढ़ती जाती थी। मैं उन पवित्र बातोंका वर्णन यहां न करूंगा। देशबंधु देश-सेवकोंमें एक रत्न थे। उनकी सेवा और त्याग बेजोड़ था। ईश्वर करें, उनकी याद हमें सदा बनी रहे और उनका आदर्श हमारे सदुद्योगमें सार्थक हो। हमारा मार्ग लंबा और दुर्गम है। हमको उसमें आत्मनिर्भरताके सिवा और कोई सहारा नहीं देगा। स्वावलंबन ही देशबंधुका मुख्य सूत्र था। वह हमें सदा अनुप्राणित करता रहे। ईश्वर उनकी आत्माको शांति दें[1]! (हि० न०, २५.६.२५)

. . . .

मनुष्योंमें से एक दिग्गज पुरुष उठ गया। बंगाल आज एक विधवाकी तरह हो गया है। कुछ सप्ताह पहले देशबंधुकी समालोचना करनेवाले एक सज्जनने कहा था, "यद्यपि मैं उनके दोष बताता हूं, फिर भी यह सच है, मैं आपके सामने मानता हूं कि उनकी जगह पर बैठने लायक दूसरा कोई व्यक्ति नहीं है।" जबकि मैंने खुलनाकी सभामें, जहां कि मैंने पहले-पहल यह दिल दहलानेवाली दुर्वार्ता सुनी, इस प्रसंगका जिक्र किया—आचार्य रायने छूटते ही कहा—"यह बिलकुल सच है। यदि मैं यह कह सकूं कि रवीन्द्रनाथके बाद कविका स्थान कौन लेगा तो यह भी कह सकूंगा कि देशबंधुके बाद नेता का स्थान कौन ले सकता है। बंगालमें कोई आदमी ऐसा नहीं है जो देशबंधुके समीप भी कहीं पहुंच पाता हो।" वे कई लड़ाइयोंके विजयी वीर थे। उनकी उदारता एक दोषकी सीमातक बढ़ी हुई थी। वकालतमें उन्होंने लाखों रुपये पैदा किये, पर उन्हें जोड़कर वे कभी

---

[1]देशबंधुके अवसानका शोक-समाचार मिलनेके बाद खुलनामें दिया गया भाषण।

धनी नहीं बने, यहां तक कि उन्होंने अपना पैतृक महल भी दे डाला।

१९१९ में, पंजाब महासभा जांच समितिके सिलसिलेमें, उनसे पहले-पहल मेरा प्रत्यक्ष परिचय हुआ। मैं उनके प्रति संशय और भयके भाव लेकर उनसे मिलने गया था। दूरसे ही मैंने उनकी धुआंधार वकालत और उससे भी अधिक धुआंधार वक्तृत्वका हाल सुना था। वे अपनी मोटर-कार लेकर सपत्नीक, सपरिवार आये थे और एक राजाकी शान-बान-के साथ रहते थे। मेरा पहला अनुभव तो कुछ अच्छा न रहा। हम हंटर-कमिटीकी तहकीकातमें गवाहियां दिलानेके प्रश्न पर विचार करनेके लिए बैठे थे। मैंने उनके अंदर तमाम कानूनी बारीकियोंको तथा गवाहको जिरहमें तोड़कर फौजी कानूनके राज्यकी, बहुतेरी शरारतोंकी कलई खोलनेकी, वकीलोचित तीव्र इच्छा देखी। मेरा प्रयोजन कुछ भिन्न था। मैंने अपना कथन उन्हें सुनाया। दूसरी मुलाकातमें मेरे दिलको तसल्ली हुई और मेरा तमाम डर दूर हो गया। उनको मैंने जो कुछ कहा उसको उन्होंने उत्सुकताके साथ सुना। भारतवर्षमें पहली ही बार बहुतेरे देश-सेवकोंके घनिष्ठ समागममें आनेका अवसर मुझे मिला था। तबतक मैंने महासभाके किसी काममें वैसे कोई हिस्सा न लिया था। वे मुझे जानते थे—एक दक्षिण अफ्रीकाका योद्धा है। पर मेरे तमाम साथियोंने मुझे अपने घरका-सा बना लिया, और देशके इस विख्यात सेवकका नंबर इसमें सबसे आगे था। मैं उस समितिका अध्यक्ष माना जाता था। "जिन बातोंमें हमारा मतभेद होगा उनमें मैं अपना कथन आपके सामने उपस्थित कर दूंगा। फिर जो फैसला आप करेंगे उसे मैं मान लूंगा। इसका यकीन मैं आपको दिलाता हूं।" उनके इस स्वयंस्फूर्त आश्वासनके पहले ही हममें इतनी घनिष्ठता हो गई थी कि मुझे अपने मनका संशय उनपर प्रकट करनेका साहस हो गया। फिर जब उनकी ओरसे यह आश्वासन मिल गया तब मुझे ऐसे मित्रनिष्ठ साथीपर अभिमान तो

हुआ, किंतु साथ ही कुछ संकोच भी मालूम हुआ; क्योंकि मैं जानता था कि मैं तो भारतकी राजनीतिमें एक नौसिखिया था और शायद ही ऐसे पूर्ण विश्वासका अधिकारी था। परंतु तंत्रनिष्ठा छोटे-बड़ेके भेदको नहीं जानती। वह राजा जो कि तंत्र-निष्ठाके मूल्यको जानता है, अपने सेवक की भी बात, उस मामलेमें मानता है, जिसका पूरा भार उसपर छोड़ देता है। इस जगह मेरा स्थान एक सेवकके जैसा था। और मैं इस बातका उल्लेख कृतज्ञता और अभिमानके साथ करता हूं कि मुझे जितने मित्र-निष्ठ साथी वहां मिले थे, उनमें कोई इतना मित्रनिष्ठ न था जितना चित्तरंजन दास थे।

अमृतसर-धारासभामें तंत्रनिष्ठका अधिकार मुझे नहीं मिल सकता था; वहां हम परस्पर योद्धा थे; हर शख्सको अपनी-अपनी योग्यताके अनुसार राष्ट्रहित-संबंधी, अपने ट्रस्टकी रक्षा करनी थी। जहां तर्क अथवा अपने पक्षकी आवश्यकताके अलावा किसीकी बात मान लेनेका सवाल न था। महासभाके मंचपर पहली लड़ाई लड़ना मेरे लिए एक पूरे आनंद और तृप्ति-का विषय था। बड़े सभ्य, उसी तरह न झुकनेवाले महान् मालवीयजी बलाबलको सामने रखनेकी कोशिश कर रहे थे। कभी एकके पास जाते थे, कभी दूसरेके पास। महासभाके अध्यक्ष पंडित मोतीलालजीने सोचा कि खेल खतम हो गया। मेरी तो लोकमान्य और देशबंधुसे खासी जम रही थी। सुधार-संबंधी प्रस्तावका एक ही सूत्र उन दोनोंने बना रक्खा था। हम एक-दूसरेको समझा देना चाहते थे, पर कोई किसीका कायल न होता था। बहुतोंने तो सोचा था कि अब कोई चारा नहीं था और इसका अंत बुरा रहेगा। अलीभाई, जिन्हें मैं जानता था और चाहता था, पर आजकी तरह जिनसे मेरा परिचय न था, देशबंधुके प्रस्तावके पक्षमें मुझे समझाने लगे। मुहम्मद अलीने अपनी लुभावनी नम्रतासे कहा, "जांच-समितिमें आपने जो महान् कार्य किया है, उसे नष्ट न कीजिए।" पर वह मुझे न पटा सके। तब जयरामदास, वह ठंडे दिमागवाला सिंधी

आया, और उसने एक चिटमें समझौतेकी सूचना और उसकी हिमायत लिखकर मुझे पहुंचाई। मैं शायद ही उन्हें जानता था। पर उनकी आंखों और चेहरेमें कोई ऐसी बात थी जिसने मुझे लुभा लिया। मैंने उस सूचनाको पढ़ा। वह अच्छी थी। मैंने उसे देशबंधुको दिया। उन्होंने जवाब दिया,--"ठीक है, बशर्ते कि हमारे पक्षके लोग उसे मान लें।" यहां ध्यान दीजिए उनकी धनिष्ठतापर। अपने पक्षके लोगोंका समाधान किये बिना वे नहीं रहना चाहते थे। यही एक रहस्य है लोगोंके हृदयपर उनके आश्चर्यजनक अधिकारका। वह सब लोगोंको पसंद हुई। लोकमान्य अपनी गरुड़के सदृश तीखी आंखोंसे वहां जो कुछ हो रहा था सब देख रहे थे। व्याख्यान-मंचसे पंडित मालवीयजीकी गंगाके सदृश वाग्धारा बह रही थी। उनकी एक आंख सभामंचकी ओर देख रही थी जहां कि हम साधारण लोग बैठकर राष्ट्रके भाग्यका निर्णय कर रहे थे। लोकमान्यने कहा--"मेरे देखनेकी जरूरत नहीं। यदि दासने उसे पसंद कर लिया है तो मेरे लिए वह काफी है।" मालवीयजीने उसे वहांसे सुना, कागज मेरे हाथसे छीन लिया और घोर करतलध्वनिमें घोषित कर दिया कि समझौता हो गया। मैंने इस घटनाका सविस्तर वर्णन इस लिए किया है कि उसमें देशबंधुकी महत्ता और निर्विवाद नेतृत्व, कार्य-विषयक दृढ़ता, निर्णय-संबंधी समझदारी और पक्षनिष्ठाके कारणोंका संग्रह आ जाता है।

अब और आगे बढ़िए। हम जुहू, अहमदाबाद, दिल्ली और दार्जिलिंग पहुंचते हैं। जूहूमें वे और पंडित मोतीलालजी मुझे अपने पक्षमें मिलानेके लिए आये। वे दोनों जोड़वां भाई हो गये थे। हमारे दृष्टिबिंदु अलग-अलग थे। पर उन्हें यह गवारा न होता था कि मेरे साथ मतभेद रहे। यदि उनके बसका होता तो वे ५० मील चले जाते जहां मैं सिर्फ २५ मील चाहता; परंतु वे अपने एक अत्यंत प्रिय मित्रके सामने भी एक इंच न झुकना चाहते थे, जहां कि देशहित संकटमें था। हमने एक प्रकारका समझौता कर लिया। हमारा मन तो न भरा, पर हम निराश

न हुए। हम एक-दूसरेपर विजय प्राप्त करनेके लिए तुले हुए थे। फिर हम अहमदाबादमें मिले। देशबंधु अपने पूरे रंगमें थे और एक चतुर खिलाड़ीकी तरह सब रंग-ढंग देखते थे। उन्होंने मुझे एक शानकी शिकस्त दी। उनके जैसे मित्रके हाथों ऐसी कितनी शिकस्त मैं न खाऊंगा! पर अफसोस! वह शरीर अब दुनियामें नहीं रहा! कोई यह खयाल न करे कि साहावाले प्रस्तावके कारण हम एक-दूसरेके शत्रु हो गये थे। हम एक-दूसरेको गलतीपर समझ रहे थे; पर वह मतभेद स्नेहियोंका मतभेद था। वफादार पति और पत्नी अपने पवित्र मतभेदोंके दृश्योंको याद करें—किस तरह वे अपने मतभेदोंके कारण कष्ट सहते हैं, जिससे कि उनके पुनर्मिलनका सुख अति बढ़ जाय। यही हमारी हालत थी। सो हमें फिर दिल्लीमें उस भीषण जबड़ेवाले शिष्ट पंडित और नम्र दाससे, जिनका कि बाहरी स्वरूप किसी सरसरी तौरपर देखनेवालेको अशिष्ट मालूम हो सकता है, मिलना होगा। मेरे उनके प्रस्तावका ढांचा वहां तैयार हुआ और पसंद हुआ। वह एक अटूट प्रेम-बंधन था जिसपर कि अब एक दलने उनकी मृत्युकी मुहर लगा दी है।

....वे अक्सर आध्यात्मिकताकी बातें करते थे और कहते थे कि धर्मके विषयमें आपका मेरा कोई मतभेद नहीं है। पर यद्यपि उन्होंने कहा नहीं तथापि हो सकता है कि उनका भाव यह रहा हो कि मैं इतना काव्यहीन हूं कि मुझे हमारे विश्वासोंकी एकात्मता नहीं दिखाई देती। मैं मानता हूं कि उनका खयाल ठीक था। उन बहुमूल्य पांच दिनोंमें मैंने उनका हर कार्य धर्म-मय देखा और न केवल वे महान् थे, बल्कि नेक भी थे, उनकी नेकी बढ़ती जा रही थी। पर इन पांच दिनोंके बहुमूल्य अनुभवोंको मुझे किसी अगले दिनके लिए रख छोड़ना चाहिए। जबकि क्रूर दैवने लोकमान्यको हमसे छीन लिया तब मैं अकेला असहाय रह गया। क्योंकि मेरी वह चांद गई नहीं है; क्योंकि अबतक मुझे उनके प्रिय शिष्योंकी आराधना करनी पड़ती है।

पर देशबंधुके वियोगने तो मुझे और भी बुरी हालतमें छोड़ दिया है। जब लोकमान्य हमसे जुदा हुए थे, देश आशा और उमंगसे भरा हुआ था, हिन्दू-मुसलमान हमेशाके लिए एक होते हुए दिखाई दिये थे, हम युद्धका शंख फूकनेकी तैयारीमें थे। पर अब? (हिं० न० २५.६.२५)

. . . .

कलकत्तेने कल दिखला दिया कि देशबंधुदासका बंगालपर, नहीं सारे भारतवर्षके हृदयपर, कितना अधिकार था। कलकत्ता, बंबईकी तरह पचरंगी प्रजाका नगर है। इसमें हर प्रांतके लोग बसते हैं और इन तमाम प्रांतोंके लोग, बंगालियोंकी तरह ही अपने दिलसे उस जुलूसमें योग दे रहे थे। देशके कोने-कोनेसे तारोंकी जो झड़ी लग रही है उससे भी यही बात और जोरके साथ प्रकट होती है कि सारे देशभरमें वे कितने लोकप्रिय थे।

जिन लोगोंका हृदय कृतज्ञतासे भर रहा है, उनके संबंधमें इससे भिन्न अनुभव नहीं हो सकता था। और देशबंधु इस सारे कृतज्ञताज्ञापनके पात्र भी थे। उनका त्याग महान था। उनकी उदारताकी सीमा नहीं थी। उनकी मुट्ठी सदा सबके लिए खुली रहती थी। दान देनेमें वे कभी आगा-पीछा न सोचते थे। उस दिन जबकि मैंने बड़े मीठे भावसे कहा, "अच्छा होता, आप दान देनेमें अधिक विचारसे काम लेते।" उन्होंने तुरंत उत्तर दिया, "पर मैं नहीं समझता कि अपने अविचारके कारण मेरी कुछ हानि हुई है।" अमीर और गरीब सबके लिए उनका रसोईघर खुला था। उनका हृदय हरएककी मुसीबतके समय उसके पास दौड़ जाता था। सारे बंगालमें ऐसा कौन नवयुवक है जो किसी-न-किसी रूपमें देशबंधुका कृतज्ञ नहीं है? उनकी बेजोड़ कानूनी प्रतिभा भी सदा गरीबोंकी सेवाके लिए हाजिर रहती थी। मुझे मालूम हुआ है कि उन्होंने यदि सबकी नहीं तो, बहुतेरे राजनैतिक कैदियोंकी पैरवी बिना एक कौड़ी लिये की है। पंजाबकी जांचके समय जब वे पंजाब गये थे तो अपना सारा खर्च अपनी जेबसे किया था। उन दिनों अपने साथ वे एक राजाकी तरह लवाजमा

ले गये थे। उन्होंने मुझसे कहा था कि पंजाबकी उस यात्रामें उनके ५०,००० रुपये खर्च हुए थे। जो उनके द्वारपर आता था उसीके लिए उनकी उदारताका हाथ आगे बढ़ जाता था। उनके इसी गुणने उन्हें हजारों नवयुवकोंके दिलका राजा बना दिया था।

जैसे ही वे उदार थे वैसे ही निर्भीक भी थे। अमृतसरमें उनकी धुआंधार वक्तृताओंने मेरा दम खुश्क कर दिया था। वे अपने देशकी मुक्ति तुरंत चाहते थे। वे एक विशेषणको हटाने या बदलनेके लिए तैयार न थे। इसलिए नहीं कि वे जिद्दी थे, बल्कि इसलिए कि वे अपने देशको बहुत चाहते थे। उन्होंने विशाल शक्तियोंको अपने कब्जेमें रक्खा। अपने अदम्य उत्साह और अध्यवसायके द्वारा उन्होंने अपने दलको प्रबल बनाया। परंतु यह भीषण शक्तिप्रवाह उनकी जान ले बैठा। उनका यह बलिदान स्वेच्छापूर्वक था। वह उच्च था। उदात्त था।

फरीदपुरमें तो उनकी विजय हुई। उनके वहांके उद्गार उनकी अत्यन्त समझदारी और राजनीतिज्ञताके नमूना थे। वे विचार-पूर्ण और असंदिग्ध थे और (जैसा कि मुझे उन्होंने कहा था) उनके अपने लिए तो उन्होंने अहिंसाको एकमात्र नीति और इसलिए भारतवर्षका राजनैतिक धर्म (Creed) स्वीकार किया था।

पं० मोतीलाल नेहरू तथा महाराष्ट्रके तंत्रनिष्ठ सैनिकोंसे मेल करके उन्होंने शून्य-से स्वराज्य-दलको एक महान् और वर्धमान् दल बना लिया और ऐसा करके उन्होंने अपने निश्चयबल, मौलिकता साधन-बहुलता और किसी वस्तुको अच्छा मान लेनेके बाद फिर परिणामकी चिंता न करनेके, गुणोंका परिचय दिया। और आज हम स्वराज्य-दलको एक एकत्र और सुतंत्रनिष्ठ संगठनके रूपमें देखते हैं। धारासभा-प्रवेशके संबंधमें मेरा मतभेद था और है। पर मैंने सरकारको तंग करने और लगातार उसकी स्थितिको विषम बनानेके संबंधमें धारासभाकी उपयोगितासे कभी इन्कार नहीं किया। धारासभामें इस दलने जो काम किया उसकी महत्तासे

कोई इन्कार नहीं कर सकता और उसका श्रेय मुख्यतः देशबंधुको ही है। मैंने अपनी आंखें खुली रखकर उनके साथ प्रस्ताव किया था। तबसे मैंने जो कुछ हो सकी उस दलकी सहायता की है। अब उनके स्वर्गवासके कारण, उसके नेताके चले जानेके बाद, मेरा यह दुहरा कर्त्तव्य हो गया है कि उस दलके साथ रहूं। यदि मैं उसकी सहायता न कर पाया तो मैं उसकी प्रगतिमें तो किसी तरह बाधक न होऊंगा।

मैं फिर उनके फरीदपुरवाले भाषणपर आता हूं। स्थानापन्न बड़े लाट साहबने श्रीमती बासंती देवी दासके नाम जो शोक-संदेश भेजा है उसके गुणको राष्ट्र मानेगा। एंग्लो-इंडियन पत्रोंने स्वर्गीय देशबंधुकी स्मृतिमें जो उनका यशोगान किया है उसका उल्लेख मैं कृतज्ञतापूर्वक करता हूं। मालूम होता है कि फरीदपुरवाले भाषणकी पारदर्शिनी निर्मल-हृदयताने अंग्रेजोंके दिलपर अच्छा असर किया है। मुझे इस बातकी चिंता लग रही है कि कहीं उनके स्वर्गवासके कारण इस शिष्टाचार प्रदर्शनके साथ ही उसका अंत न हो जाय। फरीदपुरवाले भाषणके मूलमें एक महान् उद्देश्य था। एंग्लो-इंडियन मित्रोंने चाहा था कि देशबंधु अपनी स्थितिको स्पष्ट कर दें और अपनी तरफसे आगे कदम बढ़ावें। इसीके उत्तरमें उस महान् देशभक्तने वह भाषण किया था और अपनी स्थिति स्पष्ट की थी। पर क्रूर कालने उस उद्‌गारके कर्ताको हमसे छीन लिया। परंतु उन अंग्रेजों को, जो अब भी देशबंधुकी नीयतपर शक करते हों, मैं यकीन दिलाना चाहता हूं कि जबतक मैं दार्जिलिंगमें रहा, मेरे दिल पर जो बात सबसे अधिक जोरके साथ अंकित हुई वह थी, देशबन्धुके उन वचनोंके निर्मल भाव। क्या इस गौरवमय अन्तका सदुपयोग हमारे घावोंको भरने और अविश्वासको मिटानेमें किया जा सकता है? मैं एक मामूली बात सुझाता हूं। सरकार देशबन्धु चित्तरंजन दासकी स्मृतिमें, जो कि अब हमारे साथ अपने पक्षकी पैरवी करनेके लिए दुनियामें नहीं हैं, उन तमाम राजनैतिक कैदियोंको छोड़ दे, जिनके संबंधमें

उनका कहना था कि वे निर्दोष हैं। मैं निरपराधताकी बिना पर उन्हें छोड़नेको नहीं कहता। हो सकता है कि सरकारके पास उनके अपराधके लिए अच्छे-से-अच्छे सबूत हों। मैं तो सिर्फ उस मृत-आत्माके गुणकी स्मृतिमें और बिना पहलेसे कोई बुरा खयाल बनाये, उन्हें छोड़ देनेके लिए कहता हूं। यदि सरकार भारतीय लोक-मतके अनुरंजनके लिए कुछ भी करना चाहती है तो इससे बढ़कर अनुकूल अवसर न मिलेगा और राजनैतिक कैदियोंके छुटकारेसे बढ़कर अनुकूल वायुमंडल बनानेका अच्छा मंगलाचरण न होगा। मैं प्रायः सारे बंगालका दौरा कर चुका हूं। मैंने देखा कि इस बातसे लोगोंके दिलमें चोट पहुंची है—इनमें सभी लोग आवश्यक रूपसे स्वराजी नहीं हैं। परमात्मा करे वह आग जिसने कि कल देशबन्धुके नश्वर शरीरको भस्म कर डाला, हमारे नश्वर अविश्वास, संदेह और डरको भस्मसात्‌कर डाले। फिर यदि सरकार चाहे तो वह भारतवासियोंकी मांगकी पूर्तिके सर्वोत्तम उपायोंपर विचार करनेके लिए एक सम्मेलन कर सकती है।

यदि सरकार अपने जिम्मेका काम करेगी तो हमें भी अपनी तरफका काम करना होगा। हमें यह दिखा देना होगा कि हमारी नौका एक आदमीके भरोसे पर नहीं चल रही है। श्री विन्सेंट चर्चिलके शब्दोंमें, जो कि उन्होंने युद्धके समयमें कहे—"हमें यह कहनेमें समर्थ होना चाहिए, सब काम ज्यों-का-त्यों चलता रहे।" स्वराज्य-दलकी पुनर्रचना तुरंत होनी चाहिए। पंजाबके हिंदू और मुसलमान भी इस दैवी कोप-प्रहारको देखकर अपने लड़ाई-झगड़े भूलते हुए दिखाई देते हैं। क्या दोनों पक्षके लोग इतनी दृढ़ता और समझदारीका परिचय देंगे कि अपने लड़ाई-झगड़ोंका अंत कर लें? देशबंधु हिंदू-मुस्लिम-एकताके प्रेमी थे। उसपर उनका विश्वास भी था। उन्होंने अत्यन्त विकट परिस्थितिमें हिंदू और मुसलमानोंको एक बनाए रक्खा। क्या

उनकी चिताग्नि हमारे अनैक्यको न जला सकेगी ? शायद इसके पहले तमाम दलोंके एक संस्थाके अंतर्गत होनेकी आवश्यकता हो। देशबंधु इसके लिए उत्सुक थे। वे अपने प्रतिपक्षियोंके लिए बहुत बुरा-भला कहा करते थे। परंतु दार्जिलिंगमें मैंने देशबंधुके मुंहसे उनके किसी भी राज-नैतिक प्रतिपक्षीके प्रति एक भी कठोर शब्द निकलते न देखा। उन्होंने मुझसे कहा कि सब दलोंके एक करनेमें आप भरसक सहायता दीजिए। सो अब हम शिक्षित भारतवासियोंका कर्तव्य है कि देशबंधुके इस विचारको कार्यरूपमें परिणत करें और उनके जीवनकी इस एक महाकांक्षाको पूर्ण करें। यदि हम फिलहाल स्वराज्यकी सीढ़ीपर ठेठ ऊपरतक न पहुंच सकें तो तुरंत उसकी कुछ सीढ़ियां तो चढ़ें सही। तभी हम अपने हृदय-स्तलसे पुकार सकते हैं—"देशबंधु स्वर्गवासी हुए, देशबंधु चिरायु रहें।"
(हिं० न०, २५.६.२५)

इस अंकमें लिखनेके लिए और क्या बात लिखना सूझेगी ?

पहाड़-जैसे देशबंधु उठ गये, सो अखबार उन्हींकी बातोंसे भरे हुए हैं। देशबंधुकी छोटी-से-छोटी बात अखबारवाले बड़ी उत्सुकताके साथ छाप रहे हैं। 'सर्वेंट' ने विशेष अंक निकाला है। 'वसुमती' बंगालका सबसे बड़ा समाचारपत्र है। यह विशेष अंककी तैयारी कर रहा है। हजारसे ज्यादा शोक-सूचक तार श्रीमती वासंतीदेवी दासके पास आये हैं और सुदूर देशोंसे आ ही रहे हैं। जगह-जगह सभाएं हुई हैं। कोई भी गांव, जहां महासभाका झंडा फहराता हो, शायद ही खाली होगा, जहां सभा न हुई हो।

कलकत्ता १८ ता० को पागल हो गया था। अंक-शास्त्री कहते हैं कि २ लाखसे कम आदमी इकट्ठे न हुए थे। रास्तोंपर खड़े, तारके खंभों-पर चढ़े, ट्रामकी छतपर खड़े, झरोखोंमें राह देखते हुए बैठे स्त्री-पुरुष इससे जुदा हैं।

साथ भजन-कीर्तन तो था ही। पुष्पोंकी वृष्टि हो रही थी। शव

खुला हुआ था, परंतु उसपर फूलोंके हार का पहाड़ बिछ गया था।

रथीके जुलूसके आगे स्वयंसेवक फुलवाड़ी लेकर चल रहे थे। उसमें फूलोंसे सुसज्जित चरखा था। जुलूस स्टेशनसे ७-३० पर चलकर श्मशानमें ३ बजे पहुंचा। ३-३० बजे अग्नि-संस्कार शुरू हुआ।

श्मशान-घाटपर भीड़ उमड़ी थी। पीछेसे जो भीड़ उमड़ती थी उसे रोकना अति कठिन था और मैं समझता हूं कि यदि मुझे हट्टे-कट्टे लोगोंने अपने कंधेपर बिठाकर इस उमड़ती हुई भीड़के सामने न उठा रक्खा होता तो भयंकर दुर्घटना हो जाती। दो सशक्त आदमियोंने मुझे अपने कंधेपर बिठा रक्खा और उस हालतमें मैं लोगोंको रोक रहा था और उनसे बैठ जानेकी प्रार्थना कर रहा था। लोग जबतक मुझे देखते थे तबतक तो मानते थे, पर मैं जहां अशांतिकी आशंका होती उस ओर गया कि मेरी पीठ फिरते ही लोग तुरंत उठ खड़े हो जाते थे। सब लोग दीवाने हो गये थे। हजारों आंखें रथीकी ओर लगी हुई थीं। जब दाहकर्म शुरू हुआ तब लोग धीरज खो बैठे। सब बरबस खड़े हो गये और चिताकी ओर खिंच पड़े। यदि एक भी क्षणका विलंब होता तो सबके चितापर गिर पड़नेका अंदेशा था। अब क्या करें? मैंने लोगोंसे कहा, "अब काम पूरा हुआ। सब अपने-अपने घर जावें।" और मुझे उठानेवाले भाइयोंसे कहा, "अब मुझे इस भीड़से हटा ले चलो।" लोगोंको मैं पुकार पुकारकर और इशारेसे कहता चला कि मेरे पीछे आओ। इसका असर बहुत अच्छा हुआ, वह हजारोंकी भीड़ वापस लौटी और दुर्घटना होते-होते बची।

चिता चंदनकी लकड़ीकी बनाई गई थी।

लोग ऐसे मालूम होते थे मानो वन-भोजन को आये हों। गंभीरता तो सबके चेहरे पर थी, पर ऐसा नहीं मालूम होता था कि वे शोक-भारसे दब गये हैं। कुटुम्बियोंका और मेरा शोक स्वार्थ-पूर्ण मालूम होता था। हमारे तत्त्व-ज्ञानका अन्त आ गया, लोगोंका कायम रहा;

क्योंकि वे तटस्थ थे। उनके अन्दर सम्मानका भाव तो पूरा-पूरा था। उनकी पूजा निःस्वार्थ थी। वे तो भारत-पुत्रको, अपने बन्धुको, प्रमाण-पत्र देनेके लिए आये थे। वे अपनी आंखोंसे और चेष्टासे ऐसा कहते हुए दिखाई देते थे, "तुमने बड़ा काम किया, तुम्हारे जैसे हजारों हों !"

देशबंधु जैसे भव्य थे वैसे ही भले थे। दार्जिलिंगमें इसका बड़ा अनुभव मुझे हुआ। उन्होंने धर्म-संबंधी बातें कीं। जिनकी छाप उनके दिलपर गहरी बैठी, उनकी बातें कीं। वे धर्मका अनुभव-ज्ञान प्राप्त करनेके लिए उत्सुक थे। "दूसरे देशमें जो कुछ हो, पर इस देशका उद्धार तो शांतिमार्गसे ही हो सकता है। मैं यहांके नवयुवकोंको दिखला दूंगा कि हम शांतिके रास्ते स्वराज्य प्राप्त कर सकते हैं।" "यदि हम भले हो जायंगे तो अंग्रेजोंको भला बना लेंगे।" "इस अंधकार और दंभमें मुझे सत्य के सिवा दूसरा कोई रास्ता नहीं दिखाई देता। दूसरे की हमें आवश्यकता भी नहीं।" 'मैं तमाम दलोंमें मेल कराना चाहता हूं। बाधा सिर्फ इतनी ही है कि हमारे लोग भीरु हैं। उनको एकत्र करनेके प्रयत्नमें होता क्या है कि हमें भीरु बनना पड़ता है। तुम जरूर सबको मिलानेकी कोशिश करना और मिलना, पत्र-संपादकोंको समझाना कि मेरी और स्वराज्य-दलकी ख्वाहमख्वाह निंदा करनेसे क्या लाभ ? मैंने यदि भूल की हो तो मुझे बतावें। मैं यदि उन्हें संतुष्ट न करूं तो फिर शौकसे पेट भरके मेरी निंदा करें।" "तुम्हारे चरखेका रहस्य मैं दिन-दिन अधिक समझता जाता हूं। मेरा कंधा यदि दर्द न करता हो और इसमें मेरी गति कुंठित न हो तो मैं तुरंत सीख लूं। एक बार सीखनेपर नियम-पूर्वक कातनेमें मेरा जी न ऊबेगा। पर सीखते हुए जी उकता उठता है। देखो न, तार टूटते ही जाते हैं।" "पर आप ऐसा किस तरह कह सकते हैं ? स्वराज्यके लिए आप क्या नहीं कर सकते।" "हां, हां, यह तो ठीक ही है। मैं कहां सीखने-से नाहीं करता हूं ? मैं तो अपनी कठिनाई बताता हूं। पूछो तो वासंती-देवीसे कि ऐसे काममें मैं कितना मंदबुद्धि हूं ?" वासंतीदेवीने उनकी मदद

की, "ये सच कहते हैं। अपना कलमदान खोलना हो तो ताला लगाने मुझे आना पड़ता है।" मैंने कहा, "यह तो आपकी चालाकी है। इस तरह आपने देशबंधुको अपंग बना रक्खा जिससे उन्हें सदा आपकी खुशामद करनी पड़े और आपपर सहारा रखना पड़े।" हँसीसे कमरा गूंज उठा। देशबंधु मध्यस्थ हुए। "एक महीने बाद मेरी परीक्षा लेना। उस समय मैं रस्सियां निकालता न मिलूंगा।" मैंने कहा "ठीक है आपके लिए सतीशबाबू शिक्षक भी भेज देंगे। आप जब पास हो जायंगे तो समझिएगा कि स्वराज्य नजदीक आ गया।" ऐसे सब विनोदोंका वर्णन करने लगूं तो खात्मा नहीं हो सकता।

कितने ही संस्मरण तो ऐसे हैं जिनका वर्णन मैं कर ही नहीं सकता।

मैं जिस प्रेमका अनुभव वहां कर रहा था उसकी कुछ झलक यदि यहां न दिखाऊं तो मैं कृतघ्न माना जाऊंगा। वे छोटी-छोटी-सी बातकी संभाल रखते थे। मेवे खुद कलकत्तेसे मंगवाते। दार्जिलिंगमें बकरी या बकरीका दूध मिलना मुश्किल पड़ता है। इसलिए ठेठ तलहटीसे पांच बकरियां मंगवाकर रक्खीं। मेरी जरूरतकी एक-एक चीजका इंतजाम किये बगैर न रहते थे। हमारे कमरेके दरम्यान सिर्फ एक दीवार थी। सुबह होते ही, काम-काजसे निबटकर, मेरी राह देखते बैठते। चारपाई पर बैठते थे, चारपाई अभी नहीं छूटी थी। पल्थी मारकर बैठनेकी मेरी आदतसे परिचित थे। सो कुरसीपर नहीं बैठने देते थे। खटियापर ही अपने सामने मुझे बैठाते। गद्देपर भी कुछ खास तौरपर बिछवाते और तकिया भी लगवाते। मुझसे दिल्लगी किये बिना न रहा गया, "यह दृश्य तो मुझे चालीस बरस पहलेकी याद दिलाता है। जब मेरी शादी हुई थी तब हम दुलहे-दुलहिन इस तरह बैठे थे। अब यहां पाणिग्रहणकी ही कसर है।" मेरे कहनेकी देर थी कि देशबंधुके कहकहेसे सारा घर गूंज उठा। देशबंधु जब हँसते तो उनकी आवाज दूर तक पहुंचे बिना न रहती।

देशबंधुका हृदय दिन-पर-दिन कोमल होता जाता था। रूढ़िके अनुसार मांस-मछली खानेमें उन्हें कोई विधि-निषेध न था। फिर भी जब असहयोग शुरू हुआ तब मांसाहार, मद्यपान और चुरट तीनों चीजें उन्होंने छोड़ दी थीं। पीछे जाकर फिर उन्होंने अपना जोर जमाया था; परंतु उनका झुकाव इनको छोड़नेकी ओर ही रहता था। अभी कुछ दिनोंसे राधास्वामी संप्रदायके एक साधुसे उनका समागम हुआ। तबसे निरामिष भोजनकी उत्सुकता बढ़ गई थी। सो जबसे वे दार्जिलिंग गये, निरामिष भोजन शुरू किया था। और मेरे रहने तक घरमें मांस-मछली न आने दिया। मुझसे अनेक बार कहा, "यदि मुझसे हो सका तो अबसे मैं मांस मछलीको छुऊंगा तक नहीं। मुझे वे पसंद भी नहीं और मैं समझता हूं कि इससे हमारी आध्यात्मिक उन्नतिमें बाधा पहुंचती है। मेरे गुरुने मुझे खास तौरपर कहा कि साधनाके खातिर तुम्हें मांसाहार अवश्य छोड़ देना चाहिए।" (हिं० न०, २.७.२५)

... ...

....यदि हमें देशबंधुकी आत्माको शांति दिलाना हो तो हमारे पास एक ही इलाज है। उनके तमाम सद्गुणोंको हम अपने अंदर पैदा करें। कितने ही सद्गुण तो अवश्य पैदा कर सकते हैं। उनके सदृश अंग्रेजी चाहे हमें न आ सके, उनकी तरह वकील हम सब न हो सकें, धारा-सभामें जानेकी शक्ति उनके सदृश हमारे पास न हो, पर हमारे अंदर उनके जैसा देशप्रेम तो हो सकता है। उनके बराबर उदारता हम सीख सकते हैं। उनके बराबर धन हम चाहे न दे सकें, परंतु जो यथाशक्ति देते हैं उन्होंने बहुत कुछ दे दिया है। विधवाके एक तांबेके छल्लेकी कीमत महा-राजके करोड़ोंमेंसे दिये हजारकी कीमतसे ज्यादा है। देशबंधुने खादी पहननेके बाद फिर घरमें या बाहर उसका त्याग नहीं किया। क्या हम खादी पहनेंगे? देशबंधुने महीन खादी कभी न चाही। उन्होंने तो मोटी खादीको ही पसंद किया था। देशबंधुने कातनेका प्रयत्न किया। जिन्होंने

शुरू नहीं किया, क्या वे अब करेंगे? (हिं० न०, ६.७.२५)

. . . .

मैं श्री मोतीलाल नेहरू, सी० आर० दास, मनमोहन घोष, बदरुद्दीन तैयबजी इत्यादिकी याद आपको दिला दूंगा जिन्होंने अपनी कानूनी योग्यता बिल्कुल मुफ्त बांटी और अपने देशकी बड़ी अच्छी तथा विश्वस्त सेवा की। आप शायद मुझे ताना देंगे कि वे लोग इस कारण ऐसा कर सके थे कि वे अपने व्यवसायमें बड़ी लंबी-लंबी फीस लेते थे। मैं इस तर्कको इस कारण नहीं मान सकता कि मनमोहन घोषके सिवा मेरा और सबसे परिचय रहा है। अधिक रुपया होनेकी वजहसे इन लोगोंने भारतको आवश्यकता पड़नेपर अपनी योग्यता उदारता-पूर्वक दी हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता। उसका उनकी आराम तथा विलाससे रहनेकी योग्यतासे कोई संबंध नहीं है। मैंने उनको बड़े संतोषसे दीनतापूर्वक जीवन निर्वाह करते देखा है। (हिं० न०, १२.११.३१)

: ८३ :

दासप्पा

मैसूरमें कई वकीलोंने मैसूर-सत्याग्रहकी हलचलमें हिस्सा लिया था। मैसूरकी चीफ कोर्टने उनके वकालतनामे छीन लिये हैं। इस सिलसिलेमें कोर्टके सबसे आखिरी शिकार श्री दासप्पा हैं। श्री दासप्पाकी मैसूरमें खूब प्रतिष्ठा है और वह बीस सालसे वकालत कर रहे हैं। वकालत-जैसे स्वतंत्र पेशेमें किसीकी इस तरह सनद जब्त की जाना बेशक एक गंभीर बात है। पर पहले भी काफी कारणके बिना, या केवल राजनैतिक कारणोंसे ऐसी घटनाएं घट चुकी हैं। ऐसे अन्यायोंको हमें धीरज और बहादुरीसे

बर्दाश्त करना है । पर श्री दासप्पाके बारेमें चीफ जजके हुक्मनामेकी रिपोर्ट 'हिंदू' में पढ़कर बहुत दुःख हुआ है । श्री दासप्पाने मैसूरके एक खास भागमें सभाओंमें भाषण न देनेके मजिस्ट्रेट साहबके हुक्मको तोड़नेका साहस किया था और साथ ही मेरी सलाहके अनुसार सत्याग्रही कैदियोंको, जज श्री नागेश्वर अाइयरकी महकमाना जांचका बहिष्कार करनेकी सलाह देकर अपनी धृष्टताका सबूत दिया था । इन और अन्य अपराधोंके कारण श्री दासप्पाका वकालतनामा हमेशाके लिए जब्त हो गया । अगर जज-साहबकी चले, तो श्री दासप्पाको गरीबीका मुख देखना होगा । अगर उनके फैसलेका असर सरकारी मिसलके आगे जा सके, तो श्री दासप्पा समाजमें अपनी सब प्रतिष्ठा खोकर तिरस्कार और घृणाके पात्र बन जायेंगे । श्री दासप्पाको मैं अच्छी तरह जानता हूं । वह एक निर्दोष चरित्रके शुद्ध ईमानदार आदमी हैं । अपनी शक्तिके अनुसार वह अहिंसाका पालन करने-का मर्दानगीसे प्रयत्न कर रहे हैं । जो उन्होंने किया है वही कई वकील और दूसरे लोग ब्रिटिश भारतमें कर चुके हैं । जज ऐसी बातोंकी तरफ ध्यानतक नहीं देते, और जनताने उनको जन-नायकका पद दिया है । श्री भूलाभाई बंबईकी हाईकोर्टके एडवोकेट-जनरल रह चुके हैं । उन्होंने कानून तोड़े हैं । इसी तरह श्री मुंशीने और श्री चक्रवर्ती राज-गोपालाचार्यने भी कानून तोड़े हैं । मगर उन लोगोंके वकालतनामेको किसीने हाथ नहीं लगाया । इसमेंसे पिछले दो तो अपने-अपने सूबेमें मंत्री पदपर भी रह चुके हैं । सार्वजनिक जांचका आजसे पहले बिना किसी निजी हानिके बहिष्कार किया गया है । मगर इससे बहिष्कारके कर्ता-धर्ताओंकी इज्जत या आचरणपर कभी हमला नहीं किया गया । मेरी रायमें अपना फैसला सुनाते समय मैसूर कोर्टके जज अपने कर्तव्यको भूल गये हैं । इससे श्री दासप्पाको कोई नुक्सान नहीं पहुंचा । उलटे वह मैसूरकी जनताकी नजरोंमें और ऊंचे चढ़ जाएंगे । मगर मैं यह दावेसे कह सकता हूं कि अपने पूर्वाग्रहोंके वश होकर जजसाहबने अपने आपको

नुकसान पहुंचाया है। इस तरह न्यायका मजाक पहले भी उड़ाया जा चुका है। (ह० से०, १३ .७.४०)

: ८४ :

मनोहर दीवान

एक परोपकारी पुरुष, मैं तो उनको महात्मा ही कहूंगा, मनोहर दीवान हैं। वे वर्धामें रहते हैं और विनोबा भावेके बड़े शिष्य हैं। विनोबाजी तो बहुत बड़े आदमी हैं। तो मनोहरके दिलमें हुआ कि चलो, कुछ-न-कुछ करें। तो उन्होंने कोढ़ियोंकी सेवा करनेका काम पसंद किया। विनोबाने भी उनको ऐसा करनेके लिए प्रेरणा दी। वे निर्लेप रहते हैं। पैसेकी उनको दरकार नहीं। वे डाक्टर तो नहीं हैं, लेकिन उन्होंने उसका काफी अभ्यास कर लिया है। काफी लोग उनकी मदद लेते हैं। (प्रा० प्र०, २३.१०.४७)

: ८५ :

गोपाल कृष्ण देवधर

श्री गोपाल कृष्ण देवधरके स्वर्गवाससे देश एक महान् समाज-सेवक और हरिजनोंका एक सुदृढ़ और विश्वसनीय बंधु गंवा बैठा। स्व० गोखलेकी स्थापित की हुई 'सर्वेण्ट्स आफ इंडिया सोसाइटी' के श्री देवधर संस्थापक सदस्योंमेंसे थे। प्रांतीय हरिजन-सेवक-संघके वे अध्यक्ष भी थे। देशमें

ऐसा एक भी दुर्भिक्ष नहीं पड़ा या ऐसी बाढ़ नहीं आई जहां उनकी याद न की गई हो। वे चाहते तो आसानीसे काफी पैसा पैदा कर सकते थे, पर उन्होंने तो गरीबीका ही बाना धारण किया, क्योंकि लोक-सेवकका जीवन-सिद्धांत ही गरीबी है। उनकी अथक कार्यशक्ति संक्रामक थी। जब भी उनकी समाज-सेवाकी मांग हुई, वे कभी उससे पीछे नहीं रहे। उनका जीवन एक निष्कलंक पवित्रताका जीवन था। अपने प्रिय पूना-सेवा-सदनके तो वे प्राण थे। उसके लिए उन्होंने इतनी अच्छी तरह परिश्रम किया कि एक छोटी-सी चीजसे बढ़ते-बढ़ते वह आज इतनी अच्छी संस्था बन गई है कि भारतवर्षमें जितनी भी इस प्रकारकी संस्थाएं हैं उनसे वह किसी तरह पीछे नहीं। दिवंगत आत्माके परिवारके साथ मैं सादर समवेदना प्रकट करता हूं। (ह० से०, २३.११.३५)

: ८६ :

दुर्गाबेन देसाई

श्रीमहादेव देसाईकी धर्मपत्नी प्रयागमें हैं। वे खुद भी स्वयंसेविका हुई हैं, सेवा करनेके लिए जगह-जगह जाती हैं, दूसरे स्वयंसेवकोंको खाना पकाकर खिलाती हैं और दूसरी तरहसे उनकी सहायता करती हैं, रोज चरखा कातती हैं। श्रीमहादेवभाईके गिरफ्तार होते ही उन्होंने मुझे एक पत्र भेजा, जिसे पढ़कर पाठक प्रसन्न होंगे। इसी खयालसे उसे यहां प्रकाशित करता हूं :—

"आप यह जानकर प्रसन्न होंगे कि आप और वे जो बात चाहते थे, वही हुई। उन्हें एक वर्षकी सजा और सौ रुपया जुर्माना हुआ। जुर्माना न दें तो एक मास अधिक कैद। यह समाचार तो आपको मिल

हो चुका होगा। मैं तो आपको सिर्फ इसीलिए यह लिख रही हूं कि आप मेरी चिंता न करें। इस समय तो मुझे कुछ भी दुःख नहीं हुआ, पर नहीं कह सकती, यह हालत कबतक कायम रहेगी; क्योंकि मन तो स्वभावतः ही चंचल ठहरा। इससे वह कभी सुख और कभी दुःख मानकर व्यर्थ दुःखी होता है।

देवदासभाई जबतक जेलके बाहर हैं और यहां काम कर रहे हैं तबतक तो मैं यहीं रहूंगी। उनके पकड़े जानेके बाद मैं आश्रम (सत्याग्रह आश्रम, साबरमती) आऊंगी।

यह पत्र कल लिखकर वैसा ही छोड़ दिया था। आज मैं और देवदासभाई उनसे मिलने गये थे। उसका हाल देवदासभाईने आपको लिखा ही है, अतएव उस विषयमें मैं कुछ नहीं लिख रही हूं। जेलमें उनके साथ जिस तरहका बर्ताव किया जाता है, उसका हाल जानकर मनके धर्मके अनुसार, मुझे कुछ दुःख हुआ। पर अब उसका असर बिलकुल नहीं है। जब-जब मैं सोचती हूं तब-तब यही मालूम होता है कि ऊपरसे उन्हें चाहे कितना ही कष्ट दिया जाय, पर यदि ईश्वरकी कृपा होगी तो उन्हें और मुझे उसके सहन करनेका बल प्राप्त होगा। आप मेरी चिंता न कीजिएगा। क्योंकि यदि आपकी लड़की ही इतनेसे दुःखसे दुःखी होकर रोने-पीटने लगे तो फिर आपको इस संग्राममें विजय ही कैसे प्राप्त हो। मैं आपसे इतना तो जरूर चाह सकती हूं कि आप यह आशीर्वाद दीजिए कि ईश्वर मुझे यह सहन करनेका बल दे।"

मेरी आशीष तो हुई है। पर मैं आशीर्वाद देने वाला कौन? भारतकी महिलाएं तो अपने ही तपोबलसे साहस प्राप्त कर रही हैं। एक-दो आदमी तो जेल गये ही नहीं हैं। कितने ही लोग गये हैं और बहुतोंकी धर्मपत्नियां हिम्मत और धीरज धारण कर रही हैं और खुशी-खुशी अपने पतिको तथा दूसरे रिश्तेदारोंको जेलमें भेज रही हैं और स्वयं भी

जानेको तैयार होती हैं । मुझे यह खबर मिल गई है कि श्री देसाईके साथ जो निष्ठुर व्यवहार किया जा रहा था।वह अब बंद कर दिया गया है। धीरज तथा विनययुक्त बर्तावसे अनुचित दुःखका निवारण हुए बिना रह ही नहीं सकता। पर ऐसा हो चाहे न हो, जेलके दुःख चाहे कितने ही भयानक क्यों न हों, उनको सहन किये बिना दूसरी गति ही नहीं है। (हिं० न० ८.१.२२)

: ८७ :

प्रागजी देसाई

एक भाई प्रागजी देसाई थे। उन्होंने अपने जीवनमें कभी धूप-जाड़ा नहीं सहा था। और यहां तो जाड़ा था, धूप थी और बारिशका मौसिम था। हमने अपना श्रीगणेश तो तंबूमें रहकर दिया था। मकान बँधकर तैयार हों तब उनमें सोयें। करीब दो महीनोंके अंदर मकान तैयार हो गये। मकान टीनके थे, इसलिए उनको बनानेमें कोई देरी नहीं लगी। आवश्यक आकार-प्रकारकी लकड़ी तैयार मिल सकती थी। केवल नाप-जोख कर टुकड़ेमात्र करना पड़ते। दरवाजे--खिड़कियां आदि ज्यादा नहीं बनाने थे। इसलिए इतने समयमें सभी मकान तैयार हो गये; पर इस काम-काजने भाई प्रागजीकी खूब खबर ले डाली। जेलकी बनिस्बत फार्मका काम जरूर ही अधिक सख्त था। एक दिन तो परिश्रम और बुखारके कारण वह बेहोश तक हो गये। पर वह यों इतनी जल्दी हारने वाले आदमी नहीं थे। यहां उन्होंने अपने शरीरको पूरी तरह मेहनत पर चढ़ा दिया और अंतमें इतनी शक्ति प्राप्त कर ली कि वह सबके साथ-साथ काम करने लग गये। (द० अ० स० १९२५)

: ८८ :

भूलाभाई देसाई

ब्रिटेन और भारतके परस्परके देन, राष्ट्रीय ऋणके संबंधमें जांच करनेके लिए महासमिति (आल इंडिया कांग्रेस कमेटी) ने जो समिति नियत की थी, उसकी रिपोर्ट, विशेषकर वर्तमान अवसरपर, एक अत्यंत महत्वका लेख है। राष्ट्रीय महासभा, कांग्रेसका कोई भी सेवक उसकी एक प्रति रखे बिना न रहेगा। श्री बहादुरजी, भूलाभाई देसाई, खुशाल शाह और कुमारप्पा अपने इस प्रेम---परिश्रमके लिए राष्ट्रके साभार अभिनंदन-के अधिकारी हैं। 'यंग इंडिया'के विदेशी पाठक जानते हैं कि श्री बहादुरजी और उसी तरह श्री भूलाभाई देसाई, दोनों ही एक बार एडवोकेट-जनरल थे। इन्होंने एडवोकेट-जनरलके पद का उपयोग किया है, यह बात यों ही छोड़ दी जाय तो दोनों धूमधामसे चलनेवाले धंधेके व्यवसायी और अनु-भवी कानून विशेषज्ञ हैं। एडवोकेट-जनरलके पदने इनकी प्रतिष्ठामें कुछ वृद्धि की है ऐसी कोई बात नहीं है। यह तो उनकी प्रतिष्ठा की और उनके व्यवसायमें उनका जो पद है, उसकी स्वीकृति-मात्र है। खुशाल शाह भारतप्रख्यात अर्थशास्त्री हैं, कितनी ही बहुमूल्य पुस्तकोंके लेखक हैं और बहुत वर्ष तक, आज अभी तक, बंबई यूनिवर्सिटीके अर्थशास्त्रके अध्यापक थे। ये तीनों सज्जन सदैव काममें रुके रहते हैं, इसलिये राष्ट्रीय महा-सभाके सौंपे हुए इस उत्तरदायित्वपूर्ण कार्यके लिए समय देना उनके लिए कुछ ऐसा-वैसा साधारण त्याग नहीं था।.....रिपोर्टके लेखकोंका यह परिचय मैंने इसलिए दिया है कि विदेशी पाठक जान सकें कि यह रिपोर्ट उथले राजनीतिज्ञोंका लिखा हुआ लेख नहीं, वरन जो लोग प्रचुर प्रतिष्ठावाले हैं और जो धांधलीबाज उपदेशक नहीं, वरन स्वयं जिस विषयके ज्ञाता हैं, उसीपर लिखनेवाले और अपने शब्दोंको

तौलकर व्यवहारमें लाने वालोंकी यह कृति है। (हिं० न०, ६.८.३१)

बारडोलीके किसानोंकी बहादुरीने और उनकी आफतों व मुसीबतोंने श्री भूलाभाई देसाई-जैसोंको जनताकी सेवाका काम संभाल लेनेकी प्रेरणा दी, वरना वे एक मशहूर सरकारी नौकर रहे होते और बंबई हाईकोर्टके जज बनकर उन्होंने अपना काम पूरा किया होता। कानूनके एक पंडितके नाते उनकी होशियारीके कारण जब आजाद हिंद फौजके कैदी रिहा कर दिए गये तो उनकी कीर्ति अपनी अंतिम सीमा तक पहुंच गई। उनके बेटे और उनकी बहूके शोकमें मैं और मेरे-जैसे दूसरे बहुतेरे उनके हिस्सेदार हैं। आशा है कि स्वर्गीय भूलाभाईमें देश-सेवाका जो प्रेम था, उसे विरासतमें पाकर वे दोनों अपने शोकको आनंदमें बदल डालेंगे। यही एक चीज है, जो जीवनको जीने योग्य बनाती है। (ह० से०, १२.५.४६)

: ८९ :

महादेव देसाई

पाठक यह जानकर खुश होंगे कि महादेव देसाईका स्वास्थ्य अब दिन-प्रतिदिन उन्नति करता जा रहा है। लगातार कई सालसे स्वास्थ्य पर जोर पड़नेके बाद विश्राम तो उन्हें लेना ही चाहिए था; पर वह नहीं ले सके। और मैंने भी आग्रह नहीं किया। अच्छा हुआ कि दयालु प्रकृतिने आकर उन्हें विश्राम लेनेके लिए बाध्य कर दिया, जिसे कि स्वेच्छा-पूर्वक लेनेको वह तैयार न होते। श्री राजकुमारी अमृतकौर उन्हें अपने घर शिमला ले गई हैं। वहां पहाड़ोंकी शुद्ध ताजी हवा तो है ही, पर इससे भी अधिक जो स्वास्थ्यप्रद चीज उन्हें वहां मिल रही है वह है राज-कुमारीकी प्रेमपूर्ण सेवा और उपचार। इससे निश्चय ही शिमलाके

शक्तिवर्द्धक जलवायुमें उनका स्वास्थ्य उन्नति करेगा। (ह० से०, २३.१०.३८)

... ...

महादेवकी अकस्मात मृत्यु हो गई। पहले जरा भी पता नहीं चला। रात अच्छी तरह सोये। नाश्ता किया। मेरे साथ टहले। सुशीला और जेलके डाक्टरोंने जो कुछ कर सकते थे किया; लेकिन ईश्वरकी मर्जी कुछ और थी। सुशीला और मैंने शवको स्नान कराया। शरीर शांतिसे पड़ा है, फूलोंसे ढका है, धूप जल रही है। सुशीला और मैं गीता-पाठ कर रहे हैं। महादेवकी योगी और देशभक्तकी भांति मृत्यु हुई है। दुर्गा, बाबला और सुशीलासे कहो, शोक करनेकी मनाई है। ऐसी महान् मृत्युपर हर्ष ही होना चाहिए। अंत्येष्टि मेरे सामने हो रही है। भस्म रख लूंगा। दुर्गाको सलाह दो कि आश्रममें रहे; लेकिन अगर वह जाना ही चाहे तो घरवालोंके पास जा सकती है। आशा है, बाबला बहादुरीसे काम लेगा और महादेवका सुयोग्य उत्तराधिकारी बननेके लिए अपनेको तैयार करेगा। सप्रेम, (आगा खां महलसे १५.८.४२को दिया तार)

... ...

भावना तो महादेवकी खुराक थी (का० क० ३)

... ...

महादेवका बलिदान कोई छोटी चीज नहीं है। अकेला भी वह बहुत काम करेगा। (का० क० १६.८.४२)

... ...

(बा कह रही थीं, "देखो, महादेव गये। ब्राह्मणकी मृत्यु हुई, अपशकुन है न। इतनी बड़ी ताकतके खिलाफ बापू लड़ रहे हैं, कैसे जीतेंगे!" बापूने सुना तो कहने लगे—)

"मैं इसे शुभ शकुन मानता हूं। शुद्धतम बलिदान हुआ है, इसका परिणाम अशुभ नहीं हो सकता।" (का० क०, २८.८.४२)

... ...

(आज 'बॉम्बे क्रानिकल' के सब पुराने अंक आगये। मालूम होता है, महादेवभाईकी मृत्युको देशने चुपचाप सह लिया है। यह चीज बापूको काफी चुभी है। घूमते समय कहने लगे—)

आखिर तो महादेव इनके जेलमें मरा है न? महादेवका खून इनके सिर है। मैं उस दिन गवर्नरको लिखने वाला था, मगर फिर काट डाला। जिन्दा रहा तो किसी दिन मैं जरूर उन्हें यह सुनाऊंगा कि महादेवकी मृत्युका कारण आप हैं। मैं मानता हूं कि वह जेल न आते तो कम-से-कम इस वक्त तो हर्गिज न मरते। बाहर वह कई तरहके कामोंमें उलझे रहते। यहां वह एक ही विचारमें डूबे रहे, एक ही चिंता उनके सिरपर सवार रही। वह उन्हें खागई। उनपर भावनाका कुछ इतना जोर पड़ा कि वह खतम हो गये। देशने कुछ भी नहीं किया। बैकुंठ मेहताकी श्रद्धांजलि तो आने ही वाली थी और बरेलवीकी भी। मगर महादेव तो सारे देशके थे और देशके लिए वह गये हैं। भगतसिंहकी मृत्युके बाद जब मैं लॉर्ड अर्विनसे समझौता करके करांची जा रहा था तो लोगोंके झुंड-के-झुंड हर स्टेशनपर मेरे पास आते थे और चिल्लाते थे, "लाओ भगतसिंहको!" इसी तरह इस बार भी वे सरकार-को कह सकते थे, "लाओ महादेवको!" सरकार लाती तो कहांसे? कह देती कि जो लोग इतने भावुक, इतने विक्षुब्ध और इतने संवेदनशील हैं; वे जेलमें आते ही क्यों हैं? न आएं—वगैरा।

(फिर बापू कहने लगे—)

मगर लोग शायद सोचते होंगे कि आज सरकारके साथ ऐसा घमासान युद्ध चल रहा है कि उसमें दूसरी किसी चीजका विचार करनेका अवकाश ही कहां रह जाता है?

(मैंने कहा, "और आपने भी तो तारमें लिखा था न कि जो किया जा सकता था, किया गया! इसके कारण भी लोग शान्त रह

गये होंगे। समझे होंगे कि यह तो स्वाभाविक मृत्यु थी, जो कहीं भी हो सकती थी।" बापूने कहा—)

सो तो है, लेकिन मृत्यु हुई तो सरकारके जेलमें न ? (का० क०, १०.९.४२)

. . . .

(शामको महादेवभाईके समाधि-स्थानसे लौट रहे थे तब बापू कहने लगे—)

यहां आ जाना मेरे लिए बहुत शांतिदायक है और उससे जो प्रेरणा मुझे लेनी होती है मैं ले लेता हूं।

(मैंने कहा, "अब आप महादेवभाईसे प्रेरणा लेते हैं, कभी वह आपसे लेते थे!" कहने लगे—)

क्यों नहीं, प्रेरणा तो एक बच्चेसे भी ले सकते हैं, और बच्चा चला जाता है, तो भी क्या? उसका स्मरण तो २४ घंटे चलता ही है। जो राजाजी ने कहा है वह बिलकुल सही है। महादेव मेरा अतिरिक्त शरीर था। कितनी दफा मैंने उसे मैक्सवैलके पास भेजा है, दूसरोंके पास भेजा है। मान लेता था कि महादेवको काम सौंपा है तो वह कर लेगा।" (का० क०, १८.९.४२)

(सुबह घूमते समय बापू कहने लगे—) महादेवको मेरा वारिस होना था; पर मुझे उसका वारिस होना पड़ा है। मीराबहनको महादेवभाईकी समाधिपर मेरा जाना खटकता है, मगर मेरे लिए वह बिलकुल-सहज बन गया है। मैं न जाऊं तो बेचैन हो जाऊं। वहां जाकर मैं कुछ करना नहीं चाहता, समय भी नहीं देना चाहता, मगर हो आता हूं, इतना ही मेरे लिए बस है। अगर मैं जिंदा रहा तो यह जमीन आगाखांसे मांग लूंगा। वह न दे, यह संभव हो सकता है। मगर किसी रोज तो हिंदुस्तान आजाद होगा। तब यह यात्राका स्थान बनेगा। मैं वहां जाता हूं तो महादेवके गुणोंका स्मरण करनेके लिए, उन्हें ग्रहण

करनेके लिए। मैं उसकी स्मृतिको खोना नहीं चाहता। और जिस तरहसे वह यहां मरा, उससे उसकी स्त्री और उसके लड़केके प्रति मेरी वफादारी भी मुझे बताती है कि मुझे वहां नियमित रूपसे जाना चाहिए। हो सकता है कि मेरी जिन्दगीमें यह जगह मुझे न मिल सके और इस जगहको यात्रा-स्थल बनते मैं न देख सकूं, मगर किसी-न-किसी दिन वह जरूर बनेगा, इतना मैं जानता हूं। आज तो मैं सब काम उसका काम समझकर करता हूं। बाहर जाऊंगा तब भी उसीका काम करूंगा। (का० क०, १०.९.४२)

. . . .

(सुबह समाधिसे लौटते समय बापू महादेवभाईवाली गीताजीके पन्ने उलट रहे थे। आखिरी पन्ने पर 'आउज बिल्ला'वाली आयत लिखी हुई थी। पूछने लगे—)

ये किसके अक्षर हैं? महादेवके या प्यारेलालके?

(मैंने बताया कि १ अगस्तको बम्बईसे चलते समय महादेवभाईने भाईको वह आयत लिख देनेको कहा था, सो भाईके अक्षर हैं। बापू कहने लगे—)

बस छः दिन उसने यह आयत गाई।

(फिर थोड़ा ठहरकर बोले—)

लगता ही नहीं है कि महादेव सदाके लिए गया। कल रातको स्वप्नमें वह लड़की . . कहती है, "महादेवभाई कहां हैं?" मैं उत्तर देता हूं, "बहन, मैं तो उसे स्मशानमें छोड़ आया हूं।" पीछे वह पागल-सी हो जाती है। कहती है, "लाओ महादेवभाईको! उसे वहां क्यों छोड़ आए?" (का० क०, २३.१२.४२)

. . . .

(भाईसे कहने लगे—) मान लो इस उपवासके कारण मैं लोप हो जाऊं तो तुम लोगोंसे मैं क्या आशा रक्खूंगा, यह समझ लो। महादेवकी

मैं भाटकी तरह स्तुति करता हूं, मगर मेरा मन उसकी शिकायत भी करता है। उसकी मिसाल संपूर्ण या आदर्श नहीं मानना चाहिए। वह इस विचारका जप करते-करते चला गया कि 'मैं बापूके बाद क्या कर सकता हूं ? बापूसे पहले चला जाऊं तो अच्छा है।' मगर उसे तो कहना चाहिए था कि 'नहीं, मुझे तो जिंदा रहना है और बापूका काम करना है।' यह दृढ़ संकल्प उसे मरनेसे रोक भी लेता। (का० क०, ६.२.४३)

... ...

मेरे विचारसे महादेवके चरित्रकी सबसे बड़ी खूबी थी, मौका पड़नेपर अपनेको भूलकर शून्यवत बनजानेकी उनकी शक्ति। (ह० से०, १२.८.४६)

... ...

जमनालाल, मगनलाल और महादेव—इनमेंसे हरएक अपने-अपने क्षेत्रमें अनूठे थे। मेरा खयाल है कि उनकी जगह दूसरे नहीं ले सकते। मगर मैं कहूंगा कि इन तीनोंमेंसे महादेव मुझमें पूरी तरह खो गया था। मैं यह कह सकता हूं कि मुझसे अलग उसकी कोई हस्ती ही नहीं रह गई थी।

महादेवकी एक बड़ी खूबी यह थी कि जो काम उन्हें सौंपा जाता था, उसे करनेके लिए वे सदा तैयार रहते और बड़े उत्साहसे करते थे। इसी तरह वे एक अच्छे लेखक, अच्छे रसोइया और अच्छे कुली बन सके थे। अक्सर जो लोग मेरे साथ काम करनेके लिए आते हैं, वे ऐसे ही बन जाते हैं। (ह० से०,.८.१८ ४६)

... ...

महादेव गुलाबका फूल है। (ह० से०, १८.८.४६)

... ...

वे मेरे बॉसवेल (जीवनी लिखनेवाले) बनना चाहते थे, फिर भी मुझसे पहले मरना चाहते थे। इससे बेहतर वे क्या कर सकते थे ? सो वे तो चले गये और मुझे उनकी जीवनी लिखनेके लिए छोड़ गये।....

बच्चे अपने मां-बापके पहले मरना चाहें तो इससे बढ़कर बेरहमी और क्या हो सकती है? यह उनका निरा स्वार्थ है । भले ही मैं दूसरोंको इस बातका यकीन न दिला सकूं लेकिन यह मैं जरूर महसूस करता हूं कि मौत कभी वक्तसे पहले नहीं आती दुनियामें अपना काम खत्म करनेसे पहले कोई मर्द या औरत कभी नहीं मरता । महादेवने पचास सालमें सौ बरसका काम पूरा कर डाला था । सो वह आराम करने चले गए, जिसपर उनका पूरा हक़ था । (ह० से० १८.८.४६)

... ...

महादेवदेसाईके मित्र और प्रशंसक उनके प्रिय काम करके ही उनकी बरसी मनाते हैं। वे बड़े शक्तिशाली पुरुष थे । वे सुंदर और सुडौल अक्षर लिखते थे । वे कई चीजोंसे प्यार करते थे । लेकिन उन सबमें चर्खेकी जगह पहली थी । एक कलाकार होनेके नाते वे नियमसे बहुत बढ़िया कताई करते थे । कामकाजके भारी बोझसे थककर चूर हो जाने पर भी वे हमेशा कातनेका वक्त निकाल लेते थे । चर्खा उन्हें फिर तरो-ताजा बना देता था ।

उनकी कई खूबियोंमें उनके बेजोड़ अक्षर भी कोई कम महत्व नहीं रखते थे । उसमें कोई उनका सानी न था । रामदासस्वामीने अपने एक दोहेमें खूबसूरत अक्षरोंकी चमकीले मोतियोंसे तुलना की है । महा-देवकी कलमसे निकले हुए अक्षर खरे मोती जैसे होते थे ।

उनकी तीसरी खूबी थी, हिंदुस्तानकी भाषाओंसे उनका प्रेम । आप सबको भी यह गुण अपनेमें पैदा करनेकी कोशिश करनी चाहिए । वे भाषाशास्त्री थे । बंगाली, मराठी और हिंदीपर उनका पूरा अधिकार था और वे उर्दू भी सीख चुके थे । जेलमें उन्होंने ख्वाजा साहब एम० ए० मजीदसे, जो उनके साथ कैद थे, फारसी और अरबी सीखनेकी भी कोशिश की थी। (ह०से० ८.९.४६)

: ९० :

जयरामदास दौलतराम

मुझे जिनके बारेमें चेतावनी दी गई है उनमें सबसे आखिरी नंबर है श्री जयरामदास और डा० चोइथरामका। जयरामदासके नामपर तो मैं कसम खा सकता हूं। इनसे अधिक सच्चा आदमी मुझे अपनी जिंदगी-में अभी नहीं मिला। जेलमें इनके चाल-चलनपर हम लोग लट्टू थे। उनकी नेकचलनीकी सीमा न थी। इनके दिलमें मुसलमानोंके विरुद्ध रत्तीभर भाव नहीं। डा० चोइथरामसे मेरी जान-पहचान तो पहलेसे है, पर मैं उन्हें पूरी तरह नहीं जानता; परंतु जितना मैं उन्हें जानता हूं, उतने परसे मैं उनका परिचय सिवा इसके दूसरी तरह देनेसे इन्कार करता हूं कि वे हिंदू मुसलमान एकताके सभी हामी हैं। (हिं० न० १.६.२४)

: ९१ :

आनंदशंकर ध्रुव

श्रीआनंदशंकर भाईकी क्षति न केवल गुजरातको अपितु काशी हिंदू विश्वविद्यालयकी उनकी वर्षोंकी अमूल्य सेवाके कारण यू० पी० को भी उतनी ही मालूम होगी। आनंदशंकर भाईकी जोड़ ढूंढ़ना असंभव नहीं तो कठिन तो है ही। वे अंत तक शिक्षक और शिक्षा-शास्त्री ही रहे। उनकी मृत्युसे अनेक विद्यार्थियोंने अपना निजी मित्र गंवाया है। मालवीय जीके तो वे दाहिने हाथ ही थे। उनकी इस समयकी मनोदशाकी तो हम कल्पना ही कर सकते हैं।

परंतु आनंदशंकरभाई केवल शिक्षा-शास्त्री ही न थे। उनकी रुचि अनेक प्रकारकी थी। वे राजनीतिके गहरे अभ्यासी थे। स्वतंत्रताके पुजारी थे। समाज-सुधारक थे। सनातनियोंके साथ उनकी खूब पटती थी, क्योंकि उनके बहुतसे रिवाजोंका वे अनुसरण करते थे। परंतु उनकी बुद्धि और उनका हृदय हमेशा सुधारकोंके साथ ही था। वे निर्भयतासे अपने विचार व्यक्त करते थे। संस्कृतके विद्वान् और शास्त्रोंके जानकार होनेकी वजहसे उनके विचारोंका सब आदर करते थे। हिंदूधर्मको उन्होंने शोभित किया था।

स्वयं मुझे तो उनकी सहायता मिला ही करती थी। वे मजदूरों और मालिकोंके एक समान मित्र थे और दोनोंके विश्वासपात्र थे। इसलिए वे दोनोंकी अच्छी सेवा कर सके थे।

आनंदशंकर भाईके कुटुंबी यह समझें कि उनके इस शोकमें बहुतेरे उनके साथ हैं, क्योंकि उन्होंने अपने कुटुंबका बहुत विस्तार किया था। (ह० से०, १९.४.४२)

: ९२ :

नटेसन

यह कहें तो अत्युक्ति न होगी कि इस समय प्रवासी भारतवासियोंके दुखोंपर विचार करनेवाले, उनकी सहायता करनेवाले, उनके विषयमें उचित रीतिसे और ज्ञानपूर्वक लिखनेवाले सारे भारतवर्षमें अकेले नटेसन ही थे। मेरे और उनके बीच बराबर नियमित रूपसे पत्र-व्यवहार चल रहा था। जब ये देशनिकालेकी सजा पाये हुए भाई मदरास पहुंचे तब मि० नटेसनने उनकी हर तरहसे सेवा-सहायता की। भाई नायडू-

जैसे समझदार आदमी उनके साथमें थे। इसलिए मि० नटेसनको भी काफी सहायता मिली। स्थानीय चंदा एकत्रकर मि० नटेसनने उनकी इस कदर सेवा की कि उन्हें यह याद तक नहीं होने पाया कि वे घर-बार छोड़कर देश-निकालेकी सजामें आये थे। (द० अ० स०१९२५)

: ९३ :

गुलजारीलाल नन्दा

गुजरातमें ओतप्रोत हो जानेवाला प्यारेलालकी तरह यह दूसरा पंजाबी है। प्यारेलालसे भी एक तरहसे बढ़कर है, क्योंकि प्यारेलालके रास्तेमें आनेवाला कोई नहीं है। इसके सामने स्त्री-बच्चे वगैरह बहुतोंका विरोध है और यह आदमी बड़ी व्यवस्था-शक्तिवाला और सत्यका जबरदस्त पुजारी है। (म० डा०)

: ९४ :

चार निडर नवयुवक

इस लोकेशनका कब्जा म्युनिसिपैलिटीने ले तो लिया; परंतु तुरंत ही हिंदुस्तानियोंको वहांसे हटाया नहीं था। हां, यह तय जरूर हो गया था कि उन्हें दूसरी अनुकूल जगह देदी जायगी। अबतक म्युनिसिपैलिटी वह जगह निश्चित न कर पाई थी। इस कारण भारतीय लोग उसी 'गंदे' लोकेशनमें रहते थे। इससे दो बातोंमें फर्क हुआ। एक तो यह

कि भारतवासी मालिक न रहकर सुधार-विभागके किरायेदार बने और दूसरे गंदगी पहलेसे अधिक बढ़ गई। इससे पहले तो भारतीय लोग मालिक समझे जाते थे। इससे वे अपनी राजीसे नहीं तो डरसे ही, कुछ-न-कुछ तो सफाई रखते थे; किंतु अब 'सुधार' का किसे डर था? मकानोंमें किरायेदारोंकी भी तादाद बढ़ी और उसके साथ ही गंदगी और अव्यवस्थाकी भी बढ़ती हुई।

यह हालत हो रही थी, भारतवासी अपने मनमें झल्ला रहे थे, कि एकाएक 'काला प्लेग' फैल निकला। यह महामारी मारक थी। यह फेफड़ेका प्लेग था और गांठवाले प्लेगकी अपेक्षा भयंकर समझा जाता था। किंतु खुशकिस्मतीसे प्लेगका कारण यह लोकेशन न था, बल्कि एक सोनेकी खान थी। जोहान्सबर्गके आसपास सोनेकी अनेक खानें हैं। उनमें अधिकांश हब्शी लोग काम करते हैं। उनकी सफाईकी जिम्मेदारी थी सिर्फ गोरे मालिकोंके सिर। इन खानोंपर कितने ही हिंदुस्तानी भी काम करते थे। उनमेंसे तेईस आदमी एकाएक प्लेगके शिकार हुए और अपनी भयंकर अवस्था लेकर वे लोकेशनमें अपने घर आए।

इन दिनों भाई मदनजीत 'इंडियन ओपीनियन' के ग्राहक बनाने और चंदा वसूल करने यहां आये हुए थे। यह लोकेशनमें चक्कर लगा रहे थे। वह काफी हिम्मतवर थे। इन बीमारोंको देखते ही उनका दिल टूक-टूक होने लगा। उन्होंने मुझे पेंसिलसे लिखकर एक चिट भेजी, जिसका भावार्थ यह था:

"यहां एकाएक काला प्लेग फैल गया है। आपको तुरंत यहां आकर कुछ सहायता करनी चाहिए, नहीं तो बड़ी खराबी होगी। तुरंत आइए।"

मदनजीतने बेधड़क होकर एक खाली मकानका ताला तोड़ डाला और उसमें इन बीमारोंको लाकर रक्खा। मैं साइकिलपर चढ़कर लोके-

शनमें पहुचा। वहांसे टाउन-क्लर्कको खबर भेजी और कहलाया कि किस हालतमें मकानका ताला तोड़ना पड़ा।

× × ×

डाक्टर विलियम गाडफ्रे जोहांसबर्गमें डाक्टरी करते थे। वह खबर मिलते ही दौड़े आए और बीमारोंके डाक्टर और परिचारक दोनों बन गये; परंतु बीमार थे तेईस और सेवक थे हम तीन। इतनेसे काम चलना कठिन था।

अनुभवोंके आधारपर मेरा यह विश्वास बन गया है कि यदि नीयत साफ हो तो संकटके समय सेवक और साधन कहीं-न-कहींसे आ जुटते हैं। मेरे दफ्तरमें कल्याणदास, माणिकलाल और दूसरे दो हिंदुस्तानी थे। आखिरी दोके नाम इस समय मुझे याद नहीं हैं। कल्याणदासको उसके बापने मुझे सौंप रखा था। उनके जैसे परोपकारी और केवल आज्ञा-पालनसे काम रखनेवाले सेवक मैंने वहां बहुत थोड़े देखे होंगे। सौभाग्यसे कल्याणदास उस समय ब्रह्मचारी थे। इसलिए उन्हें मैं कैसे भी खतरेका काम सौंपते हुए कभी न हिचकता। दूसरे व्यक्ति माणिकलाल मुझे जोहान्सबर्गमें ही मिले थे। मेरा खयाल है कि वह भी कुंवारे ही थे। इन चारोंको चाहे कारकुन कहिए, चाहे साथी या पुत्र कहिए, मैंने इसमें होम देनेका निश्चय कर लिया। कल्याणदाससे तो पूछनेकी जरूरत ही नहीं थी, और दूसरे लोग पूछते ही तैयार हो गये। "जहां आप तहां हम"—यह उनका संक्षिप्त और मीठा जवाब था।

मि० रीचका परिवार बड़ा था। वह खुद तो कूद पड़नेके लिए तैयार थे; किंतु मैंने ही उन्हें ऐसा करनेसे रोका। उन्हें इस खतरेमें डालनेके लिए मैं बिलकुल तैयार न था, मेरी हिम्मत ही नहीं होती थी। अतएव उन्होंने ऊपरका सब काम सम्हाला।

शुश्रूषाकी यह रात भयानक थी। मैं इससे पहले बहुत-से रोगियोंकी सेवा-शुश्रूषा कर चुका था। परंतु प्लेगके रोगीकी सेवा करनेका अवसर

मुझे काफी न मिला था। डाक्टरोंकी हिम्मतने हमें निडर बना दिया था। रोगियोंकी शुश्रूषाका काम बहुत न था। उन्हें दवा देना, दिलासा देना, पानी-वानी दे देना, उनका मैला वगैरा साफ कर देना—इसके सिवा अधिक काम न था।

इन चारों नवयुवकोंके प्राणपणसे किये गए परिश्रम और ऐसे साहस और निडरताको देखकर मेरे हर्षकी सीमा न रही।

डाक्टर गाडफ्रेकी हिम्मत समझमें आ सकती है, मदनजीतकी भी समझमें आ जाती है—पर इन नवयुवकोंकी हिम्मतपर आश्चर्य होता है। ज्यों-त्यों करके रात बीती। जहां तक मुझे याद पड़ता है, उस रात तो हमने एक भी बीमारको नहीं खोया। (आ० क० १९२७)

: ६५ :

दादाभाई नवरोजी

दादाभाईका एक पवित्र स्मरणीय प्रसंग लिख देना चाहता हूं। दादाभाई कमिटीके अध्यक्ष नहीं थे, तथापि हमें तो यही मालूम हुआ कि रुपये आदि इन्हींके द्वारा भेजना शोभा देगा। फिर वे भले ही हमारी ओरसे अध्यक्षको दे दिया करें। पर पहले-पहल ही जो रुपये उन्हें भेजे गये, उन्हें उन्होंने लौटा दिया और लिखा कि रुपए आदि भेजनेका कमिटी-संबंधी काम हमें सर विलियम वेडरबर्नके द्वारा ही करना चाहिए। दादाभाईकी सहायता तो थी ही; पर कमिटीकी प्रतिष्ठा सर विलियम वेडरबर्नके द्वारा काम लेने हीसे बढ़ती। मैंने यह भी देखा कि यद्यपि दादाभाई इतने वयोवृद्ध थे, तथापि पत्र आदि भेजनेके काममें बड़े ही नियमित थे। अगर उनके पास लिखनेके लिए

और कुछ न होता तो कम-से-कम हमारे पत्रकी पहुंच तो लौटती डाकसे अवश्य ही आ पहुंचती। उस पत्रमें भी आश्वासनके दो-एक शब्द रहते। ऐसे भी वे स्वयं ही लिखते और उन पहुंचनेवाले पत्रोंको भी अपने टिश्यू पेपर बुकमें छाप लेते। (द० अ० स०; १९२५)

. . . .

दादाभाई नवरोजीकी सौवीं जयंती आगामी ४ सितंबरको पड़ती है। श्रीभरूचाने समयपर ही उसकी याद हमें दिला दी है। हम दादाभाईको भारतका पितामह कहते थे। दादाभाईने अपना सारा जीवन भारतके अर्पण कर दिया था। दादाभाईने भारतकी सेवाको एक धर्म बना डाला था। स्वराज्य शब्द उन्हींसे हमें मिला है। वे भारतके गरीबोंके मित्र थे। भारतकी दरिद्रताका दर्शन पहले-पहल दादाभाईने ही हमें कराया था। उनके तैयार किये अंकोंको आजतक कोई गलत साबित न कर पाया। दादाभाई हिंदू, मुसलमान, पारसी, ईसाई किसीमें भेद-भाव न रखते थे उनकी दृष्टिमें वे सब भारतकी संतान थे। और इसलिए सब समान रूपसे उनकी सेवाके पात्र थे। उनका यह स्वभाव उनकी दो पौत्रियोंमें सोलहों आना दीख पड़ता है।

इस महान् भारत-सेवककी शताब्दी हम किस तरह मनावें? सभाएं तो होंगी ही, वह भी अकेले शहरोंमें नहीं, बल्कि देहातमें भी, जहां-जहां तक महासभाकी आवाज पहुंचती है, वहां सब जगह। वहां करेंगे क्या? उनकी स्तुति? यदि यही करना हो तो फिर भाट-चारणोंको बुलाकर, उनकी कल्पना-शक्तिका तथा उनकी वाणीके प्रवाहका उपयोग करके क्यों न बैठ रहें? पर यदि हम उनके गुणोंका अनुकरण करना चाहते हों तो हमें उनकी छानबीन करनी होगी और अपनी अनुकरण-क्षमताकी नाप निकालनी होगी।

दादाभाईने भारतकी दरिद्रता देखी। उन्होंने सिखाया कि 'स्वराज्य'

उसकी औषधि है। परंतु स्वराज्य प्राप्त करनेकी कुंजी तलाश करनेका काम वह हमारे जिम्मे छोड़ गये। दादाभाईकी पूजाका मुख्य कारण दादाभाईकी देशभक्ति थी और उस भक्तिमें वे बड़े लीन हो गये थे।

हम जानते हैं कि स्वराज्य प्राप्त करनेका सबसे बड़ा साधन चरखा है। भारतकी दरिद्रताका कारण है भारतके किसानोंका सालमें छः या चार मास तक बेकार रहना। और यदि यह अनिवार्य बेकारी ऐच्छिक हो जाय अर्थात् काहिली हमारा स्वभाव बन बैठे तो फिर इस देशकी मुक्तिका कोई ठिकाना नहीं। यही नहीं, बल्कि सर्वनाश इसका निश्चित भविष्य है। उस काहिलीको भगानेका एक ही उपाय है--चरखा। अतएव चरखा-कार्यको प्रोत्साहित करनेवाला हरेक कार्य दादाभाईके गुणोंका अनुकरण है।

चरखेका अर्थ है खादी; चरखेका अर्थ है विदेशी कपड़ेका बहिष्कार; चरखेका अर्थ है गरीबोंके झोंपड़ोंमें ६० करोड़ रुपयोंका प्रवेश।

अखिल-भारत-देशबंधु स्मारकके लिए भी चरखा ही तजवीज हुआ है। अतएव इस कोषके लिए उस दिन द्रव्य एकत्रित करना मानो दादाभाईकी जयंती ही मनाना है। इसलिए उस दिन एकत्र होकर लोग विदेशी कपड़ोंका सर्वथा त्याग करें। सिर्फ हाथ-कते सूतकी खादी पहनें, निरंतर कम-से-कम आधा घंटा सूत कातनेका निश्चय दृढ़ करें और खादी-प्रचारके लिए धन एकत्र करें। कपास पैदा करनेवाले अपनी जरूरतका कपास घरमें रख लें।

परंतु जिसे चरखेका नाम ही पसंद न हो वह क्या करे? उसके लिए मैं क्या उपाय बताऊं? जिसे स्वराज्यका नाम तक न सुहाता हो उसे मैं शताब्दी मनानेका क्या उपाय सुझाऊं? उसे अपने लिए खुद ही कोई उपाय खोज लेना चाहिए। मेरी सूचना सार्वजनिक है। यही हो भी सकता है। दादाभाईके अन्य गुणोंकी खोज करके कोई उनका

अनुकरण चाहे तो जुदी बात है। वैसे दूसरे तरीकेसे जयंती मनानेका उसे हक है। अथवा फर्ज कीजिए, शहरोंमें स्वराज्यवादी दल कोई खास बात करना चाहे तो वह अवश्य करे। मैं तो सिर्फ वही बात बता सकता हूं जिसे क्या शहराती और क्या देहाती, क्या वृद्ध और क्या बालक, क्या स्त्री और क्या पुरुष, क्या हिंदू और क्या मुसलमान, सब कर सकते हैं।

यदि हम लोग मेरी तजवीजके अनुसार ही दादाभाईकी जयंती मनाना चाहते हों तो हमें आजसे ही तैयारी करनी चाहिए। आजसे हम उसके लिए चरखा चलाने लग जायं। आज हीसे हम उसके निमित्त खादी उत्पन्न करें और ऐसी सभाएं स्थान-स्थानपर करें जो हमें तथा देशको शोभा दें। (हि० न०, ६.८.२५)

. . . .

दूसरे, जिन कानूनोंको मैंने पढ़ा उनमें भारतवर्षके कानूनोंका नाम तक न था। न यह जाना कि हिंदू-शास्त्र तथा इस्लामी कानून क्या चीज है। अर्जी-दावा तक लिखना न जानता था! मैं बड़ी दुविधामें पड़ा। फीरोजशाह मेहताका नाम मैंने सुना था। वह अदालतमें सिंह-समान गर्जना करते हैं। यह कला वह इंग्लैंडमें किस प्रकार सीखे होंगे? उनके जैसी निपुणता इस जन्ममें तो नहीं आनेकी, यह तो दूरकी बात है; किंतु मुझे तो यह भी जबरदस्त शक था कि एक वकीलकी हैसियतसे मैं पेट पालनेतकमें भी समर्थ हो सकूंगा या नहीं!

यह उथल-पुथल तो तभी चल रही थी, जब मैं कानूनका अध्ययन कर रहा था। मैंने अपनी यह कठिनाई अपने एक-दो मित्रोंके सामने रखी। एकने कहा—दादाभाईकी सलाह लो। दादाभाईके नाम परिचय-पत्रका उपयोग मैंने देरसे किया। ऐसे महान् पुरुषसे मिलने जानेका मुझे क्या अधिकार है? कहीं यदि उनका भाषण होता तो मैं सुनने चला जाता और एक कोनेमें बैठकर आंख-कानको तृप्त करके वापस लौट आता।

उन्होंने विद्यार्थियोंके संपर्कमें आनेके लिए एक मंडलकी स्थापना की थी। उसमें मैं जाया करता। दादाभाईकी विद्यार्थियोंके प्रति चिंता और दादाभाईके प्रति विद्यार्थियोंके आदर-भाव देखकर मुझे बड़ा आनंद होता। आखिर हिम्मत बांधकर वह पत्र एक दिन दादाभाईको दिया। उनसे मिला। उन्होंने कहा—"तुम जब कभी मिलना चाहो और सलाह-मशविरा लेना चाहो, जरूर मिलना।" लेकिन मैंने उन्हें कभी तकलीफ न दी। बगैर जरूरी कामके उनका समय लेना मुझे पाप मालूम हुआ। इसलिए उस मित्रकी सलाहके अनुसार, दादाभाईके सामने अपनी कठिनाइयोंको रखनेकी मेरी हिम्मत न हुई। (आ० क०, १९२७)

(मद्यनिषेध विरोधी शिष्टमंडलसे बातचीत करते हुए गांधीजीने कहा—)

शराबबंदी मुझे सिखानेवाले स्व० दादाभाई नवरोजी थे। मद्यनिषेध और मितपानके बीच भेद करना भी उन्होंने ही मुझे सिखाया था। (ह० से०, ७.६.३९)

: ९६ :

हरदयाल नाग

उन्होंने अनासक्तियोग साधा है। (म० डा० १०.७.३२)

. . . .

प्रिय हरदयाल बाबू,

आपका पत्र पाकर हम सबको बहुत आनंद हुआ। इतनी पकी उमरमें आपने तकली सीखी, यह जानकर मुझे आपसे ईर्षा होती है। और यह भी बड़ी खुशीकी बात है कि आपका वजन १६ पौंड बढ़ गया।

सेवा करनेके लिए आप बहुत वर्ष जियें ! आपके और आपकी तंदुरुस्तीके बारेमें हम बहुत बार बातें करते हैं। हम सबका नमस्कार। (म० डा०, ५.८.३२)

... .

ऐन मौकेपर सच्चा संदेश भेजनेमें आप हमेशा नियमित रहे हैं। इतनी उम्रमें इतना उत्साह दिखाकर आप देशके नौजवानोंको शरमाते हैं। अभीके जैसा ही जोश कायम रखकर ईश्वर आपसे सौ बरस काम कराए। (म० डा०, १०.१०.३२)

: ९७ :

नागप्पा

ट्रांसवालका जाड़ा बड़ा सख्त होता है। जाड़ा इतना भयंकर पड़ता था कि सुबह काम करते-करते हाथ-पैर ठिठुर जाते थे। ऐसी स्थितिमें कितने ही कैदियोंको एक छोटी-सी जेलमें रखा गया, जहां उन्हें कोई मिलने भी न पाए। इस दलमें नागप्पा नामक एक नौजवान सत्याग्रही था। उसने जेलके नियमोंका पालन किया। उसे जितना काम दिया गया, सभी कर डाला। सुबह, पौ फटते ही, सड़कोंपर मिट्टी डालनेको वह जाता। नतीजा यह हुआ कि उसे फेफड़ेका सख्त रोग हो गया और अंतमें उसने अपने प्यारे प्राण अर्पित कर दिये। नागप्पाके साथी कहते हैं कि अंत समय तक उसे लड़ाईकी ही धुन थी। जेल जानेसे उसे कभी पश्चात्ताप नहीं हुआ। देश-कार्य करते-करते आई मृत्युका उसने एक मित्रकी तरह स्वागत किया। हमारे नापसे नापा जाय तो नागप्पाको निरक्षर ही कहना पड़ेगा। अंग्रेजी, जुलु आदि भाषाएं वह अपने अभ्यासके कारण बोल सकता

था, कुछ-कुछ अंग्रेजी लिख भी सकता था। पर विद्वानोंकी पंक्तिमें तो उसे कदापि नहीं रखा जा सकता था। फिर भी नागप्पाके धीरज, उसकी शांति, देश-भक्ति और मौतकी घड़ी तक दिखाई गई उसकी दृढ़तापर विचार किया जाय तो कहना होगा कि उसमें किसी ऐसी बातकी न्यूनता न थी कि जिसकी हमें उससे आशा करनी चाहिए। हमें बहुत बड़े-बड़े विद्वान नहीं मिले; पर फिर भी ट्रांसवालका युद्ध रुका नहीं। यदि नागप्पा जैसे शूर सिपाही हमें नहीं मिलते तो क्या वह युद्ध चल सकता था ? (द० अ० स०, १९२५)

: ९८ :

थंबी नायडू

थंबी नायडू तामिल सज्जन थे। उनका जन्म मारीशसमें हुआ था। उनके माता-पिता मद्रास इलाकेसे वहां आजीविकाके लिए गये हुए थे। श्री नायडू एक सामान्य व्यापारी थे। उन्होंने कोई भी शिक्षा पाठशालामें नहीं पाई। पर उनका अनुभव-ज्ञान बड़े ऊंचे दर्जेका था। अंग्रेजी अच्छी तरह बोल और लिख भी सकते थे, हालांकि भाषा-शास्त्रकी दृष्टिसे उसमें वे अवश्य गलतियां करते थे। तामिल भाषाका ज्ञान भी अनुभवसे ही प्राप्त किया था। हिंदुस्तानी अच्छी तरह समझ लेते और बोल भी सकते थे। तेलगूका भी कुछ ज्ञान रखते थे। पर हिंदी और तेलगूकी लिपियोंका ज्ञान उन्हें जरा भी न था। मारीशसकी भाषा भी, जिसका नाम क्रीओल है और जो अपभ्रष्ट फ्रेंच कही जा सकती है, उन्हें बहुत अच्छी तरह अवगत थी। इतनी भाषाओंका ज्ञान दक्षिण अफ्रीकामें कोई आश्चर्य-जनक बात न थी। दक्षिण अफ्रीकामें आपको ऐसे सैकड़ों भारतीय मिलेंगे

जिन्हें इन सभी भाषाओंका मामूली ज्ञान है। और इन सबके अतिरिक्त हबशियोंकी भाषाका ज्ञान तो उन्हें अवश्य ही होता है। इन सभी भाषाओंका ज्ञान वे अनायास प्राप्त करते हैं कर भी सकते हैं। इसका कारण मैंने यह देखा कि विदेशी भाषाके द्वारा शिक्षा प्राप्त करते-करते उनके दिमाग थके हुए नहीं होते। उनकी स्मरण-शक्ति तीव्र होती है। उन भिन्न-भिन्न भाषा-भाषियोंके साथ बोल-बोलकर और अवलोकन करके ही वे उन भाषाओंका ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। इससे उनके दिमागको जरा भी कष्ट नहीं होता, बल्कि इस रोचक व्यायामके कारण उनकी बुद्धि-का स्वाभाविक विकास ही होता है। यही हाल थंबी नायडूका हुआ। उनकी बुद्धि भी बहुत तीव्र थी। नवीन प्रश्नोंको वे बड़ी फुर्तीके साथ समझ लेते। उनकी हाजिरजवाबी आश्चर्यजनक थी। भारत कभी नहीं आए थे पर फिर भी उनका उस पर अगाध प्रेम था। स्वदेशाभिमान उनकी नस-नसमें भरा हुआ था। उनकी दृढ़ता चेहरेपर ही चित्रित थी। उनका शरीर बड़ा मजबूत और कसा हुआ था। मेहनतसे कभी थकते ही न थे। कुर्सीपर बैठकर नेतापन करना हो तो उस पदकी भी शोभा बढ़ा दें। पर साथ ही हरकारेका काम भी उतनी ही स्वाभाविक रीतिसे वे कर सकते थे। सिरपर बोझा उठाकर बाजारसे निकलनेमें थंबी नायडू जरा भी न शरमाते थे। मेहनतके समय न रात देखते, न दिन। कौमके लिए अपने सर्वस्वकी आहुति देनेके लिए हर किसीके साथ प्रतिस्पर्धा कर सकते थे। अगर थंबी नायडू हदसे ज्यादा साहसी न होते और उनमें क्रोध न होता तो आज वह वीर पुरुष ट्रांसवालमें काछलियाकी अनु-पस्थितिमें आसानीसे कौमका नेतृत्व ग्रहण कर सकता था। ट्रांसवालके युद्धके अंत तक उनके क्रोधका कोई विपरीत परिणाम नहीं हुआ था, बल्कि तबतक उनके अमूल्य गुण जवाहिरोंके समान चमक रहे थे। पर बादमें मैंने देखा कि उनका क्रोध और साहस प्रबल शत्रु साबित हुए और उन्होंने उनके गुणोंको छिपा दिया। पर कुछ भी हो, दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रह-

युद्धमें थंबी नायडूका नाम हमेशा पहले ही वर्गमें रहेगा । (द० अ० स०, १९२५)

: ६६ :

पी० के० नायडू

देश-निकालेकी सजा पाये हुए भाइयोंके विषयमें यही तय हुआ कि उनके लिए वह सब किया जाय जो सहानुभूति और हमदर्दी कर सकती है । उनको आश्वासन दिया गया कि उनकी सहायताके लिए भारतमें यथाशक्ति व्यवस्था की जायगी । पाठकोंको यह स्मरण रखना चाहिए कि इनमेंसे अधिकांश तो गिरमिट-मुक्त ही थे । भारतमें कोई रिश्तेदार वगैरा उन्हें नहीं मिल सकते थे । कितनोंका तो जन्म ही अफ्रीका-का था । सबको भारतवर्ष विदेशके समान मालूम होता था । इस तरहके निराधार मनुष्योंको भारतके किनारेपर उतारकर उन्हें यहां-वहां भटकनेके लिए छोड़ देना तो जघन्य दुष्टता होती । इसलिए उनको यह विश्वास दिलाया गया कि भारतमें उनके लिए पूरी व्यवस्था कर दी जायगी ।

यह सब कर देनेपर भी उन्हें तबतक शांति कैसे मिल सकती थी, जब-तक कि कोई खास मददगार उनके साथ न कर दिया जाय ? देश-निकाले-की सजा पानेवालोंका यह पहला ही दल था । स्टीमर छूटनेको कुछ ही घंटोंकी देरी थी । पसंदगी करनेके लिए समय नहीं था । साथियोंमेंसे भाई पी० के० नायडूपर मेरी नजर गई । मैंने पूछा—

"इन गरीब भाइयोंको भारत छोड़नेके लिए आप जा सकते हैं ?"

"बड़ी प्रसन्नताके साथ ।"

"पर स्टीमर तो अभी खुलने ही को है ।"

"तो मुझे कौन देरी है ?"

"पर आपके कपड़े वगैरह और खर्चा?"

"कपड़े तो शरीरपर हैं ही। रही खर्चेकी बात, सो तो स्टीमरमें ही मिल जायगा।"

मेरे हर्ष और आश्चर्यकी सीमा न रही। पारसी रुस्तमजीके मकानपर यह बातचीत हुई थी। वहींसे उनके लिए कुछ कपड़े, कंबल वगैरा मांग-मूंग कर उन्हें रवाना कर दिया।

'देखिए भाई, राहमें इन भाइयोंको अच्छी तरह संभालकर ले जाइए। इनको सुलाकर फिर आप सोइए और खिलाकर खाइए। मदरासके मि० नटेसनके नाम मैं तार भेज देता हूं। वह जैसा कहें वही कीजिए।'

"एक सच्चा सिपाही बननेको मैं कोशिश करूँगा।" यह कहकर वह निकल पड़े। मुझे निश्चय हो गया कि जहां ऐसे-ऐसे वीर पुरुष हैं, वहां कभी हार हो ही नहीं सकती। भाई नायडूका जन्म दक्षिण अफ्रिकामें ही हुआ था। उन्होंने कभी भारतवर्षका दर्शन तक नहीं किया था। (द० अ० स० १९२५)

: १०० :

श्रीमती सरोजिनी नायडू

सरोजिनीदेवी आगामी वर्षके लिए महासभाकी सभानेत्री निर्वाचित हो गईं। यह सम्मान उनको पिछले वर्ष ही दिया जाने वाला था। बड़ी योग्यता द्वारा उन्होंने यह सम्मान प्राप्त किया है। उनकी असीम शक्तिके लिए और पूर्व और दक्षिण अफ्रीकामें राष्ट्रीय प्रतिनिधिके रूपमें की गई महान सेवाओंके लिए, वे इस सम्मानकी पात्र हैं और आजकलके दिनोंमें जब कि स्त्री-जातिके अंदर भारी जागृति हो रही है, स्वागत-

कारिणी-समितिका भारतवर्षकी एक सर्वोत्तम प्रतिभाशालिनी पुत्रीको सभापति चुनना भारतवर्षकी स्त्री-जातिका समुचित सम्मान करना है। उनके सभापति चुने जानेसे हमारे प्रवासी देशभाइयोंको पूर्ण संतोष होगा और इससे उनके अंदर वह साहस पैदा होगा, जिससे वे अपने सामने उपस्थित लड़ाईको लड़ सकेंगे। राष्ट्रद्वारा दिये जानेवाले सबसे ऊंचे पदपर उनका होना स्वतंत्रताको हमारे अधिक समीप लावे। (हि० न०, ८.१०.२५)

... ...

अमेरिकाके लिए श्री सरोजिनीदेवीने गत १२ ता० को हिंदुस्तानका किनारा छोड़ा। यूरोप, अमेरिका, इत्यादि मुल्कोंमें अपनी स्थायी सभाएं स्थापित करके या समय-समयपर अपने प्रतिनिधि भेजकर हमारे बारेमें जो झूठी मान्यताएं प्रचलित हो गई हैं, उन्हें दूर करनेकी आशा अनेकों आदमी रखते हैं। मुझे यह आशा हमेशा ही गलत जान पड़ी है। ऐसा करनेसे हम सार्वजनिक धनका और जिनका और अच्छा उपयोग हो सकता है उन लोगोंके समयका दुरुपयोग करेंगे। किंतु पश्चिममें अगर किसीका जाना फल सकता है तो सरोजिनी देवीका या कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुरका जाना अवश्य फल सकता है। सरोजिनीदेवीका नाम उनके काव्योंसे पश्चिममें प्रसिद्ध है। उनमें चतुराई भी वैसी ही है। उन्हें यह भली भांति मालूम है कि कहां, क्या और कितना कहना चाहिए। किसीको दुःख पहुंचाये बिना खरी-खरी सुना देनेकी कला उन्होंने साधी है। जहां कहीं वे जाती हैं, उनकी बात सुने बिना लोगोंका काम चलता ही नहीं है। दक्षिण अफ्रीकामें अपनी शक्तिका संपूर्ण उपयोग करके उन्होंने वहांके अंग्रेजोंका मनहरण किया था और सुंदर विजय प्राप्त करके सर हबीबुल्ला-प्रतिनिधि-मंडलका रास्ता साफ किया था। वहांका काम कठिन था। किंतु वहांपर उन्होंने अपनी मर्यादा निश्चित करके कानूनके जाल-पेंचोंमें न पड़ते हुए, मुख्य बातमें लगे रहकर अपना काम भलीभांति किया

था और हिंदुस्तानका नाम चमकाया था। ऐसा ही काम वे अमेरिका आदि देशोंमें भी करेंगी। अमेरिकामें उनकी हाजिरी ही मिस मेयोके असत्यका जवाब हो जायगी। उनका साहस भी उनकी दूसरी शक्तियोंके ही समान है। परदेश जानेमें न तो उन्हें किसीकी सहायताकी आवश्यकता रहती है और न किसी मंत्रीकी ही। जहां कहीं जाना हो वे अकेले निर्भयतासे विचर सकती हैं। उनकी ऐसी निर्भयता स्त्रियोंके लिए तो अनुकरणीय है ही, पुरुषोंको भी लजानेवाली है। हम अवश्य यह आशा रख सकते हैं कि उनकी पश्चिमकी यात्रामेंसे अच्छा फल निकलेगा। (हिं० न०, २०-९-२८)

. . . .

अमेरिकासे कई-एक मित्रोंके पत्र बराबर मेरे पास आते रहते हैं, जिनमें सरोजिनीदेवीके कामकी प्रशंसा रहती है। मित्र लिखते हैं कि सरोजिनी देवी अमेरिकामें बड़े महत्वका काम कर रही हैं और अपनी सारी ईश्वरदत्त प्रतिभाका इस देशके लिए पूरा-पूरा उपयोग कर रही हैं। इसमें शंका नहीं कि उन्होंने अमेरिकावासियोंका मन मोह लिया है। कनाडाकी एक बहनने एक लंबे पत्रमें अपने कुछ अनुभव लिखकर भेजे हैं, उसमें थोड़ी से बातें नीचे देता हूं :

"सरोजिनीदेवी थोड़े समयके लिए मेरी मेहमान बनी थीं। आपके उन मित्र और दूतसे मिलकर मैंने अपने आपको बड़भागी पाया है। मैं खुद एक स्त्री हूं, वह भी स्त्री ही हैं। साथ ही वह तो कवि और सुधारक हैं, इसीलिए उन्होंने मेरा हृदय और भी चुरा लिया है। उनकी आत्माका मुझपर बहुत ज्यादा असर हुआ है और इतने दिनके बाद भी उनके मिलापकी बात हमारे हृदयमें जैसी-की-तैसी बनी हुई है। जिस गिरजाघरमें सरोजिनीदेवीने व्याख्यान दिया था वह तो श्रोताओंसे खचाखच भर गया था। उनके ज्ञानकी, उनके अनुभवोंकी, उनकी काव्यशक्तिकी, उनके मधुर कोकिल कंठकी, उनके विनोदकी

और अंग्रेजी भाषापर उनके प्रभुत्वकी मैं आपसे क्या चर्चा करूं ? जैसे-जैसे उनकी वाणीका प्रवाह बढ़ता गया, वैसे-वैसे लोग मारे आश्चर्यके चकित होते गये और आखिरकार उनके गुणोंपर पूरे-पूरे मुग्ध होगये। उन्होंने हमारे सामने जितनी भी समस्याएं रक्खीं, उनमेंसे कोई भी उनका उत्तर न दे सका। मेरे पास एक व्यवहार-कुशल व्यापारी बैठे हुए थे, उन्होंने मंत्रमुग्ध होकर उनका सारा व्याख्यान सुना। जो प्रश्न पूछे गये सरोजिनीदेवीने उनके ठीक-ठीक उत्तर दिये और बीच-बीचमें जिस ढंगसे उन्होंने विनोदका सहारा लिया उसे देखकर तो पूर्वोक्त व्यापारी महाशयसे बोले बिना न रहा गया। उन्होंने कहा, "ऐसी काबिलियत तो मैंने किसी भी दूसरी स्त्रीमें नहीं देखी। अगर सच कहूं, मेरी रायमें कोई भी पुरुष इनके मुकाबलेमें खड़ा नहीं रह सकता।" वर्तमान भारतके विषयमें उन्होंने जो कुछ कहा, वह बहुत ज्यादा असर करनेवाला था। उन्होंने हमारी न्याय-प्रियताको जागृत किया, हमारे हृदयोंको पानी-पानी कर दिया और हमें उसी समय यह अनुभव होने लगा कि आपके यहां भी उसी तरहका राज्यतंत्र होना चाहिए जैसा हमारे यहां है। सरोजिनीदेवीकी रचनासे मालूम होता है, ईश्वरने कई रंग पूरे हैं। उन्हें भोजनके समय मिलिये या सम्मेलनों-में मिलिये, सामान्य वार्तालापके लिए मिलिये अथवा और किसी कामके लिए, हर हालतमें उनकी प्रतिभा बिजली फेंकती थी। उनके उत्साहका तो पार ही नहीं है। कई निमंत्रणोंको स्वीकार कर चुकी हैं, एक ही दिनमें कई जगह जाती हैं, लेकिन मालूम नहीं होता कि थकी हुई हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो उनके पास शक्तिका कोई अटूट भंडार है! लोकप्रियतासे वह फूल नहीं उठतीं। यहांकी सब अच्छी चीजें उन्हें पसंद हैं। वह बच्चोंको प्यार करती हैं, सुंदर फूल उनका मन चुरा लेते हैं, हमारे वृक्ष, हमारे सरोवर और हमारी नदियां उन्हें आनंद प्रदान करती हैं, फिर भी वह भविष्यको नहीं भूलतीं। यानी, स्त्री-

जातियों की कमजोरियां रहती हैं और अंग्रेजोंके काम जिस तरह बहुधा स्त्रियां अपना आपा भूल जाती हैं, पर यह बात श्रीमती सरो-जिनीदेवीके बारेमें नहीं है।"

मैं नहीं समझता कि इन बहनने जिन शब्दोंमें सरोजिनीदेवीकी शक्तिका वर्णन किया है उनमें कोई बात बढ़ाकर लिखी गई है। सरोजिनी-देवीमें वस्तुस्थितिको पलभरमें समझ लेनेकी अपूर्व शक्ति है। वह अपनी मर्यादाको समझती हैं। अर्थशास्त्रियों और राजनैतिक नेताओंकी बारीकीमें वह कभी नहीं उतरतीं। इस तरहके ज्ञानका न तो वह कभी दावा करती हैं और न आडंबर ही। साधारण आदमीके पास जितना ज्ञान होता है, उतने ही ज्ञानकी पूंजीसे वह अपना काम इतनी चतुराईसे कर लेती हैं कि सामनेवाला आदमी उन्हें कभी उलझनमें डाल ही नहीं सकता। उलटे जो कुछ उनसे ग्रहण करता है उसीमें इतना संतोष अनुभव करता है, मानो उसे सबकुछ मिल गया हो। (हिं० न०, २१.२.२६)

. . . .

सरोजिनी नायडूको वह चीज लागू नहीं होती। वह कोई आश्रम-वासी तो हैं नहीं; बहुत चीजोंमें मेरा विरोध भी कर लेती हैं। मैं तो गुणोंको ही देखता हूं। मैं खुद कहां दोषरहित हूं कि किसीके दोष देखूं! वह तो अपना स्वतंत्र स्थान रखती हैं। उसने अपना मार्ग निकाल लिया है। (का०क०,२४.६.४२)

. . . .

'मैंने रात भी कहा था कि यह सब जो तुम लोगोंने किया है,[1] करने जैसा नहीं था। सरोजिनी नायडू काम तो बहुत बढ़िया कर लेती हैं, मगर सच्ची संस्कृतिकी कीमत देकर। जो चीज मैं कहता हूं उसमें सच्ची संस्कृति है...' (का०क०,२-१०-४२)

---

[1] अपने जन्मोत्सवकी ओर संकेत है।

: १०१ :

जयप्रकाश नारायण

श्री जयप्रकाश नारायण और श्री संपूर्णानंदजीने साफ शब्दोंमें कह दिया है कि हम २६ जनवरीको ली जानेवाली प्रतिज्ञामें जो भाग जोड़ा उसके खिलाफ हैं। मुझे उनका बड़ा लिहाज है। वे योग्य हैं, वीर हैं और उन्होंने देशकी खातिर कष्ट उठाए हैं। लड़ाईमें वे मेरे साथी बन सकें तो इसे मैं अपना सौभाग्य समझूं। मैं उन्हें अपने विचारका बना सकूं तो मुझे कितनी खुशी हो। लड़ाई आनी ही है और मुझे उसका नायक बनना है तो यह काम मैं ऐसे सहायकोंके भरोसे नहीं कर सकता, जिनका कि कार्य-क्रम पर अधूरा विश्वास हो या जिनके दिलमें उसके बारेमें शंकाएं हों।

श्री जयप्रकाश नारायणने अपनी और समाजवादी दलकी स्थिति साफ करके अच्छा किया। रचनात्मक कार्य-क्रमके बारेमें वे कहते हैं—हमने इस अपनी लड़ाईके एकमात्र या पूरी तरह कारगर हथियारके रूपमें कभी स्वीकार नहीं किया है।...इन मामलोंमें हमारे विचार ज्यों-के-त्यों बने हुए हैं। मौजूदा संकटकालमें हमारे राष्ट्रीय नेताओंकी लाचारी देखकर वे विचार कुछ मजबूत ही हुए हैं।..उस दिन विद्यार्थियोंको स्कूल-कालेजोंसे निकल आना चाहिए और मजदूरोंको काम बंद कर देना चाहिए।

अगर अधिकांश कांग्रेसियोंका यही विचार है जो श्री जयप्रकाशने समाजवादी दलकी तरफसे प्रकट किया है तो मैं इस तरहकी सेनाको साथ लेकर सफलता पानेकी कभी आशा नहीं रख सकता। उनकी न कार्य-क्रममें श्रद्धा है, न वर्तमान नेताओंमें। मेरे खयालसे जिस कार्यक्रमपर वे सिर्फ राष्ट्रके नेताओंकी इच्छाके कारण ही चलनेकी बात कहते हैं

उसकी उन्होंने बिल्कुल अनजानमें ही सही निंदा कर दी। जरा ऐसी फौजकी कल्पना तो कीजिए जो लड़ाईके लिए कूच करनेवाली है, लेकिन न तो जिन हथियारोंसे काम लेना है उनमें उसका विश्वास है और न जिन नेताओंने यह हथियार बताये हैं उनपर श्रद्धा है! ऐसी सेना तो अपना, अपने नायकोंका और कामका सत्यानाश ही कर सकती है। मैं श्री जयप्रकाशकी जगह होऊं और मुझे लगे कि मैं अनुशासनका पालन कर सकता हूं तो मैं अपने दलको चुपचाप घरमें बैठे रहनेकी सलाह दूं। अगर ऐसा न कर सकूं तो निकम्मे नेताओंकी बुरी योजनाओंको मटियामेट करनेके लिए खुली बगावतका झंडा फहरा दूं।

श्री जयप्रकाश चाहते हैं कि विद्यार्थी स्कूल-कालिजोंसे निकल आएं और मजदूर काम छोड़ बैठें। यह तो अनुशासन भंग करनेका पाठ पढ़ाना हुआ। मेरी चले तो मैं हर विद्यार्थीसे कहूं कि छुट्टी न मिले या प्रिंसीपल छब्बीस जनवरीको उत्सवमें भाग लेनेके लिए स्कूल या कालिज बंद करनेका फैसला न करें तो उन्हें स्कूल या कालेजमें ही रहना चाहिए। इसी तरहकी सलाह मैं मजदूरोंको दूंगा। श्री जयप्रकाशकी शिकायत है कि स्वाधीनताके दिन जो काम करना है उसके बारेमें कार्यसमितिने कोई तफसील नहीं बताई। मैंने समझा था कि जब भाईचारेका और खादीका कार्यक्रम है तो फिर तफसीलवार हिदायतें देनेकी क्या जरूरत है? मुझे आशा है कि हर जगह कांग्रेस-कमेटियां कताई-प्रदर्शन, खादी-फेरी और ऐसे ही दूसरे आयोजन करेंगी। मैं देखता हूं कि कुछ कमेटियां तो ऐसा कर भी रही हैं। मैंने कांग्रेस कमेटियोंसे आशा तो यह रक्खी थी कि जिस दिन कार्यसमितिका प्रस्ताव प्रकाशित हो जाय उसी दिनसे तैयारियां शुरू हो जायंगी। मैं राष्ट्रकी तैयारी सिर्फ इसी बातसे नहीं जानूंगा कि देश-भरमें कितना सूत काता गया, बल्कि मुख्यतः इस बातसे जानूंगा कि खादी कितनी बिकी।

अंतमें श्री जयप्रकाशका कहना है कि हमने अपनी तरफसे तो एक

नया कार्य-क्रम मजदूर और किसान संगठनका बनाया है, ताकि उसके पायेपर क्रांतिकारी सार्वजनिक आंदोलन चलाया जाय।

इस तरहकी भाषासे मुझे डर लगता है। मैंने भी संगठन तो किसान और मजदूर दोनोंका किया है, मगर शायद उस तरहपर नहीं किया जैसा श्री जयप्रकाशके जीमें है। उनके वाक्यको और खोलकर समझानेकी जरूरत है। अगर उनका संगठन पूरी तरह शांतिपूर्ण न हो तो उससे अहिंसक कार्रवाईको उसी तरह नुकसान पहुंच सकता है जिस तरह कि रोलट कानून-वाले सत्याग्रहको पहुंचा था और बादमें ब्रिटिश युवराजके आने पर बंबईकी हड़तालके समय पहुंचा था। (ह० से०, २०.१.४०)

... ...

श्री जयप्रकाश नारायणकी गिरफ्तारी एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना है। वे कोई साधारण कार्यकर्त्ता नहीं हैं। समाजवादके वे महान् विशेषज्ञ हैं। कहा जा सकता है कि पाश्चात्य समाजवादकी जो बात उन्हें मालूम है उसे हिंदुस्तानमें और कोई भी नहीं जानता। वे कुशल योद्धा भी हैं। देशकी स्वाधीनताके लिए उन्होंने सर्वस्व त्याग किया है। वे अविरत उद्योगशील हैं। उनकी कष्टसहिष्णुता अतुलनीय है। मैं नहीं जानता कि उनका कौन-सा भाषण कानूनके पंजेमें आ गया है। लेकिन अगर दफा १२४ 'ए' या भारत-रक्षा कानूनकी अति कृत्रिम धाराएं असुविधाजनक व्यक्तियोंको गिरफ्तार करनेके काममें लाई जाती हैं तो कोई भी व्यक्ति, जिसे अधिकारी चाहें, कानूनकी बंदिशमें आ सकता है। मैं इससे पहले ही कह चुका हूं कि सरकार चाहे तो संघर्ष अविलंब आरंभ कर सकती है। ऐसा करनेका उसे पूरा हक है। लेकिन मैं दृढ़तासे यह आशा बांधे हूं कि युद्धको उसी समय तक अपने उचित मार्गपर चलने दिया जायगा जबतक कि वह सर्वथा अहिंसात्मक रहेगा। चाहे जो हो, भ्रमजाल नहीं चलने देना चाहिए। अगर श्री जयप्रकाश नारायण पर हिंसा का अभियोग है तो उसे प्रमाणित किया जाना चाहिए। सच तो यह है कि इस

गिरफ्तारीसे लोगोंको ऐसा लगने लगा है कि ब्रिटिश सरकार दमन करना चाहती है। ऐसी स्थितिसे इतिहासकी पुनरावृत्ति होगी। पहले सविनय-भंग आन्दोलनके समय सरकारने अली-बन्धुओंको गिरफ्तार कर दमनका श्रीगणेश किया था। पता नहीं कि यह गिरफ्तारी पूर्व निश्चित कार्यक्रमके अनुसार की गई है या किसी बहुत जोशीले अधिकारीकी भूल है। अगर यह किसी अधिकारीकी भूल ही है तो इसका सुधार हो जाना चाहिए। (ह० से०, २३.३.४०)

* * *

श्रीजयप्रकाशनारायणने अदालतमें जो बयान दिया उसकी नकल उन्होंने मेरे पास भेजी थी। यह उनके योग्य है, वीरोचित है, छोटा-सा और मुद्देसर है। जैसा कि उन्होंने खुद कहा है, यह दुर्भाग्यकी बलिहारी है कि उन्हें देश-प्रेमके लिए सजा दी जा रही है। जो बात लाखों सोचते और हजारों बातचीतमें कहते हैं वही श्रीजयप्रकाशने सार्वजनिक रूपमें और जो लोग लड़ाईका सामान तैयार करते हैं, उन्हींके सामने कह दी। यह सही है कि उनकी बातका असर हो और वह बार-बार कही जाय तो सरकार तंग होगी। मगर इस तरह तंग होकर उसे किसी देश-भक्तको, उसके खुलकर विचार करनेका दंड देनेके बजाय, यह सोचना चाहिए कि हिंदुस्तानके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिए।

बयानके आखिरी हिस्सेसे बयान देनेवालेकी गहरी मानवीयताका प्रमाण मिलता है। उनके दिलमें कोई मैल नहीं। वे साम्राज्यवाद और नात्सीवादका नाश करना चाहते हैं। उनका अंग्रेजों या जर्मनोंसे कोई झगड़ा नहीं। उन्होंने सच कहा है कि इंग्लैंड साम्राज्यवाद छोड़ दे तो न सिर्फ भारत, बल्कि तमाम दुनियाके स्वतंत्रता-प्रेमी मनुष्य नात्सीवादकी हार और स्वतंत्रता और लोकतंत्रकी विजयके लिए पूरी कोशिश करेंगे (ह० से०, ३०.३.४०)

* * *

श्री जयप्रकाशनारायण और डॉक्टर राममनोहर लोहियाके नाम तो आपने सुने ही हैं। दोनों विद्वान् हैं। उन्होंने अपनी विद्वताका प्रयोग पैसा कमानेके लिए नहीं किया। देशकी गुलामीको देखकर वे अधीर हो उठे। उन्होंने अपना सबकुछ देशके अर्पण कर दिया और उसकी गुलामीकी जंजीरोंको तोड़नेमें लग गये। सरकारको उनसे डर लगा और उसने उन्हें जेलमें डाल दिया। अगर मैं राज्य चलानेवाला होऊं तो शायद मैं भी ऐसे लोगोंसे डरूं और उन्हें जेलमें रखूं।

सरकारने यह समझकर कि अब हमें आजादीसे वंचित नहीं रखना है, श्री जयप्रकाशनारायण और श्री राममनोहर लोहियाको छोड़ दिया है। सरकार समझ गई है कि उन्होंने उसका पाप भले ही किया हो, सत्याग्रही गांधीका भी पाप किया हो, लेकिन ४० करोड़ जनताका उन्होंने कोई पाप नहीं किया। जेलसे भागना आदि मेरी समझमें पाप हैं। लेकिन मैं जानता हूं कि उनके मनमें भी आजादीकी उतनी ही लगन है, जितनी मेरेमें। इसलिए वे मेरी नजरमें गिरते नहीं हैं। मैं उनकी बहादुरीकी कदर करता हूं।

सरकारका उन दोनोंको और आजाद हिंद फौजवालोंको छोड़ देना मेरी समझमें शुभ शकुन है। उसके लिए हम सरकारको धन्यवाद दें और ईश्वरका उपकार मानें कि उसने उसे सन्मति दी। (ह० से० २१.४.४६)

: १०२ :

निवारणबाबू

पुरुलियाके निवारणबाबू, जिनका अभी हालमें स्वर्गवास हो गया है, बड़े ही विनम्र स्वभावके पुरुष थे। जिस तरह हरिजनोंके सच्चे सेवक

थे, उसी तरह वे समस्त दीन-हीनोंके सच्चे बंधु थे। अहिंसाकी अनुपम सुंदरताका उन्होंने खूब गहरे जाकर साक्षात्कार किया था और उसे अपने जीवनमें उतारनेका वे अहर्निश प्रयत्न करते रहते थे। उनका जीवन उनके अनेक मित्रों और अनुयायियोंके लिए प्रेरणाप्रद था और वे भारीसे भी भारी संकटके समय निवारण बाबूसे पथ-प्रदर्शन तथा आश्वासनकी आशा रखते थे। उनके मित्रों और अनुयायियोंको उनके जीवनकी स्मृति सदा शक्तिप्रद रहे और उन्हें सन्मार्गपर उत्तरोत्तर प्रगति करनेकी स्फूर्ति दे। (ह० से०, ९.८.३५)

: १०३ :

भगिनी निवेदिता

मैं भूल ही नहीं सकता कि इसने पहली ही मुलाकातमें अंग्रेजोंके लिए अत्यंत तिरस्कार और द्वेषके वचन कहे थे। मुझपर कुछ दिखावटकी छाप पड़ी थी, मगर दूसरे कई लोग कहते हैं कि वह गरीब-से-गरीब भंगियोंके मुहल्लेमें रहती थी। इसलिए यह सबूत मेरे लिए काफी है। दूसरी बार पादशाहके यहां मिली थी। वहां पादशाहकी बूढ़ी मांने एक कटाक्ष किया था वह याद रह गया है—इस बहनसे कहिये कि इसने अपना धर्म तो छोड़ दिया है। अब मुझे क्या मेरा धर्म समझाती है? (म० डा० १.८.३२)

: १०४ :

कमला नेहरू

गत १६ तारीखको इलाहाबादमें मुझे कमला नेहरू स्मारक अस्पताल की आधार-शिला रखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह अस्पताल एक सच्ची देश-सेविका और महान् आध्यात्मिक सौन्दर्य रखनेवाली महिलाका न केवल उपयुक्त स्मारक होगा, बल्कि उन्हें दिये हुए मेरे इस वचनकी पूर्ति भी उससे हो जायगी कि उनकी मृत्युके बाद भी मैं यह देखते रहनेका प्रयत्न करता रहूंगा कि जिस कामकी उन्होंने अपने ऊपर जिम्मेदारी ले रखी थी वह ठीक तरहसे चल रहा है या नहीं। वे अपने स्वास्थ्यकी शोधमें यूरोप जा रही थीं। उनकी वह यूरोप-यात्रा मृत्यु-शोधकी यात्रा साबित हुई। जाते वक्त उन्होंने मुझे लिखा था कि मैं या तो उनके साथ-साथ बंबईतक चलूं या उन्हें देखने सीधे बंबई पहुंच जाऊं। मैं बंबई गया। उन्हें जो थोड़ा-सा वक्त मैं दे सका, उस बीचमें उन्होंने मुझसे कहा—"अगर मेरा शरीर यूरोपमें छूट जाय तो जवाहरलालजीने स्वराज्य-भवनमें जो अस्पताल खोल रखा है और जिसे कायम रखनेके लिए मैंने इतना परिश्रम किया है उसे देखते रहनेका आप प्रयत्न करते रहेंगे न कि उसकी नींव स्थायी हो गई है ?" मैंने उन्हें वचन दे दिया कि मुझसे जो कुछ हो सकेगा वह जरूर करूंगा। इस स्मारक-कोषके लिए जो अपील निकाली गई थी उसमें मेरे शामिल होनेका आधार अंशतः मेरा यह वचन भी था। (ह० से०, २५.११.३९)

: १०५ :

जवाहरलाल नेहरू

महासभाके सभापतिकी जिम्मेदारी हरसाल अधिकाधिक बढ़ती जाती है। इस वक्त हमारे सामने वह गंभीर प्रश्न उपस्थित है कि अगले सालके लिए राष्ट्रपतिका ताज कौन पहने ? क्योंकि अबकी बार तो मेरी सम्मतिमें पंडित जवाहरलाल नेहरूको यह ताज पहनना चाहिए। अगर मैं निर्णयके समय अपना प्रभाव डाल सका होता तो वह चालू वर्षके भी राष्ट्रपति होते, मगर बंगालकी जोरदार मांगने 'पुराने साथी' को ही सिंहासनपर बैठानेको विवश किया।

बूढ़े नेता अब अपना कार्यकाल समाप्त कर चुके हैं। भावी संग्राममें जूझनेका काम नवयुवकों और नवयुवतियोंका है। और यह उचित ही है कि उनके नेतृत्वके लिए उन्हींमें से कोई खड़ा किया जाय। बूढ़ोंको चाहिए कि समयकी गतिको परखें, नहीं तो जो चीज वे अपनी सहज उदारतासे न देंगे वह उनसे जबर्दस्ती छीन ली जायगी। जब जिम्मेदारीका बोझ सरपर आ पड़ेगा, नौजवान अपने आप सौम्य और गंभीर बनेंगे और उस उत्तरदायित्वको उठानेके लिए तैयार रहेंगे, जो उन्हींको सम्हालना है। पंडित जवाहरलाल हर तरह सुयोग्य हैं। उन्होंने वर्षोंतक अनन्य योग्यता और निष्ठाके साथ महासभाके मंत्रीका काम किया है। अपनी बहादुरी, दृढ़ संकल्प, निष्ठा, सरलता, सचाई और धैर्यके कारण उन्होंने देशके नौजवानोंका मन मुट्ठीमें कर लिया है। वह किसानों और मजदूरोंके भी संपर्कमें आये हैं। यूरोपीय राजनीतिका जो सूक्ष्म परिचय उन्हें है, उससे उन्हें स्वदेशकी राजनीतिको समझने और निर्माण करनेमें बड़ी सहायता मिलेगी।

लेकिन कुछ वयोवृद्ध नेता कहते हैं कि जबकि हमें संभवतः महासभाके

बाहरके अनेक दलोंके साथ गंभीर और नाजुक चर्चा छेड़नी पड़ेगी, जब संभवतः ब्रिटिश कूटनीतिसे मोर्चा लेनेका भी समय आवेगा और जबकि हिंदू-मुस्लिम समस्या अभी हमारे सामने उलझी ही पड़ी है, ऐसे समयमें नेतृत्वके लिए आप-जैसे किसी व्यक्तिके हाथमें देशकी बागडोरका होना आवश्यक है। इस दलीलमें तथ्यकी जितनी बात है, उसका पर्याप्त उत्तर इस कथनमें आ जाता है कि क्षेत्र-विशेषके लिए मुझमें जो भी खूबियां हैं, उनका प्रयोग मैं उस हालतमें और भी अच्छी तरह कर सकूंगा जबकि मैं हर तरहके पद-भारसे मुक्त और पृथक रहूंगा। जबतक जनताका मुझ-पर विश्वास और प्रेम बना हुआ है, इस बातका जरा भी डर नहीं है कि पदाधिकारी न होनेकी वजहसे मैं, अपनी शक्तियोंका, जो मुझमें हो सकती हैं, संपूर्ण उपयोग न कर सकूंगा। ईश्वर-कृपासे बिना किसी पदको स्वीकार किये ही मैं १६२० से देशके जीवनको प्रभावित करनेमें समर्थ हो सका हूं। मैं नहीं समझता कि बेलगांव महासभाका सभापति बननेसे मेरी सेवा-क्षमता थोड़ी बढ़ी हो।

और जिन्हें यह पता है कि जवाहरलालका और मेरा क्या संबंध है, वे यह भी जानते हैं कि वह सभापति हुए तो क्या और मैं हुआ तो क्या। विचार या बुद्धिके लिहाजसे हममें मतभेद भले ही हो, हमारे दिल तो एक हैं। दूसरे, यौवन-सुलभ उग्रताके रहते हुए भी, अपने कड़े अनुशासन और एकनिष्ठादि गुणोंके कारण वह एक ऐसे अद्वितीय सखा हैं, जिनमें पूरा-पूरा विश्वास किया जा सकता है।

इतनेमें एक दूसरे आलोचक कानोंके पास आकर कहते हैं—क्या जवाहरलालका नाम अंग्रेज-बुलके लिए लाल चीथड़ेका काम नहीं करेगा? मैं कहता हूं कि जब हम इन कल्पित आलोचककी तरह तर्क करते हैं तब न तो राजनीतिज्ञोंकी व्यवहार-पटुता और कूट चातुर्यकी कद्र करते हैं और न स्वयं अपनी शक्तिमें ही विश्वास रखते हैं। राष्ट्रपति चुनते समय इस बातका खयाल रखना कि अंग्रेज राजनीतिज्ञ

हमारे चुनावपर क्या कहेंगे, अपनेमें आत्मविश्वासकी कमी प्रकट करना है। आलोचक अंग्रेज-स्वभावके जितने पारखी हो सकते हैं, उनसे अधिक उसका पारखी मैं हूं। एक अंग्रेजकी दृष्टिमें सच्चाई, वीरता, धैर्य और स्पष्टवादिता बहुमूल्य गुण हैं और जवाहरलालमें ये सब प्रचुर परिमाणमें पाये जाते हैं। अतएव अगर चुनावके समय ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंका भी विचार कर लिया जाय तो भी पंडित जवाहरलाल उनके अंदाजसे किसी कदर कम नहीं उतरते।

और आखिर यह तो है कि महासभाका सभापति कोई एकाधिकारी या निरंकुश नहीं होता। उसका दर्जा एक प्रतिनिधिका है, जिसे एक प्रख्यात परंपरा और सुसंघटित संगठनके भीतर रहकर काम करना होता है। ब्रिटेनके राजाको जनतापर अपने विचार लादनेका जितना हक है उससे ज्यादा हमारे राष्ट्रपतिको हो नहीं सकता। महासभा एक ४५ वर्ष पुरानी संस्था है और उसका महत्व एवं प्रतिष्ठा उसके अत्यंत सुप्रसिद्ध सभापतियोंसे भी बढ़कर है। दूसरे जब समय आवेगा, ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंको किसी एक व्यक्तिसे नहीं, बल्कि सारी महासभासे मोर्चा लेना पड़ेगा। अतएव सब तरह विचार करनेके बाद उन लोगोंको, जिन पर इस विषयका उत्तरदायित्व है, यही सलाह देता हूं कि वे मेरा विचार छोड़ दें और पूरी-पूरी आशा और विश्वासके साथ पंडित जवाहरलालको ही उच्चपदके लिए वरण करें। (हिं० न० १.८.२९)

... ...

बहादुरीमें कोई उनसे बढ़ नहीं सकता और देश-प्रेममें उनसे आगे कौन जा सकता है? कुछ लोग कहते हैं कि वह जल्दबाज और अधीर हैं। यह तो इस समय एक गुण है। फिर जहां उनमें एक वीर योद्धाकी तेजी और अधीरता है वहां एक राजनीतिज्ञका विवेक भी है।..वह स्फटिक मणिकी भांति पवित्र हैं, उनकी सत्यशीलता संदेहके परे है। वह अहिंसक और अनिन्दनीय योद्धा हैं। राष्ट्र उनके हाथमें सुरक्षित है। ('पं० जवाहर

लाल नेहरू'—श्रीरामनाथ 'सुमन,' पृष्ठ २)

. . . .

..जवाहरलालके समान नवयुवक राष्ट्रपति हमें बार-बार नहीं मिलेंगे। भारतमें युवकोंकी कमी नहीं है; लेकिन जवाहरलालके मुकाबलेमें खड़े होनेवाले किसी नवजवानको मैं नहीं जानता। इतना मेरे दिलमें उनके लिए प्रेम है, या कहिये कि मोह है। लेकिन यह प्रेम या मोह उनकी काबिलके अनुभवपर स्थापित है और इसलिए मैं कहता हूं कि जबतक उनके हाथमें लगाम है, हम अपनी इच्छित वस्तु प्राप्त करलें तो कितना अच्छा हो। लेकिन हम तभी कुछ कर सकेंगे, जब मुझे आप लोगोंकी पूरी-पूरी मदद मिलेगी। मुझे आशा है कि स्वराज्यके भावी संग्राममें आप लोग सबसे आगे होंगे। अगर नौ वर्षोंका यहांका आपका अनुभव सफल हुआ हो और आपको अपने आचार्योंके प्रति सच्चा आदर तथा प्रेम हो तो उसे बतानेका, आपमें जो जौहर हो उसे प्रकट करनेका, समय आगे आ रहा है। ('विद्यार्थियोंसे,' पृष्ठ २०३)

. . . .

..पंडित नेहरूने अपने देश और उसकी वेदीपर अपने जीवनकी समस्त अभिलाषाओं तथा ममताओंका बलिदान किया है। सबसे बड़ी विशेषताकी बात यह है कि उन्होंने किसी दूसरे देशकी सहायतासे मिलनेवाली अपने देशकी आज़ादीको कभी सम्मानपूर्ण नहीं समझा।

जवाहरलालका जहांतक सवाल है, हम जानते हैं कि हममेंसे किसीका भी एक-दूसरेके बिना काम नहीं चल सकता, क्योंकि हम लोगोंमें ऐसी आत्मीयता है जिसे कोई बौद्धिक मतभेद नष्ट नहीं कर सकते। (ह० से०, ३ .६.३९)

. . . .

हमें अलग करनेके लिए केवल मतभेद ही काफी नहीं हैं। हम जिस क्षणसे सहकर्मी बने हैं उसी क्षणसे हमारे बीचमें मतभेद रहा है; लेकिन

फिर भी मैं वर्षोंसे कहता रहा हूं और अब भी कहता हूं कि जवाहरलाल मेरा उत्तराधिकारी होगा, राजाजी नहीं। वह कहता है कि मेरी भाषा उसकी समझमें नहीं आती। वह यह भी कहता है कि उसकी भाषा मेरे लिए अपरिचित है। यह सही हो या न हो, किंतु हृदयोंकी एकतामें भाषा बाधक नहीं होती।

और मैं यह जानता हूं कि जब मैं चला जाऊंगा, जवाहरलाल मेरी ही भाषामें बात करेगा। (ह०, २५.१.४२)

... .

सवाल—आपने भी उस रोज वर्धामें कहा था कि जवाहरलाल आपके कानूनी वारिस हैं। आपके कानूनी वारिसने जापानियोंके खिलाफ छापेबाजीसे लड़नेकी जो हिमायत की है, उसकी कल्पना आपको कैसी लगती है? जब जवाहरलाल खुल्लमखुल्ला हिंसाका प्रचार कर रहे हैं और राजाजी सारे देशको शस्त्र और शस्त्रोंकी शिक्षा देना चाहते हैं, तो आपकी अहिंसाका क्या होगा?

उत्तर—जिस तरह आपने लिखा है, उसे देखते हुए तो परिस्थिति भयंकर मालूम होती है, मगर आपको जितनी भयंकर वह लगती है, दर-असल उतनी है नहीं। पहली बात तो यह है कि मैंने कानूनी वारिस शब्द अपने मुंहसे नहीं कहा। मेरी तकरीर हिंदुस्तानीमें थी। मैंने तो कहा था कि वे मेरे कानूनी वारिस नहीं, बल्कि असली वारिस हैं। मेरा मतलब यह था कि जब मैं न रहूंगा, तो वे मेरी जगह लेंगे। उन्होंने मेरे तरीकेको पूरे तौरपर कभी अंगीकार नहीं किया। उन्होंने तो उसकी साफ-साफ आलोचना की है। परंतु बावजूद इसके कांग्रेसकी नीतिका उन्होंने वफा-दारीके साथ पालन भी किया है। यह नीति या तो मेरी ही निर्धारित की हुई थी, या अधिकांशमें मुझसे प्रभावित थी। सरदार वल्लभभाई जैसे नेता, जिन्होंने हमेशा बिना किसी प्रकारकी शंका या सवालके मेरा अनुसरण किया है, मेरे वारिस नहीं कहे जा सकते। यह तो हर कोई

स्वीकार करता हूं कि और किसीमें जवाहरलालकी-सी क्रियात्मक शक्ति नहीं है। और क्या मैं यह नहीं कह चुका हूं कि मेरे चले जानेके बाद वे तमाम मतभेदको, जिसका जिक्र वे अकसर किया करते हैं, भूल जायंगे।

मुझे इस बातका खेद है कि कावेबाजीकी युद्ध-प्रणालीने उनके दिलमें घर कर लिया है। मगर मुझे जरा भी शक नहीं कि वह चार दिनकी चांदनी ही साबित होगी। देशपर उसका कुछ असर न होगा। यहांकी भूमि उसके अनुकूल नहीं। २२ वर्ष तक जिस अहिंसाका लगातार आचार और प्रचार हुआ है चाहे वह कितना ही अपूर्ण क्यों न रहा हो, उसका असर जवाहरलालजी या राजाजीकी इच्छासे—फिर वे कितने ही प्रभावशाली क्यों न हों—एक क्षणमें नहीं मिट सकता। इसलिए मैं जवाहरलालजी या राजाजीके अहिंसा-मार्गसे च्युत होनेसे विचलित नहीं होता। अपने प्रयत्नके होनेपर वे नई शक्ति और नए उल्लासके साथ अहिंसा-मार्गपर लौटेंगे। उनमेंसे कोई भी हिंसाको इसलिए ग्रहण नहीं करना चाहता कि वह उन्हें पसंद है। अगर आज वे हिंसाकी शरण लेते भी हैं, तो गालिबन इसलिए कि उनको लगता है कि अहिंसापर आनेसे पहले हिंदुस्तानको हिंसाके दावानलमें से गुजरना ही चाहिए। (ह० से०, २६.४.४२)

. . . .

(शामको घूमते समय कुछ दिन पहलेके इस प्रश्नके उत्तरमें कि सत्याग्रही जड़वत-से क्यों लगते हैं, बापूने कहा—)सत्याग्रही जड़वत लगते हैं, यह मैं स्वीकार कर लेता हूं। इसके कारणको ढूंढ़ो तो पहली याद रखनेवाली बात यह है कि किस वर्गमेंसे मेरे पास सत्याग्रही आए। लेनिनके पास काम करनेवाले धनहीन थे; क्योंकि वह उनके लिए काम कर रहा था। कुछ भी हो, लेनिनको उनसे संतोष मानना था। इसी तरह मेरे पास जो कार्यकर्त्ता हैं उनसे मुझे संतोष मानना है। दूसरी बात यह है कि जबतक वे लोग मेरे अंकुशके नीचे रहकर काम करते हैं, उन्हें जड़वत लगना

ही है। कारण यह है कि सत्याग्रहका संचालक मैं रहा। मुझसे आगे उनमेंसे कोई कैसे जा सकता है? वे लोग अपनी बुद्धि चलाने लगें तो उनका राजाजी-जैसा हाल होगा। मैंने राजाजीसे कहा था कि जबतक मैं हूं, तुम मुझे समझानेका प्रयत्न करो। न समझा सको तो अंतमें तुम्हें मेरी बात मानकर चलना चाहिए। वे कहने लगे, "कभी नहीं।" तो मैंने कहा, "अच्छी बात है। ऐसे ही कह तो जवाहरलाल भी देता है कि 'कभी नहीं'; मगर पीछे करता वही है जो मैं कहता हूं। (का० क०, २.१२.४२)

. . . .

अगर लोग जरा-सी समझदारीसे चलें तो स्वराज्य उनके हाथोंमें आ चुका है; क्योंकि हमारी सरकारके उप-प्रधान जवाहरलालजी हैं। वाइसराय प्रधान हैं सही, पर उन्हें अब शांतिसे बैठना है। आपके असली बादशाह जवाहरलाल हैं। वे ऐसे बादशाह हैं जो हिंदुस्तानको तो अपनी सेवा देना चाहते ही हैं, पर उसके मारफत सारी दुनियाको अपनी सेवा देना चाहते हैं। उन्होंने सभी देशोंके लोगोंसे परिचय किया है और उनके राजदूतोंका सत्कार करनेमें वह बड़े कुशल हैं। लेकिन वह अकेले कहांतक कर सकते हैं?

वह बेताजके बादशाह आपके खिदमतगार हैं। तो क्या वह बंदूकसे आपकी बदअमनीको दबा देंगे? अगर आज एकको दबायेंगे तो कल दूसरेको इसी तरह दबाना पड़ेगा। फिर वह स्वराज्य तो नहीं हुआ। पंचायती राज्य भी नहीं हुआ। जब आप लोग अनुशासनसे रहेंगे तभी जवाहरलालकी बादशाहत चलेगी और हमारा स्वराज्य सुखरूप होगा।

खुद जवाहरलालजी भी किस तरह अनुशासनमें रहते हैं इसका उदाहरण सुनिए। पिछले वर्ष जब वह काश्मीर चले गए थे तब वेवल साहबको उनकी जरूरत पड़ गई। मौलाना साहबने उन्हें बुलाना चाहा

और मेरे समझानेपर वह वहांका संघर्ष छोड़कर राष्ट्रपतिका हुक्म मानकर यहां चले आये थे।

आज भी जवाहरलालका चित्त काश्मीरमें है, जहां प्रजाके नेता शेख अब्दुल्ला सींखचोंमें बंद पड़े हैं। मैंने जवाहरलालसे कहा है कि तुम्हारी आवश्यकता यहांपर ज्यादा है। इसलिए जरूरत हुई तो मैं काश्मीर जाऊंगा और तुम्हारा काम करूंगा। तुम यहीं रहो। मैंने यह भी उनसे कहा कि यद्यपि मैं वचनसे बिहार और नवाखालीमें ही करने या मरनेके लिए बंधा हूं, परंतु काश्मीरमें भी मुसलमान भाइयोंका ही सवाल है, इसलिए वहां जा सकता हूं। वहां जाकर काश्मीरके राजासे मित्रता करूंगा और मुसलमानोंकी भलाईका काम करूंगा। लेकिन जवाहरलालने अभी इस बातकी 'हां' नहीं भरी है। (प्रा० प्र०, १.४.४७)

... ...

कल मैंने जवाहरलालजीके अमूल्य कामके बारेमें जिक्र किया था। मैंने उन्हें हिंदुस्तानका बेताजका बादशाह कहा था। आज जब अंग्रेज अपनी ताकत यहांसे उठा रहे हैं तब जवाहरलालकी जगह कोई दूसरा ले नहीं सकता। जिसने विलायतके मशहूर स्कूल हैरो और कैंब्रिजके विद्यापीठमें तालीम पाई है और जो वहां बैरिस्टर भी बने हैं उनकी आज अंग्रेजोंके साथ बातचीत करनेके लिए बहुत जरूरत है। (प्रा० प्र०, २.४.४७)

... ...

मैं परसों हरिद्वार जाऊंगा। मेरे साथ जवाहरलाल जायंगे। वे तो युक्तप्रांतमें अद्वितीय हैं। आज तो वे सारे हिंदुस्तानमें भी अद्वितीय हो रहे हैं। (प्रा० प्र०, २९.४.४७)

... ...

लेकिन आज क्या हो रहा है? सरदार ऊंचा सिर रखकर चलने-वाला, आज मैं आपको कहता हूं कि उसका सिर नीचा हो गया है। वह

जवाहरलाल, वह बहादुर जवाहरलाल, हवामें उड़नेवाला, किसीकी परवाह न करनेवाला, आज वह लाचार बनकर बैठ गया है। क्यों लाचार बना? हमने उसको लाचार बनाया।....वह जवाहरलाल कोई ईश्वर तो है नहीं। सरदार ईश्वर थोड़े ही है। दूसरे जो उनके मंत्री पड़े हैं वे ईश्वर तो हैं नहीं। उनके पास ईश्वरीय ताकत तो कोई नहीं है। बाहरकी ताकत, दुनियाकी ताकत भी, कहां उनके पास पड़ी है? (प्रा० प्र०, १३.६.४७)

... ...

दूसरी बात यह है कि यहां जितने दुःखी लोग हैं, उनके लिए तो पंडित जी—उनको मैं बहुत पहचानता हूं—ऐसे हैं कि दूसरोंको सुलाकर सोनेवाले हैं। मानो एक ही बिछौना है, जो सूखा है, बाकी गीला है, तो वह सूखेमें दुःखीको सुलायेंगे, खुद चाहे घूमते रहें। मैं यह पढ़कर बहुत खुश हुआ। वे कहते हैं कि उनके घरमें जगह नहीं है, दूसरे आदमी भी चले आते हैं, इसलिए जगह नहीं रहती है। वह तो मुख्य प्रधान हैं। तो मिलनेवाले जाते हैं, दोस्त हैं, अंग्रेज भी जाते हैं, तो क्या वहांसे उनको निकाल दें? तो भी कहते हैं कि मेरी तरफसे एक कमरा या दो कमरा, जितना निकल सकता है निकालूंगा और दुःखी लोगोंको रखूंगा। फिर दूसरे मुख्य प्रधान भी करें, फिर फौजके अफसर हैं वे भी ऐसा करें। इस तरहसे सब अपने धर्मका पालन करें तो कोई दुःखी नहीं रहेगा। ऐसा जो जवाहरने किया, उसे देखा; तो मैं उनको और आपको धन्यवाद देता हूं कि हमारे यहां एक रत्न है। (प्रा० प्र०, २१.१.४८)

... ...

अब मेरा दिल आगे बढ़ता है कायदे आजम जिन्नाकी तरफ। उनको मैं पहचानता हूं। मैं तो उनके घर जाता था और एक दफा तो १८ बार गया था। मैं उसको तपश्चर्या मानता हूं। बादमें भी उन्होंने और मैंने एक चीजमें दस्तखत किये थे और उसमें भी हम दोनों हिस्सेदार

बन गये थे। तब भी उनके साथ मीठी बातें होती थीं। इसलिए मैं तो उनसे लियाकतअली साहबसे और उनके मंत्रिमंडलसे कहूंगा कि यह बात है कि आप जवाहरलाल-जैसे आदमीको कहते हैं कि आप धोखेबाजी करते हैं। जवाहरलाल और उनकी सरकारको इसमें धोखेबाजी क्या करनी थी! मैं कहूंगा कि जवाहर तो किसीसे भी धोखा करनेवाला नहीं है, जैसा उसका नाम है वैसा उसका गुण है। उनकी सरकारमें सरदार या जो दूसरे आदमी हैं उनको भी मैं पहचानता हूं। वे भी कोई धोखेबाज नहीं हैं। अगर वे काश्मीरसे मशविरा करना चाहते हैं तो उसका यह मतलब नहीं है कि वे फुसला रहे हैं। जवाहरलाल तो पहले भी उनसे बातें करता था और अकेला शेख अब्दुल्लाके लिए उनसे लड़ता था। तो उसको इसमें धोखा क्या करना था! (प्रा० प्र०, २.११.४७)

... ...

वे आसानीसे पिता, भाई, लेखक, यात्री, देशभक्त या अंतर्राष्ट्रीयताके रूपमें प्रकाशमान हैं, तो भी पाठकोंके सामने इन लेखोंमेंसे उनका जो रूप उभरेगा वह अपने देश और उसकी स्वतंत्रताके, जिसकी वेदीपर उन्होंने अपनी दूसरी सभी कामनाओंका बलिदान कर दिया है, निष्ठावान भक्त-का रूप होगा। यह श्रेय उन्हें मिलना ही चाहिए कि वे किसी अन्य देशकी सहायताको कीमतपर अपने देशकी आजादी प्राप्त करना अपनी शानके खिलाफ समझेंगे। उनकी राष्ट्रीयता अंतर्राष्ट्रीयता-जैसी है। ('नेहरू: यौर नेबर' के प्राक्कथनसे)

: १०६ :

मोतीलाल नेहरू

महासभाका सभापतित्व अब फूलोंका कोमल ताज नहीं रह गया है। फूलके दल तो दिनों-दिन गिरते जाते हैं और कांटे उघड़ते जाते हैं। अब इस कांटोंके ताजको कौन धारण करेगा? बाप या बेटा? सैकड़ों लड़ाइयोंके लड़ाका पंडित मोतीलाल नेहरू इस कांटोंके ताजको पहनेंगे या संयम-नियमके पक्के जवान सिपाही पंडित जवाहरलाल नेहरू, जिन्होंने अपनी योग्यता और महत्तासे देशके युवकोंके हृदयोंपर अधिकार कर लिया है? श्रीयुत वल्लभभाई पटेलका नाम स्वभावतः ही सबकी जबान पर है। पंडितजी एक व्यक्तिगत पत्रमें लिखते हैं कि इस समय तो वल्लभभाई पटेलको ही, उनकी वीरताके लिए सभापति चुनना चाहिए और सरकारको यह दिखला देना चाहिए कि उनपर सारे राष्ट्रका विश्वास है। खैर, मगर अभी तो श्री वल्लभभाईका कोई प्रश्न ही नहीं हो सकता। इस समय उनके पास काम भी इतना पड़ा हुआ है कि वे बारडोली छोड़कर दूसरी ओर ध्यान ही नहीं दे सकते। और फिर दिसंबर आनेसे पहले ही संभव है कि वे सरकारके अनेक बंदीगृहोंमेंसे किसी एकमें उसके अतिथि बनकर पहुंच जायं। मेरा अपना विचार तो यह है कि यह कांटोंका ताज पंडित जवाहरलालको ही मिलना चाहिए। भविष्य तो देशके युवकोंके ही हाथमें होना चाहिए। मगर बंगाल तो अगले साल, जबकि बहुतसे तूफानोंका भय है, पंडित मोतीलालके ही हाथों महासभाकी पतवार देना चाहता है। हम लोगोंमें आपसमें फूट है और चारों ओरसे हमें एक ऐसा शत्रु घेरे हुए है जो जितना शक्तिशाली है, उतना ही नीति-अनीतिसे लापरवाह भी। बंगालको इस समय किसी बड़े-बूढ़ेकी विशेष आवश्यकता है और वह भी ऐसे आदमीकी जिसने, उसके गाढ़े अवसरपर, उसे संभाला

हो। अगर सारे हिंदुस्तानके लिए आगे सुखका समय नहीं आनेवाला है तो बंगालके लिए तो और भी नहीं। इसके तो हजारों कारण हैं कि पंडित मोतीलालजीको ही क्यों यह कांटोंका ताज धारण करना चाहिए। वे वीर हैं, उदार हैं, उनपर सभी दलोंका विश्वास है, मुसलमान उन्हें अपना मित्र मानते हैं, उनके विरोधी भी उनका आदर करते हैं और अपनी जोरदार दलीलोंसे वे उन्हें प्राय: ही अपनी रायसे सहमत कर लेते हैं और फिर इसके अलावा उनके स्वभावमें संधि और समझौतेकी भावनाकी ऐसी पुट भरी हुई है, जिससे वे किसी ऐसे राष्ट्रके अत्यंत योग्य दूत होने लायक हैं, जिसे सम्मानित समझौतेकी आवश्यकता है और जो उसे करनेके लिए तैयार है। इन्हीं बातोंपर विचार करके, अत्यंत साहसी बंगाली देशभक्त पंडित मोतीलाल नेहरूको ही अगले वर्षके लिए राष्ट्रका कर्णधार बनाना चाहते हैं। (हिं० न०, २६.७.२८)

. . . .

हमारे देशके इस बहादुर वीरके शवके सामने खड़े होकर गंगा और जमुनाके किनारे हममेंसे हर पुरुष और स्त्रीको यह प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि जबतक हिंदुस्तान आजाद न होगा वह चैन न लेंगे, इसलिए कि यही वह काम है जो मोतीलालजी दिलसे चाहते थे। इसी खातिर उन्होंने अपनी जान देदी। ('कोई शिकायत नहीं', पृष्ठ ७३)

. . . .

मेरी हालत विधवा स्त्रीसे भी बुरी है। एक विधवा अपने पतिकी मृत्युके बाद वफादारीसे जीवन बिताकर अपने पतिके अच्छे कामोंका फल पा सकती है। मैं कुछ भी नहीं पा सकता। मोतीलालजीकी मृत्युसे जो कुछ मैंने खोया है वह मेरा सदाके लिए नुकसान है। ('कोई शिकायत नहीं', पृष्ठ ७३)

. . . .

मोतीलालजीकी मृत्यु हरेक देशभक्तके लिए ईर्ष्यास्पद होनी चाहिए;

क्योंकि अपना सबकुछ न्योछावर करके वे मरे हैं और अंत समय तक देशका ही ध्यान करते रहे हैं। इस वीरकी मृत्युसे हमारे अंदर भी बलि-दानकी भावना आनी चाहिए। हममेंसे हरेकको चाहिए कि जिस स्वतंत्रता-के लिए वे उत्सुक थे और जो हमारे बहुत नजदीक आ पहुंची है, उसको प्राप्त करनेके लिए अपना सर्वस्व नहीं तो कम-से-कम इतना बलिदान तो करें ही कि जिससे वह हमें प्राप्त हो जाय।

(मोतीलालजीकी मृत्युपर, ७ फरवरीको, इलाहाबादमें दिया संदेश।)

. . . .

मैं श्री मोतीलाल नेहरू इत्यादिकी याद आपको दिला दूंगा जिन्होंने अपनी कानूनी लियाकत बिल्कुल मुफ्त बांटी और अपने देशकी बड़ी अच्छी तथा विश्वस्त सेवा की। आप मुझे शायद ताना देंगे कि वे लोग इस कारण ऐसा कर सके थे कि वे अपने व्यवसायमें बड़ी लंबी फीस लेते थे। मैं इस तर्कको इस कारण नहीं मान सकता कि मनमोहन घोषके सिवा मेरा और सबसे परिचय रहा है। अधिक रुपया होनेकी वजहसे इन लोगोंने भारतको आवश्यकता पड़नेपर अपनी योग्यता उदारता-पूर्वक दी हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता। उसका उनकी आराम तथा विलाससे रहनेकी योग्यतासे कोई संबंध नहीं है। मैंने उनको बड़े संतोषसे दीनतापूर्वक जीवन निर्वाह करते देखा है। (हिं० न०, १२.११.३१)

. . . .

स्वर्गीय मोतीलालजीके चित्रके उद्घाटनका जो सम्मान तुम लोगोंने मुझे दिया है, उसके लिए मैं तुम्हारा आभारी हूं। तुम्हारे पास उनकी छवि रहे और उनके पवित्र भावोंको तुम सदा अपने हृदयमें अंकित रक्खो, यह उचित ही है। यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि जैसा संबंध दो सगे-सहोदर भाइयोंके बीच होता है, वैसा ही प्रगाढ़ प्रेम-संबंध मोतीलाल-जीके और मेरे बीच था। मोतीलालजीकी देश-सेवा, मोतीलालजीका त्याग, मोतीलालजीका अपने पुत्र-पुत्रियोंके प्रति अनुपम प्रेम, इन सब बातोंका

परिचय जैसा मुझे था, लगभग वैसा ही तुम्हें भी होना चाहिए। जबसे मुझे मोतीलालजीका प्रथम परिचय प्राप्त हुआ, तबसे उनके जीवनके अंतिम समयतक उनके निकट संसर्गमें रहनेका सद्भाग्य ईश्वरने मुझे दिया था। मैंने देखा कि वह प्रतिक्षण स्वदेशहितका ही चिन्तन करते थे। उनके लिए स्वराज्य स्वप्न नहीं, बल्कि प्राण था। स्वराज्यकी उन्हें सदा तृष्णा-पिपासा रही और वह दिन-दिन बढ़ती ही गई। ऐसे आदर्श देशभक्तका चित्र अपने सम्मुख रखना उचित ही है।....इतनी आशा मुझे अवश्य है कि स्वर्गीय पंडितजीके गुणोंका तुम लोग अनुकरण करोगे।...पंडित मोतीलालजीके सद्गुणोंमें एक गुण यह भी था कि वह अस्पृश्यता नहीं मानते थे। वह मानों एक राजपुरुष थे। उन्होंने तो बेहद रुपया कमाया, उसे सत्कार्योंमें, स्वराज्यके कार्योंमें लुटाया। मुझे उनके ऐसे दृष्टांत मालूम हैं कि उनके हृदयमें ऊंच-नीचका भाव था ही नहीं। (ह० से०, २९.१२.३३)

... ...

उस जमानेमें हमने विदेशी कपड़ेके पहाड़ चिन-चिनकर जला दिये थे और कोई यह नहीं कहता था कि इससे राष्ट्रकी निधि बरबाद हो रही है। श्रीमती नायडूने अपनी पेरिसकी साड़ी जला दी थी और स्व० मोतीलालजीने भी अपने विलायती कपड़ोंमें दियासलाई लगा दी थी। उनके पास तो आलमारी-की-आलमारियां विदेशी कपड़े थे। इसके बाद जब वे जेल गए तब उन्होंने मेरे पास एक खत भेजा था—आज वह खत मैं खोज नहीं सकता—पर उसमें था कि मैं सच्चा जीवन अब ही जी रहा हूं, आनंदभवनमें मेरे पास जो समृद्धि थी उससे मुझे यह सुख नहीं मिलता था। वहां उन्हें सिगार, शराब, गोश्त कुछ नहीं मिलता था। पूरा भोजन भी नहीं मिलता था, फिर भी उसमें उन्हें सुख मालूम हुआ। यह सही है कि उनकी यह चीज हमेशा नहीं चली। (प्रा० प्र०, २०.६.४७)

: १०७ :

सुशीला नैयर

सुशीलाबहन बहावलपुर चली गई है। बहावलपुरमें दुःखी आदमी हैं। उनको देखनेके लिए चली गई है।. . . . फ्रेंड्स सर्विसके लेसली क्रॉसके साथ चली गई है। फ्रेंड्स यूनिटमेंसे किसीको भेजनेका मैंने इरादा किया था, ताकि वह वहां लोगोंको देखें, मिलें और मुझको वहांके हाल बता दें। उस वक्त सुशीलाबहनके जानेकी बात नहीं थी, लेकिन जब सुशीलाबहनने सुन लिया तो उसने मुझसे कहा कि इजाजत देदो तो मैं क्राससाहबके साथ चली जाऊं। वह जब नोआखालीमें काम करती थी तबसे वह उनको जानती थी। वह आखिर कुशल डाक्टर है और पंजाबके गुजरातकी है। उसने भी काफी गंवाया है; क्योंकि उसकी तो वहां काफी जायदाद है, फिर भी दिलमें कोई जहर पैदा नहीं हुआ है। तो उसने बताया कि मैं वहां क्यों जाना चाहती हूं; क्योंकि मैं पंजाबी बोली जानती हूं; हिंदुस्तानी जानती हूं, उर्दू और अंग्रेजी भी जानती हूं, तो वहां मैं क्राससाहबको मदद दे सकूंगी। तो मैं यह सुनकर खुश हो गया। वहां खतरा तो है; लेकिन उसने कहा कि मुझको क्या खतरा है? ऐसा डरती तो नोआखाली क्यों जाती? पंजाबमें बहुत लोग मर गये हैं, बिल्कुल मटियामेट हो गये हैं; लेकिन मेरा तो ऐसा नहीं है। खाना-पीना सब मिल जाता है। ईश्वर सब करता है। अगर आप भेज दें और क्राससाहब मुझे ले जायं तो वहांके लोगोंको देख लूंगी। तो मैंने क्राससाहबसे पूछा कि क्या आपके साथ सुशीलाबहनको भेजूं? तो वे खुश हो गये और कहा कि यह तो बड़ी अच्छी बात है। मैं उनके मारफत दूसरोंसे अच्छी तरह बातचीत कर सकूंगा। मित्रवर्गमें हिंदुस्तानी जाननेवाला कोई रहे तो वह बड़ी भारी चीज हो जाती है। इससे बेहतर क्या हो सकता है? वे रेडक्रासके हैं।. . . तो डाक्टर

सुशीला ग्राससाहबके साथ गई हैं या डाक्टर सुशीलाके साथ ग्रास-साहब गये हैं यह पेचीदा प्रश्न हो जाता है। लेकिन कोई पेचीदा है नहीं, क्योंकि दोनों एक-दूसरेके दोस्त हैं और दोनों एक दूसरेको चाहते हैं, मोहब्बत करते हैं। वे सेवा-भावसे गये हैं, पैसा कमाना तो है नहीं। वे जो देखेंगे, मुझे बतायंगे और सुशीलाबहन भी बतायंगी। मैं नहीं चाहता कि कोई ऐसा गुमान रखे कि वह तो डाक्टर हैं और ग्राससाहब दूसरे हैं। कौन ऊंचा है, कौन नीचा है, ऐसा कोई भेदभाव न करें। (प्रा०प्र०, २९.१.४८)

: १०८ :

वल्लभभाई पटेल

श्रीयुत वल्लभभाई पटेल पुराने सिपाही हैं और सेवाके सिवा उनका दूसरा काम भी नहीं है। (हिं० न०, १५.८.२७)

. . .   .

अभी जो भयंकर अफवाहें उड़ रही हैं उनको ध्यानमें रखकर मुझे यह स्पष्ट कर देना आवश्यक मालूम होता है कि बारडोलीसे मेरा क्या संबंध है। पाठक जान लें कि बारडोली सत्याग्रहके आरंभसे ही मैं उसमें शामिल हूं। उसके नेता वल्लभभाई हैं। उन्हें जब कभी मेरी जरूरत हो, वे मुझे वहां ले जा सकते हैं। यह कोई बात नहीं कि उन्हें मेरी सलाहकी आवश्यकता हो, तथापि कोई भी भारी काम करनेसे पहले वे मुझसे परामर्श करते हैं। पर वहांका सारा काम, चाहे वह छोटा हो या बड़े-से-बड़ा, वे अपनी जिम्मेदारीपर ही करते हैं। इस बातके विषयमें मैंने उनसे पहले हीसे समझौता कर लिया है कि मैं सभा आदिमें नहीं जाऊंगा।

मेरा शरीर अब इस लायक नहीं रहा कि मैं हरएक कामसें दिलचस्पी ले सकूं। इसलिए उन्होंने यह प्रतिज्ञा कर ली है कि अहमदाबादमें या गुजरातमें अन्यत्र बिना कारण वे मुझे नहीं ले जावेंगे, और इस प्रतिज्ञाका उन्होंने अक्षरशः पालन किया है। इस सत्याग्रहमें उनके साथ मेरी संपूर्ण सहानुभूति रही है। अब तो गंभीर स्थिति खड़ी होनेकी संभावना है और उसका सामना करनेके लिए वल्लभभाई जो-जो करेंगे उसमें भी उनके साथ मेरी पूरी सहानुभूति रहेगी। यदि वे कहीं पकड़े गये तो बारडोली जानेके लिए भी मैं पूरी तरह तैयार हूं। उनके बारडोलीमें रहते वहां जाने अथवा अन्य किसी तरह सक्रिय भाग लेनेकी न मुझे कोई जरूरत दिखाई दी, न उन्हें। जहां आपसमें संपूर्ण विश्वास है वहां शिष्टाचार अथवा किसी प्रकारके बाह्य आडंबरकी जरूरत नहीं होती। (हिं० न०, १३.३.१९२९)

. . . .

जिस सरदारके सेनापतित्वमें आपने इस प्रतिज्ञाका इतना सुंदर पालन किया उसीके सेनापतित्वमें आप यह भी करें। ऐसा स्वार्थत्यागी सरदार आपको और नहीं मिलेगा। यह मेरे सगे भाईके समान है, तथापि इतना प्रमाण-पत्र उन्हें देते हुए मुझे जरा भी संकोच नहीं होता। ('विजयी बारडोली', पृष्ठ ३२५)

. . . .

वल्लभभाई जैसे नामके पटेल हैं वैसी ही उनकी साख भी है। बारडोलीकी विजय प्राप्तकर उन्होंने अपनी साखको कायम रखा। (विजयी बारडोली', पृष्ठ ४२६)

. . . .

सरदार वल्लभभाई हंसीमें कहा करते थे कि उनके हाथकी रेखाओं-में जेलकी रेखा नहीं है। उन लोगोंके लिए जेल है ही नहीं, जिनके मनमें जेल महलके समान है और जो जेल और महलमें कोई भेद नहीं सम-

झते। जहां आज सरदार विराजे हैं, वहां हम सबको जाना है। पर बिना योग्यता प्राप्त किये जेल नहीं मिलती। सरदार वल्लभभाईकी अमूल्य सेवाओंके हम पात्र थे या नहीं, इसे प्रमाणित करनेका अवसर अब आ गया है। उन्हें गुजरातसे आशा क्यों न हो? उन्होंने मजदूरोंकी सेवामें कौन कमी रक्खी है? डाकवालों और रेलवेके नौकरोंने उनके पास बैठकर स्वराज्यका पाठ कौन कम पढ़ा है? अहमदाबादका ऐसा कौन नागरिक है जो नहीं जानता कि उन्होंने अपना सर्वस्व होम कर शहर-की सेवा की है? शहरमें जब भीषण महामारी फैली थी, उन दिनों गरीबोंकी सेवाका इंतजाम करने वाला कौन था? वल्लभभाई। अकाल पड़नेपर अकाल पीड़ितोंकी मददके लिए दौड़ पड़नेवाला कौन था? वल्लभभाई। गुजरातमें ऐतिहासिक बाढ़ आई, लाखों लोग घरबार-विहीन बन गये, खेतोंकी फसल बह गई। उस समय सारे गुजरातका संकट टालनेके लिए सैकड़ों स्वयंसेवकोंको तैयार करनेवाला, लोगोंके लिए एक करोड़ रुपए सरकारके खजानेसे निकलवानेवाला कौन था? वल्लभ-भाई हीं। और वह भी वल्लभभाई ही थे, जिन्हें बारडोलीकी जीतके लिए ऋणी जनताने सरदार कहकर पुकारा और जो संपूर्ण स्वराज्यकी आखिरी लड़ाईके लिए जनताको तैयार कर रहे थे। वल्लभभाई तो अपने कर्तव्यका पालन करते हुए जेल पहुंच गये। अब हमें क्या करना चाहिए? इस सवालका एक जवाब तो साफ ही है। हम हिम्मत न हारें, उलटे हममेंसे हरएक दुगुनी दृढ़ता और दुगुनी हिम्मतके साथ सविनय भंगके लिए तैयार हो जायं और जेलकी, या मौत मिले तो मौतकी राह पकड़ लें। सरदारके जानेके बाद अब रहनुमा कौन होगा? इस तरहका नामर्दीसे भरा हुआ सवाल कोई अपने मनमें न उठने दे।....जिसे सविनय भंग करना है, उसके पास आज बहुतेरे साधन पड़े हुए हैं और सरकार नए-नए साधन पैदा कर रही है। जैसे हमारे लिए यह जीवन-मरणका खेल है, वैसे ही सरकारके लिए भी है। मालूम होता है कि उसकी

हस्तीका आधार ही स्वतंत्र स्वभावके मनुष्योंको दबानेपर है, नहीं तो वह वल्लभभाईके समान शांतिरक्षाके लिए प्रसिद्ध आदमीको क्यों पकड़ती ? (हिं० न०, १३.३.३०)

... ...

सरदारके लिए सब समान हैं, एक नन्हा बालक भी इसे जानता है। उन्हें तो गरीबमात्रकी सेवा करनी है। फिर भले ही वह भंगी हो या ब्राह्मण, गुजराती हो या मद्रासी। राष्ट्रने उनकी इस विशेषताको पहचाना और पहचानकर राष्ट्रपति बनाया। (हिं० न, १४.५.३१)

... ...

वल्लभभाईके लिफाफोंकी और संस्कृतकी पढ़ाईकी तारीफ हर पत्रमें करते हैं। कल काकाके खतमें लिखा था कि :

उच्चैः श्रवाकी गतिसे वल्लभभाईकी पढ़ाई चल रही है।

आज प्यारेलालको लिखा :

वल्लभभाई अरबी घोड़ेकी तेजीसे दौड़ रहे हैं। संस्कृतकी किताब हाथसे छूटती ही नहीं। इसकी मुझे आशा नहीं थी ! लिफाफोंमें तो कोई उनकी बराबरी नहीं कर सकता। लिफाफे वे नापे बिना बनाते हैं और अंदाजसे काटते हैं, मगर बराबरके निकलते हैं और फिर भी ऐसा नहीं लगता कि इसमें बहुत समय लगता है। उनकी व्यवस्था आश्चर्यजनक है। जो कुछ करना हो उसे याद रखनेके लिए छोड़ते ही नहीं। जैसे आया वैसे ही कर डाला। कातना जबसे शुरू किया है, तबसे बराबर समयपर कातते हैं। इस तरह सूतमें और गतिमें रोज सुधार होता जा रहा है। हाथमें लिया हुआ भूल जानेकी बात तो शायद ही होती है। और जहां इतनी व्यवस्था हो, वहां धांधली तो हो ही कैसे ? (म० डा०, २८.८.३२)

... ...

सरदार वल्लभभाई पटेलके साथ रहना मेरा बड़ा सौभाग्य था। उनकी अनुपम वीरतासे मैं अच्छी तरह परिचित था, परंतु पिछले १६

महीनेमें जिस प्रकार रहा वैसा सौभाग्य मुझे कभी नहीं मिला था। जिस प्रकार उन्होंने मुझे स्नेहसे ढक लिया वह मुझे मेरी मांकी याद दिलाता है। मैं यह कभी नहीं जानता था कि उनमें मांके गुण भी हैं।....बारडोली और खेड़ाके किसानोंके लिए उनकी चिंता मैं कभी नहीं भूल सकता। (म० डा०)

... ...

दूसरी बात तो यह है कि हर जगहसे शिकायतें आ रही हैं। यह ठीक था कि अंग्रेजी जमानेमें तो जो देशी रियासतें थीं वे अपने दिलमें आए वैसा करती थीं। थोड़ा-सा अंकुश तो अंग्रेजी सल्तनत रखती थी। उसको तो रखना ही था, क्योंकि उसको सल्तनत चलानी थी। आज तो वह चली गई है। हां, यह तो है कि आज सरदार पटेल हैं—उनके हाथमें उनका महकमा है, इसलिए वह तो कुछ करें? लेकिन वे बेचारे क्या कर सकते हैं? उनकी तो अपनी जबान पड़ी है—हिंदुस्तानकी सेवा कर ली है, इसलिए सरदार बने हैं। लेकिन उनके पास तलवार नहीं, बंदूक नहीं, लश्कर नहीं। वे खुद थोड़े लश्करी हैं, वे कमांडर भी नहीं हैं कि उनका हुक्म चले। (प्रा० प्र०, २२.१०.४७)

... ...

पीछे सरदारका नाम आ जाता है। वे कहते हैं कि सरदारको हटा दो, तुम अच्छे हो। पीछे सुनाते हैं कि जवाहर भी अच्छा है। तुम हकूमतमें आ जाओ तो हकूमत अच्छी चले। सब अच्छे हैं, सरदार अच्छे नहीं हैं। तो मैं मुसलमानोंसे कहूंगा कि मुसलमान ऐसा कहेंगे तो कोई बात चलनी नहीं है। क्यों नहीं? क्योंकि आपका हाकिम वह मंत्रिमंडल है। हकूमतमें न अकेला सरदार है और न जवाहर है। वे आपके नौकर हैं। उनको आप हटा सकते हैं। हां, ऐसा है कि सिर्फ मुसलमान तो हटा नहीं सकते हैं, लेकिन इतना तो करें कि सरदार जितनी गलती करते हैं—लोगोंमें आपस-आपसमें बात करनेसे निपटता नहीं है—उनको बताओ।

ऐसा नहीं कि उन्होंने यह बात कही, वह बात कही; लेकिन उन्होंने किया क्या, यह बताओ। मुझको बता दो। उनसे मैं मिलता रहता हूं और सुनता भी हूं तो मैं कह दूंगा। वही जवाहर, वही सरदार दोनों हकूमत चलाते हैं। जवाहर तो उनको निकाल सकते हैं, लेकिन ऐसा नहीं करते हैं तो कुछ है। वे उनकी तारीफ करते हैं। फिर मंत्रि-मंडल है, वह हकूमत है। सरदार जो कुछ करता है उसके लिए सारी हकूमत जवाबदार है। आप भी जवाबदार हैं; क्योंकि वे आपके नुमायंदे हैं।

....सरदार सीधी बात बोलनेवाले हैं। वे बोलते हैं तो कड़वी लगती है। वह सरदारकी जीभमें है। मैंने उनसे कहा कि आपकी जीभसे कोई बात निकली कि कांटा हो गई। तो उनकी जीभ ही ऐसी है कि कांटा है; दिल वैसा नहीं है। उसका मैं गवाह हूं। उन्होंने कलकत्तेमें कह दिया, लखनऊमें कह दिया कि सब मुसलमानोंको यहां रहना है, रह सकते हैं। साथ ही मुझको यह भी कहा कि उन मुसलमानोंका एतबार नहीं करता हूं, जो कल तक लीगवाले थे और अपनेको हिंदू-सिखका दुश्मन मानते थे; वे जब कलतक ऐसे थे तब आज एक रातमें दोस्त कैसे बन सकते हैं? पीछे ऐसा है कि लीग रहेगी तो वे लोग किसकी मानेंगे--हमारी हकूमतकी या पाकिस्तानकी? लीग अभी भी वैसा ही कहती है तो उनको शक होता है। उनको शक करनेका अधिकार है। सबको शक करनेका अधिकार है। सरदारने जो कहा है उसका सीधा अर्थ निकाल लें तो काम बन जाता है। जैसे कोई मेरा भाई है, लेकिन उसपर शक है तो क्या करूं? शक साबित हो तब काटूं, यही मैं कर सकता हूं। लेकिन मैं पहलेसे ही भाईकी बुराई करूं, ऐसा कैसे हो सकता है? वे कहते हैं कि हमारे दिलमें आज मुस्लिम लीगके मुसलमानोंके बारेमें ऐतबार नहीं है, उनपर कैसे भरोसा रखें? मुसलमान सबूत दें कि वे ऐसे नहीं हैं। ऐसा करें तो सब अंजाम पहुंच जाता है। पीछे मुझे यह कहनेका हक मिल जाता है

कि हिंदू, सिख क्या करें। इस यूनियनमें सरदार क्या करें, जवाहर क्या करे, उसमें कोई भी क्या करे, मैं क्या करूं ? (प्रा० प्र०, १३.१.४८)

... ...

"आपने कहा है कि मुसलमान भाई अपने डरकी और अपनी असुरक्षितताकी कहानी लेकर आपके पास आते हैं, तो आप उन्हें कोई जवाब नहीं दे सकते। उनकी शिकायत है कि सरदार—जिनके हाथोंमें गृह-विभाग है—मुसलमानोंके खिलाफ हैं। आपने यह भी कहा है कि सरदार पटेल पहले आपकी हां-में-हां मिलाया करते थे, 'जीहुजूर' कहलाते थे, मगर अब ऐसी हालत नहीं रही। इससे लोगोंके मनपर यह असर होता है कि आप सरदारका हृदय पलटनेके लिए उपवास कर रहे हैं। आपका उपवास गृह-विभागकी नीतिकी निंदा करता है। अगर आप इस चीजको साफ करेंगे तो अच्छा होगा।"

मैं समझता हूं कि मैं इस बातका साफ-साफ जवाब दे चुका हूं। मैंने जो कहा है, उसका एक ही अर्थ हो सकता है। जो अर्थ लगाया गया है, वह मेरी कल्पनामें भी नहीं आया। अगर मुझे पता होता कि ऐसा अर्थ किया जा सकता है तो मैं पहलेसे इस चीजको साफ कर देता।

कई मुसलमान दोस्तोंने शिकायत की थी कि सरदारका रुख मुसलमानोंके खिलाफ है। मैंने कुछ दुःखसे उनकी बात सुनी, मगर कोई सफाई पेश न की। उपवास शुरू होनेके बाद मैंने अपने ऊपर जो रोक-थाम लगाई हुई थी वह चली गई। इसलिए मैंने टीकाकारोंको कहा कि सरदारको मुझसे और पंडित नेहरूसे अलग करके और मुझे और पंडित नेहरूको खामख्वाह आसमानपर चढ़ाकर वे गलती करते हैं।

इससे उनको फायदा नहीं पहुंच सकता। सरदारके बात करनेके ढंगमें एक तरहका अक्खड़पन है, जिससे कभी-कभी लोगोंका दिल दुख जाता है, अगरचे सरदारका इरादा किसीको दुःखी बनानेका नहीं होता।

उनका दिल बहुत बड़ा है। उसमें सबके लिए जगह है। सो मैंने जो कहा, उसका मतलब यह था कि अपने जीवनभरके वफादार साथीको एक बेजा इलजामसे बरी कर दूं। मुझे यह भी डर था कि सुननेवाले कहीं यह न समझ बैठें कि मैं सरदारको अपना 'जीहुजूर' मानता हूं। सरदारको प्रेमसे मेरा 'जीहजूर' कहा जाता था। इसलिए मैंने सरदारकी तारीफ करते समय कह दिया कि वे इतने शक्तिशाली और मनके मजबूत हैं कि वे किसीके 'जीहुजूर' हो ही नहीं सकते। जब वे मेरे 'जीहुजूर' कहलाते थे तब वे ऐसा कहने देते थे; क्योंकि जो कुछ मैं कहता था वह अपने आप उनके गले उतर जाता था। वे अपने क्षेत्रमें बहुत बड़े थे। अहमदाबाद म्युनिसिपैलिटीमें उन्होंने शासन चलानेमें बहुत काबलियत बताई थी। मगर वह इतने नम्र थे कि उन्होंने अपनी राजनैतिक तालीम मेरे नीचे शुरू की। उन्होंने उसका कारण मुझे बताया था कि जब मैं हिंदुस्तानमें आया था उन दिनों जिस तरहका राज-काज हिंदुस्तानमें चलता था, उसमें हिस्सा लेनेका उन्हें मन नहीं होता था। मगर अब जब सत्ता उनके गले आ पड़ी तब उन्होंने देखा कि जिस अहिंसाको वे आजतक सफलता-पूर्वक चला सके अब वह नहीं चला सकते। मैंने कहा है कि मैं समझ गया हूं कि जिस चीजको मैं और मेरे साथी अहिंसा कहा करते थे वह सच्ची अहिंसा न थी। वह तो नकली चीज थी और उसका नाम है निष्क्रिय प्रति-रोध। हां, किनके हाथोंमें निष्क्रिय प्रतिरोध किसी कामकी चीज है? जरा सोचिए तो सही कि एक कमजोर आदमी जनताका प्रतिनिधि बने तो वह अपने मालिकोंकी हँसी और बेइज्जती ही करवा सकता है। मैं जानता हूं कि सरदार कभी उन्हें सौंपी हुई जिम्मेदारीको दगा नहीं दे सकते। वे उसका पतन बर्दाश्त नहीं कर सकते। मैं उम्मीद करता हूं कि यह सब सुननेके बाद कोई ऐसा खयाल नहीं करेंगे कि मेरा उपवास गृह-विभागकी निंदा करनेवाला है। अगर कोई ऐसा खयाल करनेवाला है तो मैं उसको कहना चाहता हूं कि वह अपने-आपको नीचे गिराता है और अपने-आपको

नुकसान पहुंचाता है, मुझे या सरदारको नहीं। (प्रा० प्र०, १५.१.४८)

. . . .

सरदारने बंबईमें क्या कहा, उसे गौरसे पढ़ें तो पता चल जायगा कि सरदार और पंडित नेहरू दूर नहीं हैं, अलग-अलग नहीं हैं। कहनेका तरीका अलग हो सकता है, लेकिन करते एक ही चीज हैं। वे हिंदुस्तान या मुसलमानके दुश्मन नहीं हो सकते। जो मुसलमानका दुश्मन है वह हिंदुस्तानका भी दुश्मन है, इसमें मुझे कोई शक नहीं। (प्रा० प्र०, २०.१.४८)

: १०६ :

विट्ठलभाई जे० पटेल

पाठकोंको एक खुशखबरी न सुनानेका मुझे खेद है। अब वह नीचे दिये गए श्रीयुत विट्ठलभाई पटेल और मेरे बीचके पत्र-व्यवहारसे प्रकट होगा :

(१)

आर्य-भवन
सैंडहर्स्ट रोड, बंबई,
१० मई, १९२६

प्रिय महात्माजी,

जब मैंने लेजिस्लेटिव असेम्बलीका सभापतित्व स्वीकार किया था तो उस समय अपने मन-ही-मन निश्चय कर लिया था कि मेरे वेतनसे जो कुछ बचत होगी, उसका किसी राष्ट्रोपकारी काममें उपयोग करूंगा। कई कारणोंसे, पहले ६ महीनोंमें मैं कुछ कहने-सुनने लायक रकम नहीं बचा सका। पिछले महीनेसे, मुझे कहते हुए खुशी होती है कि, मैं कठि-

नाइयोंसे पार हो गया हूं और एक भारी रकम बचा सकता हूं। मैं देखता हूं कि मुझे औसतन दो हजार रुपये महीनेकी जरूरत पड़ती है। इन्कम टैक्स देकर, मेरा माहवारी वेतन ३,६२५) रुपये है। इसलिए मैं चाहता हूं कि पिछले महीनेसे शुरू करके मैं हर महीने १,६२५) रु० अलग निकाल दूं और इसका आप जिस काममें, जैसे चाहें, उपयोग करें। खैर, मेरे मनमें इस विषयमें कुछ विचार तो हैं, और समयानुसार मैं उनपर आपसे चर्चा करूंगा, मगर आप मुझसे उन विचारोंमें सहमत हों या नहीं, वह रकम आपके अधिकारमें रहेगी। साथमें अप्रैल मासके वेतनमेंसे मैं १६२५) रु० का एक चेक भेजता हूं।

मुझे विश्वास है कि इस जिम्मेदारीको आप अस्वीकार नहीं करेंगे।

आपका
(ह०) वी० जे० पटेल

(२)

'सुखडेल'
शिमला, ३१ मई, १९२६

प्रिय महात्माजी,

साथमें मैं ४३२५) रु० का चेक भेजता हूं। इसमें १,६२५) रु० तो मईके मेरे वेतनमेंसे मेरा हिस्सा है और २७००) रु० उस ३२००) रु० के बाकी हैं जो बंबई कार्पोरेशनके मेरे सहकारियोंने मेरे कार्पोरेशनके सभापतित्वका कार्यकाल समाप्त होनेपर, ५,०००) रु० की थैली मुझे भेंट करनेके लिए, इकट्ठे किये थे। आखिरी बार जब मैं आपसे साबरमतीमें मिला था तो मैंने आपको समझा दिया था कि इस रकमको जो मैंने यों साधारणत: स्वराजदलके या बंबई-राष्ट्रीय-म्युनिसिपल-दलके, ऐसे कामोंके लिए खर्च करनेका निश्चय किया था, जिन्हें मैं उचित समझता,

अब उसे क्यों आपको देना चाहता हूं ताकि मेरे वेतनमें से मेरी मासिक सहायताके कोषमें वह मिला दिया जाय।

आपका

(ह०) वी० जे० पटेल

(३)

आश्रम

साबरमती, २५-७-२६

प्रिय विट्ठलभाई,

मेरे पास आपके पत्र और सब मिलाकर ७,५७५) रु० के चेक मिले जिसमें असेम्बलीके प्रमुखके रूपमें आपके तीन महीनोंके वेतनके हिस्से हैं और ५०००) की थैलीकी बचत है। आप मुझे यह रकम किसी ऐसे देशोपकारी काममें खर्च करनेको कहते हैं, जिसे मैं पसंद करूं। वह पत्र लिखनेके बाद आपने मेरे साथ अपने सुंदर दानके उपयोगके विषयमें अपने विचारोंकी चर्चा करली है। मैंने इसपर खूब विचार किया है कि उस रकमका मैं सचमुचमें क्या उपयोग करूं और अंतमें इस निश्चयपर आया हूं कि अभी हालमें तो उसे जमा होते जाने दूं। इसलिए आश्रमके एजेन्सी खातेमें उसे ६ महीनेकी बंधी मुद्दतके लिए जमा करता जा रहा हूं जिसमें सूदकी अच्छी रकम इकट्ठी हो सके और दलादलीका झगड़ा खत्म होते ही कुछ पारस्परिक मित्रोंकी सहायता लेकर, आपकी और उनकी सलाहसे किसी प्रशंसनीय राष्ट्रीय काममें लगाऊं।

इस बीचमें मैं आपको इस उदार भावके लिए, जिससे आप अपने वेतनका एक बड़ा भाग सार्वजनिक कामके लिए दे देते हैं आपको साधुवाद देता हूं। मैं आशा करता हूं कि आपका उदाहरण और लोगोंपर असर करेगा।

आपका

(ह०) मो० क० गांधी

(४)

२०, अकबर रोड
नई दिल्ली, ९ मार्च, १९२७

प्रिय महात्माजी,

जैसा कि आप जानते हैं, मैंने आपको पहले ही जैसा, पिछले अप्रेल मासके मेरे पत्रमें बतलाये हुए कामके लिए, हर महीने कोई ऐसी रकम देनेका निश्चय किया है, जो मैं अपने वेतनमें से बचा सकूंगा। असेम्बलीके सभापतित्वके सारे कार्य-काल भर, जहां तक संभव हो, मैं यही प्रबंध जारी रखना चाहता हूं।

फरवरीके अंत तक जो कुछ बचत हो सकी है, उसके लिए २०००) रु० का चेक साथमें भेजता हूं।

आपका
(ह०) वी० जे० पटेल

यह पत्र-व्यवहार, श्रीयुत विट्ठलभाई पटेलकी इच्छासे ही रुका रहा। चुनावके दिनोंमें इसे प्रकाशित करनेमें उन्हें कुछ संकोच-सा मालूम हुआ। चुनावोंके बाद भी मैं पिछले ही हफ्ते, उनकी स्वीकृति पा सका। अगर इसके प्रकाशनमें सार्वजनिक लाभ न होता तो मैं स्वयं इस झिझक-को बढ़ावा ही देता। मैं जानता हूं कि विट्ठलभाई चाहते हैं कि लोग उनके उदाहरणकी नकल करें। अगर किसी-न-किसी कारणसे, हिंदुस्तानकी स्थितिके हिसाबसे, बेहिसाब बड़े वेतन जरूर लेने ही पड़ें तो उनका एक अच्छा हिस्सा, सार्वजनिक लाभके किसी कामके लिए, अलग निकालकर रक्खा जा सकता है। मैं जानता हूं कि ऐसे कितने ही बड़े वेतनोंवाले आदमी हैं जो अपनी आमदनी, अपनी व्यक्तिगत मौजमें नहीं उड़ाते, मगर सार्वजनिक सेवामें लगाते हैं। मगर उसका खर्च अपनी ही इच्छाके अनुसार करते हैं। विट्ठलभाई ऐसे चंदोंका एक विशेष कोष खोलना चाहते हैं जिसका प्रबंध जाने-सुने प्रतिष्ठित पुरुष करें। अगर इस उद्देश्यको

सफल होना है तो ट्रस्टियोंका मंडल राष्ट्रीय हो और उसमें उन सभी दलोंके प्रतिनिधि हों जो एक कार्यक्रमपर सहमत हो सकें । इसलिए जिन लोगोंको यह प्रस्ताव पसंद हो, उनसे मैं आलोचनाएं और सूचनाएं मांगता हूं । कोषकी सारी जिम्मेदारी लेने या केवल उन्हीं कामोंमें उसका उपयोग करनेकी मेरी इच्छा नहीं है, जिनके लिए मैंने अपना जीवन उत्सर्ग किया हुआ है । मैं जानता हूं कि मैं विट्ठलभाईके महान उपहारका मतलब सबसे अच्छी तरह पूरा कर सकूंगा अगर मैं उन सबका सहयोग मांगू जो सहायता करनेको तैयार हों । (हिं० न०, १७.३.२७)

. . .   .

धारासभाके सभापति और सरकारके बीचके मतभेदका परिणाम चाहे जो हो, इतना तो सच है कि धारासभाने श्री विट्ठलभाई पटेलको अपना सभापति चुनकर जो काम किया था उसके औचित्यका श्री पटेलने अपने कार्य द्वारा जरूरतसे ज्यादा प्रमाण दे दिया है । अपनी कठोर निष्पक्षता द्वारा उन्होंने अपने पदके सम्मानकी रक्षा की है । साथ ही परंपरा द्वारा और कानून द्वारा जो मर्यादा उनके लिए बन चुकी है, उसके भीतर रहकर भी, राष्ट्रीय हितका एक भी अवसर उन्होंने हाथसे नहीं जाने दिया है । इस कारण सहज ही उनमें और सरकारमें हर बार मतभेद पैदा होता गया है । फिर भी हरएक वक्त जीत उनकी ही हुई है । वह ऐसे अवसरोंपर भी विजयी हुए हैं जब कि उपस्थित समस्याकी विकटताके कारण ऐसा भ्रम होता था कि वह अपना सहज उदात्त स्वभाव कायम न रख सकेंगे । ऐसा होनेपर भी दूसरे ही दिन उन्होंने स्वेच्छासे, उपयुक्त, सम्मानपूर्ण, शब्दोंमें प्रार्थना करते हुए अपनी गलती सुधार ली है । उन्होंने कभी अपने हृदयके भाव छिपाये नहीं हैं । सभापति की हैसियतसे निर्भीकता-पूर्वक कार्य-संचालन करके उन्होंने राष्ट्रकी प्रतिष्ठाको बढ़ाया है ।

अतएव यहां उनकी महान् सफलताके कारणकी जांच करना अनुचित न होगा । उनका अपना कोई स्वार्थ नहीं है । सादा जीवन

बितानेके कारण उनकी आर्थिक जरूरतें बहुत थोड़ी हैं। यही कारण है कि न तो ऊंचा पद और न बड़ा वेतन ही उन्हें ललचा पाते हैं। अपनी इस विरक्तिके कारण उनका उद्यम घटा नहीं, बल्कि आश्चर्यकारक ढंगसे बढ़ गया है, जिसके कारण इतने उच्च पदका कार्य-संचालन करनेके लिए जिन नियमों और कार्य-प्रणालीका ज्ञान आवश्यक है, उस पर उनका अनन्य प्रभुत्व हो गया है। विट्ठलभाई पटेलके लिए राजनीति फुर्सतके वक्तका मनोरंजन नहीं है, वह तो उनके जीवनका प्रधान अंग बन गई है। अतएव उन्होंने राजनीतिके अध्ययनमें अपनी सारी बुद्धि और सारा समय खर्च कर दिया है। फलस्वरूप अपने क्षेत्रमें उन्होंने अपने आपको अजेय बना लिया है। (हिं० न०, १८.४.२९)

... ...

विट्ठलभाई पटेलने अपनी आखिरी कारगुजारी द्वारा अपूर्व साहस और जागरूकताका परिचय दिया है। धारासभाके प्रति मुझे कभी मोह पैदा हुआ ही न था। अब तो वह पहलेसे भी ज्यादा बुरी मालूम होती है। इस धारासभाकी वजहसे हिंदू-मुसलमानोंमें दुश्मनी बढ़ी है। नेताओंके स्वार्थमें वृद्धि हुई है। फिर भी अगर किसीका धारासभामें जाना सार्थक और सफल हुआ है तो वह विट्ठलभाईका ही। बड़ी धारासभाके अध्यक्षके नाते उन्होंने अपना सारा जौहर जताया है और भारतवर्षका गौरव बढ़ाया है। (हिं० न०, २५.४.२९)

... ...

सन् १९१७ की गोधराकी राजनैतिक परिषद्के अवसरपर विट्ठल-भाई को मैंने हरिजन-बस्तीमें जो देखा था, वह दृश्य कभी भूलनेका नहीं। राजनैतिक परिषद्के साथ-साथ गोधरामें दूसरे सम्मेलन भी किये जाते थे। उनमें एक सुधार-सम्मेलन भी वहां था। उसमें एक प्रस्ताव हरिजनोंके संबंधका था। मैंने परिषद्में कहा कि जहां उंगलियोंपर गिनने लायक भी हरिजन मौजूद न हों वहां उस प्रस्तावका रखना व्यर्थ है। इससे

यह अच्छा होगा कि रातको हरिजन-बस्तीमें जाकर वह प्रस्ताव पास किया जाय। सभाको यह बात पसंद आ गई। हरिजन-बस्ती सवर्ण हिंदुओंसे खूब भर गई। गोधराके इतिहासमें यह बात अपूर्व थी। तिल रखनेको जगह न थी। अब्बास साहब, उनकी बेगम साहिबा वगैरा तो थे ही। पर वहां मैंने एक दाढ़ीवाले भाईको कफनी, धोती और साधुओं-का-सा कनटोप लगाए देखा। इस अजीब भेषमें विट्ठलभाईको इससे पहले कभी नहीं देखा था। इसलिए मैं उन्हें झटसे पहचान न सका। पर जब पहचाना तब तो हम एक-दूसरेसे लिपट गये और खूब ही हंसे। इस भेषमें विट्ठलभाईका एक नाटकीय स्वांग तो था ही; किन्तु इसके अंदर उनकी सादगी और जनसाधारणमें घुल-मिल जानेकी एक कला भी थी। विट्ठलभाईकी वहांकी उपस्थितिसे मैंने उनके हरिजन-प्रेमका परिचय पाया। और फिर ज्यों-ज्यों उनका अधिक अनुभव मुझे होता गया, यह सिद्ध हुआ कि उनका उस दिन हरिजन-बस्तीमें जाना शुद्ध हार्दिक था।

उनके अंदर छुआछूतके लिए जरा भी जगह न थी। ऊंच-नीच-भाव उनमें नहीं था। उनका दृढ़ विश्वास था कि जो अधिकार या पद सवर्ण हिंदुओंको प्राप्त हो सकें, वही सब हरिजनोंको भी मिलने चाहिए। उनका यह विश्वास ही नहीं, वर्ताव भी इसी प्रकारका था। इसीसे मैं आशा करता हूं कि आगामी ९ नवंबरको जब उनके शवका अग्नि-संस्कार भारतमें होगा, उस दिन समस्त जनताके आंसुओंमें हरिजन भी अपने श्रद्धापूर्ण आंसू मिलाएंगे। (ह० से०, १०.११.३३)

... ...

सिर्फ विट्ठलभाईका चित्र कालेज हालमें लटका देनेसे ही तुम लोग उत्तीर्ण नहीं हो सकते। उनसे ऋणमुक्त तो तुम तभी हो सकोगे जब उनकी निःस्वार्थता, उनकी सेवा-भावना और उनकी सादगीको तुम लोग ग्रहण करोगे। वह चाहते तो वकालत या दूसरा कोई अच्छा-सा धंधा

करके लाखों रुपया कमाकर मालामाल हो जाते। पर वह तो सारी जिंदगी सादगीसे ही रहे और अंतमें गरीबीकी हालतमें ही मरे। क्या ही अच्छा हो कि तुम लोग भी स्व० विट्ठलभाई पटेलका इसी तरह पदानु-सरण करो। ('विद्यार्थियोंसे' पृष्ठ १७२)

: ११० :

विजयालक्ष्मी पण्डित

आप सब श्रीमती विजयालक्ष्मी पंडितको जानते हैं। वह हिंदुस्तानी नुमाइंदा-मंडलकी मुखिया इसलिए नहीं हैं कि पंडित जवाहरलालकी बहन हैं, बल्कि इसलिए हैं कि वह इसके लायक हैं और अपना काम होशियारीसे करती हैं। (प्रा० प्र०, १६.११.४७)

: १११ :

नागेश्वरराव पन्तलु

नागेश्वररावमें विनय है और सचाई कूट-कूटकर भरी है। मुझे उनकी मित्रता और साथी होनेका गर्व है। मेरा जबसे उनके साथ परिचय हुआ है, मैंने उनमें यह विशेषता देखी है कि जिन्हें उनकी या उनकी सहा-यताकी आवश्यकता होती है उनके हाथमें वे अपनी गर्दन दे देते हैं। उनके दाहिने हाथका दिया हुआ उनके बांये हाथको मालूम नहीं होता। (ह० से०, १२.१.३४)

: ११२ :

पेस्तनजी पादशाह

यहां मुझे पेस्तनजी पादशाह याद आते हैं। विलायतसे ही उनका मेरा मधुर संबंध हो गया था। पेस्तनजीसे मेरा परिचय लंदनके अन्नाहारी भोजनालयमें हुआ था। उनके भाई बरजोरजी एक 'सनकी' आदमी थे। मैंने उनकी ख्याति सुनी थी; पर मिला न था। मित्र लोग कहते, वह 'चक्रम' (सनकी) हैं। घोड़ेपर दया खाकर ट्राममें नहीं बैठते, शताबधानकी तरह स्मरण-शक्ति होते हुए भी डिग्रीके फेरमें नहीं पड़ते। इतने आजाद मिजाज कि किसीके दम-झांसेमें नहीं आते और पारसी होते हुए भी अन्नाहारी! पेस्तनजीकी डिग्री इतनी बढ़ी हुई नहीं समझी जाती थी; पर फिर भी उनका बुद्धि-वैभव प्रसिद्ध था। विलायतमें भी उनकी ऐसी ही ख्याति थी; परंतु उनके मेरे संबंधका मूल तो था उनका अन्नाहार। उनके बुद्धि-वैभवका मुकाबला करना मेरे सामर्थ्यके बाहर था।

बंबईमें मैंने पेस्तनजीको खोज निकाला। वह प्रोथोनोटरी थे। जब मैं मिला तब वह बृहद् गुजराती शब्द-कोषके काममें लगे हुए थे। दक्षिण अफ्रीकाके काममें मदद लेनेके संबंधमें मैंने एक भी मित्रको टटोले बिना नहीं छोड़ा था। पेस्तनजी पादशाहने तो मुझे ही उलटे दक्षिण अफ्रीका न जानेकी सलाह दी—'मैं तो भला आपको क्या मदद दे सकता हूं; पर मुझे तो आपका ही वापस लौटना पसंद नहीं। यहीं, अपने देशमें ही, क्या कम काम है? देखिए, अभी अपनी मातृ-भाषाकी सेवाका ही कितना क्षेत्र सामने पड़ा हुआ है? मुझे विज्ञान-संबंधी शब्दोंके पर्याय खोजने हैं। यह हुआ एक काम। देशकी गरीबीका विचार कीजिए। हां, दक्षिण अफ्रीकामें हमारे लोगोंको कष्ट है; पर उसमें आप जैसे लोग खप जायं, यह मुझे बरदाश्त नहीं हो सकता। यदि हम यहीं राज-सत्ता

अपने हाथमें ले सकें तो वहां उनकी मदद अपने-आप हो जायगी। आपको शायद मैं न समझा सकूंगा; परंतु दूसरे सेवकोंको आपके साथ ले जानेमें मैं आपको हरगिज सहायता न दूंगा।' ये बातें मुझे अच्छी तो नहीं लगीं; परंतु पेस्तनजी पादशाहके प्रति मेरा आदर बढ़ गया। उनका देश-प्रेम व भाषा-प्रेम देखकर मैं मुग्ध हो गया। उस प्रसंगकी बदौलत मेरी उनकी प्रेम-गांठ मजबूत हो गई। उनके दृष्टि-बिंदुको मैं ठीक-ठीक समझ गया, परंतु दक्षिण अफ्रीकाके कामको छोड़नेके बदले, उनकी दृष्टिसे भी, मुझे तो उसी पर दृढ़ होना चाहिए—यह मेरा विचार हुआ। देश-प्रेमी एक भी अंगको, जहांतक हो, न छोड़ेगा, और मेरे सामने तो गीताका श्लोक तैयार ही था—

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥

(गीता ३।३५)

बढ़े-चढ़े पर-धर्मसे घटिया स्वधर्म अच्छा है। स्वधर्ममें मौत भी उत्तम है, किंतु पर-धर्म तो भयकर्त्ता है। (आ० क०)

: ११३ :

जी० परमेश्वरन् पिल्ले

यहां मुझे बड़ी-से-बड़ी सहायता स्वर्गीय जी० परमेश्वरन् पिल्लेसे मिली। वह 'मद्रास स्टैंडर्ड' के संपादक थे। उन्होंने इस प्रश्नका अच्छा अध्ययन कर लिया था। वह बार-बार अपने दफ्तरमें बुलाते और सलाह देते। 'हिंदू'के जी० सुब्रह्मण्यम्से भी मिला था। उन्होंने तथा डा० सुब्रह्मण्यम्ने भी पूरी-पूरी हमदर्दी दिखाई; परंतु जी० परमेश्वरन् पिल्लेने

तो अपना अखबार इस कामके लिए मानो मेरे हवाले ही कर दिया और मैंने भी दिल खोलकर उसका उपयोग किया। (आ० क०)

: ११४ :

पुरुषोत्तम (बापू गायधनी)

श्रीयुत जी० वी० केतकरने महान् वीरताकी एक घटनाका हाल भेजा है, जो यहां उल्लेखनीय है :

"श्रीयुत पुरुषोत्तम, जो बापू गायधनीके नामसे अधिक पहचाने जाते हैं, नासिकके एक नौजवान कार्यकर्ता थे। पिछले कुछ वर्षोंसे वह नासिककी गुलालवाडी सार्वजनिक व्यायामशालाके सहायक मंत्रीका काम कर रहे थे। वह समय-समयपर महासभा और स्वदेशी प्रचारके कामोंमें भी हाथ बंटाया करते थे। ४ अप्रेलके दिन नासिकमें एक मकानमें आग लगी। बापू गायधनीने आग बुझानेके काममें बहुत अधिक मेहनत की। यह मालूम होने-पर कि मकानमें बालक रह गये हैं, परिणामकी तनिक भी चिंता न करके, वह मकानमें घुस पड़े और बच्चोंको निकाल लाये। ढोरोंको बचानेके लिए वह फिरसे घरमें घुसे। बदकिस्मतीसे इस वक्त तक आग चारों ओर फैल चुकी थी। एक जलता हुआ पाट अरर्राकर उनके सरपर फट पड़ा। वह बुरी तरह जल गये और शरीर कई जगह घायल हो गया। घायल दशामें वह सिविल अस्पताल पहुंचाए गये, जहां ११ वीं अप्रेलको उनका स्वर्गवास हो गया।"

उनके माता-पिताको, अगर वे जीवित हैं, अपने बहादुर पुत्रके लिए गर्व होना चाहिए। बापू गायधनी ऐसी भव्य मृत्यु पाकर अमर हो गये हैं। (हिं० न०, ३०.४.२१)

: ११५ :

सरदार पृथ्वीसिंह

'हरिजन' के पाठक जानते हैं कि सरदार पृथ्वीसिंह पच्चीस सालके बाद आजाद हुए हैं। इन पच्चीस सालोंका एक भाग तो उन्होंने जेलमें बिताया और सोलह साल फरारीकी हालतमें इधर-उधर छिपते हुए। उन सोलह सालकी जिंदगीको वह आजादीकी जिंदगी नहीं कह सकते, जबकि खुफिया पुलिस उनके पीछे लगी रहती थी और जब जैसा अवसर हो उसके अनुसार वह नए-नए नाम रखते और नए-नए भेस धारण करते रहते थे। पाठकोंको याद होगा कि पिछले साल जब मैं स्वास्थ्य-सुधारके लिए जुहूमें था तब पृथ्वीसिंहने मुझसे मिलकर अपने पिछले पापोंको स्वीकार करने और भविष्यमें मेरे आदेशानुसार अपना जीवन बनानेका निश्चय किया। मैंने उन्हें सलाह दी कि पुलिसको आत्म-समर्पण कर दो और अपने पिछले पापोंसे मुक्त होनेके लिए स्वेच्छा-पूर्वक जेलके नियमोंका पालन करनेवाले कैदी बन जाओ। मैंने उनसे कहा था कि मैं तुम्हें रिहा करानेकी कोशिश तो करूंगा, लेकिन तुम्हें यह न समझना चाहिए कि मैं उसमें सफल हो ही जाऊंगा, बल्कि जरूरत हो तो अपना शेष जीवन जेलमें काटनेमें ही संतोष करना चाहिए। बड़ी प्रसन्नता और सच्चे जीके साथ वह आजन्म कारावास भुगतनेके लिए तैयार हो गये। सच्चे जीसे उन्होंने यह सचाई कबूल कर ली कि स्वेच्छापूर्ण कैदसे भी देशकी शायद उतनी ही सेवा होगी, जितनी कि जेलसे बाहर रहकर की जा सकती है। मैं बड़ी खुशीके साथ यह कह सकता हूं कि वह अपनी बातके पक्के रहे हैं। पाठक जानते हैं कि महादेव देसाईने रावलपिंडी-जेलमें उनसे मिलनेके बाद उस मुलाकातका वर्णन करते हुए उन्हें सौ फीसदी आदर्श कैदी बतलाया था। वह अपने जेलरोंके प्रिय बन गये हैं और जेलरोंने उनमें

जो विश्वास किया उसके लिए उन्हें कभी पछताना नहीं पड़ा। वहां उन्होंने ऊन और सूतकी कताई सीखी और ऊन-कताईका काम ऐसी मेहनतसे किया कि उनका हट्टा-कट्टा शरीर भी लगातार परिश्रमसे थक जाता था। सरदार पृथ्वीसिंहके आदर्श जेल-जीवनके बारेमें पहले प्यारेलालने और फिर महादेव देसाईने जो कुछ कहा उसपरसे मैंने अपने कर्त्तव्यका निश्चय कर लिया। महादेव देसाईको इस बातका पूरा विश्वास हो गया कि उनके मामलेमें वह सफलताके साथ सर सिकंदर हयातखांसे बातचीत कर सकते हैं। मैंने उन्हें इसकी आज्ञा देदी। सर सिकंदर भी बड़ी उदारतासे पेश आये। महादेवने जो कुछ कहा उसकी सचाईसे, जिसकी पुष्टि पृथ्वीसिंह जिन जेलोंमें रहे उनके अफसरों द्वारा प्राप्त रिपोर्टोंसे भी होती थी, वह प्रभावित हुए। महादेवने इसके लिए वाइसराय-भवनके भी द्वार खटखटाए। इस सबका फल यह हुआ कि २२ सितंबरको अधिकारियोंने सरदार पृथ्वीसिंहको लाकर मेरे पास छोड़ दिया। मैंने उनका स्वागत करते हुए कहा—"तुमने अपनेको एक जेलसे दूसरी जेलमें बदल दिया है, जो किसी कदर ज्यादा ही सख्त है।" उन्होंने हँसकर अपनी हार्दिक स्वीकृति प्रकट की। वह जानते हैं कि वह कसौटीपर कसे जा रहे हैं। अपने देशकी आजादीके लिए एकमात्र हिंसामें उनका पक्का विश्वास रहा। उन्होंने ऐसे-ऐसे साहसपूर्ण काम किये हैं, जिनकी बराबरी चाहे कोई कर सके; लेकिन उनसे बढ़कर किसी भी क्रांतिकारीने नहीं किया है। उनका जीवन अद्भुत घटनाओंसे भरा हुआ है। लेकिन धीरजके साथ आत्म-निरीक्षण करनेसे उन्हें मालूम पड़ा कि मूलभूत रूपमें उनका जीवन असत्यपूर्ण है और असत्यसे सच्ची मुक्ति कभी नहीं हो सकती। लुका-छिपीके उनके जीवनमें जो मोहकता थी और उनके साहसपूर्ण कार्योंसे चकाचौंध होकर उनके मित्र उनकी जो सहायता करते थे, उसके बावजूद वह लुका-छिपीके ऐसे असत्यपूर्ण जीवनसे ऊब गये। सैकड़ों नौजवानोंको उन्होंने जो व्यायाम सिखलाया, उससे उन्हें कोई संतोष नहीं हुआ। सौभा-

ग्यवश, उन्हें दक्षिणामूर्तिके नानाभाई जैसे साथी मिल गये। उन्होंने उनके कदम मेरी तरफ मोड़े। मैंने उनसे कह दिया कि मुझे तबतक संतोष न होगा, जबतक कि वह सक्रिय रूपमें अहिंसाके ऐसे उदाहरण न बन जायं जैसा कि मैं कभी भी हो सकता हूं। मैं तो सक्रिय रूपमें कभी पूरा हिंसक नहीं रहा, बल्कि हिंसाकी जो भावना मुझमें रही वह कायरोंकी-सी ही थी। लेकिन वह तो हिंसाके मूर्त्तरूप ही रहे हैं। अब अगर उन्होंने अहिंसा-को हृदयंगम कर लिया है। तो उनकी अहिंसा पहलेकी उनकी हिंसासे अधिक अद्भुत और शाश्वत रूपमें समृद्ध होनी चाहिए। ईश्वरकी कृपासे उन्हें इस लोकोक्तिको पूरा करके बतलाना चाहिए कि "जो जितना अधिक पापी होता है वह उतना ही बड़ा संत बनता है।" उन्होंने मुझे अपनी डायरीके वे प्रामाणिक पृष्ठ दिखलाये हैं, जिनमें उन्होंने स्वेच्छापूर्ण कैदी-के रूपमें बिताई अपनी पहली रातका मृत्युके रूपमें वर्णन किया है। उनमेंसे नीचे लिखे महत्वपूर्ण वाक्य मैं यहां देता हूं :

"आज मेरे आत्म-समर्पणका दिन है, जबकि दैवी आदेशसे प्रेरित होकर मैं ऐसी हरएक वस्तुका समर्पण करता हूं जिसे कि मैं अपनी कह सकूं। २५ साल तक मैंने सब खतरोंका सामना करते हुए ऐसा प्रकाश पानेके लिए सख्त मेहनत की है जो मुझे सेवाका मार्ग बतला सके। काफी अनुभववाला क्रांतिकारी होनेके कारण मैं अपनी सफलताओंपर गर्व करता था। १६ मईका दिन मेरे जीवनमें एक महत्वपूर्ण दिन है। यह वह दिन है जब मुझे यह महसूस हो गया है कि उसी चले हुए रास्तेपर चलकर मैं न तो अपने राष्ट्रको समृद्ध कर सकूंगा और न मानवताके उद्धारमें ही अपनी कोई देन दे सकूंगा। १६ मईका यह दिन मेरे जीवनमें सबसे बड़े साहसका दिन है। वर्तमान जीवनका मेरे लिए न कोई आकर्षण है और न कोई अर्थ। मुझे नए जीवनमें प्रवेश करना ही चाहिए। मृत्युका आलिंगन किये बिना भला मैं उसे कैसे पा सकता हूं ? लेकिन मृत्युका आलिंगन करना कोई उद्देश्य नहीं है। उद्देश्य तो नया जीवन ही है। किंतु मृत्युके सिवा और कैसे

मैं उसे पा सकता हूं ? तर्ककी इसमें विशेष गुंजाइश नहीं। यह तो श्रद्धा थी, जिसने मुझे चुनावका रास्ता बतलाया।"

क्या अच्छा हो कि सरदारको जो आजादी अब मिली है वह इस बातको सिद्ध कर दे कि उनका यह नोट गर्म कल्पनाकी उपज नहीं, बल्कि छट-पटाती हुई आत्माका प्रदर्शन है। (ह० से०, ३०.६.३६)

: ११६ :

हेनरी पोलक

तीसरे मित्र पोलक हैं। वेस्टकी तरह इनके साथ भी मेरा परिचय भोजन-गृहमें हुआ। वह ट्रांसवालके 'क्रिटिक' के उप-संपादककी जगह छोड़कर 'इंडियन ओपीनियन' में आये थे। सब कोई जानते हैं कि उन्होंने युद्ध (सत्याग्रह) के लिए इंग्लैंड और सारे भारतवर्षमें भ्रमण किया था। रिच विलायत गये कि मैंने उन्हें फिनिक्समें अपने दफ्तरमें बुला लिया। वहां आर्टिकल्स दिये और ये भी वकील बन गये। बादमें उन्होंने शादी की। मिसेज पोलकको भी भारतवर्ष जानता है। इस महिलाने भी अपने युद्धके काममें पतिकी बड़ी सहायता की थी। एक दिन भी उसमें विघ्न नहीं डाला। और यद्यपि आज वे दोनों असहयोगमें हमारा साथ नहीं दे रहे हैं, तथापि वह यथाशक्ति भारतकी सेवा अब भी किया ही करते हैं। (द० अ० स० १९२५)

... ...

गोखलेकी इच्छा थी कि पोलक भारतवर्ष जाकर उनकी कुछ सहायता करें। मि० पोलकका स्वभाव ही ऐसा है कि वे जहां कहीं रहें, मनुष्यके लिए उपयोगी हो जाते हैं। जिस कामको वे उठाते हैं उसीमें तन्मय हो

जाते हैं। इसलिए उनको भारतवर्ष भेजनेकी तैयारियां चल रही थीं। मैंने तो लिख दिया था कि वे चले जावें। पर बिना मुझसे मिले, सभी सूचनाएं प्रत्यक्ष मेरे मुंहसे सुने बिना ही वे जाना नहीं चाहते थे। इसलिए उन्होंने इस सफरमें ही मुझसे मिल लेनेकी इजाजत मांगी। मैंने उन्हें तारसे उत्तर दिया—"गिरफ्तार हो जानेकी जोखिम उठाना चाहें तो चले आवें।" सिपाही सभी आवश्यक जोखिमोंका स्वागत कर लेते हैं। यह युद्ध तो ऐसा था कि सरकार यदि सबको पकड़ना चाहती तो सभीको गिरफ्तार हो जाना चाहिए था। जबतक सरकार गिरफ्तार नहीं करती है तबतक गिरफ्तार होनेके लिए सरल और नीतियुक्त कोशिशें करते जाना धर्म था। इसलिए मि० पोलक अपनी गिरफ्तारीकी जोखिम उठाकर भी आ पहुंचे।

हम लोग हेडलबर्गके करीब पहुंच चुके थे। नजदीकवाले स्टेशनसे उतरकर वे हमें वहीं मिले। हमारी बात-चीत हो रही थी। अभी वह पूरी भी नहीं हो पाई थी। दोपहरके तीन बजे होंगे। हम दोनों दलके मुहानेपर थे। दूसरे साथी भी हमारी बातें सुन रहे थे। शामको मि० पोलकको डरबन जानेवाली ट्रेन पकड़नी थी। किंतु रामचंद्रजी जैसे महापुरुषतकको राजतिलकके समय बनवास मिला। फिर पोलक कौन होते थे? हमारी बातचीत हो रही थी कि एक घोड़ा-गाड़ी सामने आकर ठहर गई। उसमें ऐशियाई विभागके उच्च अधिकारी मि० चमनी और एक पुलिस अधिकारी भी थे। दोनों नीचे उतरे। मुझे जरा दूर ले जाकर कहा, "मैं आपको गिरफ्तार करता हूं।" इस तरह चार दिनमें मैं तीन बार पकड़ा गया। मैंने पूछा—"इस दलको?"

"यह सब होता रहेगा।"

मैं कुछ न बोला। केवल अपने गिरफ्तार होनेकी खबर देनेका समय ही मुझे दिया गया। मैंने पोलकसे कह दिया कि वे दलके साथ जावें।
(द० अ० स० १९२५)

* * *

जिस तरह वेस्टसे मेरी मुलाकात निरामिष भोजनालयमें हुई, उसी तरह पोलकसे भी हो गई। एक दिन मेरे खानेकी मेजसे दूरकी मेजपर एक नवयुवक भोजन कर रहा था। उसने मुझसे मिलनेकी इच्छासे अपना नाम मुझतक पहुंचाया। मैंने उन्हें अपनी मेजपर खानेके लिए बुलाया और वह आये।

"मैं 'क्रिटिक' का उप-संपादक हूं। प्लेग-संबंधी आपका पत्र पढ़नेके बाद आपसे मिलनेकी मुझे बड़ी उत्कंठा हुई। आज आपसे मिलनेका अवसर मिला है।"

मि० पोलकके शुद्ध भावने मुझे उनकी ओर खींचा। उस रातको हमारा एक-दूसरेसे परिचय हो गया और जीवन-संबंधी अपने विचारोंमें हम दोनोंको बहुत साम्य दिखाई दिया। सादा जीवन उन्हें पसंद था। किसी बातके पट जानेके बाद तुरंत उसपर अमल करनेकी उनकी शक्ति आश्चर्यजनक मालूम हुई। उन्होंने अपने जीवनमें कितने ही परिवर्तन तो एकदम कर डाले। (आ० क० १९२७)

... ...

फिनिक्स जैसी संस्था स्थापित करनेके बाद मैं खुद थोड़े ही समय उसमें रह सका। इस बातपर मुझे हमेशा बड़ा दुःख रहा है। उसकी स्थापनाके समय मेरी यह कल्पना थी कि मैं भी वहीं बसूंगा। वहीं रहकर जो-कुछ सेवा हो सकेगी वह करूंगा और फिनिक्सकी सफलताको ही अपनी सेवा समझूंगा; परंतु इन विचारोंके अनुसार निश्चित व्यवहार न हो सका।

हमारी धारणा यह थी कि हम लोग खुद मिहनत करके अपनी रोजी कमायंगे, इसलिए छापेखानेके आस-पास हरएक निवासीको तीन-तीन एकड़ जमीनका टुकड़ा दिया गया। इसमें एक टुकड़ा मेरे लिए भी नापा गया। हम सब लोगोंकी इच्छाके खिलाफ उनपर टीनके घर बनाए गये। इच्छा तो हमारी यह थी कि हम मिट्टी और फूसके, किसानोंके लायक

अथवा ईंटके मकान बनावें, पर वह न हो सका। उसमें अधिक रुपया लगता था और अधिक समय भी जाता था। फिर सब लोग इस बातके लिए आतुर थे कि कब अपने घर बसा लें और काममें लग जायं।

यद्यपि 'इंडियन ओपिनियन' के संपादक तो मनसुखलाल नाजर ही माने जाते थे, तथापि वह इस योजनामें सम्मिलित नहीं हुए थे। उनका घर डरबनमें ही था। डरबनमें 'इंडियन' ओपिनियन' की एक छोटी-सी शाखा भी थी।

छापेखानेमें कंपोज करने यानी अक्षर जमानेके लिए यद्यपि वैतनिक कार्यकर्त्ता थे, फिर भी उसमें दृष्टि यह रखी गई थी कि अक्षर जमानेकी क्रिया सब संस्थावासी जान लें और करें। क्योंकि यह है तो आसान, पर इसमें समय बहुत जाता है। इसलिए जो लोग कंपोज करना नहीं जानते थे वे सब तैयार हो गये। मैं इस काममें अंततक सबसे ज्यादा पिछड़ा रहा और मगनलाल गांधी सबसे आगे निकल गये। मेरा हमेशा यह मत रहा है कि उन्हें खुद अपनी शक्तिकी जानकारी नहीं रहती थी। उन्होंने इससे पहले छापेखानेका कोई काम नहीं किया था, फिर भी वह एक कुशल कंपोजीटर बन गये और अपनी गति भी बहुत बढ़ा ली। इतना ही नहीं, बल्कि थोड़े ही समयमें छापेखानेकी सब क्रियाओंमें काफी प्रवीणता प्राप्त करके, उन्होंने मुझे आश्चर्य-चकित कर दिया।

यह काम अभी ठिकाने लगा ही न था, मकान भी अभी तैयार न हुए थे कि इतनेमें ही इस नए रचे कुटुंबको छोड़कर मुझे जोहांसबर्ग भागना पड़ा। ऐसी हालत न थी कि मैं वहांका काम बहुत समयतक यों ही पटक रखता।

जोहांसबर्ग आकर मैंने पोलकको इस महत्त्वपूर्ण परिवर्तनकी सूचना दी। अपनी दी हुई पुस्तकका[1] यह परिणाम देखकर उनके आनंदकी

---

[1] रस्किनकी 'अनटू दिस लास्ट'

सीमा न रही। उन्होंने बड़ी उमंगके साथ पूछा–"तो क्या मैं भी इसमें किसी तरह योग नहीं दे सकता ?"

मैंने कहा—"हां क्यों नहीं; अवश्य दे सकते हैं। आप चाहें तो इस योजनामें भी शरीक हो सकते हैं।"

"मुझे आप शामिल कर लें तो मुझे तैयार ही समझिए।" पोलकने जवाब दिया।

उनकी इस दृढ़ताने मुझे मुग्ध कर लिया। पोलकने 'क्रिटिक' के मालिकको एक महीनेका नोटिस देकर अपना इस्तीफा पेश कर दिया और मियाद खतम होनेपर फिनिक्स आ पहुंचे। अपनी मिलनसारीसे उन्होंने सबका मन हर लिया और हमारे कुटुंबी बनकर वहां बस गये। सादगी तो उनके रगोरेशेमें भरी हुई थी, इसलिए उन्हें फिनिक्सका जीवन जरा भी अटपटा या कठिन न मालूम हुआ, बल्कि स्वाभाविक और रुचिकर जान पड़ा।

पर खुद मैं ही उन्हें वहां अधिक समयतक न रख सका। मि० रिचने विलायतमें रहकर कानूनके अध्ययनको पूरा करनेका निश्चय किया। दफ्तरके कामका बोझा मुझ अकेलेके बसका न था। इसलिए मैंने पोलकसे दफ्तरमें रहने और वकालत करनेके लिए कहा। इसमें मैंने यह सोचा था कि उनके वकील हो जानेके बाद अंतको हम दोनों फिनिक्समें आ पहुंचेंगे।

हमारी ये सब कल्पनाएं अंतको झूठी साबित हुईं; परंतु पोलकके स्वभावमें एक प्रकारकी ऐसी सरलता थी कि जिसपर उनका विश्वास बैठ जाता उसके साथ वह हुज्जत न करते और उसकी सम्मतिके अनुकूल चलनेका प्रयत्न करते। पोलकने मुझे लिखा—"मुझे तो यही जीवन पसंद है और मैं यहीं सुखी हूं। मुझे आशा है कि हम इस संस्थाका खूब विकास कर सकेंगे। परंतु यदि आपका यह खयाल हो कि मेरे वहां आनेसे हमारे आदर्श जल्दी सफल होंगे तो मैं आनेको भी तैयार हूं।"

मैंने इस पत्रका स्वागत किया और पोलक फिनिक्स छोड़कर

जोहांसबर्ग आये और मेरे दफ्तरमें मेरे सहायकका काम करने लगे। (आ० क० १९२७)

... ...

पोलकको मैंने अपने साथ रहनेका निमंत्रण दिया और हम सगे भाईकी तरह रहने लगे। पोलकका विवाह जिस देवीके साथ हुआ उससे उनकी मैत्री बहुत समयसे थी। उचित समयपर विवाह कर लेनेका निश्चय दोनोंने कर रखा था; परंतु मुझे याद पड़ता है कि पोलक कुछ रुपया जुटा लेनेकी फिराकमें थे। रस्किनके ग्रंथोंका अध्ययन और विचारोंका मनन उन्होंने मुझसे बहुत अधिक कर रखा था; परंतु पश्चिमके वातावरणमें रस्किनके विचारोंके अनुसार जीवन बितानेकी कल्पना मुश्किलसे ही हो सकती थी। एक रोज मैंने उनसे कहा, "जिसके साथ प्रेम-गांठ बंध गई है उसका वियोग केवल धनाभावसे सहना उचित नहीं है। इस तरह अगर विचार किया जाय तब तो कोई गरीब बेचारा विवाह कर ही नहीं सकता। फिर आप तो मेरे साथ रहते हैं। इसलिए घर-खर्चका खयाल ही नहीं है। सो मुझे तो यही उचित मालूम पड़ता है कि आप शादी कर लें।"

पोलकसे मुझे कभी कोई बात दुबारा कहनेका मौका नहीं आया। उन्हें तुरंत मेरी दलील पट गई। भावी श्रीमती पोलक विलायतमें थीं, उनके साथ चिट्ठी-पत्री हुई। वह सहमत हुईं और थोड़े ही महीनोंमें वह विवाहके लिए जोहांसबर्ग आ गईं।

विवाहमें खर्च कुछ भी नहीं करना पड़ा। विवाहके लिए खास कपड़े-तक नहीं बनाए गये और धर्म-विधिकी भी कोई आवश्यकता नहीं समझी। श्रीमती पोलक जन्मतः ईसाई और पोलक यहूदी थे। दोनों नीति-धर्म-के माननेवाले थे।

परंतु इस विवाहके समय एक मनोरंजक घटना हो गई थी। ट्रांस-वालमें जो कर्मचारी गोरोंके विवाहकी रजिस्ट्री करता वह कालेके विवाह-की नहीं करता था। इस विवाहमें दोनोंका पुरोहित या साक्षी मैं ही था।

हम चाहते तो किसी गोरे-मित्रकी भी तजवीज कर सकते थे; परंतु पोलक इस बातको बरदाश्त नहीं कर सकते थे। इसलिए हम तीनों उस कर्मचारीके पास गये। जिस विवाहका मध्यस्थ एक काला आदमी हो उसमें वर-वधू दोनों गोरे ही होंगे, इस बातका विश्वास सहसा उस कर्मचारीको कैसे हो सकता था? उसने कहा कि मैं जांच करनेके बाद विवाह रजिस्टर करूंगा। दूसरे दिन बड़े दिनका त्यौहार था। विवाहकी सारी तैयारी किए हुये वर-वधूके विवाहकी रजिस्ट्रीकी तारीखका इस तरह बदला जाना सबको बड़ा नागवार गुजरा। बड़े मजिस्ट्रेटसे मेरा परिचय था। वह इस विभागका अफसर था। मैं इस दंपतीको लेकर उनके पास गया। किस्सा सुनकर वह हँसा और चिट्ठी लिख दी। तब जाकर यह विवाह रजिस्टर हुआ।

आजतक तो थोड़े-बहुत परिचित गोरे पुरुष ही हम लोगोंके साथ रहे थे; पर अब एक अपरिचित अंग्रेज महिला हमारे परिवारमें दाखिल हुई। (आ० क० १९२७)

... ...

पोलकसे बढ़कर ईमानदार अंग्रेज और तुम्हें कहां मिलेगा? तुम उसके समागममें खूब आये हो। यह आदमी तो साफ मानता है कि अंग्रेजोंने इस देशका भला ही किया है। फिर दूसरे ऐसा माने तो इसमें आश्चर्य ही क्या? यह तो ईसाई मिशनकी वृत्ति है। (म० डा० भाग २ ९.९.१३)

... ...

"वह (पोलक) बहुत जल्दी चिढ़ जाता था। वह और श्रीमती पोलक पहले मित्र थे। इथीकल सोसाइटी (Ethical Society) के सदस्य बने, वहांसे मित्रता शुरू हुई, आखिर मैंने उनकी शादी कराई। वे सोचते थे कि कुछ पैसे हो जायं तब शादी करें। मगर मैंने कहा, 'यह निकम्मी बात है, और पैसेकी जरूरत हो तो मैं भी तो तुम्हारे पास पड़ा हूं न!" पोलकका

यह प्रेम-संबंध था। मगर वह कई बार अपना संतुलन खो बैठता था। वैसे तो श्रीमती पोलक दो की चार सुनानेवाली थीं, मगर जब पोलक गुस्सेमें होता था तो उससे बड़े प्रेमसे पेश आती थी। कहती, "तुम्हें हुआ क्या है ?" और हँस देती थी। मैं कहा करता था कि यह क्या बात है कि पहले तो तुम इतने मित्र थे, और अब शादी हो गई है तो क्या लड़ना ही चाहिए ? जैसे मैंने तुम्हारी शादी कराई है वैसे ही तलाक भी करवाना होगा क्या ? श्रीमती पोलककी कार्य-कुशलताका नतीजा यह है कि वे आज एक दूसरेको पूजते हैं और मुझे छोड़ दिया है। (का० क०, १९.६.४२)

: ११७ :

फकीरी

फकीरीकी मौत तो ऐसी हुई जो आश्रमको शोभा देनेवाली नहीं कही जा सकती। आश्रम अभी नया था। फकीरीपर आश्रमके संस्कार न पड़े थे। फिर भी फकीरी बहादुर लड़का था। मेरी टीका है कि वह अपने खाऊपनकी बलि हो गया। उसकी मृत्यु मेरी परीक्षा थी। मुझे ऐसा याद है कि आखिरी दिन उसकी बगलमें सारी रात मैं ही बैठा रहा।

सवेरे मुझे गुरुकुल जानेके लिए ट्रेन पकड़नी थी। उसे अरथीपर सुलाकर, पत्थरका कलेजा करके मैंने स्टेशनका रास्ता लिया। फकीरीके बापने फकीरी और उसके तीन भाइयोंको यह समझकर मुझे सौंपा था कि मैं फकीरी और दूसरोंके बीच भेद न करूंगा। फकीरी गया तो उसके तीन भाइयोंको भी मैं खो बैठा। ('आश्रमवासियोंसे', ३०.५.३२)

: ११८ :

रेवरेंड चार्ल्स फिलिप्स

डोकके ही जैसा संबंध रखनेवाले और बहुत भारी सहायता करनेवाले एक और पादरी सज्जन थे। उनका नाम था रेवरेंड चार्ल्स फिलिप्स। बहुत वर्ष पहले वे ट्रान्सवालमें कांग्रीगेशनल मिनिस्टर थे। उनकी सुशीला स्त्री भी उनकी बड़ी सहायता करती। (द० अ० स० १९२५)

: ११९ :

जमनालाल बजाज

मनुष्यके जीते हुए उसकी जीवनीका प्रकट होना सामान्यतया अयोग्य है; परंतु इसमें अपवाद भी है। जमनालालजीको मैं मुमुक्षु या आत्मार्थी समझता हूं। ऐसे पुरुषोंकी जीवनीमेंसे दूसरोंको कुछ-न-कुछ नैतिक लाभ मिलता है। इस दृष्टिसे इस जीवनीके प्रकट करनेके औचित्यके लिए मुझसे पूछा गया तब मैंने इसको उचित माना। इसके एक-दो प्रकरण मैंने सुने हैं। इसपरसे मेरा विश्वास है कि इसमें अतिशयता या अयोग्य स्तुति नहीं है। मैं आशा करता हूं कि जिन्होंने सेवाधर्मको स्वीकार किया है उनको जमनालालजीके जीवनमें से बहुत-सी बातें अनुकरणीय प्रतीत होंगी। ('सेठ जमनालाल बजाज' से)

* * *

उनको नजरबंद रखना तो समझमें आ जाता है, क्योंकि वे उस हुक्म की अदूली करना चाहते हैं जो उनके अपने जन्म-प्रदेशमें प्रवेश करनेसे

रोकता है । अधिकारियोंको यह मालूम है कि सेठजी एक आदर्श कैदी हैं, वे जेलके नियंत्रणका पूरी तरह पालन करनेमें विश्वास रखते हैं । उन्हें जिस प्रकार बाहरकी सारी दुनियासे अलग कर दिया गया है, क्या यह अत्याचार और निर्दयता नहीं है ? (ह० से०, ६.५.३९)

... ...

सेठ जमनालाल बजाजको छीनकर कालने हमारे बीचसे एक शक्तिशाली व्यक्तिको छीन लिया है । जब-जब मैंने धनवानोंके लिए यह लिखा कि वे लोककल्याणकी दृष्टिसे अपने धनके ट्रस्टी बन जाएं तब-तब मेरे सामने सदा ही इस वणिक्‌शिरोमणिका उदाहरण मुख्य रहा । अगर वह अपनी संपत्तिके आदर्श ट्रस्टी नहीं बन पाए तो इसमें दोष उनका नहीं था । मैंने जानबूझकर उनको रोका । मैं नहीं चाहता था कि वे उत्साहमें आकर ऐसा कोई काम कर लें, जिसके लिए बादमें शांत मनसे सोचनेपर उन्हें पछताना पड़े । उनकी सादगी तो उनकी अपनी ही चीज थी । अपने लिए उन्होंने जितने भी घर बनाए, वे उनके घर नहीं रहे, धर्मशाला बन गये । सत्याग्रहीके नाते उनका दान सर्वोत्तम रहा । राजनैतिक प्रश्नोंकी चर्चामें वह अपनी राय दृढ़तापूर्वक व्यक्त करते थे । उनके निर्णय पक्के हुआ करते थे । त्यागकी दृष्टिसे उनका अंतिम कार्य सर्वश्रेष्ठ रहा । वे किसी ऐसे रचनात्मक काममें लग जाना चाहते थे, जिसमें वे अपनी पूरी योग्यताके साथ अपने जीवनका शेष भाग तन्मय होकर बिता सकें । देशके पशुधनकी रक्षाका काम उन्होंने अपने लिए चुना था और गायको उसका प्रतीक माना था । इस काममें वह इतनी एकाग्रता और लगनके साथ जुट गये थे कि जिसकी कोई मिसाल नहीं । उनकी उदारतामें जाति, धर्म या वर्णकी संकुचितताको कोई स्थान न था । वे एक ऐसी साधनामें लगे हुए थे, जो कामकाजी आदमीके लिए विरल है । विचार-संयम उनकी एक बड़ी साधना थी । वे सदा ही अपनेको तस्कर विचारोंसे बचानेकी कोशिशमें रहते थे । उनके अवसानसे वसुन्धरा

का एक रत्न कम हो गया है। उनको खोकर देशने अपना एक वीर-से-वीर सेवक खोया है। जिस कार्यके लिए उन्होंने अपना शेष जीवन समर्पित कर दिया था, उसे अब उनकी विधवा जानकीदेवीने स्वयं करनेका निश्चय किया है। उन्होंने अपनी समस्त निजी संपत्तिको, जो करीब ढाई लाखके आस-पास है, कृष्णार्पण कर दिया है। ईश्वर उन्हें अपने इस अंगीकृत कार्यमें सफल होनेकी शक्ति दे। (ह० से०, १५. २. ४२)

. . .   .

[जमनालालजी अकेले एक व्यक्ति ही नहीं थे। वे सच्चे अर्थमें देशकी एक संस्था थे। उनके आकस्मिक स्वर्गवासके बाद गांधीजीने तय किया कि उनकी तमाम सार्वजनिक प्रवृत्तियोंको पहलेकी तरह अखंड रूपमें चलाए रखना ही उनका सच्चा स्मारक हो सकता है। इस हेतुको सफल बनानेके लिए उन्होंने जमनालालजीके करीब दो सौ ऐसे मित्रोंको, जिन्हें उनके जीवन-कार्यसे सहानुभूति थी, अपनी सहीसे निमंत्रण भेजकर सलाह-मशविरेके लिए वर्धा बुलाया। जमनालालजीके राष्ट्रभाषा प्रचारके सिद्धांतोंको ध्यानमें रखकर निमंत्रण-पत्र हिंदी और उर्दू दोनों लिपियोंमें छापा गया था। वर्धाके नवभारत विद्यालयमें २० और २१ फरवरीको दोपहर इस निमित्तसे आये हुए भाई-बहनोंकी दो सभाएं हुईं। इस अवसरपर गांधीजीने जो भाषण किया वह अपनी मिसाल आप ही है। उनके मुंहसे ऐसे वचन इस प्रकारके अवसरपर शायद पहले कभी सुननेमें नहीं आये। रुपए-पैसे द्वारा ईंट-पत्थरका स्मारक बनानेकी बात को छोड़कर जमनालालजीकी मृत्युको आत्मोन्नतिका और उनके जीवन-कार्यको आगे बढ़ानेका एक साधन बना लेनेकी सलाह देते हुए उन्होंने वहां एकत्र मित्र-मंडलसे कहा :]

आजका-सा अवसर मेरे जीवनमें इससे पहले कभी नहीं आया था और जहां तक मैं सोच पाता हूं आगे भी कभी नहीं आयेगा। आप देखते हैं कि जो कार्रवाही आज हम यहां करने जा रहे हैं उसके लिए कोई सभापति

नहीं चुना गया है। मैं तो सभापति हूं ही नहीं। क्यों नहीं हूं, सो आप खुद ही थोड़े समयमें समझ जाइयेगा।

कहा जाता है कि मेरे साथ जमनालालजीका संबंध करीब-करीब तभीसे शुरू हुआ जबसे मैंने हिंदुस्तानके सार्वजनिक जीवनमें प्रवेश किया। उन्होंने मेरे सभी कामोंको पूरी तरह अपना लिया था, यहांतक कि मुझे कुछ करनाही नहीं पड़ता था। ज्योंही मैं किसी नए कामको शुरू करता वे उसका बोझ खुद उठा लेते थे। इस तरह मुझे निश्चिंत कर देना, मानो उनका जीवन-कार्य ही बन गया था। यों हमारा काम मजेमें चल रहा था, लेकिन अब तो वे खुद ही चले गये हैं और उनके सब कामोंको चलानेका भार मेरे कंधोंपर आ पड़ा है। इसलिए मैंने सोचा कि मैं उनके उन सब मित्रोंको जो उनके अनेकानेक सेवाकार्योंमें सहायक होते रहते थे, यहां बुलाऊं और उनसे निवेदन करूं कि वे इस असह्य बोझको उठानेमें अपनी ताकतभर मेरी मदद करके इसे हलका करें। आज मैं आपके सामने एक भिक्षुककी हैसियतसे यहां खड़ा हूं। फिर इस सभाका सभापति कैसे बन सकता हूं?

अपना भिक्षापात्र लेकर मैं आपके सामने खड़ा होता हूं। लेकिन मैं धन-दौलतकी भीख नहीं मांगता। वैसी भीख भी मैंने जीवनमें खूब मांगी है। गरीबकी कौड़ी और अमीरोंके करोड़ोंकी मुझे जरूरत नहीं है।

लेकिन आज जो काम मुझे करना है उसमें रुपए-पैसेकी कम ही जरूरत है। अगर मैं चाहता तो आजके दिन जमनालालजीके सब धनिक मित्रोंको यहां इकट्ठा करके उनपर दबाव डाल सकता था, उनकी खुशामद कर सकता था और उनकी भावनाओंको द्रवित करके थैलियोंके मुंह खुलवा सकता था। यह धंधा भी मैंने अपने जीवनमें जी-भरकर किया है और वह मुझे अच्छी तरह आता भी है। लेकिन वही सब आज मैं यहां करने बैठता तो उस व्यक्तिके नाम को बड़ा धब्बा लगता। मुझे अपना कर्त्तव्य देकर वह चल बसा है, जो मेरे पास आया तो मेरी परीक्षा लेनेको,

मगर पुत्र बनकर बैठ गया और मेरा सारा बोझ उठाता रहा। मुझे जो भिक्षा आज आपसे मांगनी है वह तो यह है कि जमनालालजीके उठ जानेसे जो बोझ बढ़ गया है उसको उठानेमें कौन-कौन मेरी मदद करेंगे? अकेले एक आदमीकी मददसे काम नहीं चलेगा। मदद तो सबको मिलकर देनी होगी और काम बांट लेना होगा।

इस संबंधमें आगे कुछ कहनेके पहले मैं आपको यह बता दूं कि अभी तक मैंने क्या किया है। ११ फरवरीको जब मैं जमनालालजीके द्वारपर पहुंचा तो उनका देहांत हो चुका था। मेरे पास वर्धासे संदेशा तो सिर्फ यही आया था कि खूनका दौरा कम करनेकी दवा भेजें। मैं दवा भेजकर अपने दिलकी तसल्ली कर सकता था। लेकिन उस दिन मैंने महसूस किया कि नहीं, मुझे खुद ही जाना चाहिए। जब वहां पहुंचा तो मामला कुछ और ही पाया। मैं उस अवसरपर भी निर्दयी बन गया। जानकीदेवी तो पतिके शवके साथ सती होनेकी बात करती थी। मैंने कहा कि सचमुच सती बनना है तो जीती-जागती सती बन जाओ। धनका जितना त्याग कर सको कर दो। यह तो उनके लिए एक मामूली बात थी। आखिर धनसे वह कितना सुख और आराम भोग सकती थी? लेकिन दूसरी चीज उतनी आसान नहीं थी। संभव है, वह भी उतनी आसान न हो। मैंने कहा कि वह अपने पतिका स्थान ले लें। उन्हें संकोच हुआ, फिर भी मैंने उनसे प्रतिज्ञा करा ही ली। इतना कठोर मैं बन गया।

इस तरह जानकीदेवीने तो त्यागकी प्रतिज्ञा ले ली। लेकिन फिर मैंने सोचा कि उनके लड़के-लड़कियों और दामाद वगैराको भी ऐसा ही त्याग करना चाहिए। मैं उनके साथ भी कठोर हो गया। मैंने उनसे कहा, "बेशक आप जमनालालजीकी तरह व्यापार कीजिए; लेकिन उसमें उनकी विशेषताको निबाहते रहिए, याने व्यापार भी सेवाभाव अथवा धर्मभावसे कीजिए। जितना कमाएं, नीति-पूर्वक कमाइए और उसे खर्च

भी पुण्य कार्यके लिए कीजिए। अपने ऐश-आरामके लिए नहीं, यानी आप अपने कमाए धनके भी संरक्षक बनकर रहिए।

जमनालालजी करीब ६ लाख रुपया अपने लड़कोंके पास जोड़ गये थे ताकि वे उसका उपयोग सेवार्थ करें। यानी इससे मेरे जैसे भिखारियोंकी झोलियां भरें। लड़के कह सकते थे कि एक बार हमें जी-भरकर ऐश-आराम करने दीजिए, फिर हम त्याग भी करते रहेंगे। लेकिन नहीं, एक-दो दिनके गंभीर विचारके बाद उन्होंने वह सारी रकम सेवा-कार्यके लिए दे दी। इसके सिवा जमनालालजीके जीवन-कालमें कांग्रेसजनोंके और दूसरे कार्यकर्ताओंके आतिथ्य पर हरसाल करीब २० हजार रुपया खर्च होता था। उन्होंने इसको भी पहलेकी तरह जारी रखनेका निश्चय किया और सारे खर्चकी जवाबदारी बच्छराज. जमनालाल कंपनीकी तरफसे अपने कंधोंपर उठा ली। सेठजीने बजाजवाड़ीका एक हिस्सा जानकीदेवीके लिए और बच्चोंके लिए रखा था। लेकिन उनके परिवारवालोंने यह तय किया कि उनमेंसे कोई उन बंगलोंमें नहीं रहेंगे। उनका प्रयोग सिर्फ अतिथि-सत्कारके लिए अथवा सार्वजनिक कामके लिए ही होगा। वे खुद तो अभी गोपुरीमें ही रहना पसंद करते हैं।

इस तरह शुभ संकल्पोंके साथ यह काम शुरू हुआ है। जमनालालजीकी आंख बंद होते ही मैंने उनके बोझका बंटवारा कर लिया है। आप देखेंगे कि जमनालालजीके कामोंकी फेहरिस्त आपको भेजी गई है। उसमें उनके आखिरी कामको पहला स्थान मिला है। यह काम स्वराज-प्राप्तिके कामसे भी कठिन है। स्वराज्य मिलनेसे वह अपने आपही नहीं हो जायगा। यह सिर्फ पैसेसे होनेवाला काम नहीं। मैं इस बातका साक्षी हूं कि आजीवन अलौकिक निष्ठासे काम करनेवाले उस व्यक्तिने किस अपूर्व निष्ठासे इस कामको शुरू किया था। इन्हें इस तरह काम करते देख एक दिन सहज ही मेरे मुंहसे निकल गया था कि जिस वेगसे वह इस कामको कर रहे हैं उसको उनका शरीर सह सकेगा या नहीं? कहीं बीचमें

ही वह धोखा तो नहीं दे जायगा ! आज मेरा वह कथन भविष्यवाणी सिद्ध हुआ है मानो उस समय भगवान ही मेरे मुंहसे बोल रहे थे। सारांश यह कि यह काम पैसेसे नहीं, एक निष्ठासे होनेवाला है। जानकीदेवीने जो ढाई लाख रकम दान की है उसमेंसे ढाई हजार रुपये खादीके काममें खर्च करनेका वह पहले ही संकल्प कर चुकी थीं। इसके सिवा वर्धामें एक प्रसूतिगृह बनानेकी उनकी इच्छा थी। कुछ रुपया उसमें लगेगा। बाकी करीब सवा दो लाख गोमाताके कामके लिए रह जाता है। बीस-पच्चीस हजार रुपया अखिल गोसेवा संघका था, वह भी आज हमारे पास है। जानकीदेवीके दानकी रकमके साथ मिलकर यह रकम हमारी आजकी आवश्यकताके लिए काफी है; लेकिन कार्यकर्त्ता काफी नहीं हैं। गोसेवाका काम आजतक जिस तरह चला उससे न जमनालालजीको संतोष था, न मुझे। इस कामको संतोषजनक रूपमें चलानेके लिए मुझे आपकी तन, मन, धनसे मदद मिलनी चाहिए। जब तक यह न हो जायगा मुझे चैन न पड़ेगा असलमें वारिस तो उन्हें मेरा बनना चाहिए था; पर वह तो चले गये और जी गए। अब परीक्षा मेरी है। मैं एक नए रूपमें उनका वारिस बन गया हूं यानी उनके सारे-के-सारे कामोंको मैंने अपने जिम्मे ले लिया है। लेकिन यह तो एक ऐसी चीज है जिसके वारिस आप सब बन सकते हैं। जब आप सब मिलकर इन कामोंको उठा लेंगे तो यह पहलेसे भी ज्यादा व्यवस्थित और संतोष-जनक रीतिसे चलेंगे और तभी मैं इस परीक्षामें उत्तीर्ण हो पाऊंगा।

जमनालालजी तो बड़भागी थे। उनकी तरह हम भी अपनेको बड़भागी साबित कर सकते हैं, बशर्तेकि जो चीज उनके रहते हमें साफ नहीं दिखाई दी वह उनके बाद हमें साफ दिखाई देने लगे। जो जाग्रति हममें उनके जीवित रहते नहीं आई वह अब सबमें आ जाय। यह सब कठिन है। मगर एक तरहसे आसान भी है। अगर आप यह कठिन काम कर सकते हैं तो करें। परंतु मैं नहीं चाहता कि आप कुछ शरमा-शरमी करें

इससे तो आप जमनालालजीके प्रति अपनी सच्ची श्रद्धाका सबूत नहीं दे सकेंगे। लेकिन बिना किसी संकोचके सोच-समझकर उनके काममें थोड़ी-सी मदद पहुंचायंगे तो आप यहांसे एक बड़ा काम करके चले जायंगे।

उनका सबसे बड़ा काम गोसेवाका था। वैसे तो यह काम पहले भी चलता था; लेकिन धीमी चाल से। इसमें उन्हें संतोष न था। उन्होंने इसे तीव्र गतिसे चलाना चाहा, और इतनी तीव्रतासे चलाया कि खुद ही चल बसे! अगर हमें गायको जिंदा रखना है तो हमें भी इसी तरह उसकी सेवामें अपने प्राण होमने होंगे। इसी तीव्रतासे काम करना होगा। अगर हम गायको बचा पाये तो हम भी बच जायंगे। इसका एक रास्ता तो वह है जो पश्चिम वालोंने अख्तियार कर रखा है। यानी उसको बेचें और उसकी मिट्टीसे अपना पेट भरकर मोटे-ताजे बनें। परंतु उनका यह न्याय न मुझे मंजूर है, न आपको और न जमनालालजीको। इसलिए इसकी जो मर्यादा उन्होंने अपने लिए बनाई थी उसके अंदर रहकर ही हमें काम करना होगा।....जमनालालजी हमें अपना रास्ता बता गये हैं। शायद आपको मालूम हुआ होगा कि उन्होंने गोसेवाकी दो योजनाएं तैयार की थीं। एक सारे देशके लिए, दूसरी वर्धाके लिए।....

× × ×

अब दूसरी चीज लीजिए। मिसालके तौरपर खादीके काममें उनकी दिलचस्पी मुझसे कम न थी। खादीके लिए जितना समय मैंने दिया उतना ही उन्होंने भी दिया। उन्होंने इस कामके पीछे मुझसे कम बुद्धि खर्च नहीं की थी। इसलिए कार्यकर्त्ता भी वे ही ढूंढ़-ढूंढ़कर मेरे पास लाया करते थे। थोड़ेमें यह कह लीजिए कि अगर मैंने खादीका मंत्र दिया तो जमनालालजीने उसको मूर्त रूप दिया। खादीका काम कुछ होनेके बाद मैं तो जेलमें जा बैठा, मगर वे जानते थे कि मेरे नजदीक खादी हीमें स्वराज्य है। अगर उन्होंने तुरंत ही उसमें रत होकर उसे संगठित

रूप न दिया होता तो मेरी गैरहाजिरीमें सारा काम तीन-तरह हो जाता ।

यही बात ग्रामोद्योगकी थी । उन्होंने इसके लिए तो मगनवाड़ी दी ही थी । साथ ही उसके सामनेकी कुछ जमीन भी वे मगनवाड़ीके लिए खरीदनेका संकल्प कर चुके थे । अब चि० कमलनयनने वह जमीन भी मगनवाड़ीको देदी है । ग्रामोद्योगका काम इतना व्यापक है कि इसमें अटूट रुपया खर्च किया जा सकता है ।. . . .

× × ×

एक बात और जमनालालजी कई बार कहा करते थे कि लोग और सब जगह तो खादी पहनकर चले जाते हैं; लेकिन बैंकमें नहीं जाते । अगर बैंकमें वह अपनी मारवाड़ी पगड़ी पहनकर न जायं तो उनके ख्यालमें इसमें उनकी प्रतिष्ठाकी हानि होती है । मगर खुद जमनालालजी ने कभी इसकी कोई चर्चा नहीं की । फिर उसका नतीजा कुछ भी क्यों न हुआ हो ! अतः मैं यह चाहता हूं कि हममें इतनी स्वतंत्रता और इतना आत्म-गौरव पैदा हो जाना चाहिए कि हम अपनी खादीकी पोशाकमें हर जगह बिना झिझकके जा सकें ।

आज हमारे सिर एक बहुत बड़ा संकट मंडरा रहा है । सिंगापुर गया, रंगून जाता नजर आता है । खुद कलकत्ता खतरेमें है । ऐसी हालतमें अगर कलसे कोई दूसरी ताकत हिंदुस्तानमें आ पहुंचे तो क्या पहलेकी तरह हम फिर अपने व्यापारके लालचसे उसकी खुशामद करने लग जावेंगे और अपनी स्वतंत्रता उनके हाथों बेच देंगे ? अथवा यह कहेंगे कि हम इनकी गुलामीसे निकलकर आपकी सरदारीको स्वीकार करना नहीं चाहते? जमनालालजीकी आत्मा आज हमसे पूछती है ! इस संबंधमें उनका अपना क्या जवाब होता, सो तो मैं उतनी ही अच्छी तरह से जानता हूं, जितना अपनेको जानता हूं ।. . . .

× × ×

अबतक इस देशकी आजादीको खोनेमें व्यापारी-समाजकी खास जिम्मेदारी रही है। जमनालालजीको यह चीज बराबर खटका करती थी। इसीलिए आज आपके सामने मुझे यह सारी बातें रखनी पड़ी हैं। ....

जमनालालजीके दूसरे कामोंके बारेमें मैं आपका इस वक्त ज्यादा समय नहीं लेना चाहता। वे सब आपकी आंखोंके सामने ही हैं। महिला-आश्रमको ही लीजिए। यह उनकी अपनी एक विशेष कृति है। उन्हींकी कल्पनाके अनुसार यह अबतक काम करता रहा है। जमनालालजीके सामने सवाल यह था कि जो लोग देशके काममें जुटकर भिखारी बन जाते हैं, उनके बाल-बच्चोंकी शिक्षाका क्या प्रबंध हो? उन्होंने कहा कि कम-से-कम उनकी लड़कियोंको सरकारी मदरसोंके मुकाबलेमें अच्छी ही तालीम मिल सकेगी। बस, इसी खयालसे महिला-आश्रमकी स्थापना हुई। आज इस आश्रमके लिए एक त्यागी और सुशिक्षित महिलाकी आवश्यकता है। आप इस आवश्यकताकी पूर्तिमें सहायक हो सकते हैं। बुनियादी तालीम और हरिजन सेवक संघके कामका भी यही हाल है। आप इनमें शरीक हो सकते हैं। हिंदु-मुस्लिम एकताके लिए उनके दिलमें खास लगन थी। उनके अंदर सांप्रदायिक द्वेषकी बू तक न थी। आप उनके जीवनसे इस गुणको ग्रहण कर सकते हैं। ....

जमनालालजीका स्मृति-स्तंभ खड़ा करके हम उनकी यादको चिरस्थायी नहीं बना सकते। स्तंभपर खुदे हुए शिला-लेखको तो लोग पढ़कर थोड़े ही समयमें भूल जायंगे, परंतु जिस आदमीने दुनियाके लिए इतना कुछ किया है उसके कामको चिरस्थायी रखनेका संकल्प कोई कर लें तो वह उनका सच्चा स्मारक हो रहेगा। किंतु इसके लिए मैं जबरदस्ती नहीं करना चाहता और न मैं आपसे ही वैसी कोई आशा रखता हूं। जिसे जो कुछ भी करना हो आत्मोन्नतिके लिए करे। अगर दिखावेके लिए कुछ भी होगा तो उससे मुझे और जमनालालजीकी आत्माको उल्टा कष्ट ही होगा।

[इसपर कई सूचनाएं गांधीजीके सामने रखी गईं, परंतु वे उन्हें पसंद न आईं। अपनी मनोदशाको और अधिक स्पष्ट करते हुए उन्होंने पुनः जोरदार शब्दोंमें कहा :]

मैंने आज जानबूझकर अनियमित ढंगसे सारा काम चलाया है; क्योंकि मैं इस काममें थोड़ी भी कृत्रिमता नहीं चाहता। मैं इसे अपने जीवनका एक अत्यंत गंभीर अवसर मानता हूं। जो शुद्ध धर्म-भावना अंतिम समयमें जमनालालजीकी थी उसे मैं कायम रखना चाहता हूं। इसलिए जिसे जो कुछ करना हो उसी भावनासे करें। एकांतमें बैठें, अंतर्मुख बनें और ईश्वरको साक्षी रखकर जो संकल्प करना हो करें। (सेवाग्राम, २८.२.४२)

... ...

मैं क्या संदेश भेजूं? जमनालालजीकी स्तुति करूं? कैसे करूं? मेरे हाथ कट गये हैं। जिसका द्वारपाल गया है वह उसके लिए क्या लिख सकता है? ('समाज-सेवकसे')

... ...

गांधीजीने आते ही जमनालालजीके सिरपर हाथ रखा। जमनालालजीकी धर्मपत्नी, श्री जानकीदेवी, तो कुछ हक्की बक्की-सी रह गई थीं। गांधीजीको देखते ही वह आशाकी तरंगोंमें उछलने लगीं—

"बापूजी, ओ बापूजी! आप पासमें होते तो यह न मरते। मैंने आपको इनकी तबीयत बिगड़ते ही जल्दी खबर क्यों न भेज दी। इन्हें जिंदा कर दीजिए। क्या आप इन्हें जिला नहीं सकते?" गांधीजीने कहा :

जानकी, अब तुम्हें रोना नहीं है। तुम्हें तो हँसना है और बच्चोंको हँसाना है। जमनालाल तो जिंदा ही हैं। जिसका यश अमर है, तो फिर उसकी मृत्यु कैसी! उसकी मृत्यु तो तभी हो सकती है जब तुम उसका मार्ग अनुसरण करनेसे मुंह मोड़ो। जमनालालने परमार्थकी

जिंदगी बिताई। तुम्हारी जैसी साध्वी स्त्री उसे मिली, तो फिर रोना कैसा! जो काम उसने अपने कंधोंपर लिया था उसे अब तुम सम्हालो। उसी ध्येयके लिए तुम अपने आपको संपूर्णतया अर्पण कर दो। और जमनालाल जिंदा ही है, ऐसा मानो। तुम जानती हो कि मृत सत्यवानको सावित्रीने अपने तपसे पुनर्जीवित कर लिया था। वह पुनर्जीवन शरीरका क्या हो सकता था? शरीर तो नाशवान ही है। सावित्रीने अपने तपसे सत्यवानके तपको सदाके लिए अमरत्व दे दिया। यही सावित्री-सत्यवान की कथाका सच्चा अर्थ है। तुम भी अपने तपसे अपने पतिके यशको जागृत रखोगी, तो फिर जमनालाल जिंदा ही है, ऐसा हम मान सकते हैं।

"बापूजी, मैं तो अपने आपको अर्पण करनेको तैयार हूं। पर मेरी शक्ति ही क्या? मेरा तप ही क्या? मैं उनके कामको कैसे चलाऊंगी? कैसे उनके तपको जागृत रखूंगी? आप इन्हें मरने मत दीजिए। आप क्या इन्हें जिला नहीं सकते। तो क्या यह मर ही गये। क्या अब बोलेंगे नहीं।"

मैं तुम्हें झूठा धीरज नहीं देने आया हूं। जमनालालका शरीर मर गया; पर असल जमनालाल तो जिंदा ही है और आगेके लिए उसे जिंदा रखना हमारा काम है।"

('जमनालालजी', पृष्ठ १०)

. . . .

शामको घूमते समय अंग्रेजी न जाननेवालोंकी बातें चलीं। चर्चा मीराबहनने चलाई थी। मैंने कहा, "जमनालालजी भी तो अंग्रेजी नहीं जानते थे, मगर वह अपना काम खासा चला लेते थे।" बापू कहने लगे:

मगर जमनालाल अंग्रेजीकी बातें सब समझ लेता था। अंग्रेजीमें प्रस्ताव वगैरा आते थे, उनमें वह एक भी चीज छोड़ता नहीं था। व्याकरण नहीं जानता था, मगर शब्दोंका उपयोग ठीक जानता था। इसलिए अपने भाषणों वगैराका तर्जुमा दुरुस्त किया करता था। उसके जैसा बारीकी-

से हरेक चीजको पकड़नेवाला आदमी भाग्यसे ही कहीं मिलता है। जमनालाल किसी चीजको वर्किंग कमेटीमें छोड़ता नहीं था। वह बुद्धि-शाली था और व्यवहार-कुशल भी। वह अपनी जगह पर अद्वितीय था।" (का० का०, २६.६.४२)

... ...

मैंने कहा, "मगर आज हमारे पास ट्रस्टीशिपका कोई नमूना है तो जमनालालजीका है। जमनालालजीकी बहुत चीजें सेवाके काममें इस्ते-माल होती थीं। कितनी ही जायदाद उन्होंने दे भी डाली। तो भी उनके मनमें यह तो था ही कि वे देते हैं—दान करते हैं।" बापू कहने लगे :

जमनालालजीने महा प्रयत्न किया, मगर वह पूरी तरहसे ट्रस्टी बन नहीं सके। वह उनकी अपूर्णताका नतीजा था। (का० क०, ३.१२.४२)

: १२० :

बहादुरजी

ब्रिटेन और भारतके परस्परके देन, राष्ट्रीय ऋणके संबंधमें जांच करनेके लिए कांग्रेस महासमितिने जो समिति नियत की थी, उसकी रिपोर्ट विशेषकर वर्तमान अवसरपर एक अत्यत महत्वका लेख है। राष्ट्रीय महासभा कांग्रेसका कोई भी सेवक उसकी एक प्रति रखे बिना न रहेगा। श्रीबहादुरजी, भूलाभाई देसाई, खुशाल शाह और श्रीकुमारप्पा अपने इस प्रेमके परिश्रमके लिए राष्ट्रके साभार अभि-नंदनके अधिकारी हैं। 'यंग इंडिया'के विदेशी पाठक जानते हैं कि श्रीबहा-दुरजी और उसी तरह श्री भूलाभाई देसाई, दोनों ही एक बार एडवोकेट-

जनरल थे । उन्होंने एडवोकेट-जनरलके पदका उपयोग किया है, यह बात योंही छोड़ दी जाय, तो दोनों धूमधामसे चलनेवाले धंधेके व्यवसायी और अनुभवी कानून विशेषज्ञ हैं । एडवोकेट-जनरलके पदने इनकी प्रतिष्ठा-में कुछ वृद्धि की है, ऐसी कुछ बात नहीं है । यह तो उनकी प्रतिष्ठाकी और उनके व्यवसायमें उनका जो पद है, उसकी स्वीकृतिमात्र है । खुशाल-शाह भारत-प्रख्यात अर्थशास्त्री हैं, कितनी ही बहुमूल्य पुस्तकोंके लेखक हैं और बहुत वर्ष तक, आज अभी तक, बंबई यूनिवर्सिटीमें अर्थशास्त्रके अध्यापक थे। यह तीनों सज्जन सदैव काममें घिरे रहते हैं, इसलिए राष्ट्रीय महासभाके सौंपे हुए इस उत्तरदायित्वपूर्ण कार्यके लिए समय देना उनके लिए कुछ ऐसा-वैसा साधारण त्याग नहीं था । रिपोर्टके लेखकोंका यह परिचय मैंने इसलिए दिया है कि विदेशी पाठक जान सकें कि यह रिपोर्ट उथले राजनीतिज्ञोंका लिखा हुआ लेख नहीं, वरन जो लोग प्रचुर प्रतिष्ठावाले हैं, और जो धांधलीबाज उपदेशक नहीं, वरन् स्वयं जिस विषयके ज्ञाता हैं, उसीपर लिखनेवाले और अपने शब्दोंको तौल-तौलकर व्यवहारमें लाने वालोंकी यह कृति है । (हिं० न०, ६.८.३१)

: १२१ :

ब्रजलाल

ब्रजलाल बड़ी उम्रमें, शुद्ध सेवा-भावसे आश्रममें आए थे और सेवा करते हुए ही मृत्युका आलिंगन करके अमर हो गये और आश्रमके लिए शोभा रूप हुए । एक लड़केका घड़ा कुएंसे निकालते हुए डोरमें फंसकर फिसल गए और प्राण तजे । ('यरवदा मंदिरसे' ३०.५.३२)

: १२२ :

अब्दुलबारी

जैसी हिंदुओंके बारेमें चेतावनियां मुझे दी गई हैं, वैसी ही मुसलमानों-के विषयमें भी मिली हैं। यहां मैं सिर्फ तीन ही नाम पेश करूंगा। मौलाना अब्दुलबारी साहब एक धर्मोन्मत्त हिंदू द्वेष्टाके रूपमें मेरे सामने पेश किए गये हैं। मुझे उनके कितने ही लेख दिखाए गये हैं जिन्हें मैं समझ नहीं सकता। मैंने तो इस विषयमें उनसे पूछताछ भी नहीं की; क्योंकि वे तो खुदाके एक भोले-भाले बच्चे हैं। मैंने उनके अंदर किसी तरहका छल-कपट नहीं देखा। बहुत बार वे बिना विचारे कह डालते हैं, जिससे उनके अभिन्न मित्रोंको भी परेशानी उठानी पड़ती है। पर वे कड़वी बातें कह बैठनेमें जितनी जल्दी करते हैं उतनी जल्दी अपनी भूलके लिए क्षमा मांगनेको भी तैयार रहते हैं। जिस वक्त जो बात बोलते हैं उस वक्त वे सच्चे दिलसे बोलते हैं। उनका क्रोध और उनकी क्षमा दोनों सच्चे दिलसे होती है। एक बार वे मौ० मुहम्मदअलीपर बिना उचित कारणके बिगड़ बैठे। मैं उस वक्त उनका अतिथि था। उनके मनमें लगा तो उन्होंने मुझे भी कुछ सख्त-सुस्त कह डाला। उसी समय मौ० मुहम्मद-अली और मैं कानपुर जानेके लिए स्टेशन जानेकी तैयारीमें थे। हमारे विदा हो जानेके बाद उन्हें लगा कि उन्होंने हमारे साथ अनुचित बरताव किया है। मौ० मुहम्मदअलीके साथ सचमुच अनुचित बरताव किया गया था। मेरे साथ नहीं। पर उन्होंने तो हम दोनोंके पास कानपुरमें अपनी तरफसे कुछ लोगोंको भेजकर हम दोनोंसे माफी मांगी। इस बातसे वे मेरी नजरोंमें ऊंचे उठ गये। ऐसा होते हुए भी मैं स्वीकार करता हूं कि मौलाना साहब किसी वक्त एक खतरनाक दोस्तका काम दे सकते हैं। पर मेरा मतलब यह है कि ऐसा होते हुए भी वे दोस्त ही रहेंगे।

उनके पास 'खानेके और, दिखानेके और' यह बात नहीं है। उनके दिलमें कोई दांव-पेंच नहीं है। ऐसे मित्रमें सहस्रों दोषोंके होते हुए भी मैं उनकी गोदीमें अपना सिर रखकर चैन से सोऊंगा, क्योंकि मैं जानता हूं ये छिपकर वार कभी न करेंगे। (हि० न०, १.६.२४)

: १२३ :

बाल्डविन

सबसे ज्यादा साफ बात करनेवाला बाल्डविन है। उसे मैंने कहा कि मेरी यह दलील है कि अंग्रेजी राजसे हमारा कुछ भी भला नहीं हुआ। तब वह कहने लगा, मुझे कहना चाहिए कि हमारे लोगोंने हिंदुस्तानमें जो कुछ किया है उसके लिए मुझे गर्व है। और इसमें आश्चर्य ही क्या? रामकृष्ण भाडारकर अक्षरशः मानते थे कि एक मामूली टामी (अंग्रेज सिपाही) भी हमसे बढ़कर है। (म० डा०, ४.७.३२)

. . . .

बाल्डविन तो मुझसे मिलना ही नहीं चाहता था। सर सैमुएल होरने उससे मिलनेका प्रबंध कर दिया। वह भी लार्ड लिनलिथगोकी तरह बाह्य शिष्टाचार खूब बरतता था। बाल्डविनके पास तो मैं पंद्रह मिनट भी नहीं बैठा। मैंने अपना केस रखनेकी कोशिश की। बताया कि हम तो ऐसा मानते हैं कि अंग्रेजी राज्यमें हिंदका हमेशा अहित ही रहा है। आप लोगोंसे हमने कुछ सीखा है, मगर वह आप लोगोंके सम्पर्कमें आनेके कारण। आप राजा न होते और हम आपके सम्पर्कमें आते तब भी सीखते—तब शायद ज्यादा सीखते। आपके पास सुन्दर भाषा है। उसमें इतना काम किया गया है, इतना साहित्य लिखा

गया है। उसकी हमें कदर है। हम हिंदुस्तानमें सीमित होकर नहीं रहना चाहते। सारे जगतके साथ संबंध रखना चाहते हैं, मगर आजाद होकर। हमें स्वतंत्रता चाहिए। अंग्रेजी भाषामें 'इंडिपेन्डेन्स' शब्दका जो अर्थ है, वह स्वतंत्रता हमें चाहिए, किसी खास तरहकी नहीं; क्योंकि हम मानते हैं कि हिंदुस्तानमें अंग्रेजी राज बुरी चीज है। वह कहने लगा, इसमें हमारा मतभेद है, मुझे तो अपनी कौमका और भारतमें अपने शासनका गर्व है। मैंने कहा, "ऐसा है तो मुझे आपसे और कुछ नहीं कहना।" (का० क०, ३.१२.४२)

: १२४ :

बालासुंदरम्

'नेटाल इंडियन कांग्रेस' में यद्यपि उपनिवेशोंमें जन्मे भारतीयोंने प्रवेश किया था, कारकुन लोग शरीक हुए थे, फिर भी उसमें अभी मजूर गिरमिटिया लोग सम्मिलित न हुए थे। कांग्रेस अभी उनकी न हुई थी। वे चंदा देकर, उसके सदस्य होकर, उसे अपना न सके थे। कांग्रेसके प्रति उनका प्रेम पैदा तभी हो सकता था, जब कांग्रेस उनकी सेवा करे। ऐसा अवसर अपने आप आ गया और सो भी ऐसे समय, जबकि खुद मैं अथवा कांग्रेस उसके लिए मुश्किलसे तैयार थी; क्योंकि अभी मुझे वकालत शुरू किए दो-चार महीने भी मुश्किलसे हुए होंगे। कांग्रेस भी बाल्यावस्थामें ही थी। इन्हीं दिनों एक दिन एक मदरासी हाथमें फेंटा रखकर रोता हुआ मेरे सामने आकर खड़ा हो गया। कपड़े उसके फटे-पुराने थे। उसका शरीर कांप रहा था। सामनेके दो दांत टूटे हुए थे और मुंहसे खून बह रहा था। उसके मालिकने उसे बेदर्दीसे पीटा था। मैंने अपने मुंशीसे, जो

तामिल जानता था, उसकी हालत पुछवाई। बालासुंदरम् एक प्रतिष्ठित गोरेके यहां मजूरी करता था। मालिक किसी बातपर उसपर बिगड़ पड़ा और आग-बबूला होकर उसने उसे बुरी तरह पीट डाला, जिससे बालासुंदरम्के दो दांत टूट गये।

मैंने उसे डाक्टरके यहां भेजा। उस समय गोरे डाक्टर भी वहां थे। मुझे चोट संबंधी प्रमाण-पत्रकी जरूरत थी। उसे लेकर मैं बालासुंदरम्को अदालतमें ले गया। बालासुंदरम्ने अपना हलफिया बयान लिखवाया। पढ़कर मजिस्ट्रेटको मालिकपर बड़ा गुस्सा आया। उसने मालिकको तलब करनेका हुक्म दिया।

मेरी इच्छा यह न थी कि मालिकको सजा हो जाय। मुझे तो सिर्फ बालासुंदरम्को उसके यहांसे छुड़वाना था। मैंने गिरमिट-संबंधी कानूनको अच्छी तरह देख लिया। मामूली नौकर यदि नौकरी छोड़ दे तो मालिक उसपर दीवानी दावा कर सकता है, फौजदारीमें नहीं ले जा सकता। गिरमिट और मामूली नौकरोंमें यों बड़ा फर्क था; पर उसमें मुख्य बात यह थी कि गिरमिटया यदि मालिकको छोड़ दे तो वह फौजदारी जुर्म समझा जाता था और इसलिए उसे कैद भोगनी पड़ती। इसी कारण सर विलियम विलसन हंटरने इस हालतको 'गुलामी'-जैसा बताया है। गुलामकी तरह गिरमिटिया मालिककी संपत्ति समझा जाता। बालासुंदरम्को मालिकके चंगुलसे छुड़ानेके दो ही उपाय थे: या तो गिरमिटियोंका अफसर, जो कानूनके अनुसार उनका रक्षक समझा जाता था, गिरमिट रद कर दे, या दूसरेके नामपर चढ़ा दे अथवा मालिक खुद उसे छोड़नेके लिए तैयार हो जाय। मैं मालिकसे मिला और उससे कहा—"मैं आपको सजा कराना नहीं चाहता। आप जानते हैं कि उसे सख्त चोट पहुंची है। यदि आप उसकी गिरमिट दूसरेके नाम चढ़ानेको तैयार होते हों तो मुझे संतोष हो जायगा।" मालिक भी यही चाहता था। फिर मैं उस रक्षक अफसरसे मिला। उसने भी रजामंदी तो

जाहिर की; पर इस शर्तपर कि मैं बालासुंदरम्‌के लिए नया मालिक ढूंढ़ दूं।

अब मुझे नया अंग्रेज मालिक खोजना था। भारतीय लोग गिरमिटियोंको रख नहीं सकते थे। अभी थोड़े ही अंग्रेजोंसे मेरी जान-पहचान हो पाई थी। फिर भी एकसे जाकर मिला। उसने मुझपर मेहरबानी करके बालासुंदरम्‌को रखना मंजूर कर लिया। मैंने कृतज्ञता प्रदर्शित की। मजिस्ट्रेटने मालिकको अपराधी करार दिया और यह बात नोट कर ली कि अपराधीने बालासुंदरम्‌की गिरमिट दूसरोंके नामपर चढ़ा देना स्वीकार किया है।

बालासुंदरम्‌के मामलेकी बात गिरमिटियोंमें चारों ओर फैल गई और मैं उनके बंधुके नामसे प्रसिद्ध हो गया। मुझे यह संबंध प्रिय हुआ। फलतः मेरे दफ्तरमें गिरमिटियोंकी बाढ़ आने लगी और मुझे उनके सुख-दुःख जाननेकी बड़ी सुविधा मिल गई।

बालासुंदरम्‌के मामलेकी ध्वनि ठेठ मदरास तक जा पहुंची। उस इलाकेके जिन-जिन जगहोंसे लोग नेटालकी गिरमिटमें गये उन्हें गिरमिटियोंने इस बातका परिचय कराया। मामला कोई इतना महत्वपूर्ण न था, फिर भी लोगोंको यह बात नई मालूम हुई कि उनके लिए कोई सार्वजनिक कार्यकर्ता तैयार हो गया है। इस बातसे उन्हें तसल्ली और उत्साह मिला।

मैंने लिखा है कि बालासुंदरम् अपना फेंटा उतारकर उसे अपने हाथमें रखकर मेरे सामने आया था। इस दृश्यमें बड़ा ही करुण रस भरा हुआ है। यह हमें नीचा दिखानेवाली बात है। मेरी पगड़ी उतारनेकी घटना पाठकोंको मालूम ही है। कोई भी गिरमिटिया तथा दूसरा नवागत हिंदुस्तानी किसी गोरेके यहां जाता तो उसके सम्मानके लिए पगड़ी उतार लेता—फिर टोपी हो, या पगड़ी, अथवा फेंटा हो। दोनों हाथोंसे सलाम करना काफी न था। बालासुंदरम्‌ने सोचा कि मेरे सामने भी इसी तरह

जाया जाता होगा। बालासुंदरम्‌का यह दृश्य मेरे लिए पहला अनुभव था। मैं शर्मिन्दा हुआ। मैंने बालासुंदरम्‌से कहा, "पहले फेंटा सिरपर बांध लो।" बड़े संकोचसे उसने फेंटा बांधा; पर मैंने देखा कि इससे उसे बड़ी खुशी हुई। मैं अबतक यह गुत्थी न सुलझा सका कि दूसरोंको नीचे झुकाकर लोग उसमें अपना सम्मान किस तरह मान सकते होंगे। (आ० क०, १६२७)

: १२५ :

घनश्यामदास बिड़ला

वल्लभभाई—"मगर पुरुषोत्तमदास और बिड़लाका क्या हाल है?"
बापूने कहा : ये लोग होरको कोई वचन दे चुके हों, ऐसी बात नहीं है। मगर कमजोरी आ गई होगी। बिड़ला होरके हाथ बिक जाय तो उसे आत्म-हत्या करनी चाहिए। और अभी तो मालवीयजी बाहर बैठे हैं। बिड़ला मालवीयजी से पूछे बिना एक कदम भी रखे ऐसा आदमी नहीं है। नहीं, मुझे भरोसा है कि व्यापारियोंमें ये लोग नहीं हैं। (म० डा०, १५.७.३२)

... ...

इस संस्थाका जन्म सेठ शिवनारायणजीके दो पौत्र रामेश्वरदास और घनश्यामदासकी पढ़नेकी इच्छामेंसे हुआ। सेठजीको यह अच्छा नहीं लगा कि केवल उनके पौत्र ही पढ़ें और गांवके दूसरे लड़कोंको इसका लाभ न मिले। पांच रुपये मासिकका उन्होंने एक शिक्षक रखा और बिड़ला-पाठशाला खोल दी। इसी बीजमेंसे निकलकर यह महावृक्ष इतना बड़ा हुआ है। स्वार्थके साथ परोपकारका मेल

साधना बिड़ला-बंधुओंके स्वभावमें उतरा है। शिक्षण, आरोग्य आदिमें अधिक-से-अधिक दिलचस्पी सेठ घनश्यामदासने ली और पिलानी की विशाल शिक्षण-संस्थामें घनश्यामदासजीने जो रस लिया, अपनी बुद्धि लगाई और ध्यान दिया, उसके लिए संस्था उनकी आभारी है। सर मॉरिस ग्वायर वगैरह यह संस्था देख आये हैं और उन्होंने इसकी मुक्त कंठसे प्रशंसा की है। इस कॉलेजको सब तरहसे आदर्श कॉलेज बनानेका घनश्यामदासजीका बरसोंसे प्रयास चल रहा है। पर चूंकि पिलानी एक देशी रियासतके अंतर्गत है, इसलिए सब धीमे-धीमे ही होता है। आशा है कि ऐसी अच्छी शिक्षण-प्रवृत्तिको जयपुर राज्य पूरा प्रोत्साहन देगा और कॉलेजको पूर्ण बनानेकी इजाजत भी तुरंत दे देगा। मेरा मत है कि इतनी व्यवस्था और ध्यानसे चलनेवाली संस्थाएं हिंदुस्तानमें थोड़ी ही हैं।

आधुनिक कॉलेजोंकी अगर आवश्यकता स्वीकार की जाए तो बिड़ला-कॉलेजमें जितनी चीजोंका मेल किया गया है, दूसरी जगह वह शायद ही देखनेमें आयेगा। (ह० से०, २७.७.४०)

: १२६ :

बृजकिशोर

बृजकिशोरबाबू दरभंगासे और राजेंद्रबाबू पुरीसे यहां आए। यहां जो मैंने देखा तो यह लखनऊवाले बृजकिशोरप्रसाद नहीं थे। उनके अंदर बिहारीकी नम्रता, सादगी, भलमनसी और साधारण श्रद्धा देखकर मेरा हृदय हर्षसे फूल उठा। बिहारी वकील-मंडलका उनके प्रति आदर-भाव देखकर मुझे आनंद और आश्चर्य दोनों हुए।

तबसे इस वकील-मंडल और मेरे बीच जन्म-भरके लिए स्नेह-गांठ

बंध गई। बृजकिशोरबाबूने मुझे सब बातोंसे वाकिफ करा दिया। वह गरीब किसानोंकी तरफ से मुकदमे लड़ते थे। ऐसे दो मुकदमे उस समय चल रहे थे। ऐसे मुकदमोंके द्वारा वह कुछ व्यक्तियोंको राहत दिलाते थे; पर कभी-कभी इसमें भी असफल हो जाते थे। इन भोले-भाले किसानोंसे वह फीस लिया करते थे। त्यागी होते हुए भी बृजकिशोरबाबू या राजेंद्रबाबू फीस लेनेमें संकोच न करते थे। "पेशेके काममें अगर फीस न लें तो हमारा घर-खर्च नहीं चल सकता और हम लोगोंकी मदद भी नहीं कर सकते।"—यह उनकी दलील थी। उनकी तथा बंगाल-बिहारके बैरिस्टरोंकी फीसके कल्पनातीत अंक सुनकर मैं तो चकित रह गया। "..को हमने 'ओपीनियन' के लिए दस हजार रुपये दिए।" हजारोंके सिवाय तो मैंने बात ही नहीं सुनी।

इस मित्र-मंडलने इस विषयमें मेरा मीठा उलाहना प्रेमके साथ सुना। उन्होंने उसका उलटा अर्थ नहीं लगाया।

मैंने कहा—"इन मुकदमोंकी मिसलें देखनेके बाद मेरी तो यह होती है कि हम यह मुकदमेबाजी अब छोड़ दें। ऐसे मुकदमोंसे बहुत कम लाभ होता है। जहां प्रजा इतनी कुचली जाती है, जहां सब लोग इतने भयभीत रहते हैं, वहां अदालतोंके द्वारा बहुत कम राहत मिल सकती है। इसका सच्चा इलाज तो है लोगोंके दिलसे डरको निकाल देना। इस-लिए अब जबतक यह 'तीन कठिया' प्रथा मिट नहीं जाती तबतक हम आरामसे नहीं बैठ सकते। मैं तो अभी दो दिनमें जितना देख सकूं, देखने-के लिए आया हूं, परंतु मैं देखता हूं कि इस काममें दो वर्ष भी लग सकते हैं; परंतु इतने समयकी भी जरूरत हो तो मैं देनेके लिए तैयार हूं। यह तो मुझे सूझ रहा है कि मुझे क्या करना चाहिए; परंतु आपकी मददकी जरूरत है।"

मैंने देखा कि बृजकिशोरबाबू निश्चित विचारके आदमी हैं। उन्होंने शांतिके साथ उत्तर दिया—"हमसे जो-कुछ बन सकेगी वह मदद हम

जरूर करेंगे; परंतु हमें आप बतलाइए कि आप किस तरहकी मदद चाहते हैं।"

हम लोग रात-भर बैठकर इस विषयपर विचार करते रहे। मैंने कहा—"मुझे आपकी वकालतकी सहायताकी जरूरत कम होगी। आप जैसोंसे मैं लेखक और दुभाषिएके रूपमें सहायता चाहता हूं। संभव है, इस काममें जेल जानेकी भी नौबत आजाय। यदि आप इस जोखिममें पड़ सकें तो मैं इसे पसंद करूंगा; परंतु यदि आप न पड़ना चाहें तो भी कोई बात नहीं। वकालतको अनिश्चित समयके लिए बंद करके लेखकके रूपमें काम करना भी मेरी कुछ कम मांग नहीं है। यहांकी बोली समझने-में मुझे बहुत दिक्कत पड़ती है। कागज-पत्र सब उर्दू या कैथीमें लिखे होते हैं, जिन्हें मैं पढ़ नहीं सकता। उनके अनुवादकी मैं आपसे आशा रखता हूं। रुपये देकर यह काम कराना चाहें तो वह अपने सामर्थ्यके बाहर है। यह सब सेवा-भावसे बिना पैसेके होना चाहिए।"

बृजकिशोरबाबू मेरी बातको समझ तो गये; परंतु उन्होंने मुझसे तथा अपने साथियोंसे जिरह शुरू की। मेरी बातोंका फलितार्थ उन्हें बताया। मुझसे पूछा—"आपके अंदाजमें कबतक वकीलोंको यह त्याग करना चाहिए, कितना करना चाहिए, थोड़े-थोड़े लोग थोड़ी-थोड़ी अवधि-के लिए आते रहें तो काम चलेगा या नहीं?" इत्यादि। वकीलोंसे उन्होंने पूछा कि आप लोग कितना-कितना त्याग कर सकेंगे?

अंतमें उन्होंने अपना यह निश्चय प्रकट किया—"हम इतने लोग तो आप जो काम सौंपेंगे करनेके लिए तैयार रहेंगे। इनमेंसे जितनोंको आप जिस समय चाहेंगे आपके पास हाजिर रहेंगे। जेल जानेकी बात अलबत्ता हमारे लिए नई है; पर उसकी भी हिम्मत करनेकी हम कोशिश करेंगे।" (आ० क०, १९२७)

... ...

बृजकिशोरबाबू और राजेंद्रबाबूकी जोड़ी अद्वितीय थी। उन्होंने

प्रेमसे मुझे ऐसा अपंग बना दिया था कि उनके बिना मैं एक कदम भी आगे न रख सकता था। (आ० क०, १९२७)

: १२७ :

ए० डब्ल्यू० बेकर

मि० बेकर वकील और साथ ही कट्टर पादरी भी थे। अभी वह मौजूद हैं। अब तो सिर्फ पादरीका ही काम करते हैं। वकालत छोड़ दी है। खा-पीकर सुखी हैं। अबतक मुझसे चिट्ठी-पत्री करते रहते हैं। चिट्ठी-पत्रीका विषय एक ही होता है। ईसाई-धर्मकी उत्तमताकी चर्चा वह भिन्न-भिन्न रूपमें अपने पत्रोंमें किया करते हैं और यह प्रतिपादन करते हैं कि ईसामसीहको ईश्वरका एकमात्र पुत्र तथा तारनहार माने बिना परमशांति कभी नहीं मिल सकती।

हमारी पहली ही मुलाकातमें मि० बेकरने धर्म-संबंधी मेरी मनोदशा जान ली। मैंने उनसे कहा—"जन्मतः मैं हिंदू हूं; पर मुझे उस धर्मका विशेष ज्ञान नहीं। दूसरे धर्मोंका ज्ञान भी कम है। मैं कहां हूं, मुझे क्या मानना चाहिए, यह सब नहीं जानता। अपने धर्मका गहरा अध्ययन करना चाहता हूं। दूसरे धर्मोंका भी यथाशक्ति अध्ययन करनेका विचार है।"

यह सब सुनकर मि० बेकर प्रसन्न हुए और मुझसे कहा—"मैं खुद 'दक्षिण अफ्रीका जनरल मिशन' का एक डाइरेक्टर हूं। मैंने अपने खर्चसे एक गिरजा बनाया है। उसमें मैं समय-समयपर धर्म-संबंधी व्याख्यान दिया करता हूं। मैं रंग-भेद नहीं मानता। मेरे साथ और लोग भी काम करनेवाले हैं। हमेशा एक बजे हम कुछ समयके लिए मिलते हैं और

आत्माकी शांति तथा प्रकाश (ज्ञानके उदय) के लिए प्रार्थना करते हैं। उसमें आप आया करेंगे तो मुझे खुशी होगी। वहां अपने साथियोंका भी परिचय आपसे कराऊंगा। वे सब आपसे मिलकर प्रसन्न होंगे और मुझे विश्वास है कि आपको भी उनका समागम प्रिय होगा। आपको कुछ धर्म पुस्तकें भी मैं पढ़नेके लिए दूंगा; परंतु सच्ची पुस्तक तो बाइबिल ही है। मैं खास तौरपर सिफारिश करता हूं कि आप इसे पढ़ें।"

मैंने मि० बेकरको धन्यवाद दिया और कहा कि जहां तक हो सकेगा आपके मंडलमें एक बजे प्रार्थनाके लिए आया करूंगा। (आ० क० १९२७)

. . . .

मेरे भविष्यके संबंधमें मि० बेकरकी चिंता दिन-दिन बढ़ती जा रही थी। वह मुझे वेलिंग्टन कन्वेंशनमें ले गये। प्रोटेस्टेंट ईसाइयोंमें, कुछ-कुछ वर्षों बाद, धर्म-जागृति अर्थात् आत्मशुद्धिके लिए विशेष प्रयत्न किए जाते हैं। इसे धर्मका पुनः प्रतिष्ठा अथवा धर्मका पुनरुद्धार कहा करते हैं। ऐसा एक सम्मेलन वेलिंग्टनमें था। उसके सभापति वहांके प्रख्यात धर्मनिष्ठ पादरी रेवरंड एंड्रू मरे थे। मि० बेकरको ऐसी आशा थी कि इस सम्मेलनमें होनेवाली जागृति, वहां आनेवाले लोगोंका धार्मिक उत्साह, उनका शुद्ध भाव, मुझपर ऐसा गहरा असर डालेगा कि मैं ईसाई हुए बिना न रह सकूंगा।

परंतु मि० बेकरका अंतिम आधार था प्रार्थना-बल। प्रार्थनापर उनकी भारी श्रद्धा थी। उनका विश्वास था कि अंतःकरण-पूर्वक की गई प्रार्थनाको ईश्वर अवश्य सुनता है। वह कहते, "प्रार्थनाके ही बलपर मुलर (एक विख्यात भावुक ईसाई) जैसे लोगोंका काम चलता है।" प्रार्थनाकी यह महिमा मैंने तटस्थ भावसे सुनी। मैंने उनसे कहा कि मेरा अंतरात्मा पुकार उठे कि मुझे ईसाई हो जाना चाहिए तो दुनियाकी कोई शक्ति मुझे रोक नहीं सकती। अंतरात्माकी पुकारके अनुसार चलनेकी

आदत तो मैं कितने ही वर्षोंसे डाल चुका था। अंतरात्माके अधीन होते हुए मुझे आनंद आता। उसके विपरीत आचरण करना मुझे कठिन और दुःखदाई मालूम होता था।

हम वेलिंग्टन गये। मुझ 'श्यामल साथी' को साथ रखना मि० बेकरके लिए भारी पड़ा। कई बार उन्हें मेरे कारण असुविधा भोगनी पड़ती। रास्तेमें हमें मुकाम करना पड़ा था; क्योंकि मि० बेकरका संघ रविवारको सफर न करता था और बीचमें रविवार पड़ गया था। बीचमें तथा स्टेशनपर मुझे होटलवालेने होटलमें ठहरनेसे तथा चख-चख होनेके बाद ठहरनेपर भी भोजनालयमें भोजन करने देनेसे इन्कार कर दिया; पर मि० बेकर आसानीसे हार माननेवाले न थे। वह होटलमें ठहरनेवालोंके हकपर अड़े रहे; परंतु मैंने उनकी कठिनाइयोंका अनुभव किया। वेलिंग्टनमें भी मैं उनके पास ही ठहरा था। वहां उन्हें छोटी-छोटी-सी बातोंमें असुविधा होती थी। वह उन्हें ढांकनेका शुभ प्रयत्न करते थे; फिर भी वे मेरे ध्यानमें आ जाया करती थीं। (आ० क०, १९२७)

: १२८ :

एनी बेसन्ट

हम ऐसे कई बूढ़ोंको जानते हैं जिनमें जवानी की उद्यम-प्रियता पाई जाती है और कई ऐसे नौजवानोंके देखते हैं, जो जवान होते हुए भी उद्यम की दृष्टिसे बूढ़ोंके समान शिथिल होते हैं। विदुषी एनी बेसन्ट वृद्ध होती हुई भी जवानके बराबर काम करती हैं। समयकी पाबंदी और सुरक्षामें उनकी बराबरी करनेवाले बहुत थोड़े आदमी पाए जाते हैं। जोशमें भी वह किसीसे कम नहीं है।(हि० न०, ७.३.२९)

: १२६ :

सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी

यह देखकर मुझे दुःख होता है कि बाबू सुरेन्द्रनाथ बैनर्जीकी आवाज आज सुनाई नहीं देती है। उनके और मेरे मतोंके बीच आज उत्तर और दक्षिण ध्रुवोंके जितना अंतर है। पर मतोंके बीच अंतर होनेसे ही परस्पर शत्रुता का भाव या व्यवहार होना कहीं उचित नहीं है। मुझे स्मरण है जब मैं बालक था तब सुरेन्द्रनाथ देशकी वह सेवा कर रहे थे, जिसका हमें कृतज्ञ होना चाहिए। (कलकत्ता-भाषण, १२.१२.२०)

... ...

'बंगालके देव' सुरेन्द्रनाथ बैनर्जीसे तो मिलना ही था। उनसे जब मैं मिलने गया तब दूसरे मिलनेवाले उन्हें घेरे हुए थे। उन्होंने कहा, "मुझे अंदेशा है कि आपकी बातमें यहांके लोग दिलचस्पी न लेंगे। आप देखते ही हैं कि यहां हम लोगोंको कम मुसीबतें नहीं हैं। फिर भी आपको तो भरसक कुछ-न-कुछ करना ही है। इस काममें आपको महाराजाओंकी मदद की जरूरत होगी। 'ब्रिटिश इंडिया एसोसियेशन' के प्रतिनिधियोंसे मिलिएगा। राजा सर प्यारीमोहन मुकर्जी और महाराजा टागोरसे भी मिलिएगा। दोनों उदार हृदय हैं और सार्वजनिक कामोंमें अच्छा भाग लेते हैं।" मैं इन सज्जनोंसे मिला; पर वहां मेरी दाल न गली। दोनोंने कहा, "कलकत्तामें सभा करना आसान बात नहीं; पर यदि करना ही हो तो उसका बहुत-कुछ दारोमदार सुरेंद्रनाथ बैनर्जीपर है।" (आ० क०, १६२७)

... ...

सर सुरेन्द्रनाथ बैनर्जीकी मृत्यु क्या हुई मानों भारतके राजनैतिक जीवनसे ऐसा पुरुष उठ गया जो अपने व्यक्तित्वकी गहरी छाप उसपर छोड़

गया है। नये आदर्श और नई आशाएं ली हुई जनताकी नजरोंमें यदि वे पीछे हट गये तो क्या हुआ ? हमारा वर्त्तमान हमारे भूतकालका ही तो परिणाम है। सर सुरेन्द्रनाथ-जैसे पथ-दर्शक लोगोंके बहुमूल्य कार्यके बिना वर्तमान समयके आदर्श और उच्च आकांक्षाओंका होना संभव ही न था। एक ऐसा समय था जबकि विद्यार्थी लोग उनको अपना आराध्य देव समझते थे, जबकि देशके राष्ट्रीय कामोंमें उनकी सलाह लेना अनिवार्य समझा जाता था और उनके वक्तृत्वसे लोग मंत्र-मुग्धसे हो जाते थे। जब हमें बंग-भंगके समय की दिल दहला देनेवाली घटनाओंका स्मरण होता है तब उसके साथ ही सर सुरेन्द्रकी उस समय की गई अनुपम सेवाओंकी स्मृति, कृतज्ञता और अभिमान-पूर्वक हुए बिना नहीं रह सकती। ऐसे ही समयमें सर सुरेन्द्रनाथको अपने कृतज्ञ देश-बंधुओंसे 'कभी न झुकनेवाला' की पदवी मिली थी। बंग-भंगके युद्धकी भीषण स्थितिमें भी सर सुरेन्द्र-कभी डावांडोल न हुए, कभी निराश न हुए। वे अपनी पूरी शक्तिके साथ उस आंदोलनमें कूद पड़े थे। उनके उत्साहसे सारे बंगालमें उत्साह फैल गया। सरकारकी 'नान्यथा' को 'अन्यथा' करनेके दृढ़ संकल्पमें वे अचल रहे। उन्होंने हमको हिम्मत और दृढ़ताकी शिक्षा दी। उन्होंने हमें मदान्ध अधिकारियों से 'नहीं' कहना सिखलाया।

राजनैतिक क्षेत्रके अनुसार ही शिक्षा-विभागमें भी उनका काम बहुत ऊंचे दरजेका था। रिपन कालेजके द्वारा हजारों विद्यार्थियोंको उनकी सीधी देख-रेख और लगातार असरमें रहनेके कारण बड़ी उदार शिक्षा मिली। अपने नियमित जीवन के कारण वे हमेशा तंदुरुस्त और सशक्त बने रहे और उन्हें दीर्घ जीवन—हिंदुस्तानमें समझा जानेवाला दीर्घ जीवन—मिला। अंत समय तक वे अपनी मानसिक शक्तियोंको कायम रख सके। ७७ वर्षकी उमरमें अपने दैनिक 'बंगाली' पत्रका संपादन-भार लेना कोई मामूली शक्ति का काम न था। अपनी मानसिक और शारीरिक शक्ति कायम रहनेके संबंधमें उनकी ऐसी दृढ़ धारणा थी कि दो मास

पहले जब मुझे बारकपुरमें उनसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था तब उन्होंने मुझसे कहा था कि मैं ९१ वर्षकी आयु तक जीवित रहनेकी उम्मीद करता हूं। इसके बाद मुझे जीनेकी इच्छा नहीं है; क्योंकि उसके बाद मेरी शक्ति कायम न रह सकेगी। पर भाग्य ने तो उसका उलटा कर दिखाया। बिना सूचना दिए ही उसने उन्हें हमसे छीन लिया। किसी को इसकी कल्पना तक न थी। गुरुवार ता० ६ के प्रातःकालतक उनकी मृत्यु का कोई चिह्न दिखाई नहीं दिया। यद्यपि आज उनका शरीर हमारे बीचमें नहीं है तो भी उनकी देश-सेवा तो कभी भुलाई नहीं जा सकती। वर्तमान भारतके निर्माण करनेवालोंमें उनका नाम सदा अमर रहेगा। (हि० न०, २०.८.२५)

: १३० :

जनरल बोथा

दक्षिण अफ्रीकाका जनरल बोथा कौन था? वह भी तो बारडोलीके किसानोंके समान एक किसान ही था। वह ४०,००० भेड़ें रखता था। भेड़ोंकी परीक्षा करनेमें उसके जैसा कोई चतुर न था। यद्यपि उसकी कीर्ति तो योद्धाकी हैसियतसे फैली; पर उसके जीवनमें लड़नेके प्रसंग तो बहुत कम आए। उसके जीवनका अधिकांश भाग रचनात्मक कामोंमें ही व्यतीत हुआ। इतना भारी व्यवसाय करने वाले के लिए कितने रचना-कौशलकी जरूरत पड़ी होगी? ('विजयी बारडोली', पृष्ठ ३९)

: १३१ :

सुभाषचन्द्र बोस

प्र०—क्या सुभाषबाबूका यह कहना सही नहीं है कि कांग्रेसके सत्ताधारी नेताओंकी—जिनमें आप भी शामिल हैं—मनोवृत्ति सुधारवादी और नरम है ?

उ०—अवश्य सही है। दादाभाई नौरोजी एक महान् सुधारवादी थे। गोखले नरम दलके एक महान् प्रतिनिधि थे। इसी तरह बंबई प्रांतके बेताजके बादशाह फीरोजशाह मेहता और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी भी नरम थे। अपने समयमें वे ही राष्ट्रके लिए लड़नेवाले थे। हम उन्हींके उत्तराधिकारी हैं। वे न होते तो हम भी न होते। सुभाषबाबू आगे बढ़नेकी अधीरतामें यह भूल जाते हैं कि मेरे जैसे लोग सुधारवादी और नरम मनोवृत्तिके होते हुए भी उनके साथ देशभक्तिमें होड़ लगा सकते हैं। मगर मैंने उनसे कहा है कि आपके सामने जवानी है, आपमें जवानीका जोश होना ही चाहिए। मैंने या और किसीने उनका हाथ नहीं पकड़ रखा है। वे ऐसे आदमी भी नहीं हैं, जिन्हें पकड़कर रखा जा सके। उन्हें उनकी दूरंदेशीने ही रोक रखा है और इस तरह वे भी उतने ही सुधारवादी और नरम हैं जितना मैं हूं। अंतर इतना ही है कि उनमें जो गुण हैं उन्हें अनुभवी होनेके कारण मैं जानता हूं, पर जवानी के जोशमें वे नहीं देख सकते। सुभाषबाबूका और मेरा दृष्टिकोण अलग-अलग होते हुए और उनपर कांग्रेसकी तरफसे प्रतिबंध होनेपर भी मेरा निमंत्रण है कि वे शांत युद्धमें अपना जौहर बताएं तो फिर लेखक देखेंगे कि मैं उनके पीछे-पीछे चल रहा हूं। मैं उनसे आगे निकल गया तो वे मेरे पीछे-पीछे चलेंगे, यह मुझे भरोसा है। मगर मुझे तो इसी आशा पर जीना है कि हम अपना समान ध्येय दूसरी लड़ाईके बिना ही प्राप्त कर लेंगे।

वर्धा लौटते हुए नागपुर-स्टेशनपर एक नवयुवकने यह सवाल पूछा कि कार्य-समितिने सुभाषबाबूकी गिरफ्तारीकी तरफ क्यों कुछ ध्यान नहीं दिया ? चूंकि सोमवारका दिन था, मेरा मौन चल रहा था, मैंने कुछ भी जवाब नहीं दिया। मगर नवयुवकका यह प्रश्न मुझे ठीक लगा। मैंने उसे ध्यानमें रख लिया। मेरे दिलमें जरा भी शक नहीं कि हजारों नहीं तो सैकड़ों लोग यही सवाल, जो इस नवयुवकने नागपुर-स्टेशनपर पूछा, अपने दिलमें पूछ रहे होंगे। और यह बात है भी ठीक। सुभाषबाबू दो बार लगातार कांग्रेसके राष्ट्रपति चुने जा चुके हैं। अपनी जिंदगीमें उन्होंने भारी आत्मबलिदान किया है। वह एक जन्म-जात नेता हैं। मगर सिर्फ इस वजहसे कि उनमें यह सब गुण हैं, यह साबित नहीं होता कि उनकी गिरफ्तारीके विरुद्ध कार्य-समिति अपनी आवाज ऊंची करे। हां, यदि गुण-दोषका विचार करनेके बाद कार्य-समितिको ऐसा लगे कि अमुक गिरफ्तारी निंदाके योग्य है तो वह जरूर उसकी ओर अपना ध्यान देगी। मगर सुभाषबाबूने कांग्रेसकी आज्ञासे सरकारी कानूनका भंग नहीं किया। उन्होंने तो खुद कार्य-समितिकी आज्ञाका भी, साफ ऐलानके साथ और छाती ठोककर, उल्लंघन किया है। अगर उन्होंने इस घड़ी कोई दूसरी-तीसरी बिना पर लड़ाईके लिए कार्य-समितिसे आज्ञा मांगी होती तो मेरा विचार है कि वह उसे देनेसे इन्कार ही करती। सुभाषबाबूने जो सवाल उठाया, वैसे तो उससे भी बड़े महत्त्वके सैकड़ों सवाल शायद देशमें मिलेंगे। मगर देशने इस समय केवल एक प्रश्नपर, यानी स्वतंत्रताके प्रश्नपर अपना सारा ध्यान जमा दिया है। अवसर आनेपर इस सिलसिलेमें सत्याग्रह शुरू करनेके लिए तैयारियां भी की जा रही हैं। इसलिए सुभाषबाबूने जो कदम उठाया है अगर उसके बारेमें कार्य-समिति कोई कार्रवाई करती तो वह सिर्फ यही हो सकती थी कि वह अपनी नापसंदगी प्रकट करे। मगर उसे यह नहीं करना था। मैं भी चाहता तो इस नवयुवकके सवालको जवाब दिए बिना ही रख छोड़ता। मगर मुझे लगा कि

इस गिरफ्तारीको इसके ठीक रूपमें जनताके आगे रखनेमें कुछ नुकसान नहीं। श्री सुभाषबाबू-जैसे बड़े आदमीकी गिरफ्तारी कोई ऐसी-वैसी बात नहीं है। मगर सुभाषबाबूने अपनी युद्धकी योजना खूब सोच-विचारके बाद और साहसके साथ गढ़ी है। उनके खयालमें उनका रास्ता सर्वोत्तम है। वह ईमानदारीसे यह मानते हैं कि कार्य-समिति गलत रास्तेपर है, और 'टाल-मटोल' की नीतिसे कुछ भला होनेवाला नहीं। उन्होंने साफ शब्दोंमें मुझसे कह दिया था कि जो काम कार्य-समिति न कर सकी वह उसे करके बताएंगे। उनका धीरज चला गया था और विलंब वह सहन नहीं कर सकते थे। मैंने जब उनसे कहा कि अगर उनकी योजनाके परिणाम-स्वरूप मेरी जिंदगीमें स्वराज मिल गया तो सबसे पहले उन्हें मेरी तरफसे धन्यवादका तार मिलेगा। और अगर उनके उठाए हुए युद्धके दरमियान मेरा विचार उनके जैसा हो गया तो मैं खुले दिलसे उनका नेतृत्व स्वीकार करनेका ऐलान करूंगा और उनके झंडेके नीचे बतौर एक सिपाहीके आकर खुद भरती हो जाऊंगा। लेकिन इसके साथ-साथ मैंने उन्हें यह चेतावनी भी दी थी कि वह गलत रास्तेपर चढ़े हैं।

मगर मेरी राय कुछ बहुत मानी नहीं रखती। जबतक श्री सुभाष-बाबू किसी एक रास्तेको ठीक समझते हैं तबतक उस रास्तेपर डटे रहनेका उनका अधिकार और धर्म है, चाहे कांग्रेसको वह पसंद हो या न हो। मैंने उनसे कहा कि यह अधिक ठीक होगा कि वह कांग्रेसमेंसे बिलकुल निकल जाएं, मगर मेरी राय उन्हें जंची नहीं। लेकिन यह सबकुछ होते हुए भी अगर उनका प्रयत्न सफल हो और हिंदुस्तानको स्वतंत्रता मिल जाय तो उनका कांग्रेसके विरुद्ध विद्रोह करना ठीक ही सिद्ध होगा और कांग्रेस न सिर्फ उनके इस विद्रोहको क्षमा ही करेगी, बल्कि देशके तारनहारके तौरपर वह उनका स्वागत भी करेगी।

सत्याग्रहके युद्धमें आग्रह करके जेल जाना प्रशंसनीय गिना जाता है। इसलिए देशके समान्य कानूनका भंग करनेकी वजहसे जिन्होंने कैदकी सजा

मिले तो उसके खिलाफ आवाज नहीं उठाई जा सकती। इसके विपरीत, गिरफ्तार होनेपर सविनय-भंग करनेवालोंको धन्यवाद देने और दूसरे कांग्रेसवादियोंको उनका अनुकरण करनेका निमंत्रण देनेकी प्रथा रही है। यह स्पष्ट है कि सुभाषबाबूके बारेमें कार्य-समिति ऐसा नहीं कर सकती थी। मैं यहां यह भी कह दूं कि देशमें जगह-जगह जो गिरफ्तारियां आज हो रही हैं—और उनमें प्रख्यात कांग्रेसके सदस्य भी शामिल हैं—उनके बारेमें भी कार्य-समितिने कोई कार्रवाई नहीं की। इसका मतलब यह नहीं कि कार्य-समितिको इससे आघात नहीं पहुंचा, मगर जीवन-संग्राममें कईएक अन्यायोंका मूक सहन करना कभी-कभी धर्म हो जाता है। अगर वह इरादतन सहन किया जाए तो उसमेंसे एक बड़ी शक्ति पैदा होगी। (ह० से०, १३.७.४०)

... ...

नेताजीके जीवनसे जो सबसे बड़ी शिक्षा ली जा सकती है वह है उनकी अपने अनुयायियोंमें ऐक्यभावनाकी प्रेरणाविधि, जिससे कि वे सब सांप्रदायिक तथा प्रांतीय बंधनोंसे मुक्त रह सके और एक समान उद्देश्यके लिए अपना रक्त बहा सके। उनकी अनुपम सफलता उन्हें निस्संदेह इतिहासके पन्नोंमें अमर रखेगी।

नेताजीके प्रत्येक अनुगामीने जो भारत लौटनेपर मुझसे मिले, निर्विवाद रूपसे यह कहा कि नेताजीका प्रभाव उनपर जादू-सा करता था और वे उनके अधीन एकमात्र भारतकी आजादी प्राप्त करनेके उद्देश्यसे काम करते थे। उनके दिलोंमें सांप्रदायिक और प्रांतीय या और कोई भी भेद-भाव कभी भी अंकुरित नहीं हुआ था।

नेताजी एक महान गुणवान पुरुष थे। वे व्युत्पन्नमति और प्रतिभा-संपन्न थे। उन्होंने आई० सी० एस० की परीक्षा उत्तीर्ण की; किंतु नौकरी उन्होंने नहीं की। भारत लौटनेपर वे देशबंधुदाससे प्रभावित हुए और कलकत्ता कार्पोरेशनके मुख्य एक्जीक्यूटिव आफिसर नियुक्त हुए। बादमें

वे राष्ट्रीय महासभाके भी दो बार राष्ट्रपति बने; परंतु उनकी उल्ले-खनीय सफलताओंमें, भारतसे बाहरके, उस समयके कार्य हैं, जब वे देशसे भागे और काबुल, इटली, जर्मनी और अन्य देशोंसे होकर अंतमें जापान पहुंचे। विदेशी चाहे कुछ भी कहें; पर मैं विश्वासके साथ यह अवश्य कहूंगा कि आज भारतमें एक भी ऐसा आदमी नहीं है जो उनके इस प्रकार भागने-को अपराध मानता है। 'समरथको नहिं दोष गुसाईं'—संत तुलसीदासके इस कथनके अनुसार नेताजी पर भागनेका दोष नहीं लगाया जा सकता। जब सर्वप्रथम उन्होंने सेना तैयार की तो उसकी तुच्छ संख्या की उन्होंने कोई चिंता नहीं की। उनका निश्चय था कि संख्या चाहे कितनी ही कम क्यों न हो; पर भारतको आजाद करानेके लिए उन्हें सामर्थ्यभर यत्न करना ही चाहिए।

नेताजीका सबसे महान् और स्थिर रहनेवाला कार्य था सब प्रकारके जातीय और वर्गभेदका उन्मूलन। वह केवल बंगाली ही नहीं थे। उन्होंने अपने आपको कभी सवर्ण हिंदू नहीं समझा। वह आमूलचूल भारतीय थे। इससे अधिक क्या कि उन्होंने अपने अनुगामियोंमें भी यही आग प्रज्वलित की, जिससे प्रेरित होकर वे उनकी उपस्थितिमें सभी भेद-भाव भूल गये थे और एकसूत्र होकर काम करते थे। ('नेताजी : हिज लाइफ एण्ड वर्क')

... ...

एक बात और। वह यह कि जो आजाद हिंद फौज सुभाषबाबूने बनाई थी और उसके लिए हम सब सुभाषबाबूकी होशियारी, बहादुरीकी तरीफ करते हैं और तारीफ करनेकी बात है; क्योंकि जब वह हिंदुस्तानसे बाहर था तब उसने सोचा कि चलो, थोड़ा फौजी काम भी कर लूं। वह कोई लड़वैया तो था नहीं। एक मामूली हिंदुस्तानी था। जैसे दूसरे वकील, बैरिस्टर रहते [illegible] की कोई तालीम तो पाई नहीं थी। हां, [illegible] होता है, थोड़ी

घुड़सवारी सीख ली होगी। लेकिन पीछे उन्होंने फौजी-शास्त्र थोड़ा पढ़ लिया होगा। इस प्रकार उनके मातहत जो सेना बनी थी, मैं सुनता हूं कि उसके दो बड़े अफसर, जिनसे मैं जेलमें तथा उसके बाहर भी मिला था, काश्मीरपर हमला करनेवालोंसे मिले हुए हैं। यह मुझको बहुत चुभता है। ये सुभाषबाबूके मातहत खास काम करनेवाले थे और हमेशा उनके साथ रहा करते थे। सुभाषबाबू लश्करसे कोई बात छिपाकर रख तो सकते नहीं थे; क्योंकि उन्हें उनके मारफत काम लेना पड़ता था। वे आज लुटेरोंके सरदार होकर जाते हैं तो मुझको चुभता है। अगर उनको अखबार मिलते हैं या जो मैं कहता हूं उसको वे सुनलें तो मैं अपनी यह नाचिस आवाज उनको पहुंचाता हूं कि आप इसमें क्यों पड़ते हैं और सुभाषबाबूके नामको क्यों डुबाते हैं? आप ऐसा क्यों करते हैं कि हिंदूका पक्ष लें या मुसलमानका पक्ष लें? आपको तो जातिभेद करना नहीं चाहिए। सुभाषबाबू तो ऐसे थे नहीं। उनके साथ हिंदू-मुसलमान, सिख, पारसी, ईसाई, हरिजन आदि सब रहते थे। वहां न हरिजनका भेद था, न इतरजनका। वहां तो हिंदुस्तानियोंमें जातपांतका कोई भेदभाव था ही नहीं। यों तो सब अपने धर्मपर कायम थे, कोई धर्म तो छोड़ बैठे थे नहीं। लेकिन सुभाषबाबूने कब्जा कर लिया था, उनके चित्तका हरण कर लिया था, शरीरका हरण नहीं किया था। ऐसा तो चलता नहीं था कि अगर आजाद हिंद फौजमें शामिल नहीं होता है तो काटो। लोगोंको इस तरह काटकर वे हिंदुस्तानको रिहाई दिलानेवाले नहीं थे। इस तरहसे बड़े हुए और बड़प्पन पाया। तब आप इतने छोटे क्यों बनते हैं और इस छोटे काममें क्यों पड़ते हैं? अगर कुछ करना ही है तो सारे हिंदुस्तानके लिए करो। वहां जो मुसलमान हैं, अफरीदी हैं, उनको कहें कि यह जाहिलपन क्यों करना? लोगोंको लूटना और देहातोंको जलाना क्या? चलो, महाराजासे मिलें, शेख अब्दुल्लासे मिलें, उनको चिट्ठी लिखें कि हम आपसे मिलना चाहते हैं, हम यहां कोई लूट करने तो आए नहीं

हैं । आप इस्लामको दबाते हैं, इसलिए आपको बताने आए हैं। यह तो मैं समझ सकता हूं । तब तो आप सुभाषबाबूका नाम उज्ज्वल करेंगे और उन अफरीदी लोगोंके सच्चे शिक्षक बनेंगे । अफरीदी लोग कैसे रहते हैं, उनमें भी लुटेरे हैं या नहीं हैं, यह मैं नहीं जानता हूं। लेकिन मेरी निगाहमें वे भी इन्सान हैं । उनके दिलमें भी वही ईश्वर या खुदा है, इसलिए वे सब मेरे भाई हैं। अगर मैं उनमें रहूं तो उनसे कहूंगा कि लूट क्या करना, एक-दूसरेपर गुस्सा क्या करना ! मैं यह तो कहता नहीं कि तुम्हारे पास जो बंदूकें या तलवारें हैं, उन्हें छोड़ दो । उनको रखो; लेकिन जो दूसरे लोग डरे हुए हैं, मुफलिस हैं, औरतें हैं, बच्चे हैं, उनको बचानेके लिए । उसमें क्या है, चाहे वे हिंदू हों या मुसलमान । तो मैं कहूंगा कि ये जो दो अफसर हैं, जिनका नाम मैंने सुन लिया है, वे सुभाषबाबूका नाम याद करें । वे तो मर गये, लेकिन उनका नाम नहीं मरा, काम तो नहीं मरा। (प्रा० प्र०, २.११.४७)

... ...

आज सुभाषबाबूकी जन्म-तिथि है। मैंने कह दिया है कि मैं तो किसीकी जन्म-तिथि या मृत्यु-तिथि याद नहीं रखता। वह आदत मेरी नहीं है। सुभाषबाबूकी तिथिकी मुझे याद दिलाई गई। उससे मैं राजी हुआ। उसका भी एक खास कारण है। वे हिंसाके पुजारी थे। मैं अहिंसाका पुजारी हूं। पर इसमें क्या ? मेरे पास गुणकी ही कीमत है। तुलसीदासजीने कहा है न :

"जड़-चेतन गुन-दोषमय बिश्व कीन्ह करतार।
संत-हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार ॥"

[illegible] कर दूध ले लेता है, वैसे ही हमें भी करना चाहिए। [illegible] दोष दोनों भरे पड़े हैं। हमें गुणोंको ग्रहण करना चाहिए। दोषोंको भूल जाना चाहिए। सुभाषबाबू बड़े देश-प्रेमी थे। उन्होंने देशके लिए अपनी जानकी बाजी लगा दी थी और वह करके भी

बता दिया। वह सेनापति बने। उनकी फौजमें हिंदू, मुसलमान, पारसी, सिख सब थे। सब बंगाली ही थे, ऐसा भी नहीं था। उनमें न प्रांतीयता थी, न रंगभेद, न जातिभेद। वे सेनापति थे, इसलिए उन्हें ज्यादा सहूलियत लेनी या देनी चाहिए, ऐसा भी नहीं था: (प्रा०, प्र०, २३.१.४८)

: १३२ :

भगवान्दास

जब काशी विद्यापीठके अध्यापक कृपलानी और उनके विद्यार्थी पकड़े गये, मैंने अपने मित्रोंसे कहा था, "क्या ही अच्छा हो, यदि बाबू भगवान्दास गिरफ्तार हो जायं। आखिर अध्यापक कृपलानी बनारसके रहनेवाले हैं। लेकिन बाबू भगवान्दास नहीं पकड़े जायंगे।" उस समय मुझे यह पता नहीं था कि बाबू भगवान्दास ही उस पुस्तिकाके रचयिता थे, जिसे अध्यापक कृपलानी बेच रहे थे। पुस्तक लिखनेमें लेखकने बड़ी सावधानीसे काम लिया था। दूसरे ही दिन उनके पुत्रका शुभ संवाद मुझे मिला कि बाबूजी पकड़े गये। गिरफ्तारी पर वे संतुष्ट थे। बाबू भगवान्दास असहयोगी हैं—ऐसे असहयोगी जो मनसा, वाचा, कर्मणा हमेशा हिंसासे दूर रहते हैं। आप संस्कृत साहित्यके अच्छे पंडित हैं। बड़े ही धर्मनिष्ठ हैं। जमींदार हैं। श्रीमती बेसेंट यदि सेंट्रल हिंदू कालेजकी जन्मदात्री हैं तो बाबू भगवान्दास उसके निर्माता हैं। अतएव उनकी गिरफ्तारी एक ऐसा बलिदान है जो ईश्वरको रुचिकर हुए बिना नहीं रह सकता। और यह पतित-पावनी विश्वनाथपुरी इससे अच्छा बलिदान और क्या करती? अख-

बारोंके पढ़नेवाले लोग जानते ही होंगे कि बाबू भगवान्दास महासभाके द्वारा स्वराज्यकी योजना तैयार करानेका प्रयत्न कर रहे थे। उसके लिए आप स्वयं भी दीर्घ परिश्रम कर रहे थे। आपने मुझे कितने ही सूचक प्रश्नोंकी एक लंबी सूची भेजी है, जिसपर मैं इन वर्तमान घटनाओंके कारण अभी तक कोई कार्रवाई नहीं कर सका। दंगा-फसाद न होने देनेकी वे बड़ी चिंता रखते थे। यदि उनकी गिरफ्तारीसे भी सरकारकी हिंसा-कांडको न्यौता देनेकी उत्सुकताका पता न चलता हो तो मैं नहीं कह सकता कि किस बातसे चलेगा! (हि० न०, २५.१२.२१)

: १३३ :

गोकुलभाई भट्ट

सिरोही राजपूतानेकी एक रियासत है, जिसकी आबादी १,८६,६३६ और आमदनी ६,७०,०००) रु० है। अखबारोंमें इसकी चर्चा उस लाठी-चार्जके लिए हुई है, जो एक सभामें और कहते हैं कि बिना किसी उत्तेजनाके किया गया। श्री गोकुलभाई भट्टसे, जो सिरोहीके ही रहने-वाले हैं और एक सुयोग्य अध्यापक तथा वफादार कांग्रेस-कार्यकर्त्ताके रूपमें जिन्होंने प्रसिद्धि पाई है, मुझे इस घटनाकी प्रामाणिक जानकारी मिली है। वह अहिंसाकी भावनामें ओतप्रोत हैं। हाल हीमें वह सिरोही गये हैं और प्रजाके लिए प्राथमिक अधिकार प्राप्त करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। (ह० से०, २३.९.३९)

: १३४ :

भंसाली

सुबह घूमते समय भंसालीभाईकी ही बातें होती रहीं। मेरे मनमें उनकी साधुताके प्रति बहुत मान रहा है। बापूके बाद मेरी नजरमें भंसालीभाई ही साधु हैं। बापू कहने लगे—

मैं उसे अपनेसे ऊंचा समझता हूं। तीनों काल निर्भय रहता है। यह साधुका लक्षण है। वह जो कर सकता है, मैं नहीं कर सकता।

मैंने पूछा, "भंसालीभाईको क्या लगता होगा ?" बोले,

कुछ नहीं, वह तो महाभारतको भी घोटकर पी गया है। महाराष्ट्रियोंमें धर्म-ग्रंथोंमेंसे अद्भुत नतीजे निकालनेकी विलक्षण क्षमता है। (का० क०, २४.११.४२)

. . . .

भंसालीकी मृत्युकी खबर आवेगी तो मेरा हृदय कांप भले ही उठे, मगर खुशीसे नाचेगा भी। ऐसी संपूर्ण अहिंसक मृत्यु आजतक हुई ही नहीं है। भंसालीको मैं जानता हूं। उसके हृदयमें बैरभावका लेश भी नहीं है। हमारे लोगोंमें इतना मैल भरा है कि उसे निकालनेके लिए कइयोंको तो जल मरना होगा। (का० क०, २४.१२.४२)

: १३५ :

बड़े भाई

बड़े भाईने तो मुझपर बहुतेरी आशाएं बांध रखी थीं। उन्हें धनका, कीर्तिका और ऊंचे पदका लोभ बहुत था। उनका हृदय बादशाहके जैसा था। उदारता उड़ाऊपनतक उन्हें ले जाती। इससे तथा उनके भोलेपनके कारण मित्र बनाते उन्हें देर न लगती। उन मित्रोंके द्वारा उन्होंने मेरे लिए मुकदमे लानेकी तजवीज कर रखी थी। उन्होंने यह भी मान लिया था कि मैं खूब रुपया कमाने लगूंगा और इस भरोसेपर उन्होंने घरका खर्च भी खूब बढ़ा लिया था। मेरे लिए वकालतका क्षेत्र तैयार करनेमें भी उन्होंने कसर न उठा रखी थी।

इधर जातिका झगड़ा अभी खड़ा ही था। उसमें दो दल हो गये थे। एक दलने मुझे तुरंत जातिमें ले लिया। दूसरा न लेनेके पक्षमें अटल रहा। जातिमें लेलेनेवाले दलको संतुष्ट करनेके लिए, राजकोट पहुंचनेके पहले, भाईसाहब मुझे नासिक ले गये। वहां गंगा-स्नान कराया और राजकोटमें पहुंचते ही जाति-भोज दिया गया।

यह बात मुझे रुचिकर न हुई। बड़े भाईका मेरे प्रति अगाध प्रेम था। मेरा खयाल है कि मेरी भक्ति भी वैसी ही थी। इसलिए उनकी इच्छाको आज्ञा मानकर मैं यंत्रकी तरह बिना समझे, उसके अनुकूल होता चला गया। (आ० क०, १९२७)

. . . .

'ट्रस्टी' यों करोड़ोंकी सम्पत्ति रखते हैं, फिर भी उसकी एक पाईपर भी उनका अधिकार नहीं होता। इसी तरह मुमुक्षुको अपना आचरण रखना चाहिए---यह पाठ मैंने गीताजीसे सीखा। अपरिग्रही होनेके लिए, सम-भाव रखनेके लि[illegible] परिवर्तन आवश्यक

हैं, यह बात मुझे दीपकी तरह स्पष्ट दिखाई देने लगी। बस, तुरंत रेवाशंकर भाईको लिखा कि बीमेकी पालिसी बंद कर दीजिए। कुछ रुपया वापस मिल जाय तो ठीक, नहीं तो खैर। बाल-बच्चों और गृहिणी की रक्षा वह ईश्वर करेगा जिसने उनको और हमको पैदा किया है। यह आशय मेरे उस पत्रका था। पिताके समान अपने बड़े भाईको लिखा—"आजतक मैं जो कुछ बचाता रहा आपके अर्पण करता रहा। अब मेरी आशा छोड़ दीजिए। अब जो-कुछ बच रहेगा वह यहींके सार्वजनिक कामोंमें लगेगा।"

इस बातका औचित्य मैं भाईसाहबको जल्दी न समझा सका। शुरूमें तो उन्होंने बड़े कड़े शब्दोंमें अपने प्रति मेरे धर्मका उपदेश दिया—"पिताजीसे बढ़कर अक्ल दिखानेकी तुम्हें जरूरत नहीं। क्या पिताजी अपने कुटुंबका पालन-पोषण नहीं करते थे? तुम्हें भी उसी तरह घरबार सम्हालना चाहिए।" आदि। मैंने विनय-पूर्वक उत्तर दिया—"मैं तो वही काम कर रहा हूं, जो पिताजी करते थे। यदि कुटुंबकी व्याख्या हम जरा व्यापक कर दें तो मेरे इस कार्यका औचित्य तुरंत आपके खयालमें आ जायगा।"

अब भाईसाहबने मेरी आशा छोड़ दी। करीब-करीब अ-बोला ही रखा। मुझे इससे दुःख हुआ, परंतु जिस बातको मैंने अपना धर्म मान लिया, उसे यदि छोड़ता हूं तो उससे भी अधिक दुःख होता था। अतएव मैंने उस थोड़े दुःखको सहन कर लिया। फिर भी भाईसाहबके प्रति मेरी भक्ति उसी तरह निर्मल और प्रचंड रही। मैं जानता था कि भाईसाहबके इस दुःखका मूल है उनका प्रेम-भाव। उन्हें रुपए-पैसेके सद्व्यवहारकी अधिक चाह थी।

पर अपने अंतिम दिनोंमें भाईसाहब मुझपर पसीज गये थे। जब वह मृत्यु-शय्यापर थे तब उन्होंने मुझे सूचित कराया कि मेरा कार्य ही उचित और धर्म्य था। उनका पत्र बड़ा ही करुणाजनक था। यदि पिता पुत्रसे

माफी मांग सकता हो तो उन्होंने उसमें मुझसे माफी मांगी थी। लिखा कि मेरे लड़कोंका तुम अपने ढंगसे लालन-पालन और शिक्षण करना। वह मुझसे मिलनेके लिए बड़े अधीर हो गये थे। मुझे तार दिया। मैंने तार द्वारा उत्तर दिया—"जरूर आजाइए।" पर हमारा मिलाप ईश्वरको मंजूर न था।

अपने पुत्रोंके लिए जो इच्छा उन्होंने प्रदर्शित की थी वह भी पूरी न हुई। भाईसाहबने देशमें ही अपना शरीर छोड़ा था। लड़कोंपर उनके पूर्व-जीवनका असर पड़ चुका था। उनके संस्कारोंमें परिवर्तन न हो पाया। मैं उन्हें अपने पास न खींच सका। (आ० क० १६२७)

: १३६ :

रामकृष्ण भांडारकर

रामकृष्ण भांडारकर मुझसे उसी तरह पेश आए, जिस तरह पिता पुत्रसे पेश आता है। मैं दोपहरको समय उनके यहां गया था। ऐसे समय भी मैं अपना काम कर रहा था, यह बात इस परिश्रमी शास्त्रज्ञको प्रिय हुई और तटस्थ अध्यक्ष बनानेके मेरे आग्रहपर ('दैट्स इट', 'दैट्स इट') 'यही ठीक है', 'यही ठीक है' उद्‌गार सहज ही उनके मुंहसे निकल पड़े।

बातचीतके अंतमें उन्होंने कहा—

"तुम किसीसे भी पूछोगे तो वह कह देगा कि आजकल मैं किसी भी राजनैतिक काममें नहीं पड़ता हूं; परंतु तुमको मैं विमुख नहीं कर सकता। तुम्हारा मामला इतना मजबूत है और तुम्हारा उद्यम इतना स्तुत्य है कि मैं तुम्हारी सभामें आनेसे इन्कार नहीं कर सकता। श्रीयुत तिलक और श्रीयुत गोखलेसे तुम मिल ही लिये हो, यह अच्छा

हुआ। उनसे कहना कि दोनों पक्ष जिस सभामें मुझे बुलायेंगे, आ मैं जाऊंगा और अध्यक्ष का स्थान ग्रहण कर लूंगा। समयके बारेमें मुझसे पूछनेकी आवश्यकता नहीं। जो समय दोनों पक्षोंको अनुकूल होगा उसकी पाबंदी मैं कर लूंगा।"

यह कहकर मुझे धन्यवाद और आशीर्वाद देकर उन्होंने विदा किया। (आ० क०, १९२७)

... ...

: १३७ :

गोपीचन्द भार्गव

डॉ० गोपीचंद मेरे साथी कार्यकर्ता हैं। मैं उन्हें बहुत मानता हूं। मैं बरसोंसे उन्हें एक योग्य संयोजकके नाते जानता हूं, जिनका पंजाबियोंपर बड़ा प्रभाव है। उन्होंने हरिजन-सेवक-संघ, अखिल भारत चरखा-संघ और अखिल भारत ग्रामउद्योग-संघके लिए काफी काम किया है। मुझे यह नहीं सोचना चाहिए कि पूर्वी पंजाबका काम उनकी ताकतके बाहर है। लेकिन अगर पानीपत उनकी कार्य-कुशलताका नमूना न हो तो यह उनकी सरकारके लिए बड़ी बदनामीकी बात है। पहलेसे बिना सूचना दिए इतने निराश्रित पानीपतमें क्यों उतारे गए? उन्हें ठहरानेके लिए वहां नाकाफी बंदोबस्त क्यों है? अफसरोंको पहलेसे ही यह सूचना क्यों नहीं दी जानी चाहिए कि कौन और कितने निराश्रित पानीपत भेजे जा रहे हैं? उसके साथ ही कल मुझे यह भी सूचना मिली है कि गुड़गांव जिलेमें तीन लाख ऐसे मुसलमान हैं, जिन्होंने डरकर अपना घर-बार छोड़ दिया है। आम सड़कके दोनों तरफ खुलेमें इस आशासे पड़े हैं कि उन्हें अपने

औरत, बच्चों और मवेशियोंके साथ पंजाबकी कड़ी सर्दीमें ३०० मीलका रास्ता तय करना है। मैं इस बातपर विश्वास नहीं करता। मेरा खयाल है कि मुझे दोस्तोंने जो बात सुनाई है उसमें कुछ गलती है। अभी भी मैं आशा करता हूं कि यह बात गलत है या बढ़ा-चढ़ा कर कही गई है। लेकिन पानीपतमें मैंने जो कुछ देखा, उससे मेरा यह अविश्वास डिग गया है। फिर भी मुझे आशा है कि डा० गोपीचंद और उनकी केबिनेट समय रहते चेत जाएंगे और तबतक चैन नहीं लेंगे, जबतक सारे निराश्रितोंकी अच्छी देखभालका पूरा इंतजाम नहीं हो जाता। यह बंदोबस्त दूरंदेशी और हद दरजेकी सावधानी से ही किया जा सकता है। (प्रा० प्र०, १०.११.४७)

: १३८ :

दो सच्चरित्र भारतवासी

मवक्किलोंकी तो मेरे आस-पास भीड़ ही लगी रहती थी। इनमेंसे लगभग सब या तो बिहार इत्यादि उत्तर तरफके या तामिल-तेलगू इत्यादि दक्षिण प्रदेशके लोग थे। वे पहली गिरमिटमें आये थे और अब मुक्त होकर स्वतंत्र पेशा कर रहे हैं।

इन लोगोंने अपने दुःखोंको मिटानेके लिए भारतीय व्यापारी वर्गमें अलग अपना एक मंडल बनाया था। उसमें कितने ही बड़े सच्चे दिलके उदारभाव रखनेवाले और सच्चरित्र भारतवासी थे। उनके अध्यक्षका नाम था श्री जैरामसिंह और अध्यक्ष न रहते हुए भी अध्यक्षके जैसे ही दूसरे सज्जन थे श्री बदरी। अब दोनों स्वर्गवासी हो चुके हैं। दोनोंकी तरफसे मुझे अतिशय सहायता मिली थी। श्री बदरीके परिचयमें मैं

बहुत ज्यादा आया था और उन्होंने सत्याग्रहमें आगे बढ़कर हिस्सा लिया था। इन तथा ऐसे भाइयोंके द्वारा मैं उत्तर-दक्षिणके बहु-संख्यक भारत-वासियोंके गाढ़ संपर्कमें आया और मैं केवल उनका वकील ही नहीं, बल्कि भाई बनकर रहा और उनके तीनों प्रकारके दुःखोंमें उनका साझी हुआ। सेठ अब्दुल्लाने मुझे 'गांधी' नामसे संबोधित करनेसे इन्कार कर दिया। और 'साहब' तो मुझे कहता और मानता ही कौन? इसलिए उन्होंने एक बड़ा ही प्रिय शब्द ढूंढ़ निकाला। मुझे वे लोग 'भाई' कहकर पुकारने लगे। यह नाम अंत तक दक्षिण अफ्रीकामें चला। पर जब ये गिरमिट-मुक्त भारतीय मुझे 'भाई' कहकर बुलाते तब मुझे उसमें एक खास मिठास मालूम होती थी। (आ० क०)

: १३६ :

मजहरुलहक

मौलाना मजहरुलहक और मैं एक साथ लंदनमें पढ़ते थे। उसके बाद हम बंबईमें १६१५ की कांग्रेसमें मिले थे। उस साल वह मुसलिम लीगके सभापति थे। उन्होंने पुरानी पहचान निकालकर जब कभी मैं पटना आऊं तो अपने यहां ठहरनेका निमंत्रण दिया था। इस निमंत्रणके आधार-पर मैंने उन्हें चिट्ठी लिखी और अपने कामका परिचय भी दिया। वह तुरंत अपनी मोटर लेकर आए और मुझसे अपने यहां चलनेका आग्रह करने लगे। इसके लिए मैंने उनको धन्यवाद दिया और कहा—"मुझे अपने जानेके स्थानपर पहली ट्रेनसे रवाना कर दीजिए। रेलवे गाइडसे मुकामका मुझे कुछ पता नहीं लग सकता।" उन्होंने राजकुमार शुक्लके साथ बात की और कहा कि पहले मुजफ्फरपुर जाना चाहिए। उसी दिन

शामको मुजफ्फरपुरकी गाड़ी जाती थी। उसमें उन्होंने मुझे रवाना कर दिया। (आ० क०, १९२७)

. . . .

मौलाना मजहरुलहकने मेरे सहायकके रूपमें अपना हक लिखवा रखा था और महीनेमें एक-दो बार आकर मुझसे मिल जाया करते। उस समयके उनके ठाट-बाट और शानमें तथा आजकी सादगीमें जमीन-आसमानका अंतर है। वह हम लोगोंमें आकर अपने हृदयको तो मिला जाते परंतु अपने साहबी ठाट-बाटके कारण बाहरके लोगोंको वह हमसे भिन्न मालूम होते थे। (आ० क०)

: १४० :

किशोरलाल मशरूवाला

वे एक पुराने कार्यकर्त्ता हैं और अभी-अभी तक गुजरात विद्यापीठके महामात्र (रजिस्ट्रार) थे। किंतु बीमारीके कारण उन्हें उस पदका त्याग करना पड़ा है। भारतमें चुप-चाप काम करनेवाले कार्यकर्त्ताओंमें से वे एक अत्यंत विचारशील पुरुष हैं। हरएक शब्दको वे तौल-तौलकर लिखते और बोलते भी हैं। (हि० न०, २६.५.२७)

. . . .

किशोरलाल मशरूवाला हमारे विरले कार्यकर्त्ताओंमेंसे एक हैं। काम करते हुए वह कभी थकते नहीं। वह अत्यंत जागरूक रहते हैं। उनकी जाग्रत दृष्टिसे ब्यौरेकी कोई भी बात नहीं छूट पाती। वह एक तत्ववेत्ता हैं और गुजरातीके एक लोकप्रिय लेखक। गुजरातीके वह जैसे विद्वान हैं वैसे ही मराठीके भी हैं। वह जातीय, सांप्रदायिक या

प्रांतीय अहंकार या दुराग्रहसे बिलकुल मुक्त हैं। वह एक स्वतंत्र चिंतक हैं। वह राजनीतिज्ञ नहीं, एक पैदाइशी समाज-सुधारक हैं। समस्त धर्मोंके विद्यार्थी हैं। उनमें धार्मिक कट्टरताका कोई चिह्न नहीं। वह जिम्मेदारी ओढ़ने और विज्ञापनबाजीसे भागते हैं। इतनेपर भी कोई ऐसा आदमी न मिलेगा जो जिम्मेदारी ले लेनेपर उसे उनकी अपेक्षा अधिक पूर्णताके साथ पूरा कर सके। बड़ी मुश्किलोंसे मैं उन्हें गांधी-सेवा-संघ-का अध्यक्ष बननेको राजी कर सका था। उनकी परिश्रमशीलता और सरल श्रद्धाके कारण ही संघको इतनी महत्ता और उपयोगिता प्राप्त हुई। उन्होंने अपने स्वास्थ्यके प्रति पूरी लापरवाही (मैं सार्वजनिक कार्यकर्तामें इसे कोई गुण नहीं, बल्कि अवगुण मानता हूं) रखकर सदा अपना द्वार सत्यशोधकोंके लिए खुला रखा। कोई आश्चर्य नहीं कि इस सबसे वह संघके एक अभिन्न अंग बन गये। असीम सावधानीके साथ उन्होंने संघ-के लिए एक ऐसा विधान बनाया जो ऐसी किसी भी संस्थाकेलिए नमूनेका काम दे सकता है। (ह० से०, २.३.४०)

... ...

श्री किशोरलालने एक स्वतंत्र ग्रंथ लिखा है। अगर उनका शरीर काम दे तो वे उस तरहकी और चीज लिख सकते हैं। उनके ग्रंथको शास्त्र कहना शायद ठीक न हो, तो भी वह शास्त्रके नजदीककी चीज है, ऐसा तो माना जा सकता है। लेकिन इस वक्त जैसी उनकी तंदुरुस्ती है, उसे देखते हुए मैं मानता हूं कि वे इस बोझको उठा नहीं सकेंगे। मैं तो उठानेको कहूंगा ही नहीं। वे भी अपने समयको व्यर्थ नहीं जाने देते। अनेक मित्रोंके जीवनकी समस्याओंको सुलझानेमें उनका बहुत-सा समय बीत जाता है और दिनडूबे वे लस्त होकर पड़ जाते हैं। (ह० से०, ३.३.४६)

: १४१ :

जमशेद महता

जमशेद महताको पवित्र व्यक्ति मानता हूं। (म० डा०, १०.१०.३२)

: १४२ :

ब्रजलाल महता

ब्रह्मदेशमें धनोपार्जनके लिए जाकर रहनेवाले अनेक हिन्दुस्तानी हैं। उनमेंसे कुछने धंधेके साथ सेवाको भी स्थान दिया है। उनमें से एक ब्रजलाल महता थे। कुछ ही दिन पहले उनका स्वर्गवास हो गया। वह महासभाका काम करते थे, पर हमें उसका पता नहीं। उनके पास दो पैसे थे। वह हरएक फंडमें कुछ-न-कुछ देते और दूसरोंसे दिलवाते। लेकिन इसके लिए वह सम्मानकी इच्छा नहीं रखते थे। दरिद्रनारायणके वह भक्त थे। खादीपर उनकी पूरी श्रद्धा थी और चर्खासंघके वह प्रतिनिधि थे। जिसे सम्मानकी, पुरस्कारकी, इच्छा नहीं, जो सेवाके लिए ही सेवा करता है, वह वंदनीय है। भाई ब्रजलाल महता ऐसोंमें ही थे। उनके कुटुंबको धन्यवाद। (हि० न०, ६.८.३१)

: १४३ :

दाऊद महमद

पहले सेठ दाऊद महमदका परिचय सुना दूं। वह नेटाल इंडियन कांग्रेसके अध्यक्ष और दक्षिण अफ्रीकामें आए हुए व्यापारियोंमें सबसे पुराने थे। वह सूरती सुन्नत जमातके बोहरा थे। बड़े ही चतुर पुरुष। इस बातमें उनकी बराबरी करनेवाले बहुत ही थोड़े भारतीय मैंने दक्षिण अफ्रीकामें देखे। उनकी ग्राहकशक्ति बड़ी तेज थी। अक्षर-ज्ञान तो मामूली-सा था; पर अनुभवसे वह अंग्रेजी और डच भी अच्छी तरह बोल सकते थे। अंग्रेजी व्यापारियोंके साथ अपना काम चलानेमें उन्हें जरा भी कठिनाई नहीं पड़ती थी। उनकी दानशीलता प्रसिद्ध थी। नित्य पचास महमान-से कम तो कभी उनके यहां होते ही नहीं थे। कौमी चंदोंमें उनका नाम अग्रसरोंमें ही रहता। उनके एक लड़का था। लड़का क्या था, एक अमूल्य रत्न था। चारित्र्यमें उनसे भी श्रेष्ठ और हृदय स्फटिकके समान। उसके चारित्र्य वेगको दाऊद सेठने कभी नहीं रोका। दाऊद सेठ अपने लड़केकी पूजा करते थे, यह अत्युक्ति नहीं, यथार्थ सत्य है। वह चाहते थे कि उनका एक भी ऐब हसनको नहीं लगने पावे। इंगलैंड भेजकर उन्होंने उसे बढ़िया शिक्षा दी। पर दुर्भाग्यसे दाऊद सेठ उस लड़केसे भरजवानीमें हाथ धो बैठे। हसनको क्षयने घेरा और उसका प्राण हरण कर लिया। वह घाव कभी नहीं भरा। हसनके साथ-साथ भारतीय जनताकी बड़ी-बड़ी आशाएं मिट्टीमें मिल गईं। हसनके लिए तो हिंदू और मुसलमान दोनों अपनी दाहिनी-बाईं आंखोंके समान थे। उसका सत्य तेजस्वी था। आज दाऊद सेठ भी नहीं रहे! (द० अ० स०, पृष्ठ ४२)

: १४४ :

बाई फातमा महेताब

न्यूकासलमें द्राविड़ बहनोंको जेल जाते देखकर बाई फातमा महेताब-से न रहा गया। वह भी अपनी मां और सात वर्षके बच्चेको लेकर जेल जानेके लिए निकल पड़ी। मां-बेटी तो गिरफ्तार हो गईं, पर सरकारने बच्चेको अंदर लेनेसे साफ इन्कार कर दिया। पुलिसने बाई फातमाकी उंगलियोंकी छाप लेनेकी खूब कोशिश की; पर वे निडर रहीं और आखीरतक उन्होंने पुलिसको अपनी उंगलियोंकी छाप नहीं दी। (द० अ० स०, पृष्ठ १५३)

: १४५ :

लुई माउंटबेटन

माउंटबेटन यदि गवर्नर-जनरल बनते हैं तो वे हिंदुस्तानके खिदमत-गार या नौकर होकर ही बनते हैं। आप कह सकते हैं कि यह तो बच्चोंको फुसलानेकी-सी बात हुई। जो माउंटबेटन इंगलैंडके शाही घरानेसे संबंध रखते हैं वह क्या तुम्हारी नौकरी करनेवाले हैं, आप तो धोखा देते हैं! मुझे आपको धोखा देकर माउंटबेटनसे कोई इनाम नहीं चाहिए। मैं तो आजतक उनसे लड़ता आया हूं तो आज उनकी खुशामद करनेकी मुझे क्या जरूरत पड़ी है? आप शायद यह कहेंगे कि कांग्रेसी नेता उनके फुसलावेमें आ गए हैं। इसका मतलब यह हुआ कि जवाहरलालजी, सरदार और राजाजी ऐसे पागल हैं कि

अपना सब नूर गंवाकर बैठे हैं, वे खुशामदी बन गये हैं। मैं वहांतक नहीं जा सकता। यह तो सही है कि मैं जो चाहता था वह नहीं बना और बहुत दफा मैं यह कह भी चुका हूं। मगर मैं हर चीजका सीधा मतलब निकालता हूं। हम लोग माउंटबेटनको गवर्नर-जनरल बनाते हैं, इसीलिए तो वह बनते हैं। यदि हम न चाहते तो वह नहीं बन सकते। परंतु जिन्ना साहबने यह सोचा होगा कि सारी दुनिया कैसे मानेगी कि मैंने पाकिस्तान ले लिया, इसलिए मैं क्यों न गवर्नर-जनरल बनूं! हमें इसपर ईर्ष्या क्या करना और गुस्सा भी क्या करना! उनको गवर्नर-जनरल बनकर यह सारी दुनियाको बताना है कि इस्लाम क्या चीज है। यह देखना है कि वह वहांके खादिम बनते हैं या बादशाह।....

अखबारोंसे मुझे मालूम हुआ कि पहले हिंदुस्तान और पाकिस्तान—दोनोंके लिए एक ही गवर्नर-जनरल रखना तय हुआ था। मगर बादमें जिन्ना साहब मुकर गये। तब कौन उन्हें पाकिस्तानका गवर्नर-जनरल बननेसे रोकनेवाला था? मेरी निगाहमें उन्होंने ठीक नहीं किया। एक दफा जब उन्होंने कहा था तो माउंटबेटनको बनने देते और पीछे यदि कोई गोलमाल होता तो उनको हटा देते। परंतु अब इस्लामकी परीक्षा जिन्ना साहबके मार्फत होनेवाली है। सारी दुनियाके सामने वे पाकिस्तान स्टेटके गवर्नर-जनरल बन रहे हैं। अतः पाकिस्तानकी खूबियां ही देखने-में आनी चाहिएं। कांग्रेस तो हमेशा अंग्रेजोंसे लड़ती आई है। जवाहर-लालजी तो सीधे आदमी हैं, मगर सरदार तो हमेशा लड़नेवाले हैं। वे तो मेरे साथ लड़ते थे कि तू इनका एतबार करता है। जब वही इनके दावमें आ गए तो आपकी तथा हमारी बात ही क्या है! जब वे यह कबूल करते हैं कि वाइसराय गवर्नर-जनरल बनकर रहें तो हमें कबूल करनेमें क्या संकोच है? हम देखते हैं कि वे हिंदुस्तानके खादिम बनकर गवर्नर-जनरल हो रहे हैं या दगा देनेके लिए। एक नया अनुभव हमको मिलेगा। अतः इसमें दूरंदेशी है और फिर हम कुछ खोते तो हैं ही नहीं। आखिर

डोमीनियन स्टेट्स भी हमने उनके कहने पर स्वीकार किया है। वे एक बहुत बड़े एडमिरल हैं, बड़ी लड़ाई लड़नेवाले हैं। उनको हम रखें तो सही। यदि कोई बुराई निकली तो हम उनसे लड़ लेंगे।

× × ×

जब मैं वाइसरायसे मिलने गया था तब उन्होंने मुझसे कहा कि जिस लड़के से एलिजाबेथकी सगाई हुई वह मेरे लड़के-जैसा ही है। आशा है, कल आप आशीर्वादके तौरपर कुछ शब्द लिखेंगे। सो परसों जब वाइस-रायकी लड़की यहां आई तब मैंने उसके हाथ मुबारकबादीका एक खत लिखकर भेज दिया। कितनी सादी लड़की है वह। प्रार्थनाके समय मैंने उसे कुर्सीपर बैठनेके लिए कहा, मगर कुर्सीपर न बैठकर वह हमारे साथ ही दरीपर बैठ गई। और फिर राजकुमारी अमृतकौरने तो आज मुझे यह भी बताया कि जिस लड़कीकी सगाई हुई है वही इंगलैंडकी रानी बनेगी, क्योंकि बादशाहके कोई लड़का नहीं है। वाइसरायके भी कोई लड़का नहीं है। खैर, वाइसराय अगर बुरा होता तो मैं आशीर्वाद लिखकर क्यों भेजता? मैं उसे बुरा नहीं मानता। उनकी जगह अगर जवाहरलालजी या सरदार पटेल गवर्नर-जनरल बनकर बैठ जाते तो उन्होंने बहुत खतरनाक काम किया होता। इसके अलावा गवर्नर-जनरलके हाथमें किसी प्रकारकी सत्ता नहीं होगी। जवाहरलालजी या उनकी केबिनट जो कहेगी वही उसको करना होगा। उसको तो केवल अपने दस्तखत देने होंगे।

मगर लार्ड माउंटबेटन एक बड़ा आदमी है और अंग्रेज शैतानियत ही कर सकते हैं, ऐसा हम लोगोंका खयाल बन गया है। तो माउंटबेटनको भी अपनी शराफत और इंसाफ-पसंदीका सबूत देना होगा, और मुझे विश्वास है कि वह इन्साफ करनेके लिए ही यहां आया है। (प्रा० प्र०, १२.७.४७)

: १४६ :

लेडी माउंटबेटन

लेडी माउंटबेटन मुझसे मिलने आई थीं। वह दयाकी देवी बन गई हैं। वह हमेशा दोनों उपनिवेशोंका दौरा किया करती हैं, अलग-अलग छावनियोंमें निराश्रितोंसे मिलती हैं, बीमारों और दुःखियोंको देखती हैं और इस तरह जितना भी ढाढस उन्हें बंधा सकती हैं, बंधानेकी कोशिश करती हैं। (प्रा० प्र०, ८.११.४७)

: १४७ :

माता-पिता

मेरे पिताजी कुटुंब-प्रेमी, सत्यप्रिय, शूर और उदार परंतु साथ ही क्रोधी थे। मेरा खयाल है, कुछ विषयासक्त भी रहे होंगे। उनका अंतिम विवाह चालीस वर्षकी अवस्थाके बाद हुआ था। वह रिश्वतसे सदा दूर रहते थे और इसी कारण अच्छा न्याय करते थे, ऐसी प्रसिद्धि उनकी हमारे कुटुंबमें तथा बाहर भी थी। वह राज्यके बड़े वफादार थे। एक बार असिस्टेंट पोलिटिकल एजेंटने राजकोटके ठाकुरसाहबसे अपमान-जनक शब्द कहे तो उन्होंने उसका सामना किया। साहब बिगड़े और कबा गांधीजीसे कहा, मांफी मांगो। उन्होंने साफ इन्कार कर दिया। इससे कुछ घंटेके लिए उन्हें हवालातमें भी रहना पड़ा। पर वह टस-से-मस न हुए। तब साहबको उन्हें छोड़ देनेका हुक्म देना पड़ा।

पिताजीको धन जोड़नेका लोभ न था। इससे हम भाइयोंके लिए वह बहुत थोड़ी संपत्ति छोड़ गए थे।

पिताजीने शिक्षा केवल अनुभव द्वारा प्राप्त की थी। आजकी अपर प्राइमरीके बराबर उनकी पढ़ाई हुई थी। इतिहास, भूगोल बिलकुल नहीं पढ़े थे। फिर भी व्यावहारिक ज्ञान इतने ऊंचे दर्जेका था कि सूक्ष्म-से-सूक्ष्म प्रश्नोंको हल करनेमें अथवा हजार आदमियोंसे काम लेनेमें उन्हें कठिनाई न होती थी। धार्मिक शिक्षा नहींके बराबर हुई थी। परंतु मंदिरोंमें जानेसे, कथा-पुराण सुनने से, जो धर्मज्ञान असंख्य हिंदुओंको सहज ही मिलता रहता है, वह उन्हें था। अपने अंतिम दिनोंमें एक विद्वान् ब्राह्मणकी सलाहसे, जोकि हमारे कुटुंबके मित्र थे, उन्होंने गीता पाठ शुरू किया था, और नित्य कुछ श्लोक पूजाके समय ऊंचे स्वरसे पाठ किया करते थे।

माताजी साध्वी स्त्री थीं, ऐसी छाप मेरे दिलपर पड़ी है। वह बहुत भावुक थीं। पूजा-पाठ किए बिना कभी भोजन न करतीं, हमेशा हवेली---वैष्णव मंदिर---जाया करतीं। जबसे मैंने होश संभाला, मुझे याद नहीं पड़ता कि उन्होंने कभी चातुर्मास छोड़ा हो। कठिन-से-कठिन व्रत वह लिया करतीं और उन्हें निर्विघ्न पूरा करतीं। बीमार पड़ जानेपर भी वह व्रत न छोड़तीं। ऐसा एक समय मुझे याद है, जब उन्होंने चांद्रायणव्रत किया था। बीचमें बीमार पड़ गईं, पर व्रत न छोड़ा। चातुर्मासमें एक बार भोजन करना तो उनके लिए मामूली बात थी। इतनेसे संतोष न मानकर एक बार चातुर्मासमें उन्होंने हर तीसरे दिन उपवास किया। एक साथ दो-तीन उपवास तो उनके लिए एक मामूली बात थी। एक चातुर्मासमें उन्होंने ऐसा व्रत लिया कि सूर्यनारायणके दर्शन होनेपर ही भोजन किया जाय। इस चौमासेमें हम लड़के लोग आसमानकी तरफ देखा करते कि कब सूरज दिखाई पड़े और कब मां खाना खायं। सब लोग जानते हैं कि चौमासेमें बहुत बार सूर्य-दर्शन

मुश्किलसे होते हैं। मुझे ऐसे दिन याद हैं, जबकि हमने सूर्यको निकला हुआ देखकर पुकारा है—"मां-मां, वह सूरज निकला।" और जबतक मां जल्दी-जल्दी दौड़कर आती है, सूरज छिप जाता था। मां यह कहती हुई वापस जाती कि "खैर, कोई बात नहीं, ईश्वर नहीं चाहता कि आज खाना मिले," और अपने कामोंमें मशगूल हो जाती।

माताजी व्यवहार-कुशल थीं। राजदरबारकी सब बातें जानती थीं। रनवासमें उनकी बुद्धिमत्ता ठीक-ठीक आंकी जाती थी। जब मैं बच्चा था, मुझे दरबारगढ़में कभी-कभी वह साथ ले जातीं और 'बा-मां साहेब' (ठाकुर साहबकी विधवा माता) के साथ उनके कितने ही संवाद मुझे अब भी याद हैं। (आ० क०, १९२७)

. . . .

सिगरेटके टुकड़े चुराने तथा उसके लिए नौकरके पैसे चुरानेसे बढ़कर चोरीका एक दोष मुझसे हुआ है और उसे मैं इससे ज्यादा गंभीर समझता हूं। बीड़ीका चस्का तब लगा जब मेरी उम्र १२-१३ सालकी होगी। शायद इससे भी कम हो। दूसरी चोरीके समय १५ वर्षकी रही होगी। यह चोरी थी मेरे मांसाहारी भाईके सोनेके कड़ेके टुकड़ेकी। उन्होंने २५) के लगभग कर्जा कर रखा था। हम दोनों भाई इस सोचमें पड़े कि यह चुकावें किस तरह। मेरे भाईके हाथमें सोनेका एक ठोस कड़ा था। उसमेंसे एक तोला काटना कठिन न था।

कड़ा कटा। कर्ज चुका, पर मेरे लिए यह घटना असह्य हो गई। आगेसे कदापि चोरी न करनेका मैंने निश्चय किया। मनमें आया कि पिताजीके सामने जाकर चोरी कबूल करलूं। पर उनके सामने मुंह खुलना मुश्किल था। यह डर तो न था कि पिताजी खुद मुझे पीटने लगेंगे, क्योंकि मुझे नहीं याद पड़ता कि उन्होंने हम भाइयोंमेंसे कभी किसीको पीटा हो। पर यह खटका जरूर था कि वह खुद बड़ा संताप करेंगे, शायद अपना सिर भी पीट लें। तथापि मैंने मनमें कहा—"यह जोखिम उठाकर भी अपनी

बुराई कबूल कर लेनी चाहिए, इसके बिना शुद्धि नहीं हो सकती।"

अंतमें यह निश्चय किया कि चिट्ठी लिखकर अपना दोष स्वीकार कर लूं। मैंने चिट्ठी लिखकर खुद ही उन्हें दी। चिट्ठीमें सारा दोष कबूल किया था और उसके लिए सजा चाही थी। आजिजीके साथ यह प्रार्थना की थी कि आप किसी तरह अपनेको दुःखी न बनावें और प्रतिज्ञा की थी कि आगे मैं कभी ऐसा न करूंगा।

पिताजीको चिट्ठी देते हुए मेरे हाथ कांप रहे थे। उस समय वह भगंदरकी बीमारीसे पीड़ित थे। अतः खटियाके बजाय लकड़ीके तख्तों-पर उनका बिछौना रहता था। उनके सामने जाकर बैठ गया।

उन्होंने चिट्ठी पढ़ी। आंखोंसे मोतीके बूंद टपकने लगे। चिट्ठी भीग गई। थोड़ी देरके लिए उन्होंने आंखें मूंद लीं। चिट्ठी फाड़ डाली। चिट्ठी पढ़नेको जो वह उठ बैठे थे सो फिर लेट गए।

मैं भी रोया। पिताजीके दुःखको अनुभव किया। यदि मैं चितेरा होता तो आज भी उस चित्रको हूबहू खींच सकता। मेरी आंखोंके सामने आज भी वह दृश्य ज्यों-का-त्यों दिखाई दे रहा है।

इस मोती-बिंदुके प्रेमबाणने मुझे बींध डाला। मैं शुद्ध हो गया। इस प्रेमको तो वही जान सकता है, जिसे उसका अनुभव हुआ है—

रामबाण वाग्यांरे होय ते जाणे[1]

मेरे लिए यह अहिंसाका पदार्थ-पाठ था। उस समय तो मुझे इसमें पितृ-वात्सल्यसे अधिक कुछ न दिखाई दिया; पर आज मैं इसे शुद्ध अहिंसा-के नामसे पहचान सका हूं। ऐसी अहिंसा जब व्यापक रूप ग्रहण करती है तब उसके स्पर्शसे कौन अलिप्त रह सकता है? ऐसी व्यापक अहिंसाके बलको नापना असंभव है।

ऐसी शांतिमय क्षमा पिताजीके स्वभावके प्रतिकूल थी। मैंने तो यह

---

[1]प्रेम-बाणसे जो बिंधा हो, वही उसके प्रभावको जानता है—अनु०

अंदाज किया था कि वह गुस्सा होंगे, सख्त-सुस्त कहेंगे, शायद अपना सिर भी पीट लें। पर उन्होंने तो असीम शांतिका परिचय दिया। मैं मानता हूं कि यह अपने दोषको शुद्ध हृदयसे मंजूर कर लेनेका परिणाम था।

जो मनुष्य अधिकारी व्यक्तिके सामने स्वेच्छापूर्वक अपने दोष शुद्ध हृदयसे कह देता है और फिर कभी न करनेकी प्रतिज्ञा करता है, वह मानों शुद्धतम प्रायश्चित्त करता है। मैं जानता हूं कि मेरी इस दोष-स्वीकृतिसे पिताजी मेरे संबंधमें निशंक हो गये और उनका महाप्रेम मेरे प्रति और भी बढ़ गया। (आ० क०, १९२७)

. . . .

मुझे तो अपनी माताकी गोदमें ही अपना धर्म सिखाया गया था। मेरी माता तो बिना पढ़ी-लिखी थी। अपने दस्तखत भी नहीं कर सकती थी। छोटा-सा नाम था और वह भी लिखना नहीं सीखा था। हमको तो वह पढ़नेके लिए स्कूल भेज देती थी और खुद पढ़ी नहीं थी। उन दिनों शिक्षक रखकर कोई पढ़ता नहीं था और यह भी काठियावाड़-जैसे जंगली प्रदेशमें। यह मैं ७० साल पहलेकी बात करता हूं। पिताजी एक दीवान तो थे मगर उस जमानेमें दीवान कोई बहुत अंग्रेजी पढ़ा-लिखा थोड़े ही होता था। वे तो एक अंगरखा पहनते थे और पांवोंमें सादी जूतियां होती थीं। पतलूनका तो नाम भी नहीं जानते थे। परंतु इस हालतमें भी मेरी मां मुझे यह सिखाती थी कि बेटा, तुझे रामनाम लेना चाहिए। वह मेरा धर्म जानती थी। (प्रा० प्र०, २८.६.४७)

. . . .

जब हम बच्चे थे तब मेरी मां कहती थी कि नवरात्रिको खाना नहीं खाना चाहिए। अगर खाना ही है तो फल खाओ, ज्यादा-से-ज्यादा दूध पियो; लेकिन अनाज न खाओ। अगर सचमुच पूरा-का-पूरा उपवास करो तो सबसे अच्छा है। मेरी मां तो बड़ी उपवास करनेवाली थी, जिसका मैं तो कोई मुकाबला नहीं कर सकता था। मेरे बड़े भाई तो मुकाबला

कर ही नहीं सकते थे——मैं थोड़ा-सा मुकाबला करता था। लेकिन उसमें उपवास करनेकी जो शक्ति थी उसके सामने मैं एक खिलौना हूं, बच्चा हूं। (प्रा० प्र०, २२.१०.४७)

: १४८ :

दो मातायें

इस समय हड़ताल पूरे जोरमें थी। पुरुषोंकी तरह उसमें स्त्रियां भी शामिल होती जा रही थीं। उनमें दो माताएं अपने बच्चोंको साथमें लिए हुए थीं। एक बच्चेको कूचमें जाड़ा हो गया और वह मृत्युकी गोदमें जा सोया। दूसरीका बालक एक नाला पार करते हुए गोदमेंसे पानीमें गिरकर डूब गया। पर माता निराश नहीं हुई। दोनोंने अपनी कूचको उसी प्रकार शुरू रक्खा। एक ने कहा :

"हम मरेहुओंका शोक करके क्या करेंगी? इससे वे कहीं लौटकर थोड़े ही आ सकते हैं! हमारा धर्म तो है जीवितोंकी सेवा करना।"

उस शांत वीरताके, ऐसी असीम आस्तिकताके और अगाध ज्ञानके कई उदाहरण मैंने उन गरीबोंमें देखे। (द० अ० स०, पृष्ठ १५३-४)

: १४९ :

वी० पी० माधवराव

उस दिन बंगलोरमें ८५ वर्षकी अवस्थामें श्री वी० पी० माधवराव-का स्वर्गवास हो गया। मैं दिवंगत आत्माके शोकाकुल परिवारके साथ सादर समवेदना प्रकट करता हूं। श्री माधवराव त्रावणकोर, बड़ौदा और मैसूर राज्यके दीवान रह चुके थे। अवकाश ग्रहण करनेके बाद वह अपना समय समाज-सेवामें लगाया करते थे। यद्यपि वह इतने वृद्ध हो गये थे तो भी स्थानीय हरिजन-सेवक-संघका अध्यक्षपद उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया था। ईश्वर उनकी स्वर्गीय आत्माको शाश्वत शांति प्रदान करे। (ह० से०, २१.१२.३४)

: १५० :

गोविन्द मालवीय

पंडित मदनमोहन मालवीयजीके सबसे छोटे पुत्र गोविंद तथा उनके भतीजे कृष्णकांत मालवीय एक बार पकड़े गए, सजा पाई और छोड़ दिये गए। व्याख्यान देनेके कारण अब दुबारा गिरफ्तार किये गए हैं और उन्हें डेढ़ वर्षकी कठोर कैदकी सजा दी गई है। इसे मैं भारतवर्षका सद्भाग्य मानता हूं। श्रीमालवीयजीके पुत्रका असहयोगके कारण जेल जाना तो हमें अपने प्राचीन धर्मकी याद दिलाता है। श्रीगोविंदजीने मालवीयजीसे आज्ञा प्राप्त करनेमें किसी बातकी कसर नहीं रक्खी। जहां-तक उनसे कहा गया तहांतक उन्होंने अपने पूज्य पिताजीकी इच्छाका

आदर किया। पिताने भी पुत्रको पूरी स्वतंत्रता दे रक्खी थी। जब पं० जवाहरलाल नेहरू आदिके पकड़े जानेपर श्रीगोविंदसे न रहा गया तब उन्होंने अपने पिताको एक बड़ा ही विनयपूर्ण पत्र लिखा और आप रणांगणमें कूद पड़े। मैं जानता हूं कि गोविंदको पितृभक्तिमें जरा भी कमी नहीं हुई। मुझे दृढ़ विश्वास है कि पंडितजीके दिलमें भी गोविंदकी इस कृतिके विषयमें जरा भी रोष नहीं है। इन पिता-पुत्रका संबंध ऐसा ही मीठा रहा है और रहेगा। इस प्रकार इस स्वराज्य-यज्ञमें सब लोग अपनी अपनी अंतरात्माकी पुकारके अनुसार काम कर रहे हैं और हम पिता-पुत्रको जुदा-जुदा मैदानमें देख रहे हैं। ये सब धर्मजागृतिके, स्वराज्यके ही चिन्ह हैं। (हि० न०, ८.१.२२)

: १५१ :

मदनमोहन मालवीय

पं० मदनमोहन मालवीयका नाम तो जनतापर जादू कर देता है। देशसेवामें जितना आत्मत्याग तथा परिश्रम पंडितजीने किया है वह सब जानते हैं। (१९२० की विशेष कांग्रेसके एक भाषणका अंश—१५.९.२०)

... ...

इसी समय मुझे बनारसकी घटनाका भी स्मरण आ गया है। पंडित मदनमोहन मालवीय पर जो कटाक्ष किया जा रहा है उससे जनताकी अवस्थाका पता चलता है। यदि इस देशमें किसीका स्वप्नमें भी अनादर नहीं होना चाहिए तो वे पंडितजी हैं। पंजाबकी जो सेवाएं उन्होंने की हैं वह अभी ताजी हैं। यह केवल उन्हींके परिश्रमका फल है कि काशी विश्वविद्यालयकी स्थापना हुई है। उनकी देशभक्ति भी किसीसे कम नहीं

है। वे इतने सज्जन हैं कि उनसे भूल हो ही नहीं सकती। यदि उनकी समझमें हम लोगोंकी बातें नहीं आ रही हैं और वे अपने आदर्शको छोड़कर हम लोगोंके दलमें नहीं शामिल हो रहे हैं तो इसे हम देशका दुर्भाग्य कहेंगे, इसमें उनका कोई दोष नहीं है। उनका जिस तरहसे अपमान किया गया है उसे पढ़कर हार्दिक दुःख होता है। यदि संस्कृतके विद्यार्थी अथवा संन्यासी छात्रोंने धरना देकर मार्गमें बाधा डालना उचित समझा था तो पंडितजीका भी यह कर्त्तव्य था कि वे उस मामलेमें हस्तक्षेप करते और सहयोगी विद्यार्थियोंके लिए मार्ग दिलवाते। यदि पुलिसने प्रधान कार्य-कर्ताओंको गिरफ्तार कर लिया तो उसने कोई बुराई नहीं की। उसकी कार्यवाई सर्वथा उचित थी। (यं० इं०, १६.३.२१)

. . . .

यह असहयोग-संग्राम अपने ढंगका निराला ही है। कितने ही परि-वारोंमें इसके बदौलत मतभेद और कृति-भेद उत्पन्न हो गया है। यह इसका सबसे अद्भुत प्रभाव है। और तिसमें भी मालवीय-परिवारमें इसने जो द्विविधा-भाव उत्पन्न कर दिया है वह तो विशेष रूपसे उल्लेखयोग्य है। मेरी रायमें तो यह भारतवासियोंके लिए सहिष्णुता और सविनय कानून-भंगका खासा वस्तु-पाठ ही है। श्री मालवीयजीकी सहिष्णुता तो वास्तव-में अनुपम है। मैं इस बातको जानता हूं कि वे जेलको निमंत्रण देनेके खिलाफ हैं। मैं यह भी जानता हूं कि यदि वे उसके कायल होते तो वे ऐसे आदमी नहीं हैं जो उससे दुम दबाते। और जब उनके दुःखकी मात्रा हद दर्जे तक पहुंच जायगी और जबकि मेरी तरह उनका भी विश्वास ब्रिटिश न्यायसे पूरा-पूरा उठ जायगा तब यदि वे जेलको निमंत्रण देनेमें सबसे आगे बढ़ जायं तो मुझे तनिक भी आश्चर्य न होगा। परंतु यद्यपि वे आज स्वयं सविनय कानून भंगके विरुद्ध हैं तथापि उन्होंने कभी उन लोगोंके भी संकल्पोंमें हस्तक्षेप नहीं किया जो उनके आत्मीय हैं और जिन पर अपने प्रेम अथवा बड़े-बूढ़े होने के कारण उनकी अदम्य सत्ता

है। बल्कि इसके विपरीत उन्होंने अपने पुत्रोंको अपनी-अपनी इच्छाके अनुसार बरतनेकी पूरी आजादी दे दी है। गोविंदके सविनय कानून भंगका उदाहरण मेरी दृष्टिमें एक संग्रहणीय रत्नके सदृश है। पंडितजीने अपने मृदुल मधुर ढंगसे अपने उस वीर पुत्रको इस मार्गसे हटानेका बहुत-कुछ प्रयत्न किया। गोविंदने भी अंततक अपने पूज्य पिताकी इच्छाके अनुसार चलनेका भरसक प्रयत्न किया। उसने ईश्वरसे प्रार्थना की कि मुझे मार्ग बता। वह परस्पर विरुद्ध कर्तव्योंकी कैंचीमें फंस गया। नेहरू-परिवारकी गिरफ्तारीका गोविंदपर बड़ा असर हुआ और अपने विशाल हृदय पिताजी की आशीष प्राप्त करके उसने इस रणक्षेत्रमें कूद पड़नेका निश्चय किया। जेलोंने भी गोविंदसे बढ़कर हर्ष-पूर्ण हृदय शायद किसीका न देखा होगा। यह साहसके साथ कहा जा सकता है कि अपनी इस सविनय कानून भंगकी कृतिके द्वारा गोविंदने अपने देशकी तरह अपने पूज्य पिताजीके प्रति भी अपनी कर्तव्य-परायणता सिद्ध की है। बालकोंके कर्तव्य-परायण सविनय कानून-भंगमें गोविंदकी यह कृति हमारे समयके लिए एक नमूना है। मुझे यकीन है कि इससे पिता-पुत्रके बीच किसी तरहकी अनबन नहीं है। बल्कि शायद मालवीयजी, गोविन्दके जेलको स्वीकार करनेके पहलेकी अपेक्षा, अब उसके विषयमें अधिक अभिमान रखते होंगे। ऐसे ही सत्ययुक्त कार्योंके द्वारा मुझे इस युद्धकी धार्मिक प्रकृतिका प्रमाण मिलता है। (हि० न०, १५.१.२२)

. . . .

मुझे पंडित मालवीयके बारेमें चेतावनी दी गई है। उनपर यह इल्जाम है कि उनकी बातें बड़ी गहरी छुपी हुई होती हैं। कहा जाता है कि वे मुसलमानोंके शुभचिंतक नहीं हैं, यहांतक कि वे मेरे पदसे ईर्ष्या करनेवाले बताए जाते हैं, जबसे १९१५ में हिंदुस्तान आया तबसे मेरा उनके साथ बहुत समागम है और मैं उन्हें अच्छी तरह जानता हूं। मेरा उनके साथ गहरा परिचय रहता है। उन्हें मैं हिंदू-संसारके श्रेष्ठ

व्यक्तियोंमें मानता हूं। कट्टर और पुराने खयालातके होते हुए भी बड़े उदार विचार रखते हैं। वे मुसलनमानोंके दुश्मन नहीं हैं। उनका किसी-से ईर्ष्या रखना असंभव है। उनकी उदारता ऐसी है कि उसमें उनके दुश्मनोंके लिए भी जगह है। उन्हें कभी शासनकी चाह न रही और जो शासन आज उनके पास है वह उनकी मातृभूमिकी आजतककी लंबी और अखंड सेवाका फल है। ऐसी सेवाका दावा हममेंसे बहुत कम लोग कर सकते हैं। उनकी और मेरी विशेषता अलग-अलग है, लेकिन हम दोनों एक दूसरेको सगे भाई-सा प्यार करते हैं। मेरे और उनके बीच कभी जरा बिगाड़ न हुआ। हमारे रास्ते जुदे-जुदे हैं। इसलिए हमारे बीच स्पर्धा और डाहका सवाल पैदा ही नहीं हो सकता (हि० न०, १.६.२४)

. . . .

एक पाठक पूछते हैं :

"अपने करांचीमें विषय-समितिको दक्षिण भारतके सदस्योंको कार्य-समितिमें न रखनेका कारण तो समझाया, पर यह नहीं बताया कि मालवीयजीको क्यों अलग रक्खा।"

बात इतनी स्पष्ट थी कि किसीने कुछ पूछा ही नहीं। मालवीयजीका अपमान करनेका तो इसमें कोई सवाल हो नहीं सकता। वह अपमानसे परे हैं। कोई भी संस्था उन्हें अपना सदस्य बनाकर उनकी स्थिति या उनके महत्वको बढ़ा नहीं सकती। हां, उनकी सदस्यतासे संस्थाकी प्रतिष्ठा बढ़ सकती है। कार्यसमितिने जानबूझकर उन्हें अलग रक्खा, जिससे समय पड़नेपर उनकी स्वतंत्रता और काम करनेकी आजादी कायम या सुरक्षित रहे। सदस्य न होते हुए भी, जबसे नेता लोग छूटे हैं, वह बराबर कार्य-समितिकी बैठकोंमें उपस्थित रहे हैं। चूंकि कार्य-समितिमें उनका काम मूल्यवान रहा है, सदस्योंने यह सोचा कि उन्हें समितिके अनुशासनमें ले लेना कहीं उनके लिए कष्टप्रद न सिद्ध हो। डॉक्टर अंसारी

तो मालवीयजीको समितिमें रखनेके लिए इतने उत्सुक थे कि उनके लिए स्वयं हट जाना उन्हें पसंद था। पर जिस विचारका मैं ऊपर जिक्र कर आया हूं, जमनालालजीने उसे ऐसे प्रभावशाली ढंगसे समितिके सामने रक्खा था कि डॉक्टर अंसारीको भी इस बातके लिए राजी होना पड़ा कि मालवीयजी अलग रक्खे जायं। इस व्यवस्थासे समिति अपनी बैठकोंमें मालवीयजीकी सलाहसे लाभ भी उठा सकती है और साथ ही उनकी कार्य-स्वतंत्रतामें किसी प्रकारकी बाधा नहीं पड़ती। गोलमेज परिषद्में उन्हें अलगसे निमंत्रित करके तो सरकारने भी समाजमें उनकी अद्वितीय स्थितिको स्वीकार किया है। (हि० न०, १६.४.३१)

. . . .

बिरलाको पत्र लिखते हुए हिंदीमें लिखा—

आशावाद और भोलेपनमें मैं भेद करता हूं। पंडितजीमें दोनों हैं। दृष्टिमर्यादापर निराशाके चिह्न होते हुए भी और जानते हुए भी जो आशा रखता है वह आशावादी है। यह गुण पंडितजीमें काफी मात्रा में है। आशाकी बातें कोई कह देवे और उसपर विश्वास लाना वह भोलापन है। यह भी पंडितजीमें है। उसे मैं त्याज्य समझता हूं। पंडितजी महान व्यक्ति हैं, इसलिए उनको ऐसे भोलेपनसे हानि नहीं हुई है। हमें ऐसे भोलेपनका अनुकरण कभी नहीं करना चाहिए। आशावाद अंतर्नादपर निर्भर है, भोलापन बाह्य बातोंपर। (म० डा०, २७.५.३२)

. . . .

देशके सार्वजनिक जीवनको उनकी बहुत बड़ी देन है। उनका सबसे बड़ा कार्य हिंदू विश्वविद्यालय बनारस है, इस विद्यालयके प्रेमसे हमें हार्दिक प्रेम है। महामना मालवीयजीने उसके लिए जब कभी मेरी सेवाएं चाही हैं, मैंने दी हैं।

मालवीयजी एक सफल व महान् भिखारियोंमेंसे एक हैं, विश्वविद्या-

लयके लिए कितना चंदा कर सकते हैं, इसका अनुमान उस अपीलसे किया जा सकता है, जो उन्होंने केवल पांच करोड़ रुपएके लिए निकाली थी। ('विद्यार्थियोंसे', पृष्ठ २६२)

... ...

आप जानते हैं कि मालवीयजी महाराजके साथ मेरा कितना गाढ़ संबंध है। अगर उनका कोई काम मुझसे हो सकता है तो मुझे उसका अभिमान रहता है और अगर मैं उसे कर सकूं तो अपने को कृतार्थ समझता हूं। इसलिए जब सर राधाकृष्णन्का पत्र मुझे मिला तो मैंने निमंत्रण स्वीकार कर लिया। यहां आना मेरे लिए तो एक तीर्थमें आनेके समान है।

यह विश्वविद्यालय मालवीयजी महाराजका सबसे बड़ा और प्राणप्रिय कार्य है। उन्होंने हिंदुस्तानकी बहुत-बहुत सेवाएं की हैं, इससे आज कोई इन्कार नहीं कर सकता। लेकिन मेरा अपना खयाल यह है कि उनके महान् कार्योंमें इस कार्यका महत्त्व सबसे ज्यादा रहेगा। २५ साल पहले, जब इस विश्वविद्यालयकी नींव डाली गई थी, तब भी मालवीयजी महाराजके आग्रह और खिचावसे मैं यहां आ पहुंचा था। उस समय तो मैं यह सोच भी न सकता था कि जहां बड़े-बड़े राजा-महाराजा और खुद वाइसराय आनेवाले हैं, वहां मुझ-जैसे फकीरकी क्या जरूरत हो सकती है। तब तो मैं 'महात्मा' भी नहीं बना था।

उस समय भी मालवीयजी महाराजकी कृपादृष्टि मुझपर थी। कहीं भी कोई सेवक हो, वे उसे ढूंढ़ निकालते हैं और किसी-न-किसी तरह अपने पास खींच ही लाते हैं। यह उनका सदाका धंधा है।

लोग मालवीयजी महाराजकी बड़ी प्रशंसा करते हैं। आज भी आपने उनकी कुछ प्रशंसा सुनी है। वे सब तरह उसके लायक हैं। मैं जानता हूं कि हिंदू विश्वविद्यालयका कितना बड़ा विस्तार है। संसारमें मालवीयजीसे बढ़कर कोई भिक्षुक नहीं। जो काम उनके सामने आ जाता है, उसके लिए—अपने लिए नहीं—उनकी भिक्षाकी झोलीका

मुंह हमेशा खुला रहता है। वे हमेशा मांगा ही करते हैं, और परमात्माकी भी उनपर बड़ी दया है कि जहां जाते हैं, उन्हें पैसे मिल ही जाते हैं, तिसपर भी उनकी भूख कभी नहीं बुझती। उनका भिक्षा-पात्र सदा खाली रहता है। उन्होंने विश्वविद्यालयके लिए एक करोड़ इकट्ठा करनेकी प्रतिज्ञा की थी। एक करोड़की जगह डेढ़ करोड़ दस लाख रुपया इकट्ठा हो गया, मगर उनका पेट नहीं भरा। अभी-अभी उन्होंने मुझसे कानमें कहा है कि आजके हमारे सभापति महाराजा साहब दरभंगाने उनको एक खासी बड़ी रकम दानमें और दी है।

मैं जानता हूं कि मालवीयजी महाराज स्वयं किस तरह रहते हैं। यह मेरा सौभाग्य है कि उनके जीवनका कोई पहलू मुझसे छिपा नहीं। उनकी सादगी, उनकी सरलता, उनकी पवित्रता और उनके प्रेमसे मैं भली-भांति परिचित हूं। उनके इन गुणोंमेंसे आप जितना कुछ ले सकें, जरूर लें। विद्यार्थियोंके लिए तो उनके जीवनकी बहुतेरी बातें सीखने लायक हैं। मगर मुझे डर है कि उन्होंने जितना सीखना चाहिए, सीखा नहीं है। यह आपका और हमारा दुर्भाग्य है। इसमें उनका कोई कसूर नहीं। धूपमें रहकर भी कोई सूरजका तेज न पा सके तो उसमें सूरज बेचारेका क्या दोष? वह तो अपनी तरफ से सबको गर्मी पहुंचाता रहता है; पर अगर कोई उसे लेना ही न चाहे और ठंडमें रहकर ठिठुरता फिरे तो सूरज भी उसके लिए क्या करे? मालवीयजी महाराजके इतने निकट रहकर भी अगर आप उनके जीवनसे सादगी, त्याग, देशभक्ति, उदारता और विश्वव्यापी प्रेम आदि सद्गुणोंका अपने जीवनमें अनुकरण न कर सके तो कहिए, आपसे बढ़कर अभागा और कौन होगा? (ह० से०, २१.१.४२)

... ...

अंग्रेजीमें एक कहावत है—"राजा गया, राजा हमेशा जियो!" ठीक यही भारत-भूषण मालवीयजी महाराजके लिए कहा जा सकता है—

'मालवीयजी गये, मालवीयजी अमर हों !" मालवीयजी हिंदुस्तानके लिए
दा हुए और हिंदुस्तानके लिए किये गए अपने कामोंमें जीते हैं। उनके
ाम बहुत हैं। बहुत बड़े हैं। उनमें सबसे बड़ा हिंदू-विश्व-विद्यालय है।
लतीसे उसे हम बनारस हिंदू युनिवर्सिटीके नामसे पहचानते हैं। उस
ामके लिए दोष मालवीयजी महाराजका नहीं, उनके पैरोकारोंका रहा
। मालवीयजी महाराज दासानुदास थे। दास लोग जैसा करते थे,
ैसा वे करने देते थे। मुझे पता है कि यह अनुकूलता उनके स्वभावमें
री थी। यहां तक कि बाज दफा वह दोषका रूप ले लेती थी; लेकिन
समरथको नहिं दोष गुसाईं' वाली बात मालवीय महाराजके बारेमें भी
ही जा सकती है। उनका प्रिय नाम तो हिंदू-विश्व-विद्यालय ही था।
ौर यह सुधार तो अब भी करने योग्य है। इस विश्वविद्यालयका हरएक
त्थर शुद्ध हिंदू-धर्मका प्रतिबिंब होना चाहिए। एक भी मकान पश्चिमके
ड़वादकी निशानी न हो; बल्कि अध्यात्मकी निशानी हो। और जैसे
कान हों, वैसे ही शिक्षक और विद्यार्थी भी हों। आज हैं? प्रत्येक
वद्यार्थी शुद्ध धर्मकी जीवित प्रतिमा है? नहीं है, तो क्यों नहीं है?
स विश्वविद्यालयकी परीक्षा विद्यार्थियोंकी संख्यासे नहीं, बल्कि उनके
हंदू धर्मकी प्रतिमा होनेसे ही हो सकती है, फिर भले वे थोड़े ही क्यों
 हों।

मैं जानता हूं कि यह काम कठिन है। लेकिन यही इस विद्यालयकी
ड़ है। अगर यह ऐसा नहीं है, तो कुछ नहीं है। इसलिए स्वर्गीय माल-
ीयजीके पुत्रोंका और उनके अनुयायियोंका धर्म स्पष्ट है। जगतमें
हंदू धर्मका क्या स्थान है? उसमें आज क्या दोष हैं? वे कैसे दूर किए
ा सकते हैं? मालवीयजी महाराजके भक्तोंका कर्त्तव्य है कि वे इन
श्नोंको हल करें। मालवीयजी अपनी स्मृति छोड़ गये हैं। उसको
स्थायीरूप देना और उसका विकास करना उसका श्रेष्ठ स्मृति-स्तंभ
होगा।

विश्व-विद्यालयके लिए स्व० मालवीयजीने काफी द्रव्य इकट्ठा किया था, लेकिन बाकी भी काफी रहा है। इस काममें तो हरएक आदमी हाथ बंटा सकता है।

यह तो हुई उनकी बाह्य प्रवृत्ति। उनका आंतरिक जीवन विशुद्ध था। वे दयाके भंडार थे। उनका शास्त्रीय ज्ञान बड़ा था। भागवत उनकी प्रिय पुस्तक थी। वे सजग कथाकार थे। उनकी स्मरण-शक्ति तेजस्विनी थी। जीवन शुद्ध था, सादा था।

उनकी राजनीतिको और दूसरी अनेक प्रवृत्तियोंको छोड़ देता हूं। जिन्होंने अपना सारा जीवन सेवाको अर्पित किया था और जो अनेक विभूतियां रखते थे, उनकी प्रवृत्तिकी मर्यादा हो नहीं सकती। मैंने तो उनमेंसे चिरस्थायी चीजें ही देनेका संकल्प किया था। जो लोग विश्वविद्यालयको शुद्ध बनानेमें मदद देना चाहते हैं, वे मालवीयजी महाराजके अंतरजीवनका मनन और अनुसरण करनेकी कोशिश करें। (ह० से०, ८.१२.४६)

. . . .

मालवीयजी महाराजने भी हिंदीके लिए बहुत काम किया था। मगर उर्दू जबानको काट डालो, ऐसा कहते मैंने उनको कभी नहीं सुना। (प्रा० प्र०, १५.१०.४७)

: १५२ :

हसन मिरजा

. . . ऐसा आदर्श मि० हसन मिरजाने पेश किया था। मिस्टर हसन मिरजाको फेफड़ेका बहुत बुरा रोग है। वे हैं भी नाजुकमिजाज आदमी।

तथापि जब-जब जो काम उन्हें मिला, उन्होंने खुशीसे उसे किया। इतना ही नहीं, बल्कि अपनी बीमारी की परवाह भी न की। एक बार एक काफिर दारोगाने उन्हें बड़े दारोगाका पाखाना साफ करनेपर रख दिया। उन्होंने तुरंत ही उस कामको मंजूर कर लिया। यह काम उन्होंने कभी न किया था। इससे उन्हें कै हो गई। उन्होंने उसकी भी परवाह न की। जिस समय वे दूसरा पाखाना साफ कर रहे थे मैं वहां जा पहुंचा। देखते ही मैं आश्चर्यसे स्तब्ध हो गया। मेरे मनमें उनके विषयमें प्रेम उमड़ उठा। ('मेरे जेलके अनुभव', पृष्ठ ४२)

: १५३ :

मीराबहन

मीराबहनका जीवन तो सब बहनोंके लिए विचार करने योग्य बन गया है। उसके हिंदी पत्र वहां आते होंगे। मेरे नाम जो पत्र आते हैं, उनसे मैं देखता हूं कि उसने अपनी सरलता और प्रेमपूर्ण स्वभावसे गुरु-कुलकी बालाओंके मन हर लिए हैं। वह लड़कियोंमें खूब घुलमिल गई है और उन्हें पींजना-कातना अच्छी तरह सिखा रही है। अपना एक पल भी व्यर्थ नहीं जाने देती। इस निष्ठा, इस त्याग और इस पवित्रता-की आशा मैं तुम बहनोंसे रखता हूं। ('बापूके पत्र' पृष्ठ ५)

... ...

मीरा बहनके तमाम पत्र मैं चि० मगनलालको भेजा करता हूं। मैं चाहता हूं कि उन्हें तुम सब बहन ध्यानसे सुनो, समझो और विचारो। मेरी नजरमें इस समय हमारे पास वह एक आदर्श कुमारी है। ('बापूके पत्र)

... ...

"बापू, आपकी उत्तम सेवा किस तरह कर सकती हूं, यह विचार मेरे मनसे कभी निकलता ही नहीं है। मैं विचार करती हूं, अपने मनको समझाती हूं और भगवान्से प्रार्थना करती हूं, मगर अंतमें मेरे अंतरकी गुफामेंसे एक ही आवाज उठती है। जब आपको हमारे बीचसे उठा लिया जाता है, जैसे कि जेलमें, तब मैं आपके बाहरी कामोंमें पूरे जोशके साथ पड़ सकती हूं। कुछ भी शंका या कुछ भी मुश्किल पैदा नहीं होती। मगर जब आप हमारे पास होते हैं, तब एक असाधारण प्रबल वृत्ति चुपचाप आपकी निजी सेवा में ही डूबे रहनेकी प्रेरणा मुझे करती रहती है। और कोई काम करनेका प्रयत्न करना मुझे मिथ्या लगता है, रास्ता भूलने जैसा लगता है। ऐसा लगता है कि आपकी निजी सेवा करनेमें सफलता मिले, तो ही उन बाहरी कामोंको करनेकी शक्ति आए। ऐसा लगता है कि एक चीज दूसरीकी पूरक है। कोई मुझे हमेशा भीतर-ही-भीतर कहा करता है कि मैं जो खिचकर आपके पास चली आई हूं, सो आपकी सेवा करनेके लिए ही आई हूं। यह वृत्ति इतनी ज्यादा प्रबल है कि मैं उससे छूट नहीं सकती। यह बात माननेके लिए आपसे कहना भी कठिन है, क्योंकि इस बातकी सचाईका पूरा सबूत तो आपके अवसानके बाद ही मिल सकता है। इसलिए मुझे इतना कहकर ही रुक जाना पड़ता है कि यह एक वृत्ति है। इतनी बात मैं निश्चित जानती हूं कि इस बारकी लड़ाईमें मेरा बल, मेरी शक्ति मेरी भीतरी शांति और सुख पिछली बारसे कहीं ज्यादा रहे हैं। इसका एक यही कारण है कि इस बार मैं अपनी वृत्तिके अनुसार काम कर सकी हूं। सिर्फ आपके पहले छूटनेके बाद एक बार थोड़े समयके लिए मैं दुःखी हो गई थी। इस बार यहां (जेलमें) आनेसे पहले मेरा स्वास्थ्य नष्ट होनेको ही था, मगर इस बातका इस प्रश्नके साथ कोई वास्ता नहीं है। जिसका कारण तो सिर्फ ताकतसे ज्यादा काम करना ही था। मैंने देखा कि मैं थोड़े दिनमें पकड़ी जानेवाली हूं, इसलिए मैंने अपनी शक्ति ऊंच-नीच देखे बिना ही खर्च करना शुरू कर दिया। मैं जानती थी कि

मुझे जबर्दस्ती आराम मिलनेही वाला है। और मेरे पास कामका इतना ढेर पड़ा था कि ज्यादा सोच-विचार करनेकी गुंजायश नहीं थी।

"कौन जाने, यह सब भ्रम ही तो न हो? मगर स्त्री तो अपनी मनोवृत्तिसे ही चलती है न? उसका बल बुद्धिके बजाय वृत्तिके आधारपर चलनेमें ही है। वह अपने स्वभावको प्रकट कर सके तभी उसकी सच्ची शक्ति काबूमें की जा सकती है और सेवामें लगाई जा सकती है। एक आप, आप ही मेरे काम और आप ही मेरे आदर्श हैं, इसके सिवा सारी दुनियामें मेरा और कोई विचार और कोई चिंता या और कोई चाह नहीं है। इस जीवनमें यह काम पूरा करनेके लिए और अगले जीवनमें इस आदर्शतक पहुंचनेके लिए क्या भगवान मेरी प्रार्थना नहीं सुनेंगे? किसलिए वे मेरी वृत्तियोंको गलत रास्तेपर जाने देंगे? क्या वे ही मुझे गहरे अंधेरेसे आपके प्रकाशमय मार्गपर खींच नहीं लाए? यह सब मैं आपके सामने तर्क करनेके लिए नहीं लिख रही हूं। लेकिन जेलमें आनेके बाद असली चीज समझनेके लिए मैं जो निरंतर प्रयत्न कर रही हूं, उससे जो कुछ मुझे सूझा है वह आपके सामने रख देनेके लिए ही लिख रही हूं।"

उसे बापूने जवाब दिया:

तूने अपने लिए जो कुछ लिखा है वह मैं समझ सकता हूं और उसकी कदर करता हूं। एक मामलेमें मैं तुझे निश्चिन्त कर ही दूं। मेरे जेलसे निकलनेके बाद जरूर तू मेरे साथ ही रहेगी और मेरी सेवाका अपना असल काम फिर शुरू कर देगी। मैं साफ देख सकता हूं कि तेरी आत्माके आविर्भावके लिए यही एक मार्ग है। पहले मैंने ऐसा किया है, मगर अब अपनी सेवाके कामसे तुझे वंचित रखनेका अपराध मैं नहीं करूंगा। भूतकालमें जो कुछ हुआ है उसका विचार करता हूं तब मुझे एक बड़ा संतोष यह रहता है कि मैंने तेरे प्रति जो कुछ किया है वह तेरे लिए गहरे प्रेम और तेरे भलेकी भावनासे प्रेरित होकर किया है। मगर मैं देख सकता हूं कि 'स्वराज' का काम 'सुराज्य' नहीं दे सकता। एक गुजराती कहावत

है कि 'धणीने सूझे ढांकणीमां ने पड़ोसीने न सूझे आरसीमां'। ये दोनों कहावतें सब जगह लागू नहीं की जा सकतीं। हां, तेरे मामलेमें तो दोनों ही अच्छी तरह लागू होती हैं। इसलिए आइंदा मेरी तरफसे कोई दखल नहीं दिया जायगा, यह पूरा भरोसा रखना। और मेरी सेवा तुझसे ज्यादा प्रेमके साथ कौन कर सकता है?" (म० डा०, ८.४.३२)

. . . .

वह विशुद्ध आत्मा है। उसमें आत्मत्यागकी अपार शक्ति है। (म० डा०, २३.६.३२)

. . . .

तू लिखती है कि तेरा मन ठिकाने नहीं, इसीलिए पत्र नहीं लिखेगी। यह भी विकारकी निशानी है। विकारका अर्थ अच्छी तरह समझनेकी जरूरत है। क्रोध करना भी एक विकार ही है। मनमें अनेक प्रकारकी इच्छाएं होते रहना भी विकार है। इसलिए यह पहनूं, यह ओढ़ूं, यह खाऊं यह न खाऊं, यह विकार है, और विवाहकी इच्छा हो या विवाहकी इच्छा हुए बिना बराबरके लड़कोंका संग अच्छा लगे, उनके साथ गुप्त बातें अच्छी लगें, उन्हें छूना अच्छा लगे, उनके साथ दिल्लगी करना अच्छा लगे, तो यह भी विकार है। यह आखिरी विकार एक भयंकर विकार माना जाता है। लेकिन इनमेंसे कोई भी विकार जबतक होता है तबतक स्त्रीको मासिक धर्म होगा और पुरुषको मासिक धर्म नहीं तो दूसरा कुछ होता ही है। इस अर्थमें मीराबहन भी विकार-रहित नहीं कही जा सकती। इसीसे उसे अभी तक मासिक धर्म होता है। इसमें वह कोई पाप नहीं करती। वह तो बहुत ऊंची पहुंच गई है। वह अपने तमाम विकारोंको दूर करनेके लिए लड़ रही है। पुरुष-संग-रूपी इच्छाका विकार तो उसमेंसे साफ चला गया है। मगर उसमें क्रोध है, राग है, अनेक इच्छाएं हैं। इन सबको भी रोकनेकी वह कोशिश करती है। (म० डा०, ११.६.३२)

. . . .

मीराबहन तो आश्रमवासी रही। घर-बार, माता-पिताका त्याग करके आई। उसको तो जो चीज प्यारेलालको लागू होती है उससे भी ज्यादा लागू होती है। वह यद्यपि अपनेको मेरी लड़की कहती है, मगर उसका भी तो अपना स्वतंत्र स्थान बन गया है। अपने आप उसको लगता है कि उसे नहीं लिखना चाहिए तो अलग बात थी। (का० क०, २४.६.४२)

. . . .

सुबह घूमते समय मैंने बापूसे मीराबहनकी बकरीवाली बात कही। कहने लगे :

मीरा बहनमें एक बड़ा गुण है। उसके निकट मनुष्य, पशु, वृक्षों और फूलोंमें कोई फर्क नहीं है। उसे बकरियोंसे बातें करते तो तूने सुना होगा। फूल-पत्तोंसे भी वह बातें करती है। और कल रात उसने बिना किसीके कहे वह सब तेरे लिए किया।

मैंने कहा, "उनमें गुण तो भरे ही हैं, नहीं तो अपने राजा-समान पिताके घरको छोड़कर वह यहां भागकर क्यों आतीं।" बापू बोले : हां, यह बात तो है। (का० क०, ३०.६.४२)

. . . .

मीराबहन आज यह विचार कर रही हैं कि सारी दुनियामें कैसे क्रांति हो सकती है। उनकी मान्यता है कि पहले कुछ नेता रूस जावें, फिर हर गांवसे कुछ किसान वहां भेजे जावें, वे आकर बाकी लोगोंमें प्रचार करें। मीराबहनका दिमाग आज रूस और मार्क्ससे ही भरा हुआ है। बापू कह रहे थे :

यह एक छोटी-सी मिसाल है कि कैसे उनका मन एक बालककी भांति कल्पनाके घोड़ेपर सवार होकर कहां-से-कहां पहुंच जाता है, नहीं तो आज इस जेलमें बैठे हुए रूस जानेका प्रश्न ही कैसे उठ सकता है?

और फिर क्या हम इतने कंगाल हैं कि रूस जानेके सिवा और कुछ कर ही नहीं सकते ? (का० क०, २६.११.४२)

... ...

इसके भोलेपन और इसकी कल्पना-शक्तिका कोई पार नहीं है। (का० क०, १३.३.४४)

... ...

एक बात यह भी है कि हमारे यहां पूरी खूराक तो पैदा नहीं होती है। तब लोगोंको कहो कि वे जमीनको बो लें, उसमेंसे पैदा हो जायगी। बात तो सच्ची है, लेकिन उसके लिए बाहरसे जो बनी-बनाई खाद आती है, जिसको कि रसायन खाद बोलते हैं, उसमें हम चंद करोड़ रुपए मुफ्तके दे देते हैं या ऐसा कहो कि जमीनको बिगाड़नेके लिए वह पैसे देते हैं। यह मेरा कहना नहीं है, मैं तो वह जानता ही नहीं; लेकिन जो इसका ज्ञान रखते हैं वे ऐसा कहते हैं। मीराबहनने ही यह सब किया है और उसने ही इस चीजके जानकार लोगोंको इकट्ठा किया। उसको शौक है और वह सचमुच किसान बन गई है। (प्रा० प्र०, १०.१२.४७)

: १५४ :

रामास्वामी मुदालियर

वहांके (मैसूरके) दीवान श्री रामास्वामी मुदालियर तो बहुत बड़े आदमी हैं। उन्होंने सारी दुनियामें भ्रमण किया है। उन्होंने समझा कि आखिर कबतक लोगोंका दमन करते रहेंगे ? ऐसा कबतक चल सकता है ? नतीजा यह हुआ कि जो लोग कैदमें चले गये थे वे छूट गये और मैसूर राज्य और उसके लोगोंके बीच एक सुलहनामा हो गया। लोगोंकी जो

बाकानून बातें थीं वे राज्यकी तरफसे स्वीकृत हो गई। मैसूरमें यह जो कुछ हुआ उसके लिए वहांके राजा, दीवान साहब और लोगोंको धन्यवाद देना चाहिए। राज्यने वहां लोगोंको राजी रखकर ही काम चलाना कबूल कर लिया है। (प्रा० प्र०, १६.१०.४७)

: १५५ :

नरोत्तम मुरारजी

सेठ नरोत्तम मुरारजीकी दुःखद मृत्युके कारण हममेंसे एक प्रसिद्ध व्यापारी उठ गया है। सेठ नरोत्तम मुरारजीमें देशभक्ति और व्यापारिक महत्वाकांक्षा, दोनों बातें एक साथ पाई जाती थीं। पूंजीपति होते हुए भी वह मजदूरोंके साथ दयाका—मनुष्यताका—व्यवहार करते थे। सिंधिया स्टीम नेविगेशन कंपनी खड़ी करनेमें उन्होंने जिस साहसका परिचय दिया था, उससे महत्वाकांक्षाके साथ उनकी देशभक्तिका भी परिचय मिलता है। उनका दान विशाल, विवेकपूर्ण और आधुनिक आवश्यकताओं-के अनुकूल होता था। देशकी वर्तमान अवस्थामें इस सपूतके चल बसनेसे भारत-माताकी बड़ी क्षति हुई है। अब उनके कार्यका सारा बोझा उनके नौजवान और उदीयमान पुत्रके सिर आ पड़ा है। लेकिन मैं जानता हूं कि श्रीशांतिकुमार भी अपने सुप्रसिद्ध पिताके समान ही देशभक्त हैं और संभवतः अपने पिताके बहुसंख्यक कारखानोंमें काम करनेवाले मज-दूरोंसे अधिकतर प्रेम करते हैं। मैं उनके, उनकी बूढ़ी दादी मांके और दूसरे सब कुटुंबियोंके प्रति हृदयसे समवेदना प्रकट करता हूं, जिनके निकट परिचयमें आनेका मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है। (हि० न०, २१.११.२६)

: १५६ :

शांतिकुमार मुरारजी

आज हम सोलापुरमें हैं। यह बड़ा शहर है। यहां पांच मिलें हैं। उनमें सबसे बड़ी मुरारजी गोकुलदासकी है। उनके पोते शांतिकुमार उम्रमें तो अभी नवयुवक हैं, परंतु उनकी आत्मा महान है। वे खुद खादी-प्रेमी हैं और खादी ही पहनते हैं। यह कोई उनका सबसे बड़ा गुण है, यह नहीं कहना चाहता। उनमें दया है, उदारता है, नम्रता है, ईश्वर-परायणता है, सत्य है। जैसा नाम है वैसे ही गुण रखते हैं। शांतिकी मूर्ति हैं। करोड़पतिके यहां ऐसा रत्न है, यह देखकर मुझे बहुत आनंद होता है। ('बापूके पत्र', पृष्ठ १६)

: १५७ :

बेगम मुहम्मदअली

मौलाना मुहम्मदअलीकी बेगमसाहबाके धीरजको देखकर मैं तो दंग रह जाता हूं। वाल्टेरमें जब उनके पति, मौलानासाहब, गिरफ्तार हुए तब वे उनसे मिलने गई थीं और जब मिलकर लौटीं तब मैंने उनसे पूछा कि आपके दिलको घबराहट तो नहीं होती? उन्होंने कहा—

"नहीं, मुझे जरा भी घबराहट नहीं। पकड़े जानेवाले तो थे ही। यह तो उनका धर्म था।"

मैंने उनकी आवाजमें भी घबराहट नहीं पाई। उसके बाद से वे हमारे ही साथ घूमकर अपनी हिम्मतका परिचय दे रही हैं। औरतों-

के जलसोंमें और मर्दोंके भी जलसेमें वे बुर्का ओढ़कर आती हैं और थोड़ेमें परंतु ऐसा भाषण करती हैं कि वह ठेठ दिलकी तह तक पैठ जाता है। वे सबको शांति कायम रखने, चरखा कातने, और खादी पहननेके लिए सिफारिश करती हैं और स्मर्नाके लिए मुसलमानोंसे चंदा भी मांगती हैं। कुछ ही महीने पहले तक उनके बनाव-सिंगारकी हद नहीं थी। महीन कपड़ेके बिना काम नहीं चलता था। पर आज वे मोटी खादीका हरा रंगा हुआ झगा पहनती हैं। हिंदू स्त्रियोंकी बनिस्वत मुसलमान स्त्रियोंको अधिक कपड़े पहनने पड़ते हैं। उसमें भी बेगम-साहबाका बदन हल्का नहीं है। तो भी वे अपने धर्मके लिए इस तरह तपस्या कर रही हैं। इसका फल यह हो रहा है कि उनका दर्शन करनेके लिए अब जगह-जगहपर, मुसलमान बहनें भी आया करती हैं। (हि० न०, ३०.६.२१)

. . . .

बेगम मुहम्मदअलीने अंगोरा फंडके लिए जहां-जहांसे रुपया प्राप्त किया है वहांसे शायद मौलानासाहब भी न ले पाते। यह बात मैं पहले ही कह चुका हूं कि उनका भाषण तो मौलानासाहबसे भी बढ़िया होता है। (हि० न०, २५.१२.२१)

: १५८ :

मेरीमैन

मेरा तो खयाल है कि संसारमें ऐसा एक भी स्थान और जाति नहीं कि जिससे यथा समय और संस्कृति मिलनेपर बढ़िया-से-बढ़िया मनुष्य-पुष्प न पैदा होते हों। दक्षिण अफ्रीका में सभी स्थानोंपर मैं इसके उदाहरण

सौभाग्यवश देख चुका हूं। पर केपकालोनीमें मुझे इसके उदाहरण अधिक संख्यामें मिले। उनमें सबसे अधिक विद्वान् और विख्यात हैं श्री मेरीमैन। इन्हें लोग दक्षिण अफ्रीकाके ग्लैडस्टन कहते। केपकालोनीमें आप अध्यक्ष भी रह चुके हैं। यदि श्री मेरीमैन के जैसे श्रेष्ठ नहीं तो उनसे दूसरे नंबरमें वहांके श्राईनर और मोल्टोनोंके परिवार हैं।

श्री मेरीमैन और ये दोनों परिवार हमेशा हबशियोंका पक्ष लेते और जब-जब उनके हकोंपर हमला होता तबतब उसके लिए वे झगड़ते। और यद्यपि वे सब भारतीयों और हबशी लोगोंको भिन्न-भिन्न दृष्टिसे देखते तथापि उनकी प्रेम-धारा भारतीयोंकी ओर भी अवश्य बहती। उनकी दलील यह थी कि हबशी लोग गोरोंके पहलेसे यहां रह रहे हैं और उनकी यह मातृभूमि है। इसलिए उनका स्वाभाविक अधिकार गोरोंसे नहीं छीना जा सकता। किंतु प्रतिस्पर्धाके भयसे बचनेके लिए यदि भारतीयोंके खिलाफ कुछ कानून बनाए जायं तो वह बिलकुल अन्यायपूर्ण नहीं कहा जा सकता। पर इतनेपर भी उनका हृदय तो हमेशा भारतीयोंकी ओर ही झुकता। स्वर्गीय गोपालकृष्ण गोखले जब दक्षिण अफ्रीका पधारे थे तब उनके सम्मानमें केपटाउन हालमें जो सभा बुलाई गई थी उसके अध्यक्ष श्री श्राईनर ही थे। श्री मेरीमैनने भी उनसे बड़े प्रेम और विनयपूर्वक बातचीत की और भारतीयोंके प्रति अपना प्रेम-भाव दर्शाया। (द० अ० स०, पृष्ठ ५६)

: १५६ :

फिरोजशाह मेहता

मैं सर फिरोजशाहसे मिला। मैं उनसे चकाचौंध होनेके लिए तैयार ही था। उनके नामके साथ लगे बड़े-बड़े विशेषण मैंने सुन रखे थे। 'बंबईके शेर', 'बंबईके बेताजके बादशाह' से मिलना था। परंतु बादशाहने मुझे भयभीत नहीं किया। जिस प्रकार पिता अपने जवान पुत्रसे प्रेमके साथ मिलता है, उसी प्रकार वह मुझसे मिले। उनके चेंबरमें उनसे मिलना था। अनुयायियोंसे तो वह सदा घिरे हुए रहते ही थे। वाच्छा थे; कामा थे। उनसे मेरा परिचय कराया। वाच्छाका नाम मैंने सुना था, वह फिरोजशाहके दाहिने हाथ माने जाते थे। अंक-शास्त्रीके नामसे वीरचंद गांधीने मुझे उनका परिचय कराया था। उन्होंने कहा—"गांधी, हम फिर भी मिलेंगे।"

कुल दो ही मिनटमें यह सब हो गया। सर फिरोजशाहने मेरी बात सुन ली। न्यायमूर्ति रानडे और तैयबजीसे मिलनेकी भी बात मैंने कही। उन्होंने कहा—"गांधी, तुम्हारे कामके लिए मुझे एक सभा करनी होगी। तुम्हारे काममें जरूर मदद देना चाहिए।" मुंशीकी ओर देखकर सभाका दिन निश्चय करनेके लिए कहा। दिन तय हुआ और मुझे छुट्टी मिली। कहा—"सभाके एक दिन पहले मुझसे मिल लेना।" मैं निश्चिंत होकर मनमें फूलता हुआ अपने घर गया। (आ० क०, १९२७)

... ...

बहनोईके देहांतके दूसरे ही दिन मुझे सभाके लिए बंबई जाना था। मुझे इतना समय न मिला था कि अपने भाषणकी तैयारी कर रखता। जागरण करते-करते थक रहा था। आवाज भी भारी हो रही थी। यह विचार करता हुआ कि ईश्वर किसी तरह निबाह लेगा,

मैं बंबई गया। भाषण लिखकर ले जानेका तो मुझे स्वप्नमें भी खयाल न हुआ था।

सभाकी तिथिके एक दिन पहले शामको पांच बजे आज्ञानुसार मैं सर फिरोजशाहके दफ्तरमें हाजिर हुआ।

"गांधी, तुम्हारा भाषण तैयार है न ?" उन्होंने पूछा।

"नहीं तो, मैंने जबानी ही भाषण देनेका इरादा कर रखा है।" मैंने डरते-डरते उत्तर दिया।

"बंबईमें ऐसा न चलेगा। यहांका रिपोर्टिंग खराब है और यदि तुम चाहते हो कि इस सभासे लाभ हो तो तुम्हारा भाषण लिखित ही होना चाहिए और रातों-रात छपा लेना चाहिए। रात ही को भाषण लिख सकोगे न ?"

मैं पसोपेशमें पड़ा; परंतु मैंने लिखनेकी कोशिश करना स्वीकार किया।

"तो मुंशी तुमसे भाषण लेने कब आवें ?" बंबईके सिंह बोले।

"ग्यारह बजे।" मैंने उत्तर दिया।

सर फिरोजशाहने मुंशीको हुक्म दिया कि उतने बजे जाकर मुझसे भाषण ले आवें और रातों-रात उसे छपा लें। इसके बाद मुझे विदा किया।

दूसरे दिन मैं सभामें गया। मैंने देखा कि उनकी लिखित भाषण पढ़नेकी सलाह कितनी बुद्धिमत्तापूर्ण थी। फ़ामजी कावसजी इंस्टीट्यूटके हालमें सभा थी। मैंने सुन रखा था कि सर फिरोजशाहके भाषणमें सभा भवनमें खड़े रहनेको जगह न मिलती थी। इसमें विद्यार्थीलोग खूब दिलचस्पी लेते थे।

ऐसी सभाका मुझे यह पहला अनुभव था। मुझे विश्वास हो गया कि मेरी आवाज लोगों तक नहीं पहुंच सकती। कांपते-कांपते मैंने अपना भाषण शुरू किया। सर फिरोजशाह मुझे उत्साहित करते जाते—"हां,

जरा और ऊंची आवाजमें !" ज्यों-ज्यों वह ऐसा कहते त्यों-त्यों मेरी आवाज गिरती जाती थी।

मेरे पुराने मित्र केशवराव देशपांडे मेरी मददके लिए दौड़े। मैंने उनके हाथमें भाषण सौंपकर छुट्टी पाई। उनकी आवाज थी तो बुलंद; पर प्रेक्षक क्यों सुनने लगें ? 'वाच्छा', 'वाच्छा', की पुकारसे हाल गूंज उठा। अब वाच्छा उठे। उन्होंने देशपांडेके हाथसे कागज लिया और मेरा काम बन गया। सभामें तुरंत सन्नाटा छा गया और लोगोंने अथसे इतितक भाषण सुना। मामूलके मुताबिक प्रसंगानुसार 'शर्म'-'शर्म' की अथवा करतल-ध्वनि हुई। सभाके इस फलसे मैं खुश हुआ।

सर फिरोजशाहको भाषण पसंद आया। मुझे गंगा नहानेके बराबर संतोष हुआ। (आ० क०, १९२७)

: १६० :

डा० मेहता

डॉ० मेहताके पैरका घाव जहरीला हो गया और उनका पांव कटवा देना पड़ा। तार आया है कि इससे उनकी स्थिति गंभीर हो गई है। सुबह आपरेशन अच्छा हो गया। यह तार आया था कि हालत संतोषजनक है। इस पर बापूने वापस तार दिया था—"बड़ी खुशी हुई। रोज तार देते रहिए।" यह बात हो ही रही थी कि डॉक्टरमें बर्दाश्त करनेकी ताकत है कि इतनेमें दूसरा तार आया—डॉक्टरको खूब बुखार है। फिर तार आया—डॉक्टरको निमोनिया है और हालत नाजुक है। इसके बाद भी बापूने कहा—"रतिलाल और मगनकी तकदीरसे अब भी जी जायं तो

कह नहीं सकते ।" इस तरह बापूके मुंहसे भी मानवोचित उद्‌गार निकल जाते थे (३.८.३२)

आज डॉक्टर मेहताके देहावसानका तार आया । कल रातको ६–४५ पर शरीर छोड़ा । बापूको कितनी चोट लगी, इसका अंदाज इस तारसे हो सकता है—

ईश्वरकी इच्छा ! तुम्हें और माताजीको आश्वासन । पिताजी-की उदात्त परंपराओंकी यानी व्यापारमें ईमानदारी, मेहमानदारीमें उदारता और दानशील स्वभाव, इन सबकी रक्षा करना । सरदार और महादेव शोकमें मेरे साथ शरीक हैं । मेरी तो कहूं ही क्या ? उम्र-भरके वफादार दोस्तकी जुदाई दिलमें चुभ रही है । मुझे सब हाल बताते रहना । ईश्वर तुम सबका भला करे ।

बेचारे ने दो महीने पहले तो सत्याग्रहमें शामिल होनेकी इजाजत मांगी थी और उसे नवंबरमें बापूसे मिलनेकी आशा थी । मणिलाल रेवाशंकर जगजीवनको पत्रमें लिखा :

सुंदर भवनके अब बर्बाद होनेका खतरा पैदा हो गया है । तुम सबको डॉक्टरका वियोग खटकेगा ही । मगर मेरी हालत अजीब है । डॉक्टरसे ज्यादा मित्र इस संसारमें मेरा कोई नहीं था । मेरे लिए वे जिंदा ही हैं । मगर यहां बैठा हुआ मैं उनके भवनको अविच्छिन्न रखनेमें लग-भग कुछ भी भाग नहीं ले सकता, यह मुझे खटकता है । तुम जो कुछ कर सकते हो कर लेना । डॉक्टरका नाम अमर रखनेके काममें तुम कहां तक भाग ले सकते हो, यह लिखना ।

नानालाल मेहताको :

डॉक्टरके चले जानेसे मेरी हालत तुम सबसे ज्यादा खराब हो गई है । मुझे यह खटकता है कि जिसे मैं अपना सबसे पुराना साथी या मित्र कहता हूं, वह जाता रहे और मैं पिंजड़ेमें बंद होनेसे उसके पीछे कुछ भी न कर सकूं । मगर इसमें भी ईश्वरका भेद है, कृपा भी हो । मैं नहीं

जानता कि डॉक्टरका भवन आबाद रखनेकी तुम्हारी कहां तक शक्ति है। जितनी हो उसे काममें लेना। डॉक्टरका नाम निष्कलंक रहे और उनके गुण उनके लड़के कायम रखें, यह देखनेकी बात है।

बड़े लड़के छगनलालको :

डॉक्टरके स्वर्गवासका सच्चा खयाल अबसे तुम्हारे बरतावमें जाहिर होना चाहिए। डॉक्टरके कई सद्गुण ही उनका असली वसीयतनामा हैं। वह तुम्हारा उत्तराधिकार है। तुमसे छोटे भाइयोंको जरा भी क्लेश न होना चाहिए।...मेरा उम्रभरका साथी जा रहा है तब मैं अगर जैसी हालतमें (जेलमें) हूं, यह मुझे खटकता है नहीं तो मैं इस वक्त तुम्हारे पास खड़ा होता। शायद डॉक्टरकी आखिरी सांस मेरी गोदमें निकली होती। मगर ईश्वर हमारा सोचा हुआ सच होने नहीं देता। इसलिए मैं उतना ही करूंगा, जितना डाकके जरिए हो सकता है।

पोलकको :

डॉ० मेहता चल बसे। मैंने अपना उम्रभरका वफादार मित्र खो दिया। वैसे मेरे लिए वे जीते-जीसे भी मरनेके बाद ज्यादा जीवित हैं, क्योंकि अब मैं उनके तमाम अच्छे गुणोंको ज्यादा याद करूंगा। यह स्मरण एक पवित्र थाती है। मगनलालके नामका पत्र इसके साथ भेजता हूं। मैं चाहता हूं कि तुम उसे पिताके योग्य बननेमें पूरी मदद दो। मैंने उसे सलाह तो दी ही है कि चिंता न करे और पढ़ाईमें लगा रहे। कितने ही समयसे डॉ० मेहता शरीरसे जर्जर हो गये थे, फिर भी उनकी शुरूकी व्यवहारदक्षता ज्यों-की-त्यों बाकी थी। इसलिए उन्होंने मगनलालकी पढ़ाईके लिए रुपएका इंतजाम किया ही होगा। मगनलाल जानता होगा। मुझे दुःख है कि इस समय मैं उन लोगोंके बीच नहीं हूं। मगर मेरा सोचा हुआ नहीं, सदा उसीका सोचा हुआ होवे।

रातको सोते समय बापू कहने लगे :

ज्ञान भी इतना ज्यादा पक्का होनेकी जरूरत है कि बुद्धिसे मनको

मनानेका थोड़ा ही असर हो। जानते हैं कि डॉक्टरको जीना नहीं था, वह शरीर नाश होने लायक था और उसका नाश हो गया। फिर भी इतनी बेचैनी किस लिए ?

मैंने कहा—"अपने प्रिय जनोंकी या जिनके साथ वर्षों निकट संबंधमें बीते हों उनकी मौतका समाचार सुनकर यदि उनका स्मरण बार-बार होने लगे तो इसमें अस्वाभाविक क्या है ?" बापू बोले :

स्मरण तो हो, परंतु दुःख किसलिए हो ? मौत और शादीमें किस लिए फर्क होना चाहिए ? विवाहका प्रसंग याद करके आनंद-ही-आनंद होता है, वैसे ही मृत्युसे होनेवाले स्मरणोंसे आनंद क्यों नहीं होना चाहिए ? मेरी बेचैनी मगनलालकी मौतसे भी कुछ ज्यादा है। कारण इतना ही है कि मैं बाहर होता तो इस परिवारको अच्छी तरह संभाल लेता। मगर यह भी गलत ही है। यह अपंग हालत ठीक क्यों न हो ?

डाक्टरके उदात्त गुणोंको याद करके उनका तर्पण किया। (म० डा०, ४.८.३२)

: १६१ :

मेहरबाबा

वह जबरदस्त आदमी है। वह किसीको ढूंढ़ने नहीं जाते, मगर लोग उनके पास चले आते हैं, रुपया चला आता है, बिलायतसे किसी स्टारने बुलाया तो चले गये। अमरीकासे धनवानोंने बुलाया तो चले गये। और उनका असर क्यों न पड़े ? सात वर्षसे मौन और फिर भी कोई पागल नहीं। इतनी-सी बात भी लोगोंको आकर्षित करनेके लिए काफी है।

मैंने कहा—"उन्होंने अपनी पुस्तक पढ़नेको दी थी, वह आपको कैसी लगी ?" बापू :

उसमें साधारण तो कोई बात थी नहीं। और अंग्रेजीमें लिखी थी। उनके शिष्यने उनके विचार दर्ज किए थे, इसलिए गड़बड़ घोटाला-सा हो गया था। मैंने उन्हें सुझाया कि आपको लिखना हो तो गुजरातीमें लिखिए या अपनी मादरी जबान फारसीमें लिखिए। हम पराई भाषामें क्यों लिखें ? उन्हें यह सूचना पसंद आई।

मैंने कहा—"उनकी मुखमुद्रापर एक तरहकी प्रसन्नता है।" बापू बोले :

हां, जरूर है। और उनका दावा भी है कि उन्हें सदा आनंद-ही-आनंद है। वे मानते हैं कि उन्हें साक्षात्कार हुआ है। वे बाल-ब्रह्मचारी हैं और उनका कहना है कि उन्हें विकार नहीं होते। और मुझे वे सच्चे आदमी मालूम होते हैं। उनमें आडंबर तो है ही नहीं। (म० डा०)

: १६२ :

रेम्जे मैक्डोनल्ड

वल्लभभाई—"कुछ भी हो, मैक्डोनल्ड सब निगल जायगा। और पंच फैसला भी हमारे खिलाफ ही होनेवाला है।"

बापू—"अभी मुझे मैक्डोनल्डसे आशा है कि वह विरोध करेगा।"

वल्लभभाई—"नहीं जी, वह क्या विरोध करेगा ! ये सब बिलकुल नंगे लोग हैं।"

बापू—"तो भी इस आदमीके अपने उसूल हैं"

वल्लभभाई—"उसूल हों तो इस तरह अनुदारोंके हाथोंमें बिक जाय ? उसे देश परसे हुकूमत छोड़नी ही नहीं है ।"

बापू—"छोड़नी तो नहीं है, मगर इसमें उसका स्वार्थ नहीं है । सिर्फ लास्की, होरेबिन और ब्रॉकवे जैसे थोड़ेसे आदमियोंके सिवा छोड़ना तो कोई नहीं चाहता । बेन, लीज और स्मिथ वगैरह सब मैकडोनल्ड-जैसे ही हैं । मैं तो इतना ही कहता हूं कि यह आदमी देशका हित देखकर अनुदारोंमें मिला है । अब यह आदमी पंच फैसला देनेकी बात रोके हुए है । वह सारी जिंदगीके उसूलोंको ताकमें नहीं रख सकता ।"

मैं—"तो क्या मुसलमानोंको अलग मताधिकार नहीं देने देगा ?"

बापू—"यह तो देने देगा, लेकिन अस्पृश्योंके लिए अलग मताधिकार वह सहन नहीं कर सकेगा ।"

मैं—"क्या वह सचमुच यह बात समझा भी है ।"

बापू—"जरूर, वह सब समझता है । जिसे साइमन कमीशनने समझ लिया, उसे क्या वह नहीं समझेगा ? वह कहेगा कि मैंने तुम्हें आर्डिनेन्स निकालने दिया, बयान देने दिया; लेकिन अब मैं तुम्हारे साथ और नहीं चल सकता । इसीलिए उसने अभी तक निर्णय रोक रखा है । होर तो कुछ भी करे मुझे आश्चर्य नहीं होगा । उसे तो किसी भी तरह देशको कुचलना है । इसके लिए मुसलमानोंको जो भी देना जरूरी होगा वह देनेको तैयार रहेगा ।" (म० डा०, ६.७.३२)

: १६३ :

मोतीलाल

बढवाण स्टेशनपर दर्जी मोतीलाल, जो वहांके एक प्रसिद्ध प्रजा-सेवक माने जाते थे, मुझसे मिलने आए। उन्होंने मुझसे वीरमगामकी जकातकी जांचका तथा उसके संबंधमें होनेवाली तकलीफोंका जिक्र किया। मुझे बुखार चढ़ रहा था। इसलिए बात करनेकी इच्छा कम ही थी। मैंने थोड़ेमें ही उत्तर दिया :

"आप जेल जानेके लिए तैयार हैं ?"

इस समय मैंने मोतीलालको वैसा ही एक युवक समझा, जो बिना विचारे उत्साहमें 'हां' कर लेते हैं, परंतु उन्होंने बड़ी दृढ़ता के साथ उत्तर दिया—

"हां, जरूर जेल जायंगे; पर आपको हमारा अगुआ बनना पड़ेगा। काठियावाड़ीकी हैसियतसे आपपर हमारा पहला हक है। अभी तो हम आपको नहीं रोक सकते, परंतु वापस लौटते समय आपको बढवाण जरूर उतरना पड़ेगा। यहांके युवकोंका काम और उत्साह देखकर आप खुश होंगे। आप जब चाहें तब अपनी सेनामें हमें भर्ती कर सकेंगे।"

उस दिनसे मोतीलालपर मेरी नजर ठहर गई। उनके साथियोंने उनकी स्तुति करते हुए कहा :

"यह तो दर्जीभाई हैं। पर अपने हुनरमें बड़े तेज हैं। रोज एक घंटा काम करके प्रतिमास कोई पंद्रह रुपए अपने खर्चके लायक पैदा कर लेते हैं। शेष सारा समय सार्वजनिक सेवामें लगाते हैं और हम सब पढ़े-लिखे लोगोंको राह दिखाते हैं और शर्मिंदा करते हैं।"

बादको भाई मोतीलालसे मेरा बहुत साबका पड़ा था और मैंने देखा कि उनकी इस स्तुतिमें अत्युक्ति न थी। सत्याग्रह-आश्रमकी स्थापनाके

बाद वह हर महीने कुछ दिन आकर वहां रह जाते। बच्चोंको सीना सिखाते और आश्रममें सीनेका काम भी कर जाते। वीरमगामकी कुछ-न-कुछ बातें वह रोज सुनाते। मुसाफिरोंको उससे जो कष्ट होते थे वह इन्हें नागवार हो रहे थे। इन मोतीलालको बीमारी भर जवानीमें ही खा गई और बढ़वाण उनके बिना सूना हो गया। (आ० क० १९२७)

: १६४ :

भील-नेता मोतीलाल

श्रीयुत मणिलाल कुठारी लिखते हैं :

"आपको याद होगा कि सन् १९२२ में राजपूतानाके भीलोंकी हालत पर लिखते हुए आपने 'यंग इंडिया'में भीलनेता मोतीलालको माफ करनेकी सिफारिश की थी। सन् १९२४ में राजपूतानाके ए० जी० जी०, सर आर० ई० हालैंडने सारे मामलेपर सहानुभूति-पूर्वक विचार करके और उस समय-के राजपूतानेके शांतिमय वातावरणका खयाल करके संबंधित राज्योंको सलाह दी थी कि वे मोतीलालको क्षमा कर दें, जिससे कुछ समय बाद उनके प्रभावका उपयोग पिछड़ी हुई और अज्ञान भील-जातिके सामाजिक सुधारमें हो सके। मुझे पता चला है कि राजपूतानेकी तमाम देशी रिया-सतोंने, जिसमें मेवाड़ भी शामिल है, इस प्रस्तावको मंजूर किया था और सर आर० ई० हालैंड एवं उनके उत्तराधिकारी लेफ्टीनेन्ट कर्नल पैटरसन-ने भी मुझसे स्पष्ट ही कहा था कि मैं बंबई सरकारको अधिकार-पूर्वक कह सकता हूं कि अगर बंबई प्रांत की ईडर, दांता वगैरह रियासतें मोती-लालको क्षमा कर दें तो राजपूतानेको कोई आपत्ति न होगी। लेकिन

आज मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि मेवाड़-जैसी रियासत बिना मुकदमा चलाए मोतीलालजी को गिरफ्तार किए है।

"अधिकारी कहते हैं कि आपने मोतीलालसे बेताल्लुकी जाहिर कर दी थी। मुझे विश्वास है कि यह बात सच नहीं है। मैं मानता हूं कि आप उनके प्रत्यक्ष परिचयमें आए हैं और उनके कामके बारेमें भी कुछ जानते हैं। अतएव मैं आपसे प्रार्थना करूंगा कि आप कृपाकर इस गलत-फहमीको दूर करेंगे और मेवाड़ दरबारको इस मामलेमें सहानुभूति-पूर्वक विचार करने और मोतीलालको छोड़ देनेकी सलाह देंगे।"

पाठक शायद ही मोतीलालको जानते हों। वह एक भोले-भाले, अपढ़ समाज-सुधारक और राजपूतानाके भीलोंके सेवक हैं। उनकी बड़ी इच्छा है कि भील लोग मांस और मदिराका त्याग कर दें। एक समय उनका भीलोंपर बहुत ज्यादा प्रभाव था। और आज भी, यद्यपि प्रभाव उतना ज्यादा नहीं है, उस जातिके लोग बड़े आदरसे उनका नाम लेते हैं, क्योंकि मोतीलालके कारण ही उनमें काफी समाजिक सुधार हो सका था। यरवडा जेलसे छूटनेके बाद मुझे मोतीलालसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वह न पढ़े-लिखे हैं और न ज्यादा किसीसे बात ही करते हैं। वह एकमात्र काम करना जानते हैं और अपनेमें तथा अपनेलोगोंमें विश्वास करना जानते हैं। जो लोग कहते हैं कि १६२२ में मैंने उनपर अविश्वास-सा प्रकट किया था, मुझे डर है कि वे सत्यको छिपाना चाहते हैं। १६२२ में जब मैंने सुना कि वह मेरे नामका उपयोग करते हैं, मैंने कहा था कि उन्हें ऐसा करनेका कोई अधिकार नहीं है। लेकिन उसके बाद और विशेषकर जब मुझे उनके कार्यका कुछ परिचय प्राप्त हुआ तब तो मैंने बड़े जोरोंसे इस बातकी सिफारिश की थी कि उन्हें क्षमा कर दिया जाय। मैंने तो अपने संतोषके लिए यह भी मान लिया था कि सर आर० ई० हालैंडकी सिफारशमें 'यंग इंडिया' की पंक्तियोंका भी कुछ हाथ होगा। चाहे कुछ ही क्यों न हो, मुझे आशा थी कि मोतीलालको क्षमा मिल गई होगी और

१९२२ की घटनाको संबंधित राज्य अबतक भूल चुके होंगे। इसी कारण मुझे यह जानकर आश्चर्य होता है कि मेवाड़ राज्यने उन्हें किसी दूसरे नए अभियोगके लिए नहीं, बल्कि १९२२ वाले पुराने आरोपोंके कारण ही फिरसे गिरफ्तार करके कैदमें रख छोड़ा है। मुझे विश्वास है कि मेवाड़ राज्य यह नहीं भूलेगा कि अगर उसने भीलोंके प्यारे नेताको ज्यादा समय तक कैदमें रख छोड़ा तो भोलेभाले भील राज्यपर अविश्वासका आरोप करेंगे; क्योंकि वे तो मानते थे कि उनके नेताको क्षमा कर दिया गया है। जहां तक मैं जानता हूं, मोतीलालने ऐसा कोई काम नहीं किया है, जिसके कारण वह कैदमें रक्खे जायं। अतएव मैं विश्वास करता हूं कि यह भोला-भाला और सच्चा सुधारक शीघ्र ही कैदसे छोड़ दिया जायगा और अपने लोगोंमें समाज-सुधारका काम करनेके लिए उसे प्रोत्साहित किया जायगा। (हि० न०, ५.८.२९)

: १६५ :

हसरत मोहानी

मौलाना हसरत मोहानी हम लोगोंमें बड़े जीवटके आदमी हैं। वे जितने धीर हैं उतने ही दृढ़ भी हैं और स्पष्टवादी भी वे उसी तरह हैं। ब्रिटिश सरकारके प्रति तथा अंग्रेजोंके प्रति उनके हृदयमें घृणाके जो भाव भरे हैं उसके सामने उन्हें मोपलोंके आचरणमें कोई दोष नहीं दिखाई देता। मौलाना साहबका कहना है कि युद्धके समय जो कुछ किया जाय सब ठीक और उचित है। उनका पक्का विश्वास है कि मोपलोंने धर्मके लिए ही यह संग्राम किया है और इसलिए मोपलोंके ऊपर किसी तरहका दोषारोपण नहीं किया जा सकता। धर्म और सदाचार-

का यह परिच्छिन्न रूप है। पर मौलाना हसरत मोहानीकी दृष्टिमें धर्मके नामपर अधर्माचरण भी धार्मिक है। जहां तक मैं जानता हूं, इस्लाम धर्म इस तरहकी बातोंका प्रतिपादक नहीं है। इस संबंधमें मैंने अनेक मुसलमानोंसे भी बातचीत की है। वे भी मौलाना साहबके मतसे सहमत नहीं हैं। मैं अपने मलाबारके साथियोंसे यही कहूंगा कि वे मौलानाकी बात न सुनें। यद्यपि धर्मके बारेमें उनका इस तरहका विचित्र मत है तथापि मैं जानता हूं कि हिंदू-मुस्लिम-एकता और राष्ट्रीयताका उनसे बढ़कर कट्टर समर्थक दूसरा नहीं है। उनका हृदय उनकी बुद्धिसे कहीं उत्तम है। पर इस समय वह गलत मार्गपर जा रहा है। (यं० इं०, भाग ३, पृष्ठ ७३३)

: १६६ :

एन० जी० रंगा

प्रोफेसर रंगा एक ऐसे साथी और कार्यकर्त्ता हैं, जिन्हें एक लंबे अर्सेसे जाननेका सौभाग्य मुझे प्राप्त है। वह बहादुर और अच्छे स्वभाववाले हैं। (ह० से०, १३.४.४०)

: १६७ :

रविशंकर

श्री रविशंकर व्यास खेड़ा जिलेके एक साहसी सुधारक हैं, जिन्होंने वहांके बहादुर पर अनपढ़ राजपूतोंको कई बुराइयोंसे मुक्त किया है। (हि० न०, १०.४.३०)

... ...

भाई रविशंकरकी सेवाको लेखक नाममात्रकी समझते हैं। यह त्यागकी मूर्ति यदि नामकी ही सेवा करती है तो कामकी सेवा कौन करता है, मैं नहीं जानता। (हि० न०, १४.५.३१)

: १६८ :

अब्दुर रहीम

...राष्ट्रका काम न तो सर अब्दुर रहीम और न हकीम साहब अजमलखांके बिना चल सकता है। सर अब्दुर रहीम, जिन्होंने कि गोखलेके साथ-साथ, जब कि वे इसलिंग्टन-कमीशनके सदस्य थे, गुरुतापूर्ण नोट लिखा था, अपने देशके दुश्मन नहीं हैं। यदि उनका खयाल है कि हिंदुओंके साथ मुसलमानोंका बराबरी दर्जेपर स्पर्धा करनेके बिना मुल्क तरक्की नहीं कर सकता तो उनको दोषी कौन ठहरा सकता है। मुमकिन है कि वे गलत तरीके अख्तियार किए हुए हों, लेकिन वे आजादीके इच्छुक जरूर हैं।.. (हि० न०, ९.९.२६)

: १६६ :

चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

अभी बिल गजटमें प्रकाशित नहीं हुआ था। मेरा शरीर था तो निर्बल, किंतु मैंने लंबे सफरका खतरा मोल लिया। अभी ऊंची आवाजसे बोलनेकी शक्ति नहीं आई थी। खड़े होकर बोलनेकी शक्ति जो तबसे गई सो अबतक नहीं आई है। खड़े होकर बोलते ही थोड़ी देरमें सारा शरीर कांपने लगता और छाती और पेटमें घबराहट मालूम होने लगती है; किंतु मुझे ऐसा लगा कि मद्राससे आए हुए निमंत्रणको अवश्य स्वीकार करना चाहिए। दक्षिणके प्रांत उस समय मुझे घरके समान ही लगते थे। दक्षिण अफ्रीकाके संबंधके कारण मैं मानता आया हूं कि तामिल-तैलगू आदि दक्षिण प्रांतके लोगोंपर मेरा कुछ हक है और अबतक ऐसा नहीं लगा है कि मैंने यह विचार करने में जरा भी भूल की है। आमंत्रण स्वर्गीय श्री कस्तूरीरंगा ऐयंगरकी ओरसे आया था। मद्रास जाते ही मुझे जान पड़ा कि इस आमंत्रणके पीछे श्री राजगोपालाचार्य थे। श्री राजगोपालाचार्यके साथ मेरा यह पहला परिचय माना जा सकता है। पहली ही बार हम दोनों ने एक-दूसरेको वहां देखा।

सार्वजनिक काममें ज्यादा भाग लेनेके इरादेसे और श्रीकस्तूरीरंगा ऐयंगर आदि मित्रोंकी मांगसे वह सेलम छोड़कर मद्रास वकालत करने-वाले थे। मुझे उन्हींके यहां ठहरानेकी व्यवस्था की गई थी। मुझे दो-एक दिन बाद मालूम हुआ कि मैं उन्हींके घर ठहराया गया हूं। वह बंगला श्री कस्तूरीरंगा ऐयंगरका होनेके कारण मैंने यही मान लिया था कि मैं उन्हींका अतिथि हूं। महादेव देसाईने मेरी यह भूल सुधारी। राजगोपालाचार्य दूर-ही-दूर रहते थे। किंतु महादेवने उनसे भली-भांति परिचय कर लिया

था। महादेवने मुझे चेताया, "आपको श्रीराजगोपालाचार्यसे परिचय कर लेना चाहिए।"

मैंने परिचय किया। उनके साथ रोज ही लड़ाईके संगठनकी सलाह किया करता था। सभाओंके अलावा मुझे और कुछ सूझता ही नहीं था रौलेट बिल अगर कानून बन जाय तो उसका सविनय भंग कैसे हो? सविनय-भंगका अवसर तो तभी मिल सकता था, जब सरकार देती। दूसरे किन कानूनोंका सविनय-भंग हो सकता है? इसकी मर्यादा क्या निश्चित हो? ऐसी ही चर्चाएं होती थीं।

....यों सलाह-मशविरा हो रहा था कि इसी बीच खबर आई कि बिल कानून बनकर गजटमें प्रकाशित हो गया है। जिस दिन यह खबर मिली, उस रातको मैं विचार करता हुआ सो गया। भोरमें बड़े सवेरे उठ खड़ा हुआ। अभी अर्द्ध-निद्रा होगी कि मुझे स्वप्नमें एक विचार सूझा। सवेरे ही मैंने श्रीराजगोपालाचार्यको बुलाया और बात की:

"मुझे रातको स्वप्नमें विचार आया कि इस कानूनके जवाबमें हमें सारे देशसे हड़ताल करनेके लिए कहना चाहिए। सत्याग्रह आत्मशुद्धिकी लड़ाई है। यह धार्मिक लड़ाई है। धर्म-कार्यको शुद्धिसे शुरू करना ठीक लगता है। एक दिन सभी लोग उपवास करें और काम-धंधा बंद रखें। मुसलमान भाई रोजाके अलावा और उपवास नहीं रखते। इसलिए चौबीस घंटेका उपवास रखनेकी सलाह देनी चाहिए। यह तो नहीं कहा जा सकता कि इसमें सभी प्रांत शामिल होंगे या नहीं। बंबई, मद्रास, बिहार और सिंधकी आशा तो मुझे अवश्य है; पर इतनी जगहोंमें भी अगर ठीक हड़ताल हो जाय तो हमें संतोष मान लेना चाहिए।"

यह तजवीज श्री राजगोपालाचार्यको बहुत पसंद आई। फिर तुरंत ही दूसरे मित्रोंके सामने भी रखी। सबने इसका स्वागत किया। मैंने एक छोटा-सा नोटिस तैयार कर लिया। पहले सन १९१९ के मार्चकी ३० तारीख रखी गई थी, किंतु बादमें ६ अप्रैल कर दी गई। लोगोंको

खबर बहुत थोड़े दिन पहले दी गई थी। कार्य तुरंत करनेकी आवश्यकता समझी गई थी। अतः तैयारीके लिए लंबी मियाद देनेकी गुंजायश ही नहीं थी। पर कौन जाने कैसे सारा संगठन हो गया! सारे हिंदुस्तानमें शहरोंमें और गावोंमें हड़ताल हुई। यह दृश्य भव्य था! (आ० क० १९२७)

. . . .

आज सुबह (२१–८–३२) फिर निर्णय (सांप्रदायिक निर्णय) पर बातें हुईं। जयकर, सप्रू और चिंतामणिकी रायोंपर चर्चा हुई। बापू कहने लगे—यह आशा रख सकते हैं कि जयकर सप्रूसे यहां अलग हो जायंगे।

वल्लभभाई—बहुत आशा रखने जैसी बात नहीं है।

बापू—आशा इसलिए रख सकते हैं कि विलायतमें भी इस मामलेमें इनके विचार अलग ही रहे थे। वैसे तो क्या पता?

वल्लभभाई—चिंतामणिने इस बार अच्छी तरह शोभा बढ़ाई।

बापू—क्योंकि चिंतामणि हिंदुस्तानी हैं, जबकि सप्रूका मानस यूरोपियन है। चिंतामणि समझते हैं कि इस निर्णयमें ही बहुत कुछ विधान आ जाता है। सप्रू यह मानते हैं कि विधान मिल गया तो फिर इन बातोंकी चिंता ही नहीं। किसी भी हिंदुस्तानीको समझानेकी जरूरत नहीं होगी कि कितना ही अच्छा विधान गुंडोंके हाथमें दिया जाय तो उसकी दुर्गति ही होगी। और इस निर्णयसे विधान गुंडोंके ही हाथमें दिया जा रहा है। अभी तो केन्द्रीय सरकारका बाकी है। ये केन्द्रीय सरकारको एक धधकता हुआ कुंड बना डालेंगे और कहेंगे कि अब इसमें पड़ो और जल मरो।

मालवीयजी और राजगोपालाचार्यको आज अगर इस चीजका पता चले तो वे क्या कर सकते हैं? थोड़े ही दिनकी तो बात है न? मेरे खयालसे मालवीयजी और राजाजी को भी इस बातसे थोड़ा धक्का लगानेकी जरूरत है। राजाजी तो इतनी तेज बुद्धिके हैं कि उन्हें फौरन मालूम हो जायगा कि इस आदमीने यह कदम कैसे उठाया।

यह बात ऐसे आघातसे ही समझमें आ जायगी। (म० डा०)

... ...

राजाजी तो सोना हैं। उनकी बात दुनियाके किसी भी हिस्सेमें मानी जायगी। (म० डा०, १५.१२.३२)

... ...

प्रस्ताव[1] बनानेवाले राजाजी थे। जितना यकीन मुझको था कि मैं सही रास्ते पर हूं उतना ही यकीन उनको था कि उनका रास्ता सही रास्ता है। उनकी दृढ़ता, हिम्मत और नम्रताने कई लोगोंको उनकी तरफ खींच लिया। इनमें सरदार पटेल एक बहुत भारी शिकार थे। अगर मैं राजाजीको रोकता तो वह अपना प्रस्ताव कमेटीके सामने लानेका विचार तक न करते। मगर मैं अपने साथियोंको भी उनकी दृढ़ता, ईमानदारी और आत्मविश्वासके लिए वही साख देता हूं, जो मैं अपने लिए चाहता हूं। मैं बहुत दिनोंसे देख रहा था कि हमारे सामने देशकी राजनैतिक समस्याओंके बारेमें हमारा मत एक दूसरेसे दूर हट रहा था। वह मुझे यह कहनेकी इजाजत नहीं देते कि वह अहिंसासे दूर हटे हैं। उनका यह दावा है कि उनकी अहिंसा ही उन्हें इस प्रस्तावतक ले गई है। उनको लगता है कि दिनरात अहिंसाके ही विचारमें डूबे रहनेसे मुझपर एक प्रकारका भूत सवार हो गया है। उनको प्रायः ऐसा लगता है कि मेरा दृष्टिकोण धुंधला हो गया है। मेरे प्रत्युत्तरमें यह कहनेसे कि उनकी ही दृष्टि धुंधली हो गई है, कोई फायदा नहीं था, अगरचे हँसी-हँसीमें मैंने उनसे ऐसा कह भी दिया। मेरे पास सिवाय मेरी श्रद्धाके दूसरा कोई सबूत नहीं है कि मैं उनकी मुझसे उलटी श्रद्धाका दावेसे विरोध कर सकूं। ऐसा करना साफ बाहियात बात होगी। मैं वर्धामें ही कार्यसमितिको

---

[1]दिल्ली प्रस्ताव जिसमें सहयोग तथा एक अस्थायी राष्ट्रीय सरकार स्थापित करनेकी मांग की गई थी।

अपने साथ नहीं रख सका था और इसलिए मैं उनसे अलग हो गया।

मुझे यह दीपककी तरह स्पष्ट दीख गया था कि अगर वह लोग मेरी बात स्वीकार नहीं कर सकते थे तो उनके पास राजाजीकी बात माननेके सिवाय दूसरा चारा ही नहीं था। सो यद्यपि मैं मानता था कि राजाजी सरासर गलती पर हैं, मैंने उनको उनका प्रयत्न जारी रखनेको उत्तेजन दिया। आदर्श, धैर्य, चतुराई और विरोधियोंकी भावनाओंके प्रति मान बताकर आखिर उन्होंने बहुमत पाया। पांच सदस्य तटस्थ रहे, उन्होंने वोट नहीं दिया। (ह० से०, १३.७.४०)

... ...

राजाजीके साथ दीर्घकालसे मेरा निकटका परिचय है। मैं जानता हूं कि वे एक ऐसे वीर पुरुष हैं कि उनको किसीके सहारेकी जरूरत नहीं। वे ऐसे अनासक्त हैं कि बहुत घंटे तो छोड़ो, बहुत मिनट तक भी मानिहानिकी ग्लानि दिलमें नहीं रख सकते। मैं यह भी जानता हूं कि उनमें सुंदर विनोद-वृत्ति है, इसलिए अगर उनकी कोई हँसी भी करे तो वे बुरा नहीं मानेंगे। इसलिए मेरा यह इकरार निजी संतोषके लिए ही माना जाय।

मैं खुले तौरपर कह चुका हूं कि अगर मैंने राजाजीको उत्तेजन न दिया होता तो नई दिल्लीमें जो प्रस्ताव उन्होंने पेश किया वह न करते। उनकी तीव्र बुद्धि और प्रमाणिकताके लिए मुझे बड़ा आदर है। इसलिए जब उन्होंने एक चौंकानेवाले आत्मविश्वासके साथ कहा कि "इस विषयमें अहिंसाके अर्थ व प्रयोगके बारेमें मेरा अभिप्राय ही सच्चा है, आपका बिल-कुल गलत," तो मैं अपने अर्थके बारेमें खुद संदिग्ध बन गया और मैंने लगाम ढीली छोड़कर राजाजीको उनके विचारके अनुसार चलनेको प्रोत्सा-हित किया। निर्बल आदमी अकस्मातसे ही न्याय करता है। इसके विप-रीत मजबूत और अहिंसक आदमी अन्याय अकस्मातसे करता है। मैंने राजाजीको ऐसी स्थितिमें डाल दिया कि उनकी हँसी हुई और निर्दय टीकाका शिकार उन्हें बनना पड़ा। मेरे दिलमें शक नहीं कि नई दिल्लीका

प्रस्ताव रद होनेसे कांग्रेस बड़े खतरेसे बच गई है। लेकिन राजाजी ऐसा नहीं मानते। वे तो अब भी मानते हैं कि उन्होंने जो किया वही ठीक था। एक नेताके लिए और खास तौरपर जब वह राजाजीकी कोटिके हों, अच्छा नहीं कि उनके किए-कराएपर इस तरह पानी फिर जाय। अगर उनकी चलती तो जो प्रस्ताव आज देशके सामने पेश हुआ है वह भिन्न प्रकारका ही होता और मैं आज कांग्रेसके अंदर नहीं, बाहर ही होता; क्योंकि वर्धा-प्रस्तावके कुदरती परिणामरूप दिल्लीका प्रस्ताव पास होनेसे पहले ही मैं तो कांग्रेससे निकल चुका था।.....

मेरी आशा है कि मैंने जनताको यह साबित करनेके लिए काफी मसाला दे दिया है कि राजाजीने जो कुछ किया उसमें वीरता थी और वह करनेका उन्हें अधिकार था। उसमेंसे जो गलती पैदा हुई उसके लिए जिम्मेदार मैं हूं।

जो अभिप्राय मैंने राजाजीके नई दिल्लीवाले प्रस्तावके बारेमें दिया है, वही मैं उनकी 'स्पोर्टिंग ऑफर' के बारेमें भी रखता हूं। अगर पूनाका प्रस्ताव ठीक मान लिया जाय तो फिर 'स्पोर्टिंग ऑफर' के बारेमें शंका नहीं हो सकती। यह बात याद रखनी चाहिए कि मुस्लिम लीग एक बड़ी संस्था है और हिंदुस्तानकी मुस्लिम प्रजाके ऊपर उसका काफी प्रभाव है। कांग्रेसने इससे पहले उससे काफी व्यवहार किया है, और मुझे जरा भी शक नहीं है कि वह फिर भी करेगी। हमारे हिसाबसे काइदे आजम चाहे कितनी ही गलतीपर क्यों न हों, हमें चाहिए कि जैसे हम खुद अपनी प्रामाणिकताके बारेमें दावा करते हैं, वैसे ही उनकी प्रामाणिकताको भी कबूल करें। जब लड़ाईके बादल बिखर जाएंगे और हिंदुस्तान अपना आजादीका जन्मसिद्ध अधिकार पा लेगा, तब मुझे शक नहीं कि कांग्रेसी लोग किसी मुसलमान, सिख, ईसाई या पारसीको अपने प्रधान मंत्रीके तौरपर वैसे ही सहर्ष स्वीकार करेंगे जैसे कि एक हिन्दूको। इतना ही नहीं, वह कांग्रेसी न भी हो तो भी वैसे ही और किसी प्रकारके धर्म-वर्णके भेद बिना उसे आदर देंगे। मुझे पूरा विश्वास है कि राजाजीकी तजवीजका यही अर्थ था।

आजकलकी भड़की हुई रागद्वेषादिकी ज्वाला जब ठंडी पड़ जायगी तब राजाजीके टीकाकार मेरे अभिप्रायको स्वीकार करेंगे। एक देशसेवकके बारेमें गलत राय बना लेना उचित नहीं है और खास तौरपर जब कि वह राजाजीके दर्जेका देशसेवक हो। राजाजीके बारेमें जो उल्टा मत बांधा गया है उससे उन्हें भले ही कुछ भी नुकसान न हुआ हो मगर कौम अपने सच्चे सेवकोंके बारेमें इस तरह उलटा और गलत अभिप्राय बांधकर अपने आपको उनकी सेवासे जरूर वंचित करती है और अपने पांवपर कुल्हाड़ी मारती है। (ह०.से०, २८.६.४०)

... ...

इसमें कोई शक नहीं कि राजाजीने आज एक ऐसे कामको हाथमें लिया है, जिसकी वजहसे वे अपने साथियोंसे जुदा पड़ गये हैं। मगर उनके सख्त-से-सख्त दुश्मन भी उनकी इस प्रवृत्तिमें स्वार्थके उद्देश्यका आरोप उनपर नहीं लगाएंगे। कार्य करनेकी उनकी शक्ति अद्भुत है। वे जिस चीजको हाथमें लेते हैं, उसीमें अपनेको डुबा देनेकी उनकी तबीयत है। आज जिस तरह वे अपने विचारोंका प्रचार करनेमें जुट गये हैं, वह भी उनके इसी स्वभावका सूचक है। उनकी अनन्यता और उत्साह सराहने योग्य है। इससे उनके प्रति हमारा आदर-भाव और भी बढ़ना चाहिए और वे जो कुछ कहें, उसे अदबके साथ हमें सुनना चाहिए। उनका उद्देश्य ऊंचे-से-ऊंचा है। हिंदु-मुस्लिम एकताका प्रयत्न एक उच्च वस्तु है और जापानियोंके हमलेसे देशको बचा लेनेका प्रयत्न भी उतनी ही ऊंची चीज है। उनकी रायमें ये दोनों चीजें एक-दूसरेके साथ गुंथी हुई हैं।

गुंडापन राजाजीकी दलीलोंका कोई जवाब नहीं। उनकी सभाओंमें हुल्लड़बाजी करना घोर असहिष्णुताका एक चिह्न है। अगर हम दूसरे पक्षको सुननेके लिए तैयार न हुए, तो लोकतंत्रवादका विकास होना असंभव है।....इसलिए उन तमाम लोगोंसे जो राजाजीकी सभाओंमें हुल्लड़-

राजी करते हैं, मेरा नम्र नवेदन है कि वे आइंदा ऐसा न करें; बल्कि उनकी बातोंको वे उस ध्यान और धीरजसे सुनें जिसके कि वे योग्य हैं।

पाठक मेरी इस मान्यताको जानते हैं कि राजाजी गलतीपर हैं। वे एक मिथ्या चीजका वातावरण पैदा कर रहे हैं। वे खुद पाकिस्तानको नहीं मानते और न वे राष्ट्रवादी मुसलमान या दूसरे लोग ही मानते हैं, जो अलग होनेके अधिकारको स्वीकार करना चाहते हैं। परंतु इन सब लोगोंका कहना है कि मुस्लिम लीगसे उसकी अलग होनेकी मांग छुड़वानेका यही एक रास्ता है। मुझे आश्चर्य होता है कि बहुतसे मुसलमान एक ऐसी स्वीकृतिसे खुश हो रहे हैं, जिसकी कुछ भी कीमत होनेके बारेमें शंका है। ....अगर वे तमाम लोग, जो मानते हैं कि आज और हमेशाके लिए हिंदुस्तान ही उनका वतन है, उसे उपस्थित संकटसे और आगे सिरपर मंडराते हुए खतरेसे बचानेमें अपना पूरा हिस्सा अदा करें, तो इन दोनों भयोंके पूरी तरह मिट जानेके बाद वह समय आयेगा, जब हम पाकिस्तानकी या दूसरे 'स्तानों' की भी बातें करेंगे और या तो सुलह और शांतिके साथ या लड़कर इसका फैसला कर लेंगे। कोई तीसरा पक्ष हमारी किस्मतका फैसला नहीं कर सकता और न उसे इसका अधिकार ही है। इसका फैसला या तो दलीलसे होगा, या तलवारसे। राजाजीका सराहनीय और देश-भक्तिपूर्ण आग्रह अगर दूसरा कोई ऐसा रास्ता खोल दे जिसका खुद उन्हें या और किसीको भी ज्ञान नहीं, तो बात दूसरी है। नहीं तो उनका तरीका हमें एक ऐसी अंधीगलीमें ले जाकर छोड़ेगा कि जिसमें न आगे जानेका रास्ता है और न पीछे हटनेकी गुंजाइश। मगर हमारे बीच इन बातोंमें मतभेदका कुछ भी नतीजा क्यों न हो, मेरी विनती तो आपसी सहिष्णुता और आदरभावके लिए है। (ह० से०, ३१.५.४२)

... ...

राजाजीकी माटुंगा (बंबई) वाली सभामें जो हुल्लड़बाजी हुई, उसका विवरण पढ़नेसे दिलको चोट पहुंचती है। क्या राजाजी अब

किसी तरहके सम्मानके अधिकारी ही नहीं रहे, और सो भी इसलिए कि उन्होंने एक ऐसे विचारको अपनाया है, जो लोकमतके विरुद्ध जान पड़ता है ? वे निमंत्रण पाकर ही माटुंगा गये थे। जनताको उनकी बात शांति-पूर्वक सुननी चाहिए थी। जो उनके विचारोंसे सहमत नहीं थे, वे उस सभामें अनुपस्थित रह सकते थे; लेकिन सभामें शामिल होनेके बाद तो उनका यह कर्तव्य था कि वे उनकी बात चुपचाप सुनें। हां, सभा समाप्त होनेपर वे उनसे प्रश्न पूछ सकते थे और जिरह कर सकते थे। उनपर कोलतार छिड़कने और सभा में गड़बड़ी मचानेवालोंने अपने हाथों अपना अपमान किया है और अपने कार्यको हानि पहुंचाई है। उनका तरीका न तो स्वराज्य-प्राप्तिका तरीका है, न 'अखंड हिंदुस्तान!' की स्थापनाका तरीका है। आशा है, माटुंगाकी यह बर्बरता, हुल्लड़बाजी अपने ढंगकी आखिरी चीज होगी। इस अवसरपर जो राजाजीकी कसौटीका अवसर था, उन्होंने जिस दृढ़ता, खामोशी, खुशमिजाजी और हाजिर-जवाबीका परिचय दिया, वह उनके अनुरूप ही था। अपने इन गुणोंके कारण राजाजीको नये अनुयायी चाहे न मिलें, उनके प्रशंसकोंकी संख्या तो बढ़ी ही होगी; क्योंकि जनता आमतौरपर किसी चर्चास्पद समस्याकी तहमें नहीं पैठा करती। वह तो स्वभावसे वीरपूजक होती है, और राजाजीमें वीरोचित गुणोंकी कमी कभी रही नहीं। (ह० से०, ५.७.४२)

... ...

पलनीसे लौटते हुए श्री राजाजी और श्री गोपालस्वामीके खिलाफ एक खत मुझे दिया गया। उसमें यह भी लिखा था कि ये दोनों मेरे पास लोगोंको नहीं आने देते, जिन्हें इनसे शिकायत है। मैं जानता हूं कि यह सच नहीं। तो भी जो मुझसे महत्वकी बात करना या मुझे लिखना चाहे, उसे कोई भी रोक नहीं सकता। इस खतका मेरे पास पहुंचना ही यह प्रमाणित करता है। श्री कामराज नादर मेरे साथ स्पेशल रेलमें थे। पलनीके मंदिरमें भी वे मेरे साथ रहे। लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि

यात्रामें राजाजी और गोपालस्वामी मेरे बहुत ही समीप थे। यात्राका प्रबंध उन्होंने किया था। राजाजी मेरे सबसे पुराने मित्रोंमेंसे हैं और कहा जाता था कि अपने जीवनमें मेरे आदर्शोंका पालन वे ही सबसे बढ़कर करते थे। मैं जानता हूं कि १६४२ में उनका मुझसे मतभेद हुआ। मेरे दिलमें उनके लिए इस बातका आदर है कि उन्होंने खुली सभामें मेरा विरोध किया। वे बड़े समाज-सुधारक हैं और जो मानते हैं, उसे निडर होकर करते हैं। उनकी दयानतदारी और राजनैतिक बुद्धिमानी-से कोई इन्कार नहीं कर सकता। इसलिए दुःखकी बात है कि उनके विरुद्ध आज एक गुट बन गया है और मद्रासके कांग्रेसी हल्कोंमें इस गुटका असर है। लेकिन आम जनताका प्रेम राजाजीके साथ है। मैं इतना मूर्ख या इतना घमंडी नहीं हूं कि यह न समझ पाऊं कि यात्राके रास्तेमें दर्शनके लिए जो जनता लाखोंकी संख्यामें जमा हुई थी उसका कारण बहुत हद तक राजाजीका प्रभाव ही था। दक्षिण देशके कांग्रेसी वही करें, जो उनकी रायमें ठीक हो, लेकिन मैं अपना कर्तव्य समझता हूं कि उन्हें चेतावनी दूं कि वे राजाजीकी सेवाको इस वक्त हाथसे जाने न दें, क्योंकि दूसरा कोई उनकी तरह उसे कर नहीं सकेगा। (ह० से०, १०.२.४६)

: १७० :

राजेन्द्रप्रसाद

बृजकिशोरबाबू और राजेन्द्रबाबूकी जोड़ी अद्वितीय थी। उन्होंने प्रेमसे मुझे ऐसा अपंग बना दिया था कि उनके बिना मैं एक कदम भी आगे न रख सकता था। (आ० क०)

. . . .

मेरे साथ काम करनेवालोंमें राजेन्द्रप्रसाद सबसे अच्छोंमें एक हैं। वे जब कभी चाहें मुझे सेवाके लिए बुला सकते हैं। हरिजन-कार्य उनका उतना ही है जितना मेरा और उसी तरह बिहारका काम मेरा उतना ही है जितना उनका; परंतु परमात्माने उन्हें बिहारकी सहायता के लिए बुलाया है, जिस तरह मुझे उसने हरिजन कार्यके लिए बुलाया है। ('देशपूज्य श्री राजेन्द्रप्रसाद')

... ...

यह पुस्तक पूरी तो मैं नहीं पढ़ सका हूं। लेकिन इतना जान सका हूं कि यह राजेन्द्रबाबूके जीवनका सरल वर्णन है। जांच करनेपर मुझे प्रतीति हुई है कि इस पुस्तकमें जो हकीकत दी गई है वह सब सच है, कोई अतिशयोक्ति नहीं है। राजेन्द्रबाबूके पवित्र चरित्रको पढ़कर कौन कृतार्थ नहीं होगा। ('देशपूज्य श्री राजेन्द्रप्रसाद')

... ...

राजेन्द्रबाबू हमारे उत्कृष्ट सहकारियोंमेंसे हैं। ('राष्ट्रवाणी,') (३.१२.४५)

... ...

राजेन्द्रबाबूका त्याग हमारे देशके लिए गौरवकी वस्तु है। नेतृत्वके लिए इन्हींके समान आचरण चाहिए। राजेन्द्रबाबू जैसा विनम्रतापूर्वक व्यवहार है और प्रभाव है वैसा कहीं भी किसी भी नेताका नहीं है। ('राष्ट्रवाणी')

: १७१ :

महादेव गोविन्द रानडे

जैसा कि स्व० गोखले कहा करते थे, रानडेकी तीक्ष्ण दृष्टिसे एक भी चीज नहीं बची थी और जिस चीजसे उनके देशवासियोंको यत्किंचित् भी लाभ पहुंच सकता था, उसे उन्होंने कभी अपने मनमें नगण्य नहीं समझा। (ह० से०, २७.६.३५)

: १७२ :

रमाबाई रानडे

रमाबाई रानडेका नाम जितना दक्षिणमें प्रसिद्ध है उतना हिंदुस्तानमें नहीं। इस देवीने स्वर्गीय न्यायमूर्ति रानडेके नामको सुशोभित कर दिया है। उनकी मृत्युसे हिंदू संसारकी बड़ी हानि हुई है।

रमाबाईने अपने वैधव्यको जिस प्रकार सुशोभित किया है उस प्रकार बहुत कम बहनोंने किया होगा। पूनाके सेवासदनमें एक हजार लड़कियां और स्त्रियां अनेक प्रकारकी शिक्षा प्राप्त करती हैं। यह सेवा सदन आज जिस गौरवको प्राप्त हुआ है वह रमाबाईकी अनन्य भक्तिके बिना उसे कभी न प्राप्त हो पाता। रमाबाईने एक ही कार्यके लिए अपना जीवन अर्पित कर दिया था।

वैधव्यका अर्थ ही है अनन्य भक्ति। पातिव्रतके मानी हैं शुद्ध वफादारी। मामूली वफादारीका संबंध देहके साथ है। अतएव देहके साथ ही उसका अन्त हो जाता है। वैधव्यमें जो वफादारी है वह आत्माके प्रति है।

वैधव्यको धर्म स्थान देकर हिंदूधर्मने यह सिद्ध कर दिया है कि विवाह वास्तवमें शरीरका नहीं, बल्कि आत्माका होता है। रमाबाईने रानडेकी आत्माके साथ विवाह किया था। अतएव उन्होंने उस आत्म संबंधको अखंडित रखा। और इसीलिए रमाबाईने उन कामोंमें जो रानडेको प्रिय थे, अपनेसे होने लायक एक कामको उठा लिया है और उसमें अपना सर्वस्व लगाकर वैधव्यका पूरा अर्थ समाजको समझाया। ऐसा करके रमाबाईने स्त्री जातिकी भारी सेवा की है। जब मैं सासून अस्पतालमें था तब कर्नल मैडकने मुझसे कहा था कि अच्छी हिंदुस्तानी दाई केवल इसी अस्पतालमें शिक्षा पाती है। ये तमाम दाइयां सेवासदनके द्वारा तैयार होती हैं और उनकी मांग सारे हिंदुस्तानसे आती है। विधवाएं यदि कार्यक्षेत्रमें उतरें तो अच्छे काम करनेके अनेक स्थान उनके लिए हैं। केवल चरखेका ही काम इतना है कि वह सैकड़ों विधवाओंका सारा समय ले सकता है। और यह अनुभव किस विधवाको नहीं हुआ कि चरखा गरीबोंका रखवाला है! यह तो मैंने एक ऐसा काम सुझाया जो सर्व-व्यापक और परम कल्याणकारी है। ऐसे अनेक काम हैं, जिनमें धनिक विधवाएं गरीब विधवाओं तथा अन्य बहनोंको तैयार करनेमें अपना समय लगा सकती हैं। (हिं० न०, ४.५.२४)

: १७३ :

श्रीमद् राजचन्द्रभाई

मेरे जीवनपर श्रीमद् राजचन्द्रभाईका ऐसा स्थायी प्रभाव पड़ा है कि मैं उसका वर्णन नहीं कर सकता। उनके विषयमें मेरे गहरे विचार हैं। मैं कितने ही वर्षोंसे भारतमें धार्मिक पुरुषोंकी शोधमें हूं, परंतु मैंने ऐसा

धार्मिक पुरुष भारतमें अबतक नहीं देखा, जो श्रीमद्राजचंद्रभाईके साथ प्रतिस्पर्धा कर सके। उनमें ज्ञान, वैराग्य और भक्ति थी, ढोंग, पक्षपात या राग-द्वेष न थे। उनमें एक ऐसी महान् शक्ति थी जिसके द्वारा वे प्राप्त हुए प्रसंगका पूर्ण लाभ उठा सकते थे। उनके लेख अंग्रेज तत्व-ज्ञानियोंकी अपेक्षा भी विचक्षण, भावनामय और आत्मदर्शी हैं। यूरोपके तत्व-ज्ञानियोंमें मैं टाल्स्टायको पहली श्रेणीका और रस्किनको दूसरी श्रेणीका विद्वान् समझता हूं, परंतु श्रीमद्राजचंद्रभाईका अनुभव इन दोनोंसे भी बढ़ा-चढ़ा था। इन महापुरुषोंके जीवनके लेखोंको अवकाशके समय पढ़ेंगे तो आप पर उनका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ेगा। वे प्रायः कहा करते थे कि मैं किसी बाड़ेका नहीं हूं और न किसी बाड़ेमें रहना ही चाहता हूं। यह सब तो उपधर्म—मर्यादित—हैं और धर्म तो असीम है कि जिसकी व्याख्या हो ही नहीं सकती। वे अपने जवाहरातके धंधेसे विरक्त होते कि तुरंत पुस्तक हाथमें लेते। यदि उनकी इच्छा होती तो उनमें ऐसी शक्ति थी कि वे एक अच्छे प्रतिभाशाली बैरिस्टर, जज या वाइसराय हो सकते थे। यह अतिशयोक्ति नहीं, किंतु मेरे मनपर उनकी छाप है। इनकी विचक्षणता दूसरेपर अपनी छाप लगा देती थी। (राजचंद्र-जयंती, अहमदाबादमें सभापति-पदसे दिया गया भाषण)

. . . .

मेरे जीवनपर मुख्यतासे श्रीमद्राजचंद्रकी छाप पड़ी है। महात्मा टाल्स्टाय और रस्किनकी अपेक्षा भी श्रीमद्राजचंद्रने मुझपर गहरा प्रभाव डाला है। (राजचंद्र-जयंती, बढवाणके भाषणसे)

. . . .

जिनका पुण्य-स्मरण करनेके लिए हम लोग आए हुए हैं, उनके हम लोग पुजारी हैं। मैं भी उनका पुजारी हूं।

वे दयाधर्मकी मूर्ति थे। उन्होंने दयाधर्म समझा था और उसे अपने जीवनमें उतारा था।

मैंने यह बहुत बार कहा और लिखा है कि मैंने अपने जीवनमें बहुतोंसे बहुत कुछ ग्रहण किया है। पर सबसे अधिक यदि मैंने किसीके जीवनमें-से ग्रहण किया हो तो वह कविश्री (श्रीमद् राजचंद्र) के जीवनमेंसे ग्रहण किया है। दया-धर्म भी मैंने उन्हींके जीवनमेंसे सीखा है।

बहुत-से प्रसंगोंमें तो हमें जड़ होकर वैसी ही प्रवृत्ति करनी चाहिए। शुद्ध जड़ और चैतन्यमें भेद नहींके बराबर है। सारा जगत जड़रूप ही देख पड़ता है। आत्मा तो कभी क्वचित् ही प्रकाशित होता है। ऐसा व्यवहार अलौकिक पुरुषोंका होता है और यह मैंने देखा है कि ऐसा व्यवहार श्रीमद् राजचंद्रभाईका था।

वे बहुत बार कहा करते थे कि मेरे शरीरमें चारों ओरसे कोई बरछी भोंक दे तो मैं उसे सह सकता हूं, पर जगतमें जो झूठ, पाखंड, अत्याचार चल रहा है, धर्मके नामसे जो अधर्म हो रहा है उसकी बरछी मुझसे सही नहीं जाती। अत्याचारोंसे उन्हें अकुलाते मैंने बहुत बार देखा है। वे सारे जगतको अपने कुटुंबके जैसा समझते थे। अपने भाई या बहनकी मौतसे जितना दुःख हमें होता है उतना ही दुःख उन्हें संसारमें दुःख और मृत्यु देखकर होता था।...

राजचंद्रभाईका शरीर जो इतनी छोटी उम्रमें छूट गया इसका कारण भी मुझे यही जान पड़ता है। यह ठीक है कि उनके शरीरमें दर्द घर किए हुए था, पर जगतके तापका जो दर्द उन्हें था वह उनके लिए असह्य था। उनके देहमें केवल शारीरिक ही दर्द होता तो उसे उन्होंने अवश्य जीत लिया होता, पर उन्हें तो जान पड़ा कि ऐसे विषम कालमें आत्म-दर्शन कैसे हो सकता है, यह दया-धर्मकी निशानी है।

वे कहा करते थे कि जैनधर्म श्रावकोंके हाथोंमें न गया होता तो इसके तत्वोंको देखकर जगत चकित हो जाता। ये बनिये लोग तो जैन-धर्मको गंदला कर रहे हैं। ये लोग कीड़ीनगरा पूरते हैं। मुंहमें कभी मच्छर चला जाय तो इन्हें दुःख होता है। ऐसी छोटी-छोटी धर्म-क्रियाओंको

ये लोग पालते हैं। यह धर्म-क्रियाका पालन इनके लिए अच्छा है। पर जो लोग यह समझते हैं कि ऐसी क्रियाओंका पालन ही धर्मकी परिसीमा है वे धर्मकी नीची-से-नीची श्रेणीमें ही हैं। यह धर्म पतितोंका है, पुण्य-वानोंका नहीं है। इसी परसे बहुतसे श्रावक कहते हैं कि राजचंद्रको धर्म-का मान नहीं था। वे दंभी थे, अहंकारी थे। पर मैं खुद तो जानता हूं कि दंभ या अहंकारका उनमें नाम भी न था। (राजचंद्र-जयंती, अहमदा-बादमें दिया गया भाषण १५.११.२१)

... ...

बंबई-बंदरपर समुद्र क्षुब्ध था। जून-जुलाईमें हिंद-महासागरमें यह कोई नई बात नहीं होती। अदनसे ही समुद्रका यह हाल था। सब लोग बीमार पड़ गये थे—अकेला मैं मौजमें रहा था। तूफान देखनेके लिए डेकपर रहता और भीग भी जाता।....

माताजीके दर्शन करनेके लिए मैं अधीर हो रहा था। जब हम डॉक-पर पहुंचे तो मेरे बड़े भाई वहां मौजूद थे। उन्होंने डाक्टर मेहता तथा उनके बड़े भाईसे जान-पहचानकर ली थी। डाक्टर चाहते थे कि मैं उन्हींके घर ठहरूं, सो वह मुझे वहीं लिवा ले गये। इस तरह विलायतमें जो संबंध बंधा था वह देशमें भी कायम रहा। यही नहीं, बल्कि अधिक दृढ़ होकर दोनों परिवारोंमें फैला।....

डाक्टर मेहताने अपने घरके जिन लोगोंसे परिचय कराया, उनमेंसे एकका जिक्र यहां किए बिना नहीं रह सकता। उनके भाई रेवाशंकर जगजीवनके साथ तो जीवनभरके लिए स्नेह-गांठ बंध गई; परंतु जिसकी बात मैं कहना चाहता हूं वह तो हैं कवि रायचंद्र अथवा राजचंद्र। वह डाक्टर साहबके बड़े भाईके दामाद थे और रेवाशंकर जगजीवनकी दूकानके भागीदार तथा कार्यकर्ता थे। उनकी अवस्था उस समय २५ वर्षसे अधिक न थी। फिर भी पहली ही मुलाकातमें मैंने यह देख लिया कि वह चरित्रवान् और ज्ञानी थे। वह शतावधानी माने जाते थे। डाक्टर

मेहताने कहा कि इनके शतावधानका नमूना देखना । मैंने अपने भाषा-ज्ञानका भंडार खाली कर दिया और कविजीने मेरे कहे तमाम शब्दोंको उसी नियमसे कह सुनाया, जिस नियमसे मैंने कहा था । इस सामर्थ्यपर मुझे ईर्ष्या तो हुई; किंतु उसपर मैं मुग्ध न हो पाया । जिस चीजपर मैं मुग्ध हुआ उसका परिचय तो मुझे पीछे जाकर हुआ । वह था उनका विशाल शास्त्रज्ञान, उनका निर्मल चरित्र और आत्म-दर्शन करनेकी उनकी भारी उत्कंठा । मैंने आगे चलकर तो यह भी जाना कि केवल आत्मदर्शन करनेके लिए वह अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे ।

हसतां रमतां प्रगट हरि देखूं रे
मारुं जीव्युं सफल तव लेखूं रे;
मुक्तानंद नो नाथ विहारी रे
ओधा जीवनदोरी अमारी रे ।[1]

मुक्तानंदका यह वचन उनके जबानपर तो रहता ही था; पर उनके हृदयमें भी अंकित हो रहा था ।

खुद हजारोंका व्यापार करते, हीरे-मोतीकी परख करते, व्यापारकी गुत्थियां सुलझाते, पर वे बातें उनका विषय न थीं । उनका विषय, उनका पुरुषार्थ तोआत्म-साक्षात्कार—हरिदर्शन—था । दुकानपर और कोई चीज हो या न हो, एक-न-एक धर्म-पुस्तक और डायरी जरूर रहा करती । व्यापारकी बात जहां खतम हुई कि धर्म-पुस्तक खुलती अथवा रोजनामचेपर कलम चलने लगती । उनके लेखोंका संग्रह गुजरातीमें प्रकाशित हुआ है । उसका अधिकांश इस रोजनामचेके ही आधारपर लिखा गया है । जो मनुष्य लाखोंके सौदेकी बात करके तुरंत

---

[1]भावार्थ यह कि मैं अपना जीवन तभी सफल समझूंगा, जब मैं हँसते-खेलते ईश्वरको अपने सामने देखूंगा । निश्चय-पूर्वक वही मुक्तानंदकी जीवन-डोरी है । —अनु०

आत्मज्ञानकी गूढ़ बातें लिखने बैठ जाता है वह व्यापारीकी श्रेणीका नहीं, बल्कि शुद्ध ज्ञानीकी कोटिका है। उनके संबंधमें यह अनुभव मुझे एक बार नहीं, अनेक बार हुआ है। मैंने उन्हें कभी गाफिल नहीं पाया। मेरे साथ उनका कुछ स्वार्थ न था। मैं उनके बहुत निकट समागममें आया हूं। मैं उस वक्त एक ठलुवा बैरिस्टर था। पर जब मैं उनकी दुकानपर पहुंच जाता तो वह धर्म-वार्ताके सिवा दूसरी कोई बात न करते। इस समय तक मैं अपने जीवनकी दिशा न देख पाया था। यह भी नहीं कह सकते कि धर्म-वार्ताओंमें मेरा मन लगता था। फिर भी मैं कह सकता हूं कि रायचंद्रभाईकी धर्म-वार्ता मैं चावसे सुनता था। उनके बाद मैं कितने ही धर्माचार्योंके संपर्कमें आया हूं, प्रत्येक धर्मके आचार्योंसे मिलनेका मैंने प्रयत्न भी किया है; पर जो छाप मेरे दिल-पर रायचंदभाईकी पड़ी, वह किसी की न पड़ सकी। उनकी कितनी ही बातें मेरे ठेठ अंतस्तलतक पहुंच जातीं। उनकी बुद्धिको मैं आदरकी दृष्टि-से देखता था। उनकी प्रामाणिकतापर भी मेरा उतना ही आदर-भाव था और इसमें मैं जानता था कि वह जान-बूझकर उल्टे रास्ते नहीं ले जायंगे एवं मुझे वही बात कहेंगे, जिसे वह अपने जीमें ठीक समझते होंगे। इस कारण मैं अपनी आध्यात्मिक कठिनाइयोंमें उनकी सहायता लेता।

रायचंदभाईके प्रति इतना आदर-भाव रखते हुए भी मैं उन्हें धर्मगुरुका स्थान अपने हृदयमें न दे सका। धर्म-गुरुकी तो खोज मेरी अबतक चल रही है।

हिंदू-धर्ममें गुरुपदको जो महत्व दिया गया है उसे मैं मानता हूं। 'गुरु बिन होत न ज्ञान' यह वचन बहुतांशमें सच है, अक्षर-ज्ञान देनेवाला शिक्षक यदि अधकचरा हो तो एक बार काम चल सकता है। परंतु आत्मदर्शन करनेवाले अधूरे शिक्षकसे हरगिज काम नहीं चलाया जा सकता।....

इसीलिए रायचंदभाईको मैं यद्यपि अपने हृदयका स्वामी न बना सका,

तथापि हम आगे चलकर देखेंगे कि उनका सहारा मुझे समय-समयपर कैसा मिलता रहता है। यहां तो इतना ही कहना बस होगा कि मेरे जीवनपर गहरा असर डालनेवाले तीन आधुनिक मनुष्य हैं—रायचंदभाईने अपने सजीव संसर्गसे, टॉल्स्टायने 'स्वर्ग तुम्हारे हृदयमें है' नामक पुस्तक द्वारा तथा रस्किनने 'अनटु दिस लास्ट'—'सर्वोदय' नामक पुस्तकसे मुझे चकित कर दिया है। (आ० क०, १९२७)

... ...

ईसाको मैं त्यागी, महात्मा, दैवी शिक्षक मान सकता था; परंतु एक अद्वितीय पुरुष नहीं। ईसाकी मृत्युसे संसारको एक भारी उदाहरण मिला; परंतु उसकी मृत्युमें कोई गुह्य चमत्कार-प्रभाव था, इस बातको मेरा हृदय न मान सकता था। ईसाईयोंके पवित्र जीवनमेंसे मुझे कोई ऐसी बात न मिली जो दूसरे धर्मवालोंके जीवनमें न मिलती थी। उनकी तरह दूसरे धर्मवालोंके जीवनमें भी परिवर्तन होता हुआ मैंने देखा था। सिद्धांतकी दृष्टिसे ईसाई-सिद्धांतोंमें मुझे अलौकिकता न दिखाई दी। त्यागकी दृष्टिसे हिंदू-धर्मवालोंका त्याग मुझे बढ़कर मालूम हुआ। अतः ईसाई-धर्मको मैं संपूर्ण अथवा सर्वोपरि धर्म न मान सका।

अपना यह हृदय-मंथन मैंने, समय पाकर, ईसाई मित्रोंके सामने रखा। उसका जवाब वे संतोषजनक न दे सके।

परंतु एक ओर जहां मैं ईसाई-धर्मको ग्रहण न कर सका वहां दूसरी ओर हिंदू-धर्मकी संपूर्णता अथवा सर्वोपरिताका भी निश्चय मैं इस समय तक न कर सका। हिंदू-धर्मकी त्रुटियां मेरी आंखोंके सामने घूमा करतीं। अस्पृश्यता यदि हिंदू-धर्मका अंग हो तो वह मुझे सड़ा हुआ अथवा बढ़ा हुआ मालूम हुआ। अनेक संप्रदायों और जात-पांतका अस्तित्व मेरी समझमें न आया। वेद ही ईश्वर-प्रणीत हैं, इसका क्या अर्थ? वेद यदि ईश्वर-प्रणीत है तो फिर कुरान और बाइबिल क्यों नहीं?

जिस प्रकार ईसाई मित्र मुझपर असर डालनेका उद्योग कर रहे थे;

उसी प्रकार मुसलमान मित्र भी कोशिश कर रहे थे । अब्दुल्ला सेठ मुझे इस्लामका अध्ययन करनेके लिए ललचा रहे थे । उसकी खूबियोंकी चर्चा तो वह हमेशा करते रहते ।

मैंने अपनी दिक्कतें रायचंदभाईको लिखीं । हिंदुस्तानमें दूसरे धर्म-शास्त्रियोंसे भी पत्र-व्यवहार किया । उनके उत्तर भी आये; परंतु रायचंदभाईके पत्रने मुझे कुछ शांति दी । उन्होंने लिखा कि धीरज रखो और हिंदू-धर्मका गहरा अध्ययन करो । उनके एक वाक्यका भावार्थ यह था—"हिंदू-धर्ममें जो सूक्ष्म और गूढ़ विचार हैं, जो आत्माका निरीक्षण है, दया है, वह दूसरे धर्ममें नहीं है—निष्पक्ष होकर विचार करते हुए मैं इस परिणामपर पहुंचा हूं ।"

....मेरा अध्ययन मुझे ऐसी दिशामें ले गया जिसे ईसाई मित्र न चाहते थे । एडवर्ड मेटलैंडके साथ मेरा पत्र-व्यवहार काफी समयतक रहा । कवि (रायचंद) के साथ तो अंततक रहा । उन्होंने कितनी ही पुस्तकें भेजीं । उन्हें भी पढ़ गया । उनमें 'पंचीकरण', 'मणिरत्नमाला', 'योगवाशिष्ठ' का मुमुक्षु-प्रकरण, हरिभद्र सूरिका 'षड्दर्शनसमुच्चय' इत्यादि थे । (आ० क० १९२७)

... ...

मैं जिनके पवित्र संस्मरण लिखना आरंभ करता हूं, उन स्वर्गीय राजचंद्रकी आज जन्मतिथि है । कार्तिक पूर्णिमा संवत् १९७९ को उनका जन्म हुआ था । मैं कुछ यहां श्रीमद्राजचंद्रका जीवनचरित नहीं लिख रहा हूं । यह कार्य मेरी शक्तिके बाहर है । मेरे पास सामग्री भी नहीं । उनका यदि मुझे जीवनचरित लिखना हो तो मुझे चाहिए कि मैं उनकी जन्मभूमि ववाणिआ बंदरमें कुछ समय बिताऊं, उनके रहनेका मकान देखूं, उनके खेलने-कूदनेके स्थान देखूं, उनके बालमित्रोंसे मिलूं, उनकी पाठशालामें जाऊं, उनके मित्रों, अनुयायियों और सगे-संबंधियोंसे मिलूं और उनसे जानने योग्य बातें जानकर ही फिर कहीं

लिखना आरंभ करूं। परंतु इनमेंसे मुझे किसी भी बातका परि-चय नहीं।

इतना ही नहीं, मुझे संस्मरण लिखनेकी अपनी शक्ति और योग्यताके विषयमें भी शंका है। मुझे याद है, मैंने कई बार ये विचार प्रकट किए हैं कि अवकाश मिलनेपर उनके संस्मरण लिखूंगा। एक शिष्यने जिनके लिए मुझे बहुत मान है, ये विचार सुने और मुख्यरूपसे यहां उन्हींके संतोषके लिए यह लिखा है। श्रीमद्‌राजचंद्रको मैं 'रायचंद्रभाई' अथवा 'कवि' कहकर प्रेम और मानपूर्वक संबोधन करता था। उनके संस्मरण लिखकर उनका रहस्य मुमुक्षुओंके समक्ष रखना मुझे अच्छा लगता है। इस समय तो मेरा प्रयास केवल मित्रोंके संतोषके लिए है। उनके संस्मरणों-के साथ न्याय करनेके लिए मुझे जैन-मार्गका अच्छा परिचय होना चाहिए। मैं स्वीकार करता हूं कि वह मुझे नहीं है। इसलिए मैं अपना दृष्टि-बिंदु अत्यंत संकुचित रखूंगा। उनके जिन संस्मरणोंकी मेरे जीवन पर छाप पड़ी है, उनके नोट्स और उनसे जो मुझे शिक्षा मिली है, इस समय उसे ही लिखकर मैं संतोष मानूंगा। मुझे आशा है कि उनसे जो लाभ मुझे मिला है वह या वैसा ही लाभ उन संस्मरणोंके पाठक मुमुक्षुओंको भी मिलेगा।

मुमुक्षु शब्दका मैंने यहां जान बूझकर प्रयोग किया है। सब प्रकारके पाठकोंके लिए यह प्रयास नहीं।

मेरे ऊपर तीन पुरुषोंने गहरी छाप डाली है: टॉल्टाय, रस्किन और रायचंदभाई। टालस्टायने अपनी पुस्तकों द्वारा और उनके साथ थोड़े पत्र-व्यवहारसे, रस्किनने अपनी एक ही पुस्तक 'अनटु दिस लास्ट' से जिसका गुजराती नाम मैंने 'सर्वोदय' रक्खा है और रायचंदभाईने अपने साथ गाढ़ परिचयसे। जब मुझे हिंदूधर्ममें शंका पैदा हुई उस समय उसके निवारण करनेमें मदद करनेवाले रायचंदभाई थे। सन १८९३ में दक्षिण अफ्रीकामें मैं क्रिश्चियन सज्जनोंके विशेष सम्पर्कमें आया।

उनका जीवन स्वच्छ था। वे चुस्त धर्मात्मा थे। अन्य धर्मियोंको क्रिश्चियन होनेके लिये समझाना उनका मुख्य व्यवसाय था। यद्यपि मेरा और उनका संबंध व्यावहारिक कार्यको लेकर ही हुआ था तो भी उन्होंने मेरी आत्माके कल्याणके लिए चिंता करना शुरू कर दिया। उस समय मैं अपना एक ही कर्त्तव्य समझ सका कि जबतक मैं हिंदूधर्मके रहस्यको पूरी तौरसे न जान लूं और उससे मेरी आत्माको असंतोष न हो जाय तबतक मुझे अपना कुलधर्म कभी न छोड़ना चाहिए। इसलिए मैंने हिंदूधर्म और अन्य धर्मोंकी पुस्तकें पढ़ना शुरू कर दीं। क्रिश्चियन और मुसलमानी पुस्तकें पढ़ीं। विलायतके अंग्रेज मित्रोंके साथ पत्र-व्यवहार किया। उनके समक्ष अपनी शंकाएं रक्खीं तथा हिंदुस्तान-में जिनके ऊपर मुझे कुछ भी श्रद्धा थी उनसे पत्र-व्यवहार किया। उन में रायचंदभाई मुख्य थे। उनके साथ तो मेरा अच्छा संबंध हो चुका था। उनके प्रति मान भी था। इसलिए जो मिल सके उनसे लेनेका मैंने विचार किया। उसका फल यह हुआ कि मुझे शांति मिली। हिंदूधर्ममें मुझे जो चाहिए वह मिल सकता है, ऐसा मनको विश्वास हुआ। मेरी इस स्थितिके जवाबदार रायचंदभाई हुए। इससे मेरा उनके प्रति कितना अधिक मान होना चाहिए, इसका पाठक लोग कुछ अनुमान कर सकते हैं।

इतना होनेपर भी मैंने उन्हें धर्मगुरु नहीं माना। धर्मगुरुकी तो मैं खोज किया ही करता हूं। और अबतक मुझे सबके विषयमें यही जवाब मिला है कि ये नहीं। ऐसा संपूर्ण गुरु प्राप्त करनेके लिए तो अधिकार चाहिए। वह मैं कहांसे लाऊं?

× × ×

रायचन्दभाईके साथ मेरी भेंट जुलाई सन् १८९१ में उस दिन हुई जब मैं विलायतसे बम्बई वापस आया। इन दिनों समुद्रमें तूफान आया करता है, इस कारण जहाज रातको देरीसे पहुंचा। मैं डाक्टर—बैरिस्टर—और अब रंगूनके प्रख्यात झवेरी प्राणजीवनदास मेहताके घर उतरा था।

रायचंदभाई उनके बड़े भाईके जमाई होते थे। डाक्टर साहबने ही परिचय कराया। उनके दूसरे बड़े भाई झवेरी रेवाशंकर जगजीवनदासकी पहचान भी उसी दिन हुई। डाक्टर साहबने रायचंदभाईका 'कवि' कहकर परिचय कराया और कहा, "कवि होते हुए भी आप हमारे साथ व्यापारमें हैं। आप ज्ञानी और शतावधानी हैं।" किसीने सूचना की कि मैं उन्हें कुछ शब्द सुनाऊं और वे शब्द चाहे किसी भी भाषा के हों, जिस क्रमसे मैं बोलूंगा उसी क्रमसे वे दुहरा जावेंगे। मुझे यह सुनकर आश्चर्य हुआ। मैं तो उस समय जवान और विलायतसे लौटा था। मुझे भाषा-ज्ञानका भी अभिमान था। मुझे विलायतकी हवा भी कुछ कम न लगी थी। उन दिनों विलायतसे आया मानों आकाशसे उतरा। मैंने अपना समस्त ज्ञान उलट दिया। और अलग-अलग भाषाओंके शब्द पहले तो मैंने लिख लिए; क्योंकि मुझे वह क्रम कहां याद रहनेवाला था और बादमें उन शब्दोंको मैं बांच गया। उसी क्रमसे रायचंदभाईने धीरेसे एकके बाद एक सब शब्द कह सुनाए। मैं राजी हुआ, चकित हुआ और कविकी स्मरण-शक्तिके विषयमें मेरा उच्च विचार हुआ। विलायतकी हवा कम पड़नेके लिए कहा जा सकता है कि यह सुंदर अनुभव हुआ।

कविको अंग्रेजी ज्ञान बिलकुल न था। उस समय उनकी उमर पच्चीससे अधिक न थी। गुजराती पाठशालामें भी उन्होंने थोड़ा ही अभ्यास किया था। फिर भी इतनी शक्ति, इतना ज्ञान और आसपाससे इतना उनका मान! इससे मैं मोहित हुआ। स्मरणशक्ति पाठशालामें नहीं बिकती और ज्ञान भी पाठशालाके बाहर, यदि इच्छा हो—जिज्ञासा हो—तो मिलता तथा मान पानेके लिए विलायत अथवा कहीं भी नहीं जाना पड़ता, परंतु गुणको मान चाहिए तो मिलता है—यह पदार्थपाठ मुझे बंबई उतरते ही मिला।

कविके साथ यह परिचय बहुत आगे बढ़ा। स्मरणशक्ति बहुत लोगोंकी तीव्र होती है, इसमें आश्चर्यकी कुछ बात नहीं। शास्त्रज्ञान भी

बहुतोंमें पाया जाता है; परंतु यदि वे लोग संस्कारी न हों तो उनके पास फूटी कौड़ी भी नहीं मिलती। जहां संस्कार अच्छे होते हैं वहीं स्मरण-शक्ति और शास्त्रज्ञान संबंध शोभित होता है और जगतको शोभित करता है। कवि संस्कारी ज्ञानी थे।

× × ×

अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे, क्यारे थईशुं बाह्यांतर निर्ग्रंथ जो,
सर्व संबंधनुं बंधन तीक्ष्ण छेदीने, विचरशुं कब महत्पुरुषने पंथ जो?
सर्व भाव थी औदासीन्य वृति करी, मात्र देश ते संयमहेतु होय जो,
अन्य कारणे अन्य कशुं कल्पे नहि, देहे पण किंचित् मूर्छा नव जोय जो....
अपूर्व०

रायचंदभाईकी १८वर्षकी उमरके निकले हुए अपूर्व उद्गारोंकी ये पहली दो कड़ियां हैं।

जो वैराग्य इन कड़ियोंमें छलक रहा है, वह मैंने उनके दो वर्षके गाढ़ परिचयसे प्रत्येक क्षणमें देखा है। उनके लेखोंकी एक असाधारणता यह है कि उन्होंने स्वयं जो अनुभव किया वही लिखा है। उसमें कहीं भी कृत्रिमता नहीं। दूसरेके ऊपर छाप डालनेके लिए उन्होंने एक लाइन भी लिखी हो, यह मैंने नहीं देखा। उनके पास हमेशा कोई-न-कोई धर्मपुस्तक और एक कोरी कापी पड़ी ही रहती थी। इस कापीमें वे अपने मनमें जो विचार आते उन्हें लिख लेते थे। ये विचार कभी गद्यमें और कभी पद्यमें होते थे। इसी तरह 'अपूर्व अवसर' आदि पद भी लिखा हुआ होना चाहिए।

खाते, बैठते, सोते और प्रत्येक क्रिया करते हुए उनमें वैराग्य तो होता ही था। किसी समय उन्हें इस जगत्के किसी भी वैभवपर मोह हुआ हो, यह मैंने नहीं देखा।

उनका रहन-सहन मैं आदरपूर्वक परंतु सूक्ष्मतासे देखता था। भोजनमें जो मिले वे उसीसे संतुष्ट रहते थे। उनकी पोशाक सादी थी। कुर्ता, अंगरखा, खेस, सिल्कका दुपट्टा और धोती यही उनकी पोशाक थी

तथा ये भी कुछ बहुत साफ या इस्तरी किए हुए रहते हों, यह मुझे याद नहीं। जमीनपर बैठना और कुरसीपर बैठना उन्हें दोनों ही समान थे। सामान्य रीतिसे दुकानमें वे गद्दीपर बैठते थे।

उनकी चाल धीमी थी और देखनेवाला समझ सकता था कि चलते हुए भी वे अपने विचारमें मग्न हैं। आंखोंमें उनके चमत्कार था। वे अत्यंत तेजस्वी थे। विह्वलता जरा भी न थी। आंखोंमें एकाग्रता चित्रित थी। चेहरा गोलाकार, होंठ पतले, नाक न नोकदार न चपटी, शरीर दुर्बल, कद मध्यम, वर्ण श्याम और देखनेमें वे शांतिमूर्ति थे। उनके कंठमें इतना अधिक माधुर्य था कि उन्हें सुननेवाले थकते न थे। उनका चेहरा हँसमुख और प्रफुल्लित था। उसके ऊपर अंतरानंदकी छाया थी। भाषा उनकी इतनी परिपूर्ण थी कि उन्हें अपने विचार प्रकट करते समय कभी कोई शब्द ढूंढ़ना पड़ा हो, यह मुझे याद नहीं। पत्र लिखने बैठते तो शायद ही शब्द बदलते हुए मैंने उन्हें देखा होगा। फिर भी पढ़नेवाले को यह न मालूम होता था कि कहीं विचार अपूर्ण हैं अथवा वाक्य-रचना त्रुटि-पूर्ण है, अथवा शब्दोंके चुनावमें कमी है।

यह वर्णन संयमीके विषयमें संभव है। बाह्याडंबरसे मनुष्य वीतरागी नहीं हो सकता। वीतरागता आत्माकी प्रसादी है। यह अनेक जन्मोंके प्रयत्नसे मिल सकती है, ऐसा हर मनुष्य अनुभव कर सकता है। रागोंको निकालनेका प्रयत्न करनेवाला जानता है कि राग-रहित होना कितना कठिन है। यह राग-रहित दशा कविकी स्वाभाविक थी, ऐसी मेरे ऊपर छाप पड़ी थी।

मोक्षकी प्रथम सीढ़ी वीतरागता है। जबतक जगतकी एक भी वस्तुमें मन रमा है तबतक मोक्षकी बात कैसे अच्छी लग सकती है। अथवा अच्छी लगती भी हो तो केवल कानोंको ही, ठीक वैसे ही जैसे कि हमें अर्थके समझे बिना किसी संगीतका केवल स्वर ही अच्छा लगता है। ऐसी केवल कर्णप्रिय क्रीड़ामेंसे मोक्षका अनुसरण करनेवाले

आचरणके आनेमें बहुत समय बीत जाता है। आंतर वैराग्यके बिना मोक्षकी लगन नहीं होती। ऐसे वैराग्यकी लगन कविमें थी।

× × ×

वणिक तेहनुं नाम जेह जूठूं नव बोले,
वणिक तेहनु नाम, तोल ओछुं नव तोले,
वणिक तेहनुं नाम बापे बोल्युं तेपाले,
वणिक तेहनुं नाम व्याजसहित धन वाले,
विवेक तोल ए वणिकनुं, सुलतान तोल ए शाख छे,
वेपार चूके जो वाणीओ, दुःख दावानल थाय छे।

—सामल भट्ट

सामान्य मान्यता ऐसी है कि व्यवहार अथवा व्यापार और परमार्थ अथवा धर्म ये दोनों अलग-अलग विरोधी वस्तुएं हैं। व्यापारमें धर्मको घुसेड़ना पागलपन है। ऐसा करनेसे दोनों बिगड़ जाते हैं। यह मान्यता यदि मिथ्या न हो तो अपने भाग्यमें केवल निराशा ही लिखी है, क्योंकि ऐसी एक भी वस्तु नहीं, ऐसा एक भी व्यवहार नहीं जिससे हम धर्मको अलग रख सकें।

धार्मिक मनुष्यका धर्म उसके प्रत्येक कार्यमें झलकना ही चाहिए, यह रायचंदभाईने अपने जीवनमें बताया था। धर्म कुछ एकादशीके दिन ही, पर्यूषणमें ही, ईदके दिन ही, या रविवारके दिन ही पालना चाहिए, अथवा उसका पालन मंदिरोंमें, देरासरोंमें और मस्जिदोंमें ही होता है और दूकान या दरबारमें नहीं होता, ऐसा कोई नियम नहीं। इतना ही नहीं, परंतु यह कहना धर्मको न समझनेके बराबर है, यह रायचंदभाई कहते, मानते और अपने आचारमें बताते थे।

उनका व्यापार हीरे-जवाहरातका था। वे श्री रेवाशंकर जगजीवन झवेरीके साझी थे। साथमें वे कपड़ेकी दूकान भी चलाते थे। अपने व्यवहारमें संपूर्ण प्रकारसे वे प्रामाणिकता बताते थे, ऐसी उन्होंने मेरे

ऊपर छाप डाली थी। वे जब सौदा करते तो मैं कभी अनायास ही उपस्थित रहता। उनकी बात स्पष्ट और एक ही होती थी। चालाकी सरीखी कोई वस्तु उनमें न देखता था। दूसरेकी चालाकी वे तुरंत ताड़ जाते थे। वह उन्हें असह्य मालूम होती थी। ऐसे समय उनकी भृकुटि भी चढ़ जाती और आंखोंमें लाली आ जाती, यह मैं देखता था।

धर्मकुशल लोग व्यवहारकुशल नहीं होते, इस वहमको रायचंदभाईने मिथ्या सिद्ध करके बताया था। अपने व्यापारमें वे पूरी सावधानी और होशियारी बताते थे। हीरे-जवाहरातकी परीक्षा वे बहुत बारीकीसे कर सकते थे। यद्यपि अंग्रेजीका ज्ञान उन्हें न था, फिर भी पेरिस वगैरहके अपने आड़तियोंकी चिट्ठियों और तारोंके मर्मको वे फौरन समझ जाते थे और उनकी कला समझनेमें उन्हें देर न लगती। उनके जो तर्क होते थे, वे अधिकांश सच्चे ही निकलते थे।

इतनी सावधानी और होशियारी होनेपर भी वे व्यापारकी उद्विग्नता अथवा चिंता न रखते थे। दुकानमें बैठे हुए भी जब अपना काम समाप्त हो जाता तो उनके पास पड़ी हुई धार्मिक पुस्तक अथवा कापी, जिसमें वे अपने उद्गार लिखते थे, खुल जाती थी। मेरे जैसे जिज्ञासु तो उनके पास रोज आते ही रहते थे और उनके साथ धर्मचर्चा करनेमें हिचकते न थे। 'व्यापारके समयमें व्यापार और धर्मके समयमें धर्म' अर्थात् एक समयमें एक ही काम होना चाहिए, इस सामान्य लोगोंके सुंदर नियमका कवि पालन न करते थे। वे शतावधानी होकर इसका पालन न करें तो यह हो सकता है, परंतु यदि और लोग उसका उल्लंघन करने लगें तो जैसे दो घोड़ोंपर सवारी करनेवाला गिरता है, वैसे ही वे भी अवश्य गिरते। संपूर्ण धार्मिक और वीतरागी पुरुष भी जिस क्रियाको जिस समय करता हो, उसमें ही लीन हो जाय, यह योग्य है। इतना ही नहीं, बल्कि उसे यही शोभा देता है। यह उसके योगकी निशानी है। इसमें धर्म है। व्यापार अथवा इसी तरहकी जो कोई अन्य क्रिया करना हो तो उसमें भी पूर्ण एका-

ग्रता होनी ही चाहिए। अंतरंगमें आत्मचिंतन तो मुमुक्षुमें उसके श्वासकी तरह सतत चलना ही चाहिए। उससे वह एक क्षण भी वंचित नहीं रहता। परंतु इस तरह आत्मचिंतन करते हुए भी जो कुछ वह बाह्यकार्य करता हो वह उसमें ही तन्मय रहता है।

मैं यह नहीं कहना चाहता कि कवि ऐसा न करते थे। ऊपर मैं कह चुका हूं कि अपने व्यापारमें वे पूरी सावधानी रखते थे। ऐसा होनेपर भी मेरे ऊपर ऐसी छाप जरूर पड़ी है कि कविने अपने शरीरसे अवश्यकतासे अधिक काम लिया है। यह योगकी अपूर्णता तो नहीं हो सकती। यद्यपि कर्तव्य करते हुए शरीरतक भी समर्पण कर देना यह नीति है, परंतु शक्ति-से अधिक बोझ उठाकर उसे कर्तव्य समझना यह राग है। ऐसा अत्यंत सूक्ष्म राग कविमें था, यह मुझे अनुभव हुआ है।

बहुत बार परमार्थदृष्टिसे मनुष्य शक्तिसे अधिक काम लेता है और बादमें उसे पूरा करनेमें उसे कष्ट सहना पड़ता है। इसे हम गुण समझते हैं और इसकी प्रशंसा करते हैं। परंतु परमार्थ अर्थात् धर्मदृष्टिसे देखनेसे इस तरह किए हुए काममें सूक्ष्म मूर्छाका होना बहुत संभव है।

यदि हम इस जगतमें केवल निमित्तमात्र ही हैं, यदि यह शरीर हमें भाड़े मिला है, और उस मार्गसे हमें तुरंत मोक्ष साधन करना चाहिए, यही परम कर्तव्य है, तो इस मार्गमें जो विघ्न आते हों उनका त्याग अवश्य ही करना चाहिए। यही पारमार्थिक दृष्टि है, दूसरी नहीं।

जो दलीलें मैंने ऊपर दी हैं, उन्हें ही किसी दूसरे प्रकारसे रायचन्द-भाई अपनी चमत्कारिक भाषामें मुझे सुना गये थे। ऐसा होनेपर भी उन्होंने ऐसी कैसी उपाधियां उठाई कि जिसके फलस्वरूप उन्हें सख्त बीमारी भोगनी पड़ी।

रायचंदभाईको परोपकारके कारण मोहने क्षणभरके लिए घेर लिया था, यदि मेरी यह मान्यता ठीक हो तो 'प्रकृतिं यांति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति' यह श्लोकार्ध यहां ठीक बैठता है और इसका अर्थ भी इतना ही

है। कोई इच्छापूर्वक बर्ताव करनेके लिए उपर्युक्त कृष्ण-वचनका उपयोग करते हैं; परंतु वह तो सर्वथा दुरुपयोग है। रायचन्दभाईकी प्रकृति उन्हें बलात्कार गहरे पानीमें ले गई। ऐसे कार्यको दोषरूपसे भी लगभग संपूर्ण आत्माओंमें ही माना जा सकता है। हम सामान्य मनुष्य तो परोपकारी कार्यके पीछे अवश्य पागल बन जाते हैं, तभी उसे कदाचित पूरा कर पाते हैं।

यह भी मान्यता देखी जाती है कि धार्मिक मनुष्य इतने भोले होते हैं कि उन्हें सब कोई ठग सकता है। उन्हें दुनियाकी बातोंकी कुछ भी खबर नहीं पड़ती। यदि यह बात ठीक है तो कृष्णचंद और रामचन्द्र दोनों अवतारोंको केवल संसारी मनुष्योंमें ही गिनना चाहिए। कवि कहते थे कि जिसे शुद्ध ज्ञान है उसका ठगा जाना असंभव होना चाहिए। मनुष्य धार्मिक अर्थात् नीतिमान् होनेपर भी कदाचित् ज्ञानी न हो, परंतु मोक्षके लिए नीति और अनुभवज्ञानका सुसंगम होना चाहिए। जिसे अनुभवज्ञान हो गया है, उसके पास पाखंड निभ ही नहीं सकता। सत्यके पास असत्य नहीं निभ सकता। अहिंसाके सान्निध्यमें हिंसा बंद हो जाती है। जहां सरलता प्रकाशित होती है वहां छलरूपी अंधकार नष्ट हो जाता है। ज्ञानवान और धर्मवान यदि कपटीको देखे तो उसे फौरन पहचान लेता है और उसका हृदय दयासे आर्द्र हो जाता है। जिसने आत्माको प्रत्यक्ष देख लिया है वह दूसरेको पहचाने बिना कैसे रह सकता है। कोई-कोई धर्मके नामपर उन्हें ठग भी लेते थे। ऐसे उदाहरण नियमकी अपूर्णता सिद्ध नहीं करते, परंतु ये शुद्ध ज्ञानकी ही दुर्लभता सिद्ध करते हैं।

इस तरहके अपवाद होते हुए भी व्यवहार-कुशलता और धर्मपरायणताका सुंदर मेल जितना मैंने कविमें देखा है उतना किसी दूसरेमें देखनेमें नहीं आया।

× × ×

रायचंदभाईके धर्मका विचार करनेसे पहले यह जानना आवश्यक है कि धर्मका उन्होंने क्या स्वरूप समझाया था।

धर्मका अर्थ मतमतांतर नहीं। धर्मका अर्थ शास्त्रोंके नामसे कही जानेवाली पुस्तकोंको पढ़ जाना, कंठस्थ कर लेना अथवा उनमें जो कुछ कहा है, उसे मानना भी नहीं है।

धर्म आत्माका गुण है और वह मनुष्य जातिमें दृश्य अथवा अदृश्य रूपसे मौजूद है। धर्मसे हम मनुष्य-जीवनका कर्तव्य समझ सकते हैं। धर्मद्वारा हम दूसरे जीवोंके साथ अपना सच्चा संबंध पहचान सकते हैं। यह स्पष्ट है कि जबतक हम अपनेको न पहचान लें तबतक यह सब कभी भी नहीं हो सकता। इसलिए धर्म वह साधन है, जिसके द्वारा हम अपने आपको स्वयं पहचान सकते हैं।

यह साधन हमें जहां कहीं मिले, वहींसे प्राप्त करना चाहिए। फिर भले ही वह भारतवर्षमें मिले, चाहे यूरोपसे आये या अरबस्तानसे आये। इन साधनोंका सामान्य स्वरूप समस्त धर्मशास्त्रोंमें एक ही-सा है। इस बात को वह कह सकता है जिसने भिन्न-भिन्न शास्त्रोंका अभ्यास किया है। ऐसा कोई भी शास्त्र नहीं कहता कि असत्य बोलना चाहिए, अथवा असत्य आचरण करना चाहिए। हिंसा करना किसी भी शास्त्रमें नहीं बताया। समस्त शास्त्रोंका दोहन करते हुए शंकराचार्य ने कहा है, "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या।" उसी बात को कुरानशरीफमें दूसरी तरह कहा है कि ईश्वर एक ही है और वही है, उसके बिना और दूसरा कुछ नहीं। बाइबिलमें कहा है कि मैं और मेरा पिता एक ही हैं। ये सब एक ही वस्तुके रूपांतर हैं। परंतु इस एक ही सत्यके स्पष्ट करनेमें अपूर्ण मनुष्योंने अपने भिन्न-भिन्न दृष्टि-बिंदुओंको काममें लाकर हमारे लिए मोहजाल रच दिया है। उसमेंसे हमें बाहर निकलना है। हम अपूर्ण हैं और अपनेसे कम अपूर्णकी मदद लेकर आगे बढ़ते हैं और अंतमें न जाने अमुक हदतक जाकर ऐसा मान लेते हैं कि आगे रास्ता ही नहीं है, परंतु

वास्तवमें ऐसी बात नहीं है। अमुक हदके बाद शास्त्र मदद नहीं करते, परंतु अनुभव मदद करता है। इसलिए रायचंदभाईने कहा है।

"ए पद श्रीसर्वज्ञे दीठुं ध्यानमां, कही शक्या नहीं ते पद श्रीभगवंत जो एह परमपद प्राप्तिनुं कर्युं ध्यानमें, गजावयर पण हाल मनोरथ रूप जो..."

इसलिए अंतमें तो आत्माको मोक्ष देनेवाली आत्मा ही है।

इस शुद्ध सत्यका निरूपण रायचंदभाईने अनेक प्रकारोंसे अपने लेखोंमें किया है। रायचंदभाईने बहुत-सी धर्म-पुस्तकोंका अच्छा अभ्यास किया था। उन्हें संस्कृत और मागधी भाषाको समझनेमें जरा भी मुश्किल न पड़ती थी। उन्होंने वेदांतका अभ्यास किया था। इसी प्रकार भागवत और गीताजीका भी उन्होंने अभ्यास किया था। जैन पुस्तकें तो जितनी भी उनके हाथमें आतीं, वे बांच जाते थे। उनके बांचने और ग्रहण करनेकी शक्ति अगाध थी। पुस्तकका एक बारका बांचन उन पुस्तकोंके रहस्य जाननेके लिए उन्हें काफी था। कुरान, जंदेअवस्ता आदि पुस्तकें भी वे अनुवादके जरिए पढ़ गये थे।

वे मुझसे कहते थे कि उनका पक्षपात जैनधर्मकी ओर था। उनकी मान्यता थी कि जिनागममें आत्मज्ञानकी पराकाष्ठा है, मुझे उनका यह विचार बता देना आवश्यक है। इस विषयमें अपना मत देनेके लिए मैं अपनेको बिलकुल अनधिकारी समझता हूं।

परंतु रायचंदभाईका दूसरे धर्मोंके प्रति अनादर न था, बल्कि वेदांतके प्रति पक्षपात भी था। वेदांतीको तो कवि वेदांती ही मालूम पड़ते थे। मेरे साथ चर्चा करते समय मुझे उन्होंने कभी भी यह नहीं कहा कि मुझे मोक्ष प्राप्तिके लिए किसी खास धर्मका अवलंबन लेना चाहिए। मुझे अपना ही आचार-विचार पालनेके लिए उन्होंने कहा। मुझे कौनसी पुस्तकें बांचनी चाहिए, यह प्रश्न उठनेपर, उन्होंने मेरी वृत्ति और मेरे बचपनके संस्कार देखकर मुझे गीताजी बांचनेके लिए उत्तेजित किया और

दूसरी पुस्तकोंमें पंचीकरण, मणिरत्नमाला, योगवासिष्ठका वैराग्य प्रकरण, काव्य दोहन पहला भाग, और अपनी मोक्षमाला बांचनेके लिए कहा।

रायचंदभाई बहुत बार कहा करते थे कि भिन्न-भिन्न धर्म तो एक तरहके बाड़े हैं और उनमें मनुष्य घिर जाता है। जिसने मोक्षप्राप्ति ही पुरुषार्थ मान लिया है, उसे अपने माथेपर किसी भी धर्मका तिलक लगानेकी आवश्यकता नहीं।

सूरत आवे त्यम तुं रहे, ज्यम त्यम करिने हरीने लहे[1]...

जैसे अखाका यह सूत्र था वैसे ही रायचंदभाईका भी था। धार्मिक झगड़ोंसे वे हमेशा ऊबे रहते थे। उनमें वे शायद ही कभी पड़ते थे। वे समस्त धर्मोंकी खूबियां पूरी तरहसे देखते और उन्हें उन धर्मावलंबियोंके सामने रखते थे। दक्षिण अफ़्रीकाके पत्रव्यवहारमें भी मैंने यही वस्तु उनसे प्राप्त की।

मैं स्वयं तो यह माननेवाला हूं कि धर्म उस धर्मके भक्तोंकी दृष्टिसे संपूर्ण है, और दूसरोंकी दृष्टिसे अपूर्ण है। स्वतंत्र रूपसे विचार करनेसे सब धर्म पूर्णापूर्ण हैं। अमुक हदके बाद सब शास्त्र बंधन रूप मालूम पड़ते हैं। परंतु यह तो गुणातीतकी अवस्था हुई। रायचंदभाई की दृष्टिसे विचार करते हैं तो किसीको अपना धर्म छोड़नेकी आवश्यकता नहीं। सब अपने-अपने धर्ममें रहकर अपनी स्वतंत्रता-मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं; क्योंकि मोक्ष प्राप्त करनेका अर्थ सर्वांशसे राग-द्वेष-रहित होना ही है। ('श्रीमद् राजचंद्र')

---

[1] जैसे सूत निकलता है वैसे ही तू रह। जैसे बने तैसे हरिको प्राप्तकर।

: १७४ :

आचार्य रामदेव

पहाड़-जैसे दीखनेवाले महात्मा मुंशीरामके दर्शन करने और उनके गुरुकुलको देखने जब मैं गया तब मुझे बहुत शांति मिली। हरद्वारके कोलाहल और गुरुकुलकी शांतिका भेद स्पष्ट दिखाई देता था। महात्माजीने मुझपर भरपूर प्रेमकी वृष्टि की। ब्रह्मचारी लोग मेरे पाससे हटते ही नहीं थे। रामदेवजीसे भी उसी समय मुलाकात हुई और उनकी कार्य-शक्तिको मैं तुरंत पहचान सका था। यद्यपि हमारी मत-भिन्नता हमें उसी समय दिखाई पड़ गई थी, फिर भी हमारी आपसमें स्नेह-गांठ बंध गई। गुरुकुलमें औद्योगिक शिक्षणका प्रवेश करनेकी आवश्यकताके संबंधमें रामदेवजी तथा दूसरे शिक्षकोंके साथमें मेरा ठीक-ठीक वार्तालाप भी हुआ। इससे जल्दी ही गुरुकुलको छोड़ते हुए मुझे दुःख हुआ। (आ० क०, १९२७)

... ...

आचार्य रामदेव चल बसे। आप आर्यसमाजके एक प्रसिद्ध नेता और कार्यकर्त्ता थे। स्वामी श्रद्धानन्दजीके बाद वे ही काँगड़ी-गुरुकुलके निर्माता थे। जहांतक मैं जानता हूँ, वे स्वामीजीके दाहिने हाथ थे। शिक्षण-शास्त्रीके तौरपर वे बड़े लोकप्रिय थे। पिछले कुछ समयसे वे अपने स्वाभाविक जोशके साथ देहरादूनके कन्या-गुरुकुलके संचालक-कार्यमें पड़ गये थे और कुमारी विद्यावतीके पथ-प्रदर्शन और सहारा बन गये थे। जबतक जिये, वे ही इनके लिए रुपया इकट्ठा करके लाते थे। इनको संस्थाके आर्थिक पहलूकी कुछ भी चिंता नहीं करनी पड़ती थी। मैं जानता हूँ कि उनकी मृत्युसे इन्हें और इनकी संस्थाको कितनी असह्य हानि पहुँची है। जो लोग स्वर्गीय आचार्यजीको जानते हैं, जो स्त्री-शिक्षाका

महत्व समझते हैं और जिन्हें कुमारी विद्यावती और उनकी संस्थाकी क़द्र मालूम है उन्हें अब चाहिए कि गुरुकुलको सदाकेलिए आर्थिक कष्टसे मुक्त कर दें। परलोकवासी आचार्यजीके लिए इस तरहका धन-संग्रह अत्यन्त उपयुक्त स्मारक होगा। (ह० से०, ३०.१२.३६)

: १७५ :

रामसुन्दर

बहुत कुछ यत्न करनेपर भी जब एशियाटिक आफिस को ५०० से अधिक नाम नहीं मिल सके तब अधिकारीगण इस निश्चयपर पहुंचे कि अब किसीको पकड़ना चाहिए। पाठक जर्मिस्टन नामसे परिचित हैं। वहांपर बहुतसे भारतीय रहते थे। उनमें रामसुंदर नामक एक मनुष्य भी था। यह बड़ा वाचाल और बहादुर दीखता था। कुछ-कुछ श्लोक भी जानता था। उत्तरी भारतका रहनेवाला अर्थात् थोड़े-बहुत दोहे-चौपाई तो अवश्य ही उसे याद होने ही चाहिए। और तिसपर पण्डित कहा जाता था। इसलिए वहांके लोगोंमें उसकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। उसने कई जगह भाषण भी दिए थे। भाषण काफी जोशीले होते थे। वहांके कितने ही विघ्नसंतोषी भारतीयोंने एशियाटिक आफिसमें यह खबर पहुंचाई कि अगर रामसुंदर पण्डितको गिरफ्तार कर लिया गया तो जर्मिस्टनके बहुतसे भारतीय परवाना ले लेंगे। अधिकारीगण इस लालचको कदापि रोक नहीं सकते थे। रामसुंदर पण्डित गिरफ्तार हुए। अपने ढंगका यह पहला ही मामला था। इसलिए सरकार और भारतीयोंमें भी बड़ी हलचल मच गई। जिस रामसुंदर पण्डितको केवल जर्मिस्टनके लोग ही जानते थे, उसे अब क्षणभरमें सारे दक्षिण अफ्रीकाके लोग जानने लग गये। एक

महान् पुरुषका मामला चलते समय जिस प्रकार सबकी नजर वहीं दौड़ती है ठीक उसी तरह रामसुंदर पण्डितकी ओर सबका ध्यान आकृष्ट हुआ। शांति-रक्षाके लिए किसी प्रकारकी तैयारी करनेकी आवश्यकता नहीं थी। तथापि सरकारने अपनी ओरसे वह इंतजाम भी कर लिया था। अदालतमें भी रामसुन्दरका वैसा ही आदर-सत्कार किया गया जैसा कि कौमके प्रतिनिधि और एक असामान्य अपराधीका होना चाहिए था। अदालत उत्सुक भारतीयोंसे खचाखच भर गई थी। रामसुंदरको एक महीनेकी सादी कैदकी सजा हुई। उसे जोहान्सबर्गकी जेलमें रखा गया। उसको यूरोपियन वार्डमें अलग एक कमरा दिया गया था। उससे मिलने-जुलनेमें जरा भी कठिनाई नहीं होती थी। उसका खाना बाहरसे भेजा जाता था और भारतीय उसके लिए नित्य नए अच्छे-अच्छे पकवान पकाकर भेजते थे। वह जिस बातकी इच्छा करता, वह फौरन ही पूरी कर दी जाती। कौमने उसका जेल-दिन बड़ी धूम-धामसे मनाया। कोई हताश नहीं हुआ। उत्साह और भी बढ़ गया। सैकड़ों जेल जानेके लिए तैयार थे। एशियाटिक आफिसकी आशा सफल न हुई। जर्मिस्टनके भारतीय भी परवाना लेनेके लिए नहीं गये। इस सजाका फायदा कौमको ही हुआ। महीना खतम हुआ। राममुंदर छूटे और उन्हें बड़ी धूम-धामसे गाजे-बाजेके साथ जुलूस बनाकर सभास्थानपर ले गये। कई उत्साहप्रद भाषण हुए। रामसुंदरको फूलोंसे ढंक दिया। स्वयंसेवकोंने उनके सत्कारमें उनकी दावत की। सैकड़ों भारतीय अपने मनमें कहने लगे, "अरे, हम भी गिरफ्तार हो जाते तो कितना आनंद आता!" और रामसुंदर पण्डितसे मधुर ईर्ष्या करने लगे।

पर रामसुंदर कड़वी बादाम साबित हुए। उनका जोश झूठी सलीका-सा था। एक महीनेके पहले तो जेलसे निकल ही नहीं सकते थे, क्योंकि वे अनायास पकड़े गये थे। जेलमें उन्होंने इतना ऐशोआराम किया कि बाहरसे भी अधिक। फिर भी स्वच्छंदी और व्यसनी आदमी जेलके

एकांतवासको और अनेक प्रकारके खान-पानके होते हुए भी वहांके संयमको कदापि बर्दाश्त नहीं कर सकता। यही हाल रामसुंदर पण्डितका हुआ। कौम और अधिकारियोंसे मनमानी सेवा लेनेपर भी उन्हें जेल कड़वी मालूम हुई और उन्होंने ट्रान्सवाल और युद्ध दोनोंको अंतिम नमस्कार करके अपना रास्ता लिया। हरएक कौममें खिलाड़ी तो रहते ही हैं। वही हाल युद्धोंका भी होता है। लोग रामसुंदरको अच्छी तरह जानते थे। तथापि ऐसे भी आदमी कभी-कभी काम देते हैं, यह समझकर उन्होंने रामसुंदरका छिपा हुआ इतिहास उसकी पोल खुलनेपर भी कई दिनों तक नहीं सुनाया था। पीछेसे मुझे मालूम हुआ कि रामसुंदर तो अपना गिरमिट पूरा किए बिना ही भागा हुआ गिरमिटिया था। उसके गिरमिटिया होनेकी बातको मैं घृणासे नहीं लिख रहा हूं। गिरमिटिया होना कोई ऐब नहीं है।....युद्धकी सच्ची शोभा बढ़ानेवाले तो गिरमिटिए ही थे। युद्धकी जीतमें भी उन्हींका सबसे बड़ा हिस्सा था। पर गिरमिटसे भाग निकलना अवश्य ही एक दोष है।

रामसुंदरका यह इतिहास मैंने उसका ऐब बतानेके हेतुसे नहीं, बल्कि उसमें जो रहस्य है वह दिखानेके हेतुसे लिखा है। हरएक पवित्र आंदोलन या युद्धके संचालकोंको चाहिए कि वे शुद्ध मनुष्योंको ही उसमें शामिल करें। तथापि आदमी कितना ही सावधान क्यों न हो, अशुद्ध मनुष्यको बिलकुल रोक देना असंभव है। फिर भी यदि संचालक निडर और सच्चे हों तो अजानत: अशुद्ध आदमियोंके घुस आनेपर भी युद्धको अंतमें नुकसान नहीं पहुंच सकता। रामसुंदर पण्डितकी पोल खुलते ही उसकी कोई कीमत नहीं रही। वह तो बेचारा अब रामसुंदर पंडित नहीं, कोरा राम-सुंदर ही रह गया। कौम उसे भूल गई। पर युद्धको तो उससे शक्ति ही मिली। युद्धके लिए मिली हुई जेल बट्टे-खाते नहीं गई। उसके जेल जाने-से कौममें जो नवीन शक्ति आई वह तो कायम ही रही; बल्कि उसके उदाहरणका भी यही असर हुआ कि अन्य कितने ही कमजोर आदमी

अपने आप युद्धसे अलग हो गये। और भी कितने ही ऐसे उदाहरण हुए।....कौमकी मजबूती या कमजोरी पाठकोंसे छिपी नहीं रह सकती। इसलिए यहांपर मैं यह भी कह देना चाहता हूं कि रामसुंदर जैसे केवल वे ही नहीं थे। पर मैंने तो यह देखा कि सभी रामसुंदरोंने आंदोलनकी सेवा ही की।

पाठक रामसुंदरको दोष न दें। इस संसारमें मनुष्यमात्र अपूर्ण है। जब हम किसी मनुष्यमें अधिक अपूर्णता देखते हैं तब हम उसकी ओर अंगुली दिखाते हैं। पर सच पूछा जाय तो यह भूल है। रामसुंदर जान-बूझकर दुर्बल नहीं बना था। मनुष्य अपने स्वभावकी स्थितिको बदल सकता है, उसको अपने वशमें कुछ हद तक कर सकता है; पर उसे जड़से कौन बदल सकता है? जगत्कर्ताने मनुष्यको यह स्वतंत्रता नहीं दे रखी है। शेर अगर अपने चमड़ेकी विचित्रताको बदल सकता हो तो मनुष्य भी अपने स्वभावकी विचित्रताको बदल सकता है। हमें यह कैसे मालूम हो सकता है कि भाग निकलनेके बाद रामसुंदरको कितना पश्चाताप हुआ? अथवा क्या उसका भाग निकलना ही पश्चातापका एक दृढ़ प्रमाण नहीं माना जा सकता? अगर वह बेशर्म होता तो उसे भागनेकी क्या पड़ी थी? परवाना लेकर खूनी कानूनके अनुसार वह हमेशा जेल-मुक्त रह सकता था। यही नहीं, बल्कि वह चाहता तो एशियाटिक आफिस-का दलाल बनकर दूसरोंको धोखा दे सकता था और सरकारका प्रिय बन सकता था। यह सब न करते हुए अपनी कमजोरी कौमको बतानेमें वह शरमाया और उसने अपना मुंह छिपा लिया। अपने इस कार्यके द्वारा भी उसने कौमकी सेवा ही की, ऐसा उदार अर्थ हम क्यों न लगावें?

(द० अ० स०, १९२४)

: १७६ :

कालीनाथ राय

आज मुस्लिम परिषदपर एक सुंदर लेख 'ट्रिब्यून' में आया। वह पढ़कर सुनाया गया तो बापू कहने लगे :

Long live Kalinath Roy (चिरंजीवी हों कालीनाथ रॉय) ! कौमी सवाल और अछूतोंके लिए संयुक्त मताधिकार जैसे सवालोंपर आजकल इस आदमीके लेख बहुत अनुभव और ज्ञानपूर्ण आते हैं। (म० डा०, भाग १, पृष्ठ ४७)

: १७७ :

दिलीपकुमार राय

'मन-मंदिरमें प्रीति बसा ले'—श्रीदिलीपकुमार रायके, जिन्होंने इस भजनको आजकी प्रार्थना-सभामें गाया है, कंठमें जो माधुर्य है और उनके गानेमें जो कला है, वह मुझको मीठे लगे। वैसे तो यह मामूली चीज है, लेकिन उसे जिस ढंगसे सुंदर बनाया गया, उसीका नाम कला है। (प्रा० प्र०, २८.१०.४७)

. . . .

आपने आजका बहुत मीठा भजन सुना। जिन्होंने हमको यह मीठा भजन सुनाया उन्हें आप लोग सब जानते तो होंगे नहीं। उनका नाम दिलीपकुमार राय हैं। उन्होंने हर जगहका भ्रमण किया है। उनके कंठका माधुर्य जैसा है वैसा हिंदुस्तानमें तो कम लोगोंके पास है। मैं तो कहता हूं

कि शायद सारी दुनियामें भी बहुत कम लोगोंके पास है। मेरे पास ये दोपहरको आ गये थे। तब कोई अधिक समय तो मेरे पास था नहीं, सिर्फ १० मिनट थे। उस वक्त उन्होंने 'वन्देमातरम्' सुनाया, जिसको उन्होंने अपने मधुर स्वरमें बिठाया। क्योंकि वे बंगाली हैं इसलिए तो उन्हें जानना ही चाहिए। चूंकि वे मुझको सुनाना चाहते थे, इसलिए सुन लिया। लेकिन मैं कोई संगीत-शास्त्री तो हूं नहीं। उनको मुझसे मुहब्बत है, जो एक-दूसरेके साथ बन जाती है। पीछे उन्होंने इकबालका 'सारे जहांसे अच्छा' भजन सुनाया। उसको भी उन्होंने एक नए स्वरमें बिठाया है। मुझको यह बड़ा अच्छा लगा। वे ऋषि अरविंदके आश्रममें, जो पाण्डुचेरीमें हैं, कई वर्षोंसे रहते हैं। वहां कोई तालीम तो उन्होंने ली नहीं। जब वहां गये तब भी वे संगीत-शास्त्री थे। पीछेसे अपनी कलाको बढ़ाते रहते हैं। (प्रा० प्र०, २९.१०.४७)

: १७८ :

प्रफुल्लचन्द्र राय

बंगाली लोग दीवाने हैं। जिस तरह दास दीवाने हैं उसी तरह प्रफुल्लचंद्र राय भी दीवाने हैं। जब वे मंचपर व्याख्यान देते हैं तब मानों नाचते हैं। कोई नहीं मान सकता कि वे ज्ञानी हैं। हाथ पछाड़ते हैं। पैर पछाड़ते हैं। जैसा जी चाहता है अपनी बंगलामें अंग्रेजीभी घुसेड़ते हैं। जब बोलते हैं तो अपनेको भूल जाते हैं। अपने विचारके आवेशमें ही मग्न होते हैं। इस बातकी शायद ही परवा हो कि लोग हँसेंगे, या क्या कहेंगे। जबतक उनकी बातें न सुनें, उनकी आंखसे अपनी आंख न मिलावें तबतक उनकी महत्ताका

कुछ भी पता हमें नहीं लग सकता। मुझे याद है कि जब मैं कलकत्तेमें गोखलेके साथ रहता था और आचार्य राय उनके पड़ोसी थे तब एक समय हम तीनों स्टेशन पर गये थे। मेरे पास तो अपने तीसरे दर्जेका टिकट था। ये दोनों मुझे पहुंचाने आये थे। तीसरे दर्जेके मुसाफिरोंको पहुंचानेवाले तो भिखारी ही हो सकते हैं; पर गोखलेका भरा हुआ चेहरा, रेशमी पगड़ी, रेशमी किनारेकी धोती, उनके लिए टिकटबाबूकी दृष्टिमें काफी थे। परंतु यह दुबला ब्रह्मचारी, मैला-सा कुरता पहना हुआ, भिखारी जैसा दिखाई देनेवाला, इसे बिना टिकट कौन अंदर जाने देने लगा। मेरी यादके अनुसार वे बिना दुःखके बाहर खड़े रहे और मेरे खचाखच भरे डब्बेमें किसी तरह घुसनेपर भी हठधर्मीकी टीका करते हुए गोखले अपने साथीसे जा मिले। आचार्य राय क्यों बहुसंख्यक विद्यार्थियोंके हृदयमें साम्राज्य करते हैं? वे भी त्यागी हैं और अब तो हो गये हैं खादी-दीवाने। शिक्षा-विभागकी एक बंगालिन अधिष्ठात्रीसे यह कहते हुए उन्हें जरा संकोच न हुआ—"आप खादी न पहनें तो किस कामकी?" ऐसा न कहें तो उनके खुलनाके भिखारियोंकी बनाई खादीको कौन खरीदेगा? (हि० न०)

: १७९ :

रिच

इंग्लैंडमें कांग्रेसकी ब्रिटिश कमेटी तो हमारी अवश्य ही बहुत सहायता कर रही थी, तथापि वहांके रीति-रिवाजके मुआफिक उसमें तो खास-खास मत और पक्षके मनुष्य ही आ सकते थे। इसके अतिरिक्त ऐसे कितने ही लोग थे जो उसमें नहीं आए थे; पर फिर भी हमें पूरी सहायता करते थे।

हमें यह मालूम हुआ कि यदि इन सबको एकत्र करके इस काममें उन्हें लगा दिया जाय तो बहुत काम हो सकता है। इसलिए इस उपदेशसे हमने एक स्थायी समितिकी स्थापना करनेका निश्चय किया। यह बात तमाम पक्षके लोगोंको बहुत पसंद आई।

हरएक संस्थाका उत्कर्ष या अपकर्ष प्राय: उसके मंत्रीके ऊपर ही निर्भर रहता है। मंत्री ऐसा होना चाहिए जिसका उस संस्थाके हेतु पर न केवल पूरा-पूरा विश्वास हो, बल्कि उसमें इतनी शक्ति भी होनी चाहिए कि वह उसकी सफलताके लिए अपना बहुत-सा समय दे सके और उसका काम करनेकी उसमें पूरी योग्यता हो। मि० रिच जो दक्षिण अफ्रीकामें थे और जो मेरे आफिसमें गुमाश्तेका काम कर चुके थे तथा जो लंदनमें उस समय बैरिस्टरीका अभ्यास कर रहे थे, ऐसे ही योग्य पुरुष थे। उनमें ये सब गुण थे। वह वहीं इंग्लैंडमें थे और यह काम भी करना चाहते थे। इसलिए एक कमेटी बनानेकी हम लोग हिम्मत भी कर सके। (द० अ० स०)

: १८० :

आचार्य सुशील रुद्र

आचार्य सुशील रुद्रका देहांत ३० जूनको हो गया। वे मेरे एक आदरणीय मित्र और खामोश समाज-सेवी थे। उनकी मृत्युसे मुझे जो दुःख हुआ है उसमें पाठक मेरा साथ दें। भारतकी मुख्य बीमारी है राजनैतिक गुलामी। इसलिए वह उन्हींको मानता है जो उसे दूर करनेके लिए खुले आम सरकारसे लड़ाई लड़ते हैं, जिसने कि अपनी जल और थल सेना तथा धन-बल और कूट-नीतिके द्वारा अपनी मजबूत मोर्चाबंदी कर ली

है । इससे स्वभावतः उसे उन कार्यकर्ताओंका पता नहीं रहता जो निःस्वार्थ होते हैं और जो जीवनके दूसरे विभागोंमें, जो कि राजनीतिसे कम उपयोगी नहीं होते हैं, अपनेको खपा देते हैं। सेंट स्टीफन्स कालेज, देहलीके प्रिंसिपल सुशीलकुमार रुद्र ऐसे ही विनीत कार्यकर्ता थे। वे पहले दरजेके शिक्षाशास्त्री थे । प्रिंसिपलके नाते वे चारों ओर लोकप्रिय हो गये थे। उनके और उनके विद्यार्थियोंके बीच एक प्रकारका आध्यात्मिक संबंध था। यद्यपि वे ईसाई थे, तथापि वे अपने हृदयमें हिंदू धर्म और इस्लामके लिए भी जगह रखते थे । इन्हें वे बड़े आदर की दृष्टिसे देखते थे । उनका ईसाई धर्म औरोंसे फटक कर, अलग रहनेवाला न था। जो अकेले ईसा-मसीहको दुनियाका तारनहार न मानता हो उसके सर्वनाशकी दुहाई देने-वाला न था । अपने धर्मपर दृढ़ रहते हुए भी वे औरोंको सहन करते थे। वे राजनीतिके बड़े तेज और चिंताशील स्वाध्यायी थे । अग्रगामी कहे जानेवाले लोगोंके प्रति अपनी सहानुभूतिकी कवायद जहां वे न दिखाते थे तहां वे छिपाते न थे । जबसे, १९१५, से मैं अफ्रीकासे लौटा मैं जब कभी देहली जाता उन्हींका अतिथि होता । रौलट कानूनके सिलसिलेमें जबतक मैंने सत्याग्रह नहीं छेड़ा तबतक यह कार्य निर्विघ्न जारी रहा। ऊंचे हल्कोंमें उनके कितने ही अंग्रेज मित्र थे । एक पूरे अंग्रेजी मिशनसे उनका संबंध था । अपने कालेजके वे पहले ही हिंदुस्तानी प्रिंसिपल थे। इसलिए मेरे दिलने कहा कि मेरा उनके साथ समागम रहने और उनके घरमें ठहरनेसे शायद लोगोंको यह गलत ख्याल हो कि मेरा उनका मतैक्य है और उनके साथियोंको अनावश्यक संकटका सामना करना पड़े। इसलिए मैंने दूसरी जगह ठहरना चाहा । उनका जवाब अपने ढंगका था—मेरा धर्म लोगोंके अनुमानसे अधिक गहरा है । मेरे कुछ मत तो मेरे जीवनके घनिष्ट अंग हैं। वे गहरे और दीर्घकालके मनन और प्रार्थना-के बाद निश्चित हुए हैं । मेरे अंग्रेज मित्र उन्हें जानते हैं । यदि अपने सम्माननीय मित्र और अतिथिके रूपमें मैं आपको अपने घरमें रखूं तो

वे इसका गलत अर्थ नहीं कर सकते । और यदि कभी मुझे इन दो बातोंमें से कि अंग्रजोंके अंदर जो कुछ मेरा प्रभाव है वह चला जाय या आप किसी एकको चुनना पड़े तो मैं जानता हूं कि मैं किस चीजको पसंद करूंगा। आप मेरे घरको नहीं छोड़ सकते। तब मैंने कहा—"लेकिन मुझसे तो हर किस्मके लोग मिलनेके लिए आते हैं। आप अपने मकानको सराय तो बना नहीं सकते।" उन्होंने उत्तर दिया—"सच पूछो तो मुझे यह सब अच्छा मालूम होता है। आपके मित्रोंका आना-जाना मुझे पसंद है। यह देख-कर मुझे आनन्द होता है कि आपको अपने मकानमें ठहराकर मेरे हाथों कुछ देशसेवा हो रही है।"पाठकोंको शायद मालूम न हो कि खिलाफतके दावेको प्रत्यक्ष रूप देनेके लिए जो पत्र मैंने वायसरायको लिखा था उसका विचार और मसविदा प्रिंसिपल रुद्रके मकानमें तैयार हुआ था। वे तथा चार्ली एंड्रयूज उसमें सुधार सुझानेवाले थे। उन्हींके घरकी छांहमें बैठकर असहयोगकी कल्पना उत्पन्न और प्रवर्तित हुई। मौलानाओं, दूसरे मुसल-मानों तथा अन्य मित्रों और मेरे बीच जो निजी मंत्रणा हुई उसकी कार्र-वाईको वे बड़ी दिलचस्पीके साथ चुपचाप देखते थे। उनके तमाम कार्य धर्म-भावसे प्रेरित होते थे। ऐसी हालतमें दुनियावी सत्ता छिन जानेका कोई डर न था—तथापि वही धर्म-भाव उन्हें सांसारिक सत्ताके अस्तित्व और उपयोग तथा मित्रताके मूल्यको समझनेमें सहायक होता था। जिस धार्मिक भावसे मनुष्यको विचार और आचारके सुंदर मेलका यथार्थ ज्ञान होता है, उसकी सत्यताको उन्होंने अपने जीवनमें चरितार्थ कर दिखाया था। आचार्य रुद्रने अपनी ओर इतने उच्च चरित्र लोगोंको आकर्षित किया था जिनके सहवासकी इच्छा किसीको हो सकती है। बहुत लोग नहीं जानते हैं कि श्री सी० एफ० एंड्रयूज हमें प्रिंसिपल रुद्रके ही कारण प्राप्त हुए हैं। वे जुड़े भाई जैसे थे। उनका स्नेह आदर्श मित्रताके अध्ययन-का विषय था। प्रिंसिपल रुद्र अपने पीछे दो लड़के और एक लड़कीको छोड़ गये हैं। सब वयस्क हैं और अपने काममें लगे हुए हैं। वे जानते

हैं कि उनके शोकमें उनके उच्च हृदय पिताके कितने ही मित्र शरीक हैं। (हिं० नं०, ६.७.२५)

: १८१ :

पारसी रुस्तमजी

पारसी रुस्तमजीके नामसे पाठक भलीभांति परिचित हैं। पारसी रुस्तमजी मेरे मवक्किल और सार्वजनिक कार्यमें साथी, एक ही साथ बने; बल्कि यह कहना चाहिए कि पहले साथी बने और बादको मवक्किल। उनका विश्वास तो मैंने इस हदतक प्राप्त कर लिया था कि वह अपनी घरू और खानगी बातोंमें भी मेरी सलाह मांगते और उनका पालन करते। उन्हें यदि कोई बीमारी भी हो तो वह मेरी सलाहकी जरूरत समझते और उनके और मेरे रहन-सहनमें बहुत कुछ भेद रहनेपर भी वह खुद मेरा उपचार करते।

मेरे इस साथीपर एक बार बड़ी भारी विपत्ति आ गई थी। हालांकि वह अपनी व्यापार-संबंधी भी बहुत-सी बातें मुझसे किया करते थे, फिर भी एक बात मुझसे छिपा रखी थी। वह चुंगी चुरा लिया करते थे। बंबई-कलकत्तेसे जो माल मंगाते उसकी चुंगीमें चोरी कर लिया करते थे। तमाम अधिकारियोंसे उनका राह-रसूख अच्छा था। इसलिए किसीको उनपर शक नहीं होता था। जो बीजक वह पेश करते उसीपरसे चुंगीकी रकम जोड़ ली जाती। शायद कुछ कर्मचारी ऐसे भी होंगे, जो उनकी चोरीकी ओरसे आंखें मूंद लेते हों।

परंतु आखा भगतकी यह वाणी कहीं झूठी हो सकती है?

"काचो पारो खावो अन्न, तेवुं छे चोरी नुं धन।"

(यानी कच्चा पारा खाना और चोरीका धन खाना बराबर है।)

एक बार पारसी रुस्तमजीकी चोरी पकड़ी गई। तब वह मेरे पास दौड़े आए। उनकी आंखोंसे आंसू निकल रहे थे। मुझसे कहा :

"भाई, मैंने तुमको धोखा दिया है। मेरा पाप आज प्रकट हो गया है। मैं चुंगीकी चोरी करता रहा हूं। अब तो मुझे जेल भोगनेके सिवाय दूसरी गति नहीं है। बस, अब मैं बरबाद हो गया। इस आफतमेंसे तो आप ही मुझे बचा सकते हैं। मैंने वैसे आपसे कोई बात छिपा नहीं रखी है; परंतु यह समझकर कि यह व्यापारकी चोरी है, इसका जिक्र आपसे क्या करूं यह बात मैंने आपसे छिपाई थी। अब इसके लिए पछताता हूं।"

मैंने उन्हें धीरज और दिलासा देकर कहा—"मेरा तरीका तो आप जानते ही हैं। छुड़ाना-न-छुड़ाना तो खुदाके हाथ है। मैं तो आपको उसी हालतमें छुड़ा सकता हूं जब आप अपना गुनाह कबूल कर लें।"

यह सुनकर उस भले पारसीका चेहरा उतर गया।

"परंतु मैंने आपके सामने कबूल कर लिया, इतना ही क्या काफी नहीं है?" रुस्तमजी सेठने पूछा।

"आपने कसूर तो सरकारका किया है, तो मेरे सामने कबूल करनेसे क्या होगा?" मैंने धीरेसे उत्तर दिया।

"अंतको तो मैं वही करूंगा, जो आप बतावेंगे; परंतु मेरे पुराने वकील-को भी तो सलाह ले लें, वह मेरे मित्र भी हैं।" पारसी रुस्तमजीने कहा।

अधिक पूछ-ताछ करनेसे मालूम हुआ कि यह चोरी बहुत दिनोंसे होती आ रही थी। जो चोरी पकड़ी गई थी वह तो थोड़ी ही थी। पुराने वकीलके पास हम लोग गये। उन्होंने सारी बात सुनकर कहा,

"यह मामला जूरीके पास जायगा। यहांके जूरी हिंदुस्तानीको क्यों छोड़ने लगे? पर मैं निराश होना नहीं चाहता।"

इन वकीलके साथ मेरा गाढ़ा परिचय न था। इसलिए पारसी रुस्तमजीने ही जवाब दिया :

"इसके लिए आपको धन्यवाद है। परंतु इस मुकदमेमें मुझे मि० गांधीकी सलाहके अनुसार काम करना है। वह मेरी बातोंको अधिक जानते हैं। आप जो कुछ सलाह देना मुनासिब समझें हमें देते रहिएगा।"

इस तरह थोड़ेमें समेटकर हम रुस्तमजी सेठकी दूकानपर गये। मैंने उन्हें समझाया—"मुझे यह मामला अदालतमें जाने लायक नहीं दिखाई देता। मुकदमा चलाना-न-चलाना चुंगी अफसरके हाथमें है। उसे भी सरकारके प्रधान वकीलकी सलाहसे काम करना होगा। मैं इन दोनोंके लिए तैयार हूं, परंतु मुझे तो उनके सामने यह चोरीकी बात कबूल करनी पड़ेगी, जो कि वे अभी तक नहीं जानते हैं। मैं तो यह सोचता हूं कि जो जुरमाना वे तजवीज कर दें उसे मंजूर कर लेना चाहिए। बहुत मुमकिन है कि वे मान जायंगे। परंतु यदि न मानें तो फिर आपको जेल जानेके लिए तैयार रहना होगा। मेरी राय तो यह है कि लज्जा जेल जानेमें नहीं, बल्कि चोरी करनेमें है। अब लज्जाका काम तो हो चुका। यदि जेल जाना पड़े तो उसे प्रायश्चित्त ही समझना चाहिए। सच्चा प्रायश्चित्त तो यह है कि अब आगेसे ऐसी चोरी न करनेकी प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिए।" मैं यह नहीं कह सकता कि रुस्तमजी सेठ इन सब बातोंको ठीक-ठीक समझ गये हों। वह बहादुर आदमी थे। पर इस समय हिम्मत हार गये थे। उनकी इज्जत बिगड़ जानेका मौका आ गया था और उन्हें यह भी डर था कि खुद मेहनत करके जो यह इमारत खड़ी की थी वह कहीं सारी-की-सारी ढह न जाय।

उन्होंने कहा :

"मैं तो आपसे कह चुका हूं कि मेरी गर्दन आपके हाथमें है। जैसा आप मुनासिब समझें वैसा करें।"

मैंने इस मामलेमें अपनी सारी कला और सौजन्य खर्च कर डाला। चुंगीके अफसरसे मिला, चोरीकी सारी बात मैंने निःशंक होकर उनसे

कह दी। यह भी कह दिया कि "आप चाहें तो सब कागजपत्र देख लीजिए। पारसी रुस्तमजीको इस घटना पर बड़ा पश्चात्ताप हो रहा है।"

अफसरने कहा :

"मैं इस पुराने पारसीको चाहता हूं। उसने की तो यह बेवकूफी है; पर इस मामलेमें मेरा फर्ज क्या है, सो आप जानते हैं। मुझे तो प्रधान वकीलकी आज्ञाके अनुसार करना होगा। इसलिए आप अपनी समझानेकी सारी कलाका जितना उपयोग कर सकें वहां करें।"

"यदि पारसी रुस्तमजीको अदालतमें घसीट ले जानेपर जोर न दिया जाय तो मेरे लिए बस है।"

इस अफसरसे अभय दान प्राप्त करके मैंने सरकारी वकीलके साथ पत्र-व्यवहार शुरू किया और उनसे मिला भी। मुझे कहना चाहिए कि मेरी सत्यप्रियताको उन्होंने देख लिया और उनके सामने मैं यह सिद्ध कर सका कि मैं कोई बात उनसे छिपाता नहीं था। इस अथवा किसी दूसरे मामलेमें उनसे साबका पड़ा तो उन्होंने मुझे यह प्रमाण-पत्र दिया था—"देखता हूं कि आप जवाबमें 'ना' तो लेना ही नहीं जानते।"

रुस्तमजीपर मुकदमा नहीं चलाया गया। हुक्म हुआ कि जितनी चोरी पारसी रुस्तमजीने कबूल की है उसके दूने रुपये उनसे ले लिए जाएं और उनपर मुकदमा न चलाया जाय।

रुस्तमजीने अपनी इस चुंगी-चोरीका किस्सा लिखकर कांचमें जड़ाकर अपने दफ्तरमें टांग दिया और अपने वारिसों तथा साथी व्यापारियोंको ऐसा न करनेके लिए खबरदार कर दिया। रुस्तमजी सेठके व्यापारी मित्रोंने मुझे सावधान किया कि यह सच्चा वैराग्य नहीं, श्मशानवैराग्य है।

पर मैं नहीं कह सकता कि इस बातमें कितनी सत्यता होगी। जब मैंने यह बात रुस्तमजी सेठसे कही तो उन्होंने जवाब दिया कि आपको धोखा देकर मैं कहां जाऊंगा। (आ० क०, १९२७)

* * *

बी-अम्माकी मृत्यु होनेपर मौ० शौकतअलीने कहा था—हिंदुस्तानका एक सच्चा सिपाही कम हो गया। पारसी रुस्तमजीकी मृत्युसे भी एक सच्चा सिपाही कम होगया है। यही नहीं, मेरा तो एक परम मित्र ही कम हो गया है। पारसी रुस्तमजी जैसे आदमी मैंने बहुत थोड़े देखे हैं। शिक्षा उन्होंने नाममात्रके ही लिए प्राप्त की थी। अंग्रेजी भी थोड़ी ही जानते थे। गुजरातीका ज्ञान भी मामूली था। पढ़नेका बहुत शौक न था। जवानीमें ही व्यापारमें पड़ गये थे। केवल अपने परिश्रमके बल पर एक मामूली गुमाश्तेकी हालतसे एक बड़े व्यापारीकी सीढ़ीपर जा पहुंचे थे। फिर भी उनकी व्यवहार-बुद्धि तीव्र थी, उनकी उदारता हातिमके जैसी थी, उनकी सहिष्णुता तो इतनी बढ़ी हुई थी कि खुद कट्टर पारसी होते हुए भी हिंदू, मुसलमान, ईसाई, आदिके प्रति एक-सा प्रेम रखते थे। किसी भी चंदा चाहनेवाले या हाथ फैलानेवालेको उनके घरसे खाली हाथ जाते हुए मैंने नहीं देखा। अपने मित्रोंके प्रति उनकी वफादारी इतनी सूक्ष्म थी कि कितने ही लोग उन्हींको अपना मुख्तारनामा दे जाते थे। मैंने देखा है कि बड़े-बड़े मुसलमान व्यापारी अपने नाते-रिश्तेदारोंको छोड़ कर पारसी रुस्तमजीको अपना एलची बनाते थे। कोई भी गरीब पारसी रुस्तमजीकी दुकानसे खाली नहीं लौटता था। पारसी रुस्तमजी अपने लोगोंके प्रति जितने उदार थे खुद अपने प्रति उतने ही कंजूस थे। आमोद-प्रमोदका तो नाम भी न जानते थे। अपने या स्वजनोंके लिए विचारपूर्वक खर्च करते थे। घरमें अंत तक बहुत सादगी कायम रखी थी। गोखले, एंड्रयूज, सरोजिनी देवी आदि पारसी रुस्तमजीके ही यहां ठहरते थे। छोटी-से-छोटी बात पारसी रुस्तमजीके ध्यानसे दूर न रहती। गोखलेके असंख्य अभिनन्दन-पत्र इत्यादिके बड़े-बड़े पैंतालीस अददको पैक कराना, उन्हें जहाज पर चढ़ाना, आदि सारा भार पारसी रुस्तमजी पर न हो तो किसपर हो।

अपनी प्रिय धर्मपत्नीकी मृत्यु पर उनके नामका जेरबाई ट्रस्ट करके

अपनी संपत्तिका बड़ा भाग उन्होंने धर्म-कार्यके निमित्त रख छोड़ा था। अपनी संतानको उन्होंने कभी भी चटक-मटककी हवा न लगने दी। उन्हें सादी रहन-सहन सिखाई और उनके लिए इतनी ही विरासत रख छोड़ी है, जिससे वे भूखों न मर सकें। अपने वसीयतनामेमें उन्होंने अपने तमाम रिश्तेदारोंको याद किया है।

पूर्वोक्त प्रकारकी ही सावधानी और दृढ़ताके साथ उन्होंने सार्वजनिक हलचलोंमें योग दिया था। सत्याग्रहके समयमें अपना सर्वस्व स्वाहा कर देनेके लिए तैयार व्यापारियोंमें पारसी रुस्तमजी सबसे आगे थे।

अंगीकृत कार्यको हर तरहका संकट उपस्थित होनेपर भी उसे न छोड़नेकी टेव उन्हें थी। अपेक्षाकृत अधिक दिनोंतक जेलमें रहना पड़ा, तो भी वे हिम्मत न हारे। लड़ाई आठ साल तक चली, कितने ही मजबूत लड़वैया गिर गये, पर पारसी रुस्तमजी अटल बने रहे। अपने पुत्र सोराबजीको भी उन्होंने लड़ाईमें स्वाहा कर दिया।

इन हिंदुस्तानी सज्जनकी मुलाकात मुझसे १८९३ में हुई। पर ज्यों-ज्यों मैं सार्वजनिक कामोंमें पड़ता गया त्यों-त्यों पारसी रुस्तमजीमें रहे जवाहरातकी कदर करना मैं सीखता गया। वे मेरे मवक्किल थे। सार्वजनिक कामोंमें मेरे साथी थे और अंतको मेरे मित्र हो गये। वे अपने दोषोंका वर्णन भी मेरे सामने बालककी तरह आकर कर देते। वे मेरे प्रति अपने विश्वासके द्वारा मुझे चकित कर देते थे। १८९७ में जब गोरोंने मुझपर हमला किया तब मेरे और मेरे बाल-बच्चोंका आश्रय-स्थान रुस्तमजीका मकान था। गोरोंने उनके मकान, असबाब आदिमें आग लगा देनेकी धमकी दी। पर उससे पारसी रुस्तमजीका रूवां तक खड़ा न हुआ। दक्षिण अफ्रीकामें जो नाता उन्होंने जोड़ा सो ठेठ मृत्यु-दिन तक कायम रखा। यहां भी वे सार्वजनिक कामोंके लिए रुपया-पैसा भेजते रहते थे। दिसंबरमें महासभाके समय उनके यहां आनेकी संभावना थी। पर ईश्वरको कुछ और ही करना था। रुस्तमजी सेठकी मृत्युसे

दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंकी बड़ी हानि हुई है। सोराबजी अडाज-णिया गये, फिर अहमद महमद काछलिया गये, अभी-अभी पी० के० नायडू गये और अब पारसी रुस्तमजी भी चले गये। अब दक्षिण अफ्रीकामें इन सेवकोंकी कोटिके भारतवासी शायद ही रहे हों। ईश्वर निराधारों-का रखवाला है। वह दक्षिण अफ्रीकाके भारतवासियोंकी रक्षा करेगा। परंतु पारसी रुस्तमजीकी जगह तो हमेशा खाली ही रहेगी। (हिं० न०, ३०.११.२४)

: १८२ :

सोराबजी रुस्तमजी

एक प्रसंग उल्लेखनीय है। वेरूलममें कई मजदूर निकल पड़े थे। वे किसी प्रकार लौटकर जाना नहीं चाहते थे। जनरल ल्यूकिन अपने सिपाहियोंको लेकर वहां खड़ा था। लोगोंपर गोली चलानेका हुक्म वह देनेको ही था कि स्वर्गीय पारसी रुस्तमजीका छोटा लड़का बहादुर सोराब-जी, जिसकी उम्र उस समय शायद ही अठारह वर्षकी होगी—डरबनसे यहां आ पहुंचा। जनरलके घोड़ेकी लगाम थामकर उसने कहा, "आप गोलियां चलानेका हुक्म न दें, मैं अपने लोगोंको शांतिपूर्वक अपने-अपने कामपर लौटा देनेकी जम्मेदारी लेता हूं।" जनरल ल्यूकिन इस नौजवान-की बहादुरीपर मुग्ध हो गया और उसने सोराबजीको अपना प्रेम-बल आजमा लेनेकी मुहलत दे दी। सोराबजीने लोगोंको समझाया। वे समझ गये और अपने-अपने काम पर चले गये। इस तरह एक नौजवान के प्रसंगावधान, निर्भयता और प्रेमके कारण खूनकी नदी बहते-बहते रुक गई। (द० अ० स०)

: १८३ :

जोसेफ रॉयपेन बैरिस्टर

जोसेफ रॉयपेन बैरिस्टर, केम्ब्रिजके ग्रेजुएट थे। नेटालके गिर-मिटिया माता-पितासे जन्म ग्रहण करनेपर भी 'साहब लोग' बन गये थे। वह तो घरमें भी बिना बूटके नहीं चल सकते थे। इमाम साहबको तो वजू करते वक्त पांव धोने पड़ते और खुले पैरसे नमाज पढ़नी पड़ती। बेचारे रॉयपेनको तो इतना भी नहीं करना पड़ता था; पर उन्होंने बैरिस्टरीको छोड़ दिया, बगलमें साग-तरकारीकी टोकरी लटकाए और फेरी करते हुए गिरफ्तार हुए। उन्होंने भी जेल भुगती। एक दिन रॉयपेनने मुझसे पूछा :

"क्या मैं सफर भी तीसरे दर्जेमें ही करूँ ?"

मैंने उत्तर दिया, "यदि आप पहले और दूसरे दर्जेमें सफर करेंगे तो तीसरे दर्जेमें मुझे किससे सफर कराना चाहिए ? जेलमें आपको बैरिस्टर कौन कहेगा ?"

जोसेफ रॉयपेनके लिए यह उत्तर काफी था। वह भी जेलमें सिधारे। (द० अ० स०)

... ...

वह बैरिस्टर थे; पर उन्हें इस बातका अहंकार नहीं था। वह अति-शय कठिन परिश्रम नहीं कर सकते थे। ट्रेनसे अपना असबाब उतार कर उसे बाहर गाड़ीपर रख देना भी उनके लिए कठिन था। परंतु यहां तो वह भी मेहनत पर चढ़ गये। उन्होंने वह सब यथाशक्ति कर लिया। टॉल्स्टॉय फार्मपर कमजोर आदमी सशक्त हो गये और सभी परिश्रमके आदी हो गये (द० अ० स०)

: १८४ :

लाला लाजपतराय

लाला लाजपतरायको गिरफ्तार क्या किया, सरकारने हमारे एक बड़े-से-बड़े मुखियाको पकड़ लिया है। उसका नाम भारतके बच्चे-बच्चेकी जबानपर है। अपने स्वार्थ-त्यागके कारण वे अपने देश-भाइयोंके हृदयमें उच्च स्थान प्राप्त कर चुके हैं। अहिंसाके प्रचारके लिए और उसके साथ ही लोकमतको संगठित और प्रकट करनेके लिए उन्होंने जितना परिश्रम किया है उतना बहुत ही थोड़े लोगोंने किया है। उनकी गिरफ्तारीसे सरकारकी नीति या वृत्तिका जितना सच्चा पता चलता है उतना दूसरी किसी बातसे नहीं।

पंजाबने तुरंत ही उनकी जगहपर अपना दूसरा नेता चुन लिया। उन्होंने आगा सफदरको अपना अगुवा बनाया है। पंजाबी भाइयोंको उनसे अच्छा नेता नहीं मिल सकता था। वे एक सच्चे मुसलमान और एक वीर हिंदुस्तानी हैं। उन्होंने जितनी सेवाएं की हैं वे सब अज्ञातरूपसे की हैं। मुझे इस बातमें जरा भी संदेह नहीं है कि लोग लालाजीकी तरह ही सच्चे हृदयसे उनका साथ देंगे। पंजाबी भाई लालाजीको बड़े-से-बड़ा गौरव जो दे सकते हैं वह यह है कि वे यही समझकर कि लालाजी हमारे साथ ही हैं, उनका काम बराबर आगे बढ़ाते रहें। (हि० न०, ११.१२.२१)

... ...

आखिरकार लाजपतराय, पंडित संतानम, मलिक लालखान और डाक्टर गोपीचंदके मुकदमेका फैसला हो गया। लालाजी तथा पंडित संतानमको अठारह-अठारह महीनेकी कैदकी सजा दी गई। अभियुक्तोंके बहुतेरा विरोध करनेपर भी सरकारने जबरदस्ती उनके बचावके लिए

एक वकील नियुक्त किया था। इस तमाशेके होते हुए भी उनको सजा दी जाना तो निश्चित ही था। सजाका हुक्म सुनाए जानेके जरा पहले ही लालाजीने मुझे एक पत्र लिखा। उसमें उनके चित्तकी प्रसन्नता टपकी पड़ती है। वह इस प्रकार है :

"आपने जो स्नेहपूर्ण टिप्पणी लिखी है तथा रामप्रसादजी और पुरुषोत्तमलालके द्वारा जो संदेश भेजा उनके लिए आपको बहुत-बहुत धन्यवाद। मैं बहुत मजेमें हूं। मैंने अन्न-त्याग नहीं किया था। मैं अपने आरामके लिए शोरोगुल मचानेके खिलाफ हूं। हम यहां इसलिए नहीं आए हैं कि किसी तरहकी सुविधाएं या रिआयतें चाहें। सच्चा हाल अखबारोंमें जाहिर हुआ है और आशा है कि वह अब आप तक पहुंच गया होगा। हम सब लोगोंका चित्त बहुत प्रसन्न है और मैं राष्ट्रीय पाठशालाओं तथा धार्मिक ग्रंथोंके अध्ययनमें अपने समयका खूब सदुपयोग कर रहा हूं। अहमदाबादमें जो कुछ हुआ है उसके तथा सर्वपक्षीय परिषद् (राउंड टेबल कान्फ्रेन्स)के हालात मुझे मालूम हो गये हैं। हमारी तकलीफोंकी वजहसे हमारे सिद्धांतोंके निर्णयमें बाधा न होने दीजिएगा। आप यकीन मानिए, हम अपने मनोरथको पूरा करनेके लिए जबतक चाहिए तबतक और जितनी चाहिए, उतनी तकलीफें बरदाश्त करनेको हर तरहसे तैयार हैं। और अब जब कि उसीके लिए हम यहां आए हुए हैं तो हमें उसे अखीरतक निबाहना चाहिए।"

हमें आशा करनी चाहिए कि लालाजी और पंडित संतानमको उनका अध्ययन जारी रखने दिया जायगा। मैं उन्हें तथा उनके साथियोंको यह भी सूचित करनेका साहस करूंगा कि वे मौलाना शौकतअली और श्री राजगोपालाचारी तथा उनके साथियोंका अनुकरण करें, अर्थात् वे साहित्य-संबंधी उद्योगोंके साथ-ही-साथ चरखा कातनेपर भी ध्यान देंगे। मैं अभिवचन देता हूं कि बीच-बीचमें चरखा कातते रहनेसे लालाजीके इतिहास-लेखन तथा पंडित संतानमके संस्कृत अध्ययनमें हानि न होगी।

सर्वपक्षीय परिषद्के संबंधमें लालाजीने जो उद्गार प्रकट किए हैं उनकी ओर मैं उन देश-सेवकोंका ध्यान दिलाता हूं, जो मनुष्यकी सर्वोत्कृष्ट स्वाभाविक प्रेरणासे प्रेरित होकर, अपने देशके साथ प्रेम करने तथा अपनी अंतरात्माकी पुकारके अनुसार आचरण करनेके अपराधके कारण जेलोंमें चले जानेवाले कैदियोंको छुड़ानेके उद्देश्यसे कोई निपटारा जल्दी करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। हमारी प्रतिष्ठाके अनुकूल कोई निपटारा होता हो तो उसके रास्तेमें हमें कांटे न बखेरना चाहिए, पर यदि हम अपने जेल जानेवाले देश भक्तोंके शरीर-सुखके खयालसे कोई असंतोषजनक संधि कर बैठेंगे तो ऐसा करना उनके प्रति अन्याय करना होगा। यदि हम अपनी ही इच्छासे निमंत्रित किए गये कष्ट-सहनको कम करनेके लिए जरा भी अनुचित रीतिसे झुक गये तो ऐसा करना देशकी हार्दिक अभिलाषाको ठीक-ठीक न जानना होगा। (हिं० न०, २५.१.२२)

... ...

दूसरे व्यक्ति जिनपर अविश्वास किया जाता है लालाजी हैं। मैंने तो लालाजीको एक बच्चेके समान खुले दिल वाला पाया है। उनके त्यागकी जोड़ लगभग हुई नहीं। मेरी उनसे हिंदू मुसलमानोंके बारेमें एक बार नहीं अनेक बार बातें हुई हैं। वे मुसलमानोंके साथ तनिक भी दुश्मनी नहीं रखते; लेकिन उन्हें जल्दी एकता हो जानेमें शक है। वे ईश्वरसे प्रकाश पानेके लिए प्रार्थना कर रहे हैं। खुद शंकित रहते हुए भी वे हिंदू-मुसलमानोंकी एकताके कायल हैं; क्योंकि जैसा कि उन्होंने मुझसे कहा है वे स्वराज्यके कायल हैं। वे मानते हैं कि ऐसी एकताके बिना स्वराज्य स्थापित नहीं हो सकता। तो भी वे यह नहीं जानते कि यह एकता किस तरह और कब होगी। मेरा उपाय उन्हें पसंद है, परंतु इस बातमें शक है कि हिंदू लोग उसका मर्म समझ पावेंगे या नहीं और अगर समझ पावेंगे तो उसकी शराफतकी कदर करेंगे या नहीं। यहां मैं इतना कहे देता हूं कि मैं अपनी तदबीरको उदात्त शरीफाना नहीं कहता। मेरे खयालमें तो यह

बिलकुल ठीक और हो सकने लायक तदबीर है। (हिं० न०, १.६.२४)

. . . .

मैं खयाल करता हूं कि बहुतसे व्याख्यान-दाताओंकी तरह मेरा भी यह दुर्भाग्य है कि संवाददाता-गण मेरे व्याख्यानोंकी अक्सर गलत रिपोर्ट भेज देते हैं, यद्यपि वे जानबूझकर ऐसा नहीं करते। मुझे याद है कि १८९६ ई० में स्वर्गीय सर फिरोजशाह मेहताने, जबकि मैं पहले-पहल भारतवर्षमें व्याख्यान देनेके लिए खड़ा हुआ था, मुझसे कहा था कि यदि आप चाहते हों कि लोग आपके व्याख्यानको सुनें और उसकी सही रिपोर्ट भेजी जाय तो आपको अपना व्याख्यान लिख लेना चाहिए। उनकी इस अच्छी सलाहके लिए मैंने उन्हें हमेशा धन्यवाद दिया है। मैं यह जानता हूं कि यदि उस दिनकी सभाके लिए मैंने उनकी सलाहके अनुसार काम न किया होता तो वहां मेरी बड़ी फजीहत होती; लेकिन जब-जब मेरे व्याख्यानोंकी रिपोर्ट गलत भेजी गई है तब-तब बंबईके उस बिना ताजके राजाकी, सलाहको याद करनेका मुझे अवसर मिला है। कहा जाता है कि किसीने यह संवाद भेजा है कि अमृतसरकी खिलाफत-परिषदमें मैंने लाला लाजपतरायको भीरु कहा है। लालाजी जो कुछ भी हों, वे भीरु नहीं हैं। मेरे व्याख्यानका पूर्वापर संबंध देखनेसे प्रतीत होगा कि मैं उनका इस आक्षेपसे कि वे मुसलमानोंके विरोधी हैं बचाव कर रहा था। उस समय मैंने जो कुछ कहा था वह यह है : लालाजी सदा शंकितचित्त रहते हैं और उन्हें मुसलमानोंके उद्देश्यके बारेमें बड़ी शंका रहती है। लेकिन वे मुसलमानोंकी दोस्ती सच्चे दिलसे चाहते हैं। लालाजीके प्रति मेरा बड़ा आदरभाव है। मैं उन्हें बहादुर आत्मत्यागी, उदार सत्यनिष्ठ और ईश्वरसे डरनेवाला मानता हूं। उनका स्वदेशप्रेम बड़ा ही शुद्ध है। देशकी जितनी और जैसी सेवा उन्होंने की है उसमें उनकी बराबरी करनेवाले बहुत कम हैं। और यदि ऐसे शख्सोंपर संदेह किया जा सके कि उनके उद्देश्य हीन हैं तो हमें हिंदू-मुस्लिम ऐक्यसे उसी प्रकार निराश

होना पड़ेगा जिस प्रकार हमें अलीभाइयोंपर हीन उद्देश्य रखनेका संदेह करनेपर निराश होना पड़े। हम सब अपूर्ण हैं, हमारा मत एक-दूसरेके खिलाफ दूषित होगया है। हम, हिंदू और मुसलमान, जैसे हैं वैसे ही समझे जाने चाहिए। जो हिंदू-मुस्लिम ऐक्यको अपना धर्म मानते हैं उन्हें तो जो साधन हमारे पास है उसीके द्वारा उसे संपादन करनेका प्रयत्न करना चाहिए। अपने औजारोंको बुरा कहने वाला कारीगर आप ही बुरा है। कर्नल मैडकने मुझसे कहा था कि एक मरतबा एक साधारण चाकूसे ही मैंने एक बड़ा गंभीर आपरेशन किया था; क्योंकि उस समय मेरे पास कोई औजार न था और खौलते हुए पानीके सिवा दूसरी कोई जीव-जंतु-विनाशक औषधि भी न थी। उन्होंने हिम्मतसे काम लिया और उनका रोगी भी बच गया। हम भी एक दूसरेका विश्वास करें और हम सही-सलामत रहेंगे। एक-दूसरेका विश्वास करनेके यह मानी कभी नहीं हो सकते कि जबानी तो हम एक दूसरेके प्रति विश्वास जाहिर करें और हृदयमें विश्वासको ही स्थान दें। यह सचमुच भीरुता ही है, और भीरु भीरुमें या भीरु और बहादुरोंमें मित्रता हो ही नहीं सकती। (हिं० न०, १४.१२.२४)

* * * * * * * * *

हिंदू महासभाके एक उत्साही सदस्य ने मुझे 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन'में उत्तर देनेके लिए कोई १५ प्रश्न भेजे हैं। एक दूसरे महाशयने इन्हीं प्रश्नोंके तरीकेपर मेरे साथ इसी बारेमें बहस की है। मैं उन सब प्रश्नोंका उत्तर देना नहीं; चाहता हूं लेकिन उनमें कुछको तो मैं छोड़ देनेकी भी हिम्मत नहीं कर सकता हूं; क्योंकि उन प्रश्नोंसे तो पंडित मदनमोहन मालवीयजी और लालाजीपर वर्त्तमान पत्रोंमें जो आक्रमण हो रहा है उस ओर मेरा ध्यान खींचा गया है। मुझसे यह प्रश्न पूछे गये हैं :

"क्या आपको उनके भले उद्देश्यके बारेमें शंका है? क्या आप उन्हें सीधी तौरपर या और किसी दूसरे तरीकेपर हिंदू-मुस्लिम एक्यके विरोधी मानते हैं? आप मानते हैं कि क्या वे देशको जानबूझकर किसी भी प्रकार की हानि पहुंचा सकते हैं?"

मैं अक्सर यह देखता हूं इन स्वदेश-भक्त वीरोंपर इस प्रकार आक्रमण होता है। मैं यह भी जानता हूं कि मेरे बहुतसे मुसलमान मित्रोंको इन दोनों प्रसिद्ध सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओंके प्रति संपूर्ण अविश्वास है। लेकिन मैं, बहुतेरी बातोंमें उनसे कितना भी मतभेद क्यों न रक्खूं, उनमेंसे किसी एक पर भी कभी भी अविश्वास नहीं ला सकता हूं। जिस प्रकार मैंने मुसलमानोंको मालवीयजी और लालाजीपर इस प्रकार आक्षेप करते हुए देखा है, उसी प्रकार हिन्दुओंको भी प्रसिद्ध-प्रसिद्ध मुसलमानोंपर ऐसे आक्षेप करते हुए देखा है; लेकिन मैं उनमेंसे किसी भी पक्षके आक्षेपोंपर विश्वास नहीं ला सका हूं और मैं अपना मंतव्य भी किसी भी पक्षको नहीं समझा सका हूं। मालवीयजी और लालाजी दोनों ही देशके कसे हुए सेवक हैं। दोनों बहुत दिनोंसे, देशकी बराबर प्रशंसनीय सेवा कर रहे हैं। उनके साथ दिल खोलकर बातचीत करनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है; लेकिन मुझे एकभी ऐसा अवसर याद नहीं जब मैंने उन्हें मुसलमानोंका विरोधी पाया हो। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि उन्हें मुसलमान नेताओंके प्रति अविश्वास नहीं है और इस बड़े कठिन और नाजुक प्रश्नके उपायके संबंधमें हम लोग एक राय हैं। उन्हें ऐक्यकी आवश्यकताके बारेमें कुछ भी संदेह नहीं है और उन्होंने अपने विचारोंके अनुसार उसके लिए प्रयत्न भी किया है। मेरी रायमें तो इन नेताओंके उद्देश्यके संबंधमें शंका करना ही ऐक्यके होनेके संबंधमें शंका प्रकट करना है। जब हम लोग संधि करेंगे—किसी-न-किसी दिन हमें यह करना ही होगा—उस समय उनकी बातोंका हिंदू-समाज पर ठीक वैसा ही असर पड़ेगा जैसा कि मुसलमानोंमें मौलाना अबुल कलाम

आजाद और हकीम साहबकी बातोंका असर पड़ता है। (हिं० न०, १७.१२.२५)

... ...

"आपके तारके लिए आभार मानता हूं। लोगोंकी ओरसे पुलिसको हमला करनेके लिए कोई कारण नहीं मिला है। यह मामला इरादापूर्वक किया गया था। दो सख्त चोटें लगी हैं, मगर गंभीर नहीं हैं। एक बाईं छातीपर और एक कंधेपर लगी है। दूसरी चोटें सत्यपाल, गोपीचंद, हंसराज, मुहम्मद आलम आदि मित्रोंने संभाल लीं। दूसरोंपर भी मार पड़ी है और चोटें लगी हैं; किंतु चिंताका कोई कारण नहीं है।"[1]

—लाजपतराय

मैंने लाला लाजपतरायको तारसे धन्यवाद दिया था और हालत पूछी थी। उसके जवाबमें तुरंत ही लालाजीने ऊपरका तार भेजा। आजके लोगोंमें से, जबकि अधिकांश की अभी रेखें भी नहीं भीगीं थीं, लालाजीने 'पंजाब केशरी' का नाम पाया था। अबतक उनका यह इल्काब जैसा-का-तैसा कायम है, क्योंकि चाहे उनके पक्ष और विपक्षमें कुछ भी क्यों न कहा जाय, वे अब भी पंजाबके सबसे बड़े निर्विवाद नेता हैं और सारे भारतवर्षमें सबसे अधिक लोकप्रिय और प्रतिष्ठित नेताओंमें से हैं। वे महासभाके सभापति हो चुके हैं, यूरोपमें उनका नाम है और वे उन गिने-चुने नेताओंमें से हैं, जो दिलकी बात तुरंत ही कह देते हैं, गो कोई भले ही गलतफहमी करे या उससे भी अधिक उन्हें अवसर पहचाननेवाला मूर्ख समझे। मगर लालाजी अपनी आदतसे लाचार हैं; क्योंकि वे अपने दिलमें कोई बात छिपाकर रख ही नहीं सकते। जो बात सोची, वह वे कहेंगे ही।

---

[1]साइमन कमीशनके लाहौर आनेपर जो जलूस उसके प्रति विरोध प्रकट करनेके लिए निकाला गया था, लालाजीने उसका नेतृत्व किया था। पुलिसने उस जलूसपर लाठियां चलाई थीं।

इसलिए जब मैंने यह शीर्षक पढ़ा "लालाजीपर मार" और मारके ब्यौरे पढ़े तभी मेरे मुंहसे निकल गया--"शाबाश!" अब हमें स्वराज्य पानेमें बहुत देर नहीं लगेगी; क्योंकि चाहे हमारी क्रांति हिंसक हो या अहिंसक, स्वतंत्र होनेके पहले हमें देशके नामपर मरनेकी कला सीखनी होगी। इसके अलावा जबतक महान प्रयत्न न किया जावे, अहिंसक दबावसे भी शासक झुकेंगे नहीं। आदर्श और संपूर्ण अहिंसाके सामने, मैं यह कल्पना कर सकता हूं कि शासकोंकी वृत्ति बिलकुल ही बदल जानी संभव है। मगर गोकि आदर्श और संपूर्ण कार्यक्रम बनाना संभव है, तथापि उसका संपूर्ण और आदर्श अमल कभी संभव नहीं है। इसलिए सबसे सस्ती बात यही है कि नेताओंपर मार पड़े या गोली चले। अबतक अनजान आदमियोंपर मार पड़ी है या वे मारे गये हैं। थोड़ेसे आदमियोंको गोली मारनेसे भी देशका ध्यान जितना आकर्षित नहीं होता उससे कहीं अधिक लालाजीपर हमला करनेसे हुआ है। लालाजी तथा दूसरे नेताओंपर हमलेसे हिंदुस्तानके राजनीतिज्ञ विचारमें पड़ गये हैं और सरकारकी शांति तो जरूर ही भंग हो गई होगी। (हि० न०, ८.११.२८)

. . . .

लाला लाजपतरायका देहांत हो गया। लालाजी चिरजीवी होवें। जबतक हिंदुस्तानके आकाशमें सूर्य चमकता है तबतक लालाजी मर नहीं सकते। लालाजी तो एक संस्था थे। अपनी जवानीके ही समयसे उन्होंने देशभक्तिको अपना धर्म बना लिया था और उनके देशप्रेममें संकीर्णता न थी। वे अपने देशसे इसलिए प्रेम करते थे कि वे संसारसे प्रेम करते थे। उनकी राष्ट्रीयता अंतर्राष्ट्रीयतासे भरपूर थी। इसलिए यूरोपियन लोगोंपर भी उनका इतना अधिक प्रभाव था। यूरोप और अमेरिकामें उनके अनेक मित्र थे। वे मित्र लालाजीको जानते थे और इसलिए उनसे प्रेम करते थे।

उनकी सेवाएं विविध थीं। वे बड़े ही उत्साही समाज और धर्म सुधारक थे। हममेंसे बहुतसे लोगोंके समान वे भी इसीलिए राजनीतिज्ञ

बने थे कि समाज और धर्म सुधारकी उनकी लगन राजनीतिमें शामिल हुए बिना पूरी होती ही नहीं थी। सार्वजनिक जीवन शुरू करनेके कुछ ही समय बाद उन्होंने देख लिया था कि विदेशी गुलामीसे देशके स्वतंत्र हुए बिना हमारे इच्छित सुधारोंमेंसे बहुतसे नहीं हो सकेंगे। जैसा कि हममेंसे बहुतोंको जान पड़ता है, उन्हें भी जान पड़ा था कि विदेशी परतंत्रताका जहर देशकी नस-नसमें घुस गया है।

ऐसे एक भी सार्वजनिक आंदोलनका नाम लेना असंभव है, जिसमें लालाजी शामिल न थे। सेवा करनेकी उनकी भूख सदा अतृप्त ही रहती थी। उन्होंने शिक्षण संस्थाएं खोलीं, वे दलितोंके मित्र बने, जहां कहीं दुःख-दारिद्रय हो, वहीं वे दौड़ते थे। नवयुवकोंको वे असाधारण प्रेमसे अपने पास जमा करते थे। सहायताके लिए किसी नवजवानकी प्रार्थना उनके पास बेकार न गई। राजनैतिक क्षेत्रमें वे ऐसे थे कि उनके बिना चल ही नहीं सकता था। अपने विचार प्रकट करनेमें वे कभी भयभीत न हुए। उस समय भी जब कि कष्ट सहना रोजमर्राकी बात नहीं हो गई थी, अपने विचार निर्भीकतासे प्रकाशित करनेके लिए उन्होंने कष्ट सहा था। उनके जीवनमें कोई छिपा हुआ रहस्य नहीं था। उनकी अत्यंत अधिक स्पष्टवादितासे मित्रोंको, अगर प्रायः घबराहटमें पड़ना होता तो, उनके आलोचक भी चक्करमें पड़ जाते थे। मगर उनकी यह आदत छूटनेवाली नहीं थी।

मुसलमान मित्रोंका लिहाज रखता हुआ भी मैं दावेके साथ यह कहता हूं कि लालाजी इस्लामके दुश्मन नहीं थे। हिंदू धर्मको सबल बनाने तथा शुद्ध करनेकी उनकी प्रबल इच्छाको भूलसे मुसलमानों या इस्लामके प्रति घृणा नहीं समझनी चाहिए। हिंदू-मुसलमानोंमें एकता स्थापित करनेकी उनकी हार्दिक इच्छा थी। वे हिंदू राजकी चाहना नहीं करते थे, किंतु वे हिंदुस्तानी राजकी इच्छा करते थे। अपने आपको हिंदुस्तानी कहनेवाले सभी लोगोंमें वे संपूर्ण समानता स्थापित करना चाहते थे।

लालाजीकी मृत्युसे भी हम परस्पर एक दूसरेपर विश्वास करना सीखें और अगर हम निर्भय बन जायं तो यह तुरंत ही संभव है ।

उनके लिए एक राष्ट्रीय स्मारककी मांग अवश्य ही होनी चाहिए और वह होगी भी । मेरी विनम्र सम्मतिमें कोई स्मारक तबतक संपूर्ण नहीं हो सकता जबतक कि स्वतंत्रता जरूर प्राप्त करनी है, यह दृढ़ विश्वास न हो, और स्वतंत्रता प्राप्त करनेके लिए वे जीते थे, इसीके लिए उनकी ऐसी गौरवमयी मृत्यु भी हुई । जरा हम याद करें कि उनकी अंतिम इच्छा क्या थी । उन्होंने नई पीढ़ीको हिंदुस्तानकी स्वतंत्रता प्राप्त करने तथा उसके गौरवकी रक्षा करनेका भार सौंपा है । नई पीढ़ीमें उन्होंने जो विश्वास दिखलाया वह क्या उसके योग्य आपको साबित करेगी ? और हम बूढ़ोंमें से, जो भारतवर्षको स्वतंत्र देखनेके लालाजी तथा दूसरे अनेक स्वर्गीय देशभक्तोंके स्वप्नको सही बनानेके लिए अभी तक बचे हुए हैं, एक बार सभी मिलकर महान् प्रयत्न कर अपनेको लालाजीके जैसे देशबंधु पानेका अधिकारी सिद्ध करेंगे ।

इसके अलावा हम जन-सेवक-संघको भी नहीं भूल सकते । इस संघको उन्होंने अपने विविध कामोंकी उन्नतिके लिए स्थापित किया था और वे सब काम देशोन्नतिके लिए थे । संघके संबंधमें उनकी उच्चाभिलाषाएं बहुत बड़ी थीं । उनकी इच्छा यह थी कि सारे भारतवर्षमें से कुछ नवयुवक मिलकर, एक कार्यमें लगकर, एक दिलसे काम करें । यह संघ अभी बच्चा ही है । इसे स्थापित हुए बहुत साल नहीं हुए हैं । अपने इस महान कामको मजबूत पाएपर रखनेका समय उन्हें नहीं मिला था । यह भार राष्ट्रके ऊपर है और राष्ट्रको इसकी फिक्र करनी चाहिए । (हिं० न०, २२.११.२८)

. . .　　　　. . .　　　　. . .

लालाजीका अंतसमयतक मुझपर विश्वास रहा । यह मेरा सौभाग्य था । उनके अनेक गुणोंमें से जो हमारे लिए आज अधिक-से-अधिक

मूल्यवान हो सकता है वह था उनका हरिजन-प्रेम, अस्पृश्यताके विरुद्ध उनका अखंड युद्ध। जिस समय हिंदू भारतके हृदयमें हरिजनोंके प्रति अपने कर्तव्य-पालन करनेकी भावना उदय नहीं हुई थी, उस समय उन्होंने यह युद्ध किया था। वे अपनी जोरदार भाषामें बराबर कहते थे कि अछूतपन हिंदूधर्मका कलंक है। यदि लालाजीने इस युद्धके सिवाय और कुछ काम न भी किया होता तो भी हिंदुओंके दिलोंमें लालाजीकी पवित्र स्मृति सदा बनी रहती। परंतु लालाजीके देशव्यापी गुणोंको, उनकी अखिल भारतीय सेवाओंको कौन नहीं जानता? उन्हें 'पंजाब-केसरी' की उपाधि यूं ही तो नहीं मिली थी! (२७.१२.३३ को एलोरमें लालाजीके चित्रका उद्घाटन करते समय का भाषण)

... ...

जब राजनीतिको लोग भूल जायंगे, जब जनताका ध्यान खींच लेने-वाली अनेक क्षणभंगुर वस्तुएं भी विस्मृत हो जायंगी, तब भी लालाजीके गंभीर और विशाल हरिजन-प्रेमको और उनकी तज्जनित महान् सेवाओंको करोड़ों हिंदू ही नहीं, बल्कि कोटिशः सवर्ण हिंदू भी— और हिंदू ही क्यों, समस्त भारतवर्ष बड़ी श्रद्धाभक्तिसे याद किया करेगा। लालाजी एक महान् मानव-प्रेमी थे और उनका वह मानव-प्रेम विश्वव्यापी था। उनकी प्रत्येक वर्षीके अवसरपर हमें अपने जीवनमें लालाजीको उनकी प्रत्येक विगत वर्षीकी अपेक्षा, अधिकाधिक सजीव करते जाना चाहिए। लालाजी-जैसे समाज-सुधारकोंका जब निधन होता है तब केवल उनकी देहका ही नाश होता है। उनका कार्य और उनके विचारोंका देहके साथ अंत नहीं होता। उनकी शक्ति तो उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। हमें इसका अनुभव तब और अधिक होता है, जब हम देखते हैं कि ज्यों-ज्यों समय बीतता है त्यों-त्यों इस जीर्ण चोलेके बाहर इसका प्रभाव स्वतः प्रकट होता जाता है। मनुष्यके अंदर जो क्षणजीवी अंश है वह देहके साथ नाशको प्राप्त हो जाता है; किंतु मनुष्यका जो शाश्वत अविनाशी अंश है, वह तो देहके भस्मीभूत

होनेपर भी जीवित रहता है और देहका बंधन दूर हो जानेसे वह और भी अधिक प्रकाशमान हो जाता है। इस विचारको सामने रखकर हमें लालाजीकी स्मृतिको चिरजीवी रखना चाहिए। हरिजन हिंदू तथा सवर्ण हिंदू दोनों ही स्व० लालाजीका पुण्यस्मरण करके हिंदू-समाजमें से यह अस्पृश्यताका पाप-कलङ्क धो डालनेका नये सिरेसे संकल्प करें। हरिजन तो उन त्रुटियोंको दूर करें जो अत्याचार बर्दाश्त करते-करते लोगों-में पैदा हो जाती हैं और सवर्ण अपने उस पापको पखारकर शुद्ध हो जायं, जो उन्होंने हरिजनोंको जन्मना अस्पृश्य और अपनेको जन्मना उच्च मानकर किया है। (ह० से०, २३.११.३४)

• • • • • • • • •

लाला लाजपतरायजी तो पंजाबके शेर माने जाते थे। वह तो चले गए। मैं तो उनका मित्र था और उनके साथ मजाक भी करता था कि हिंदीमें बोलना कब सीखोगे। वह कहते थे, यह नहीं होनेका। याद रखो, वह समाजी थे और यह भी याद रखो कि वे हवन इत्यादि भी करवाते थे। चूंकि मैं उन्हींके घरमें ठहरता था, इसलिए मैं यह सब देखता था। हवनमें तो संस्कृत ही काममें आती है और अजीब बात थी कि यह सब होते हुए भी वे थोड़ा-थोड़ा पढ़ तो लेते थे देवनागरीमें, लेकिन उनकी मादरी जबान उर्दू ही थी। वे कहते थे कि उर्दूमें तो मुझसे कहो तो घंटों बोल लेता हूं और बोलते थे, और उर्दूके तो मैं आपको क्या बताऊं, वे बड़े भारी विद्वान् थे और बहुत शीघ्रतासे लिख सकते थे। अंग्रेजीमें भी वे घंटों बोल सकते थे, लेकिन संस्कृतमय हिंदी तो उनकी समझमें भी नहीं आती थी। जब मैं चुन-चुनकर अरबी-फारसीके शब्द लाता तब वे मेरी बात समझ सकते थे। (प्रा० प्र०, १८.११.४७)

: १८५ :

लाटन

मि० लाटन डर्बनके बहुत पुराने और बड़े ख्यातनामा वकील थे। मैं भारत गया, उसके पहले ही उनके साथ मेरा बहुत घनिष्ट संबंध हो चुका था। अपने महत्वपूर्ण मुकदमोंमें मैं उन्हींकी सहायता लेता था और कई बार उनको अपने मामलोंमें बड़ा वकील भी बनाता था। वे बड़े बहादुर आदमी थे। शरीरके ऊंचे-पूरे थे। (द० अ० स०)

: १८६ :

लुटावन

उत्तर हिंदुस्तानसे गिरमिटमें आया हुआ लुटावन नामक एक बूढ़ा मवक्किल था। अवस्था ७० वर्षसे भी अधिक होगी। उसे बड़ी पुरानी दमे और खांसीकी व्याधि थी। अनेकों वैद्योंके क्वाथ-पुड़ियां और कई डॉक्टरोंकी बोतलोंको वह आजमा चुका था। उस समय मुझे अपने इन (प्राकृतिक) उपचारोंमें असीम विश्वास था। मैंने उससे कहा कि यदि तुम मेरी तमाम शर्तोंका पालन करो और फार्म ही पर रहो तो मैं अपने उपचारोंका प्रयोग तुमपर कर सकूंगा। उसका इलाज करनेकी बात तो मैं कैसे कह सकता था? उसने मेरी शर्तोंको कबूल किया। लुटावनको तमाखूका बहुत भारी व्यसन था। मेरी शर्तोंमें एक यह भी थी कि वह तमाखू छोड़ दे। लुटावनको एक दिनका उपवास कराया। प्रतिदिन बारह बजे धूपमें 'कूने बाथ' देना शुरू किया। उस समय की ऋतु भी

धूपमें बैठने लायक थी। उसे थोड़ा भात, कुछ जेतूनका तेल, शहद और कभी-कभी शहदके साथ-साथ खीर, मीठी नारंगी, अंगूर और भुने हुए गेहूंकी कॉफी आदि भोजनके लिए दिया जाता था। नमक और तमाम मसाले बंद कर दिए गये थे। जिस मकानमें मैं सोता था उसी मकानमें जरा अंदरकी तरफ, लुटावनका भी बिस्तर लगा दिया जाता था। सबके बिस्तरमें दो कंबल रहते थे, एक बिछानेका और एक ओढ़नेका। लकड़ीका तकिया भी रहता था।

एक सप्ताह बीता, लुटावनके शरीरमें तेज प्रवेश करने लगा, दमा कम हुआ, खांसी भी घट गई। पर रातको दमा और खांसी दोनों सताते। मुझे तमाखूका शक हुआ। मैंने उससे पूछा। लुटावनने कहा, "मैं नहीं पीता।" फिर एक-दो दिन गये। पर खांसीमें कोई फर्क नहीं हुआ। अब छिपकर लुटावनपर नजर रखनेका निश्चय किया। सब जमीनपर ही सोते थे। सर्पादिका भय तो था ही। इसलिए मि० कैलनबेकने मुझे बिजलीकी एक जेबी बत्ती दे रक्खी थी। वह भी एक रखते थे। इस बत्तीको लेकर मैं सोता था। मैंने निश्चय किया कि एक रात बिस्तर हीमें पड़े-पड़े जागूं। दरवाजेसे बाहर बरामदेमें मेरा बिस्तर लगा हुआ था और दरवाजेके अंदर नजदीक ही लुटावन लेट रहा था। करीब आधी रातके लुटावनको खांसी आई। दियासलाई सुलगाकर उसने बीड़ी पीना शुरू किया। मैं भी धीरेसे चुपचाप उसके बिस्तरके पास जा खड़ा हुआ और बत्तीकी कलको दबाया। लुटावन घबड़ाया। वह समझ गया। बीड़ी बुझाकर उठ खड़ा हुआ। और मेरे पैर पकड़कर बोला, "मैंने बड़ा गुनाह किया, अब मैं कभी तमाखू नहीं पीऊंगा। आपको मैंने धोखा दिया। मुझे आप माफ करें।" यह कहकर वह गिड़गिड़ाने लगा। मैंने उसे आश्वासन-पूर्वक कहा कि बीड़ी छोड़नेमें उसीका हित था। मेरे अनुमानके अनुसार खांसी जरूर मिट जानी चाहिए थी। वह मिटी नहीं, इसलिए मुझे शक हुआ। लुटावनकी बीड़ी छूटी और उसके साथ-

ही-साथ दो-तीन दिनमें दमा और खांसीकी शिकायत भी कम हो गई। इसके बाद एक मासमें लुटावन बिलकुल नीरोग हो गया। उसके चेहरेपर खूब रौनक आगई और वह विदा होनेके लिये तैयार हुआ। (द० अ० स०)

: १८७ :

लाजरस

पहले मैं यह बतला चुका हूं कि ट्रांसवालसे जो बहनें आई थीं, वे द्राविड़ प्रांत की थीं। वे एक द्राविड़ कुटुंबके यहां ठहरी थीं, जो ईसाई था। यह कुटुंब मझोले दर्जेका था। उसके एक छोटासा जमीनका टुकड़ा और दो-तीन कमरेवाला एक छोटा-सा मकान था। इन्हींके यहां ठहरनेका मैंने भी निश्चय किया। मालिक-मकानका नाम लाजरस था। गरीबको किसका डर हो सकता है? ये सब मूलतः गिरमिटिया माता-पिताकी प्रजा थे। इसलिए उनको और उनके संबंधियोंको भी तीन पौंडवाला कर देना पड़ता था। गिरमिटियाओंके दुःखोंसे तो वे पूरी तरह परिचित थे। इसलिए उनके साथ उनकी सहानुभूति होना भी स्वाभाविक ही था। इस कुटुंबने मेरा सहर्ष स्वागत किया। मेरा स्वागत करना मित्रोंके लिए आसान काम तो कभी रहा ही नहीं है; परंतु इस बार तो वह और भी मुश्किल था। मेरा स्वागत करना मानों प्रत्यक्ष निर्धनताका स्वागत करना और शायद जेलको भी निमंत्रण देना था। इस स्थितिमें शायद ही कोई धनिक व्यापारी अपनेको इस खतरेमें डालनेके लिए तैयार होता। अपनी तथा उनकी परिस्थितिको इस तरह समझ लेनेपर भी उन्हें ऐसी विकट परिस्थितिमें डालना मेरे लिए सर्वथा अनुचित था। बेचारे लाजरसको थोड़ा-सा वेतन ही खोनेका डर था और

वह उसे बरदाश्त भी कर सकता था। उसे कोई कैद करना चाहे तो भले ही करे, पर अपने से भी गरीब गिरिमिटियाओंके दुःखोंको कैसे चुपचाप सह सकता था? उसने अपने यहां इन गिरमिटियाओंकी सहायताके लिए आई हुई बहनोंको अपनी आंखों जेलमें जाते देखा था। उसे मालूम हुआ कि उनके प्रति उसका भी कुछ कर्तव्य है, इसीलिए उसने मुझे भी स्वीकार किया। स्वीकार किया; पर अपना सर्वस्व भी अर्पित कर दिया; क्योंकि उसके यहां मेरे जानेके बाद उसका घर एक धर्मशाला बन गया। सैकड़ों आदमी और हर तरहके आदमी आते-जाते थे। उसके मकान के आस-पास की जमीन आदमियोंसे खचाखच भर गई। चौबीसों घंटे उसके मकानपर रसोई होती रहती थी, जिसमें उसकी धर्मपत्नीने जीतोड़ महनत की। इतनेपर भी जब कभी देखिए, तब वे दोनों हँसमुख ही नजर आते थे। उनकी मुखाकृतिमें मैंने अप्रसन्नता नहीं देखी। (द० अ० स०)

: १८८ :

टी० एम० वर्धीस और जी० रामचन्द्रन्

अगर श्री टी० एम० वर्धीस और श्री जी० रामचन्द्रन विश्वासके लायक नहीं हैं तो भी मुझे इस बातका यकीन दिलानेके लिए हमारा[1] मिलना जरूरी है। मुझे स्वीकार करना होगा कि मेरे मनमें उनकी हिम्मत, आत्म-बलिदान, कार्यदक्षता और प्रामाणिताके लिए बहुत मान है। श्री जी० रामचन्द्रन साबरमतीके एक पुराने आश्रमवासी हैं। उन्होंने मुझे कभी अविश्वासका कारण नहीं दिया। (ह० से०, २७.७.४०)

---

[1]गांधीजी तथा त्रावणकोरके दीवान।

: १८६ :

ए० एस० वाडिया

पूनाके श्री ए० एस० वाडियाका निम्नलिखित पत्र मुझे मिला है। जैसा कि उससे मालूम पड़ेगा, वह उन गरीबोंके सच्चे हमदर्द है, जो गर्मियोंमें महाबलेश्वर जानेवालोंके लिए नीचेके मैदानोंसे लकड़ियोंकी मोलिया लेजाकर जैसे-तैसे अपना निवाह करते हैं। श्री वाडिया लिखते हैं :

"मैं महाबलेश्वर इसलिए गया था कि दक्षिणी रोडेशियापर अपनी नई किताब लिखनेके लिए जो एकांत और शांति मैं चाहता था वह मिल जाए। लेकिन वहां मेरा ध्यान और शक्तियां अचानक उन देहातियोंकी तकलीफोंपर चली गईं, जो नीचेकी घाटियोंसे घास और लकड़ियोंके भारी-भारी बोझ लेकर महाबलेश्वर आते और नाममात्रके दामोंपर हमारे बाजारमें बेचते थे। जिन पहाड़ी पगडंडियोंसे वे आम तौरपर आते उन्हींके बीच वे जंगली स्थान थे, जहां बैठकर मैं अपनी 'रोडेशियाके चमत्कार' पुस्तक लिखता था। जब कभी मैं उनसे बात करता, वे जरूर उन रास्तोंकी भयंकर हालतकी शिकायत करते जिनसे होकर वे आते थे, क्योंकि नुकीले पत्थरोंसे उनके पैरों म चोट लगती और फफोले पड़ जाते थे। उन्होंने मुझसे अनुरोध किया कि मैं खुद जाकर नीचेके रास्तोंकी हालत देखूं और उन्हें सुधारनेके लिए कुछ करूं। उनकी इच्छा पूरी करनेके लिए मैं खुद नीचे घाटियोंमें गया और उन रास्तोंको देखा। वे पथरीले, ढालू और बीच-बीचमें खतरनाक तौरसे तंग थे। पूछताछ करनेपर मुझे पता लगा कि सौ साल पहले जब जनरल लाडनिकने महाबलेश्वरका पता लगाया था तबसे अबतक कभी किसी आदमीका हाथ इन रास्तोंपर नहीं लगा, बल्कि लोगोंके बराबर आते-जाते रहनेसे ही ये बन गये हैं।

मुझे लगा कि गांववालोंकी शिकायतें ठीक हैं और इसपर तत्काल

ध्यान देनेकी जरूरत है। अतः मैंने 'रोडेशियापर' किताब लिखना बंद करके मजूरोंको कामपर लगाया और रास्तोंको साफ व चौड़ा करने, अवरोधक पत्थरोंको हटाने तथा लकड़ीकी मोलियां लानेमें दरख्तोंकी जो डालियां रुकावट डालती थीं उन्हें कटवानेका काम व्यवस्थित रूपसे शुरू कर दिया। ८ सप्ताह तक यह काम जारी रहा, जिस बीच मैंने कुल मिलाकर कोई एक हजार मजूरोंको कामपर लगाया होगा। छोटे-बड़े मिलाकर एक दर्जन रास्ते उन्होंने बनाए और ठीक व दुरुस्त किए होंगे। इनमेंसे चार रास्ते कोंकणके दूरवर्ती गांवोंसे शुरू होकर कोंकणके पहाड़ी नाकों व दक्षिणकी पहाड़ियोंपर होते हुए महाबलेश्वर तक आते हैं। डबील टोंक और बाबली टोंक नामक कोंकणके पहाड़की दो चाकूकी धार जैसी नुकीली चोटियोंको तो मैंने इतना सकड़ा और खतरनाक पाया कि पहाड़की चोटियोंपर चलनेवाली तेज हवासे सिरपर बोझा उठाते हुए स्त्रियों, बच्चोंको नीचे लुढ़कनेका खतरा होनेपर सचमुच मुंहके बल लेटकर अपने हाथ-पैरोंके सहारे रेंगना ही पड़ता है। इन दोनों पहाड़ी चोटियोंको, जो हरएक आधमीलके करीब थी, मैंने बिलकुल तुड़वा दिया है, हालांकि उनके कुछ हिस्से बड़े मजबूत पत्थरके थे और पत्थरके छोटे-छोटे टुकड़ोंके तीनसे चार फुटतक चौड़े रास्ते सुरक्षित स्थानोंपर बनवा दिए हैं।

"अब मैं उस मुख्य बातपर आता हूं जिसके लिए कि मैं आपको यह सब लिख रहा हूं। मैं आपसे पूछता हूं कि क्या सरकार इस बातके लिए बाध्य नहीं है कि जैसे वह सवारी गाड़ियोंके आने-जानेके लिए सड़कोंको ठीक हालतमें रखती है उसी तरह गांववालोंके उपयोगके लिए मैंने जो रास्ते बनाए हैं उन्हें वह अच्छी हालतमें रक्खे? जांच करनेपर मुझे पता लगा है कि मौसमके दर्मियान महाबलेश्वर जानेके लिए कोंकणके कोई ५०-६० गांव इन नए बने हुए रास्तोंका उपयोग करेंगे। मैंने यह भी पता लगाया है कि ये गांव भूमि-करके रूपमें हर साल ५० से २०० रु० तक देते हैं, बल्कि एक तो ३०० रु० देता है। इन गांवोंकी गाढ़ी कमाईसे जो कुछ

हजार रुपया सरकार हर साल भूमि-करके रूपमें वसूल करती है उनके बदले-में इनके लिए वह क्या करती है, यह मैं नहीं जानता। आपको यह याद रखना चाहिए कि कोंकण और दक्षिणके इन ६० गांवोंके लिए महाबलेश्वर ही एक और अकेला ऐसा जरिया है कि जिसके द्वारा वे अपना सरकारी पावना अदा करनेके लिए हर साल कुछ रुपए कमा सकते हैं। इसमेंसे अधिकांशके पास अपने जमीनके थोड़े-से हिस्सेसे जो कुछ मिल जाए, बशर्ते कि बरसात ठीक हो जाए, उसके सिवा और कोई जरिया नहीं है और हरएकके पास जमीनका जो थोड़ा-सा टुकड़ा है उसमें पैदा होनेवाला अनाज खुद उसके तथा उसके कुटुंबके लिए मुश्किलसे ही पूरा होता है। नतीजा यह होता है कि जो-कुछ रुपया उन्हें चाहिए उसके लिए घास और लकड़ीके भारे लेकर उन्हें महाबलेश्वर जाना पड़ता है। और कुटुंबकी परवरिशके लिए खाली पुरुषोंके जानेसे ही काम नहीं चलता, बल्कि उनकी स्त्रियों और माताओं तथा १०-१२ सालके बच्चोंतकको उनके साथ भारे लेकर जाना पड़ता है। आप मुझपर विश्वास नहीं करेंगे, लेकिन मैंने ऐसे दर्जनों पुरुषों, स्त्रियों व बच्चोंसे खुद बातचीत की है, जो मंगल-वारके सवेरे लगनेवाले साप्ताहिक बाजारके लिए महाबलेश्वर पहुंचनेको रविवारके तीसरे पहर कोंकणके अपने गांवोंसे रवाना होते हैं और दो दिनकी सारी मेहनत व तकलीफके बाद हरेक कमाता है कुल ४ आने या अधिक-से-अधिक ५ आने!

"इन गांववालोंसे बातें कर करके मैंने कुछ और हालात भी मालूम किए हैं, जो शायद आपके लिए उपयोगी होंगे:

१—इन सबने इस बातकी शिकायत की कि उनके खेतोंकी जमीन साल-ब-साल अनुत्पादक होती जा रही है, जिससे दस साल पहले जितनी उपज हुआ करती थी अब उससे आधीके करीब होने लगी है।

२—इनका कहना है कि कांग्रेस-सरकारने हरेक मवेशी पीछे ४ आने कर फिर लगा दिया है, जिससे पिछले दो सालोंसे वह मुक्त थे।

३—गांवोंके आसपास जो जमीनें पड़ती पड़ी हुई हैं उन्हें काश्तके लिए दे दिया जाए और जो छोटे-छोटे जंगली इलाके सुरक्षित रक्खे गये हैं उन्हें उनके मवेशियोंके लिए खोल दिया जाए।

"महात्माजी, मैं चाहता हूं कि इन आदिजनोंकी, जैसा कि महाबलेश्वरके आसपास की घाटियोंके इन गरीब ग्रामीणोंको मैं कहता हूं और जिनकी भलाई व बहबूदीके लिए मेरी दिलचस्पी है, मददके लिए आप जरूर कुछ करें।"

मैंने यह पत्र बंबईके मंत्रियोंके पास भेज दिया था और पाठकोंको यह बतलाते हुए मुझे खुशी होती है कि उन्होंने इस बारेमें कार्रवाही करनेका निश्चय कर लिया है। जिन पगडंडियोंको श्री वाडियाने पहलेसे कहीं ज्यादा साफ-सुथरा और सुरक्षित बना दिया है, बंबई-सरकार उन्हें मरम्मत कराकर अच्छी हालतमें रक्खा करेगी। साथ ही, दूसरी जिन बातोंका श्री वाडियाने जिक्र किया है उनकी भी वह व्यवस्था करेगी। श्री वाडियाने जो कुछ किया उसका विस्तृत विवरण भेजनेके लिए मैंने उन्हें लिखा था। ऐसा मालूम पड़ता है कि पगडंडियां बनानेमें मजदूरोंके साथ खुद उन्होंने भी काम किया और उनके रोड-इंजीनियर खुद वही बने। अपनी जेबसे उन्होंने २००रु०से ज्यादा रुपया खर्च किए और १२५ रु० उनके दो मित्रोंने दिए। मुझे इस बातका पक्का भरोसा है कि अपनी किताब लिखना स्थगित करके श्री वाडियाने कुछ खोया नहीं है, क्योंकि बहुत संभवत: अब उसमें उनकी बिलकुल असली उदारताका फल भी मिल जायगा। अपने पास बची हुई रकममेंसे दानस्वरूप कुछ देनेका तो फैशन बन गया है, लेकिन रुपएकी तरह अपना परिश्रम लोग नहीं देते। जो ऐसा करते हैं वे अपने दानका यथासंभव सर्वोत्तम उपयोग करते हैं। आशा है कि पहाड़ोंपर जानेवाले दूसरे लोग भी श्री वाडियाके सुंदर उदाहरणका अनुकरण कर उन गरीबोंकी हालतका अध्ययन करके सुधारनेकी कोशिश करेंगे, जो बिना कोई शिकायत किए अक्सर

किसी तरह पेट भरने लायक मजूरी पर ही काम करते हैं। (ह० से०, २६.७.३६)

: १६० :

वालीअम्मा आर० मनुस्वामी मुदिलायर

एक दूसरी बहन भयंकर बुखार लेकर (जेलसे) बाहर निकली, जिसने थोड़े ही दिन बाद उसे परमात्माके घर पहुंचा दिया। उसे मैं कैसे भूल सकता हूं ? वालीअम्मा आर० मनुस्वामी मुदिलायर अठारह वर्षकी बालिका थी। मैं उसके पास गया तब वह बिस्तरसे उठ भी नहीं सकती थी। कद ऊंचा था। उसका लकड़ीके-जैसा शरीर डरावना मालूम होता था।

मैंने पूछा—"वालीअम्मा, जेल जानेपर पश्चाताप तो नहीं है ?"

"पश्चाताप क्यों हो ! अगर मुझे फिर गिरफ्तार करें तो मैं पुनः इसी क्षण जेल जानेको तैयार हूं।"

"पर इसमें यदि मौत आ जाय तो ?"

"भले ही आवे न ! देशके लिए मरना किसे न अच्छा लगेगा ?"

इस बातचीतके कुछ दिन बाद वालीअम्मा की मृत्यु हो गई। देह चला गया, पर वह बाला तो अपना नाम अमर कर गई। इसकी मृत्युपर शोक प्रकट करनेके लिए स्थान-स्थानपर शोक-सभाएं हुईं और कौमने इस पवित्र देवीका स्मारक बनानेके लिए एक 'वालीअम्मा हॉल' नामका भवन बनवानेका निश्चय किया। पर कौमने इस हॉलको बनवा कर अपने धर्मका पालन अभी तक नहीं किया ! उसमें कई विघ्न उपस्थित हो गये। कौममें फूट हो गई। मुख्य कार्यकर्त्ता एकके बाद एक वहांसे चले गये।

पर वह ईंट-पत्थरका स्मारक बने, या न भी बने, वालीअम्माकी सेवाका नाश नहीं हो सकता। इस सेवाका हॉल तो उसने स्वयं अपने हाथोंसे बना रक्खा है। आज भी उसकी वह मूर्त्ति कितने ही हृदयोंमें विराज रही है। जहांतक भारतवर्षका नाम रहेगा वहांतक दक्षिण अफ्रीकाके इतिहासमें वालीअम्माका नाम भी अमर रहेगा। (द० अ० स०)

... ...

इन बहनोंका बलिदान विशुद्ध था। उनका जेल जाना उनका आर्त-नाद था, शुद्ध यज्ञ था। ऐसी शुद्ध हार्दिक प्रार्थनाको ही प्रभु सुनते हैं। यज्ञकी शुद्धि ही में उसकी सफलता है। भगवान तो भावनाके भूखे हैं। भक्ति-पूर्वक अर्थात् निःस्वार्थ भावसे अर्पित किया हुआ पत्र, पुष्प और जल भी परमात्माको प्रिय है। उसे वे सप्रेम अंगीकार करके करोड़ों गुना फल देते हैं। सुदामाके मुट्ठीभर चावलके बदलेमें उसकी वर्षोंकी भूख भाग गई। अनेकके जेल जानेसे चाहे कोई फल न निकले, मगर एक शुद्धात्माका भक्तिपूर्ण समर्पण किसी समय निष्फल नहीं हो सकता। कौन कहता है कि दक्षिण अफ्रीकामें किस-किसका यज्ञ सफल हुआ, पर इतना हम जरूर जानते हैं कि वालीअम्माका बलिदान अवश्य ही सफल हुआ। (आ० क० १९२७)

: १९१ :

वासन्ती देवी

बेगम मुहम्मदअलीने अंगोरा फंडके लिए जहां-जहांसे रुपया प्राप्त किया है वहांसे शायद मौलाना साहब भी न ले पाते। यह बात मैं पहले ही कह चुका हूं कि उनका भाषण तो मौलाना साहबसे भी बढ़िया होता

है। अब मैं पाठकोंको एक रहस्य और सुनाता हूं। बंगालमें आज यह आग किसने सुलगाई ? श्रीमती वासंती देवी और उर्मिलादेवीने। वे खुद गली-गली खादी बेचती फिरीं। यह उनकी गिरफ्तारीका प्रभाव है जो बंगालका ध्यान इस तरफ गया। देशबंधुदासके प्रचंड आत्मत्यागने भी ऐसा चमत्कार नहीं दिखाया। मेरे पास एक पत्र वहांसे आया है। उससे यही मालूम होता है। यह बात गलत नहीं हो सकती; क्योंकि स्त्री क्या है ? वह साक्षात त्यागमूर्ति है। जब कोई स्त्री किसी काममें जी-जानसे लग जाती है तो वह पहाड़को भी हिला देती है। (हिं० न०, २५.१२.२१)

... ...

कुछ वर्ष पूर्व मैंने स्वर्गीया रमाबाई रानडेके दर्शनका वर्णन किया था। मैंने आदर्श विधवाके रूपमें उनका परिचय दिया था।

इस समय मेरे भाग्यमें एक महान् वीरकी विधवाके वैधव्यके आरंभका चित्र उपस्थित करना बदा है।

वासंती देवीके साथ मेरा परिचय १९१९ में हुआ है। गाढ़ परिचय १९२१ में हुआ। उनकी सरलता, चातुरी और उनके अतिथि-सत्कारकी बहुतेरी बातें मैंने सुनी थीं। उनका अनुभव भी ठीक-ठीक हुआ था। जिस प्रकार दार्जिलिंगमें देशबंधुके साथ मेरा संबंध घनिष्ट हुआ उसी तरह वासंती देवीके साथ भी हुआ। उनके वैधव्यमें तो परिचय बहुत ही बढ़ गया है। जबसे वे दार्जिलिंगसे शबको लेकर कलकत्ते आई हैं तबसे मैं कह सकता हूं कि उनके साथ ही रहा हूं। वैधव्यके बाद पहली मुलाकात उनके दामादके घर हुई। उनके आस-पास बहुतेरी बहनें बैठी थीं। पूर्वाश्रममें तो जब मैं उनके कमरेमें जाता तो खुद वही सामने आतीं और मुझे बुलातीं। वैधव्यमें मुझे क्या बुलातीं ? पुतलीकी तरह स्तम्भित बैठी अनेक बहनोंमेंसे मुझे उन्हें पहचानना था। एक मिनट तक तो मैं खोजता ही रहा। मांगमें सिंदूर, ललाटपर कुंकुम, मुंहमें पान, हाथमें चूड़ियां और साड़ीपर लैस, हँस-मुख चेहरा—इनमेंसे एक भी चिन्ह मैं

न देखूं तो वासंती देवीको किस तरह पहचानूं ? जहां मैंने अनुमान किया था कि वे होंगी वहां जाकर बैठ गया और गौरसे मुख-मुद्रा देखी। देखना असह्य हो गया। चेहरा तो पहचानमें आया। रुदन रोकना असंभव हो गया। छातीको पत्थर बनाकर आश्वासन देना तो दूर ही रहा।

उनके मुखपर सदा-शोभित हास्य आज कहां था ? मैंने उन्हें सांत्वना देने, रिझाने और बातचीत करानेकी अनेक कोशिशें कीं। बहुत समयके बाद मुझे कुछ सफलता मिली।

देवी जरा हँसीं।

मुझे हिम्मत हुई और मैं बोला।

"आप रो नहीं सकतीं। आप रोओगी तो सब लोग रोवेंगे। मोना (बड़ी लड़की) को बड़ी मुश्किलसे चुपकी रक्खा है। बेबी (छोटी लड़की) की हालत तो आप जानती ही हैं। सुजाता (पुत्रवधू) फूट-फूटकर रोती थी, सो बड़े प्रयाससे शांत हुई है। आप दया रखिएगा। आपसे अब बहुत काम लेना है।"

वीरांगनाने दृढ़ता-पूर्वक जवाब दिया :

"मैं नहीं रोऊंगी। मुझे रोना आता ही नहीं।"

मैं इसका मर्म समझा, मुझे संतोष हुआ।

रोनेसे दुःखका भार हल्का हो जाता है। इस विधवा बहनको तो भार हलका नहीं करना था, उठाना था। फिर रोती कैसे ?

अब मैं कैसे कह सकता हूं—"लो, चलो हम भाई-बहन पेट भर रो लें और दुःख कम कर लें ?"

हिंदू विधवा दुःखकी प्रतिमा है। उसने संसारके दुखका भार अपने सिर ले लिया है। उसने दुःखको सुख बना डाला है। दुःखको धर्म बना डाला है।

वासंती देवी सब तरहके भोजन करती थीं। १९२० तकके समयमें

उनके यहां छप्पन भोग होते थे और सैकड़ों लोग भोजन करते थे। पान-के बिना वे एक मिनिट नहीं रह सकती थीं। पानकी डिबिया पास ही पड़ी रहती थी।

अब शृंगार-भावका त्याग, पानका त्याग, मिष्ठानोंका त्याग, मांस-मत्स्यका त्याग, केवल पतिका ध्यान, परमात्माका ध्यान।....

इस दुःखको सहन करना धर्म है या अधर्म ? और धर्मोमें तो ऐसा नहीं देखा जाता। हिंदू-धर्मशास्त्रियोंने भूल तो न की हो ? वासंती देवीको देखकर मुझे इसमें भूल नहीं दिखाई देती, बल्कि धर्मकी शुद्ध भावना दिखाई देती है। वैधव्य हिंदू-धर्मका शृंगार है। धर्मका भूषण वैराग्य है, वैभव नहीं। दुनिया भले ही और कुछ कहे तो कहती रहे।

परंतु हिंदू-शास्त्र किस वैधव्यकी स्तुति और स्वागत करता है ? १५ वर्षकी मुग्धाके वैधव्यका नहीं जो कि विवाहका अर्थ भी नहीं जानती। बाल-विधवाओंके लिए वैधव्य धर्म नहीं, अधर्म है। वासंती देवीको मदन खुद आकर ललचावे तो वह भस्म हो जाय। वासंती देवीके शिवकी तरह तीसरी आंख है। परंतु पंद्रह वर्षकी बालिका वैधव्यकी शोभाको क्या समझ सकती है ? उसके लिए तो वह अत्याचार ही है। बाल-विधवाओंकी वृद्धिमें मुझे हिंदू-धर्मकी अवनति दिखाई देती है। वासंती देवी-जैसीके वैधव्यमें मैं शुद्धधर्मका पोषण देखता हूं। वैधव्य सब तरह, सब जगह, सब समय, अनिवार्य सिद्धांत नहीं है। वह उस स्त्रीके लिए धर्म है जो उसकी रक्षा करती है।

रिवाजके कुएंमें तैरना अच्छा है। उसमें डूबना आत्महत्या है।

जो बात स्त्रीके संबंधमें वही बात पुरुषके संबंधमें होनी चाहिए। रामने यह कर दिखाया। सती सीताका त्याग भी वे सह सके। अपने ही किए त्यागसे खुद ही जले। जबसे सीता गई तबसे रामचंद्रका तेज घट गया। सीताके देहका तो त्याग उन्होंने किया पर उसे अपने हृदयकी स्वामिनी बना लिया। उस दिनसे उन्हें न तो शृंगार भाया, न दूसरा

वैभव। कर्तव्य समझकर तटस्थताके साथ राज्यकार्य करते हुए शांत रहे।

जिस बातको आज वासंती देवी सह रही है, जिसमेंसे वे अपने विलासको हटा सकती हैं, वे बातें जबतक पुरुष न करेंगे तबतक हिंदू धर्म अधूरा है। 'एकको गुड़ और दूसरेको थूहर' यह उल्टा न्याय ईश्वरके दरबारमें नहीं हो सकता। परंतु आज हिंदू पुरुषोंने इस ईश्वरीय कानूनको उलट दिया है। स्त्रीके लिए वैधव्य कायम रक्खा है और अपने लिए श्मशान-भूमिमें ही दूसरे विवाहकी योजना करनेका अधिकार !

वासंती देवीने अबतक किसीके देखते, आंसूकी एक बूंदतक नहीं गिराई है। फिर भी उनके चेहरेपर तेज तो आ ही नहीं रहा है। उनकी मुखाकृति ऐसी हो गई है कि मानों भारी बीमारीसे उठी हों। यह हालत देखकर मैंने उनसे निवेदन किया कि थोड़ा समय बाहर निकलकर हवा खाने चलिए। मेरे साथ मोटरमें तो बैठीं; पर बोलने क्यों लगीं ? मैंने कितनी ही बातें चलाईं—वे सुनती रहीं। पर खुद उसमें बराय नाम शरीक हुईं। हवाखोरी की तो, पर पछताईं। सारी रात नींद न आई। "जो बात मेरे पतिको अतिशय प्रिय थी वह आज इस अभागिनीने की। यह क्या शोक है ?" ऐसे विचारोंमें रात गई। भोंबल (उनका लड़का) मुझे यह खबर दे गया ! आज मेरा मौनवार है। मैंने कागजपर लिखा है—"यह पागलपन हमें माताजीके सिरसे निकालना होगा। हमारे प्रियतमको प्रिय लगनेवाली बहुतेरी बातें हमें उसके वियोगके बाद करनी पड़ती हैं। माताजी विलासके लिए मोटरमें नहीं बैठी थीं, केवल आरोग्यके लिए बैठी थीं। उन्हें स्वच्छ हवाकी बहुत जरूरत थी। हमें उनका बल बढ़ाकर उनके शरीरकी रक्षा करनी होगी। पिताजीके कामको चमकाने और बढ़ानेके लिए हमें उनके शरीरकी आवश्यकता है। यह माताजीसे कहना।"

"माताजीने तो मुझसे कहा था कि यह बात ही आपसे न कही जाय।

पर मुझसे न रहा गया। अभी तो यही उचित मालूम होता है कि आप उन्हें मोटरमें बैठनेके लिए न कहें।"--भोंवलने कहा।

बेचारा भोंवल! किसीका लौटाया न लौटनेवाला लड़का आज बकरी जैसा बनकर बैठा है। उसका कल्याण हो!

पर इस साध्वी विधवाका क्या? वैधव्य प्यारा लगता है, फिर भी असह्य मालूम होता है। सुधन्वा खौलते हुए तेलके कड़ाहमें भटकता था और मुझ-जैसे दूर रहकर देखनेवाले उसके दुःखकी कल्पना करके कांपते थे। सती स्त्रियो, अपने दुःखको तुम संभालकर रखना! वह दुःख नहीं, सुख है। तुम्हारा नाम लेकर बहुतेरे पार उतर गये हैं और उतरेंगे।

बासंती देवीकी जय हो! (हिं० न०, २.७.२५)

: १९२ :

गणेशशंकर विद्यार्थी

गणेशशंकर विद्यार्थीकी मृत्यु हम सबकी स्पर्धाके योग्य थी। उनका रक्त वह सीमेण्ट है, जो अंततोगत्वा दोनों जातियोंको जोड़ेगा। कोई पैक्ट या समझौता हमारे दिलोंको नहीं जोड़ेगा; पर जैसी वीरता गणेशशंकर विद्यार्थीने बताई है, आखिरकार वह अवश्य ही पाषाण-से-पाषाण हृदयोंको पिघलावेगी, और पिघलाकर एक करेगी। पर यह जहर, किसी तरह क्यों न हो, इतना गहरा फैला गया है, कि गणेशशंकर विद्यार्थीके समान महान, आत्मत्यागी और नितांत वीर पुरुषका रक्त भी, आज तो इसे धो बहानेके लिए शायद काफी न हो। अगर भविष्यमें ऐसा मौका फिर आवे तो इस भव्य बलिदानसे हम वैसा ही प्रयत्न करनेकी प्रेरणा प्राप्त करें। मैं उनकी दुःखिनी विधवा और उनके बच्चोंके साथ अपनी

आंतरिक समवेदना प्रकट नहीं करता, पर गणेशशंकर विद्यार्थीकी योग्य पत्नी और संतानके नाते उन्हें बधाई देता हूं। वह मरे नहीं हैं। आज वह तबसे कहीं अधिक सच्चे रूपमें जी रहे हैं, जब हम उन्हें भौतिक शरीरमें जीवित देखते थे और पहचानते न थे। (हिं० न०, ९.४.३१)

... ...

तीन कार्यकर्त्ता—दो हिंदू और एक मुसलमान—दंगा मिटानेके खयालसे गये और उसी कोशिशमें काम आये। मुझे उनकी मौतका दुःख नहीं होता। रुलाई नहीं आती। इसी तरह श्री गणेशशंकर विद्यार्थीने कानपुरके दंगेमें अपनी जान कुरबान की थी। दोस्तोंने उनको रोका और कहा था, "दंगेकी जगह न जाइए। वहां लोग पागल हो गये हैं। वे आपको मार डालेंगे।" लेकिन गणेशशंकर विद्यार्थी इस तरह डरनेवाले नहीं थे। उन्हें यकीन था कि उनके जानेसे दंगा जरूर मिटेगा। वे वहां पहुँचे और दंगेके जोशमें पागल बने लोगोंके हाथों मारे गये। उनकी मौतके समाचार सुनकर मुझे खुशी ही हुई थी। यह सब मैं आपको भड़कानेके लिए नहीं कहता। मैं तो आपको यह समझाना चाहता हूं कि आप मरनेका पाठ सीख लें तो सब खैर-ही-खैर है। अगर गणेश-शंकर विद्यार्थी, वसंतराव और रज्जबअली-जैसे कई नौजवान निकल पड़ें तो दंगे हमेशाके लिए मिट जायं। (ह० से०, १४.७.४६)

: १९३ :

विनोबा भावे

श्री विनोबा भावे कौन हैं? मैंने उन्हें ही इस सत्याग्रहके लिए क्यों चुना? और किसीको क्यों नहीं? मेरे हिंदुस्तान लौटनेपर सन् १९१६

में उन्होंने कालिज छोड़ा था। वे संस्कृतके पंडित हैं। उन्होंने आश्रममें शुरूसे ही प्रवेश किया था। आश्रमके सबसे पहले सदस्योंमेंसे वे एक हैं। अपने संस्कृतके अध्ययनको आगे बढ़ानेके लिए वे एक वर्षकी छुट्टी लेकर चले गये। एक वर्षके बाद ठीक उसी घड़ी, जबकि उन्होंने एक वर्ष पहले आश्रम छोड़ा था, चुपचाप आश्रममें फिर आ पहुंचे। मैं तो भूल ही गया था कि उन्हें उस दिन आश्रममें वापस पहुंचना था। वे आश्रममें सब प्रकारकी सेवा-प्रवृत्तियों—रसोईसे लगाकर पाखाना सफाईतक—में हिस्सा ले चुके हैं। उनकी स्मरण-शक्ति आश्चर्यजनक है। वे स्वभावसे ही अध्ययनशील हैं। पर अपने समयका ज्यादा-से-ज्यादा हिस्सा वे कातनेमें ही लगाते हैं और उसमें ऐसे निष्णात हो गये हैं कि बहुत ही कम लोग उनकी तुलनामें रखे जा सकते हैं। उनका विश्वास है कि व्यापक कताईको सारे कार्यक्रमका केंद्र बनानेसे ही गांवोंकी गरीबी दूर हो सकती है। स्वभावसे ही शिक्षक होनेके कारण उन्होंने श्रीमती आशादेवीको दस्तकारीके द्वारा बुनियादी तालीमकी योजनाका विकास करनेमें बहुत योग दिया है। श्री विनोबाने कताईको बुनियादी दस्तकारी मानकर एक पुस्तक भी लिखी है। वह बिलकुल मौलिक चीज है। उन्होंने हँसी उड़ानेवालोंको भी यह सिद्ध करके दिखा दिया है कि कताई एक ऐसी अच्छी दस्तकारी है जिसका उपयोग बुनियादी तालीममें बखूबी किया जा सकता है। तकली कातनेमें तो उन्होंने क्रांति ही ला दी है और उसके अंदर छिपी हुई तमाम शक्तियोंको खोज निकाला है। हिंदुस्तानमें हाथकताईमें इतनी संपूर्णता किसीने प्राप्त नहीं की जितनी कि उन्होंने की है।

उनके हृदयमें छुआछूतकी गंधतक नहीं है। सांप्रदायिक एकतामें उनका उतना ही विश्वास है जितना कि मेरा। इस्लामधर्मकी खूबियोंको समझनेके लिए उन्होंने एक वर्षतक कुरानशरीफका मूल अरबीमें अध्ययन किया। इसके लिए उन्होंने अरबी भी सीखी। अपने पड़ोसी मुसलमान

भाइयोंसे अपना सजीव संपर्क बनाए रखनेके लिए उन्होंने इसे आवश्यक समझा।

उनके पास उनके शिष्यों और कार्यकर्ताओंका एक ऐसा दल है जो उनके इशारेपर हर तरहका बलिदान करनेको तैयार है। एक युवकने अपना जीवन कोढ़ियोंकी सेवामें लगा दिया है। उसे इस कामके लिए तैयार करनेका श्रेय श्री विनोबाको ही है। औषधियोंका कुछ भी ज्ञान न होनेपर भी अपने कार्यमें अटल श्रद्धा होनेके कारण उसने कुष्ठरोगकी चिकित्साको पूरी तरह समझ लिया है। उसने उनकी सेवाके लिए कई चिकित्साघर खुलवा दिए हैं। उसके परिश्रमसे सैकड़ों कोढ़ी अच्छे हो गये हैं। हाल हीमें उसने कुष्ठ-रोगियोंके इलाजके संबंधमें एक पुस्तिका मराठीमें लिखी है।

विनोबा कई वर्षोंतक वर्धाके महिला-आश्रमके संचालक भी रहे हैं। दरिद्रनारायणकी सेवाका प्रेम उन्हें वर्धाके पासके एक गांवमें खींच ले गया। अब तो वे वर्धासे पांच मील दूर पौनार नामक गांवमें जा बसे हैं और वहांसे उन्होंने अपने तैयार किए हुए शिष्योंके द्वारा गांववालोंके साथ संपर्क स्थापित कर लिया है। वे मानते हैं कि हिंदुस्तानके लिए राजनैतिक स्वतंत्रता आवश्यक है। वे इतिहासके निष्पक्ष विद्वान हैं। उनका विश्वास है कि गांववालोंको रचनात्मक कार्यक्रमके बगैर सच्ची आजादी नहीं मिल सकती और रचनात्मक कार्यक्रमका केंद्र है खादी। उनका विश्वास है कि चरखा अहिंसाका बहुत ही उपयुक्त बाह्यचिह्न है। उनके जीवनका तो वह एक अंग ही बन गया है। उन्होंने पिछली सत्याग्रहकी लड़ाइयोंमें सक्रिय भाग लिया था। वे राजनीतिके मंचपर कभी लोगोंके सामने आये ही नहीं। कई साथियोंकी तरह उनका यह विश्वास है कि सविनय आज्ञा-भंगके अनुसंधानमें शांत रचनात्मक काम कहीं ज्यादा प्रभावकारी होता है, इसकी अपेक्षा कि जहां आगे ही राजनैतिक भाषणोंका अखंड प्रवाह चल रहा है वहां जाकर और भाषण दिए जायें। उनका पूर्ण विश्वास है कि

चरखेमें हार्दिक श्रद्धा रखे बिना और रचनात्मक कार्यमें सक्रिय भाग लिए बगैर अहिंसक प्रतिकार संभव नहीं।

श्री विनोबा युद्धमात्रके विरोधी हैं। परंतु वे अपनी अंतरात्माकी तरह उन दूसरोंकी अंतरात्माका भी उतना ही आदर करते हैं जो युद्धमात्रके विरोधी तो नहीं हैं, परंतु जिनकी अंतरात्मा इस वर्त्तमान युद्धमें शरीक होनेकी अनुमति नहीं देती। अगरचे श्री विनोबा दोनों दलोंके प्रतिनिधिके तौरपर हैं, यह हो सकता है कि सिर्फ हालके इस युद्धमें विरोध करनेवाले दलका खास एक और प्रतिनिधि चुननेकी मुझे आवश्यकता अनुभव हो। (ह० से०)

... ...

विनोबा लिख सकते हैं मगर वह कभी न लिखेंगे। शास्त्र-रचनाके लिए समय निकालना उनकी दृष्टिमें अधर्म होगा। मैं भी उसे अधर्म समझूंगा। संसारको शास्त्रकी भूख नहीं। सच्चे कर्मकी है और हमेशा रहेगी। जो इस भूखको मिटा सकता है, वह शास्त्र-रचनामें न पड़े। (ह० से०, ३.३.४६)

: १६४ :

रशब्रुक विलियम्स

एक पत्र-लेखकने 'बांबे क्रानिकल' पत्रसे काट कर यह कतरन भेजी है:

"मि० रशब्रुक विलियम्सने 'मांचेस्टर गार्डिअन' में एक पत्र लिखकर यह जाहिर किया है कि गये वर्षके आखिरी महीनोंके दरमियान कांग्रेसके दक्षिण पक्षीय नेता एक ऐसा निश्चित रुख अख्तियार करते जा रहे थे कि जिससे प्रांतीय सरकारोंसे मिलते-जुलते किसी-न-किसी समझौतेपर केन्द्रीय

सरकारके संबंधमें भी पहुंचनेकी बात सरकारको सुझा सकते थे। इसलिए कांग्रेसको अपनी ताकतका हिसाब लगाना पड़ा। लीगके प्रतापसे, मुसलमानोंका समर्थन तो उन्हें प्राप्त ही नहीं और बगैर ऐसे समर्थनके, जबतक कुछ नए मित्र न मिल जायं, तबतक केन्द्रीय सरकार बनाना नामुमकिन है। इसी वजहसे देशी राज्योंपर सारा ध्यान केंद्रित करना कांग्रेसके लिए जरूरी हो गया, जिससे देशी राज्योंसे ऐसे अनुकूल प्रतिनिधि प्राप्त किए जा सकें, जोकि कांग्रेसके कार्यक्रमसे सहानुभूति रखते हों।"

मि० रशब्रुक विलियम्स भारतके पुराने 'शत्रु' हैं। असहयोगके दिनोंमें हिंदुस्तानकी सरकारी वार्षिक पुस्तक इंडियन ईयर बुकका उन्होंने संपादन किया था, जिसमें अपनी दिमागी उपजकी उन्होंने कितनी ही बातें लिखी थीं और जिन हकीकतोंका उल्लेख वे छोड़ नहीं सके, उनको उन्होंने अपने रंगमें रंग दिया था। अखबारोंमें प्रकाशित रिपोर्ट अगर सही है तो कहना चाहिए कि उन्होंने फिर अपना वही पुराना भेस 'मांचेस्टर गार्डीअन' में दिखाया है। (ह० से०, ११.३.३९)

: १९५ :

स्वामी विवेकानन्द

रामकृष्ण और विवेकानंदके बारेमें रोलांकी पुस्तकें ध्यान और दिलचस्पीके साथ पढ़ ली हैं। रामकृष्णके बारेमें हमेशा पूज्यभाव तो रहा ही था। उनके बारेमें पढ़ा तो थोड़ा ही था, मगर कई चीजें भक्तोंसे सुनी थीं। उनपरसे भाव पैदा हुआ था। यह नहीं कह सकता कि रोलांकी पुस्तकें पढ़नेसे उसमें वृद्धि हुई है। असलमें रोलांकी दोनों पुस्तकें पश्चिमके लिए लिखी गई हैं। यह तो नहीं कहूंगा कि हमें उनसे कुछ नहीं मिल सकता।

मगर मुझे बहुत कम मिला है। जिन बातोंका मुझपर प्रभाव पड़ा था, वे भी रोलांकी पुस्तकोंमें हैं। उसके सिवा जो नई बातें हैं उनसे प्रभावमें कोई वृद्धि नहीं हुई। मुझे यह नहीं लगा कि जितने भक्त रामकृष्ण थे, उतने विवेकानंद भी थे। विवेकानंदका प्रेम विस्तृत था, वे भावनासे भरपूर थे और भावनामें बह भी जाते थे। यह भावना उनके ज्ञानके लिए हिरण्मय पात्र थी। धर्म और राजनीतिमें उन्होंने जो भेद किया था, वह ठीक नहीं था। मगर इतने महान व्यक्तिकी आलोचना कैसी? और आलोचना करने बैठ जाएं तो कैसी भी आलोचना की जा सकती है। हमारा धर्म तो यह है कि ऐसे व्यक्तियोंसे जो कुछ लिया जा सके वह ले लें। तुलसीदासका जड़-चेतनवाला दोहा मेरे जीवनमें अच्छी तरह रम गया है, इसलिए आलोचना करना मुझे पसंद ही नहीं आता। मगर मैं जानता हूं कि मेरे मनमें भी कोई आलोचना रह गई हो तो उसे जाननेकी तुम्हें इच्छा हो सकती है। इसीलिए मैंने इतना लिख दिया है। मेरे मनमें शंका नहीं है कि विवेकानंद महान सेवक थे। यह हमने प्रत्यक्ष देख लिया कि जिसे उन्होंने सत्य मान लिया, उसके लिए अपना शरीर गला डाला। सन् १९०१ में जब मैं बेलूर मठ देखने गया था, तब विवेकानंदके भी दर्शन करनेकी बड़ी इच्छा थी। मगर मठमें रहनेवाले स्वामीने बताया कि वे तो बीमार हैं। शहरमें हैं और उनसे कोई मिल नहीं सकता। इसलिए निराशा हुई थी। मुझमें जो पूज्यभाव रहा है, उसके कारण मैं बहुत-सी आपत्तियोंसे बच गया हूं। उस समय कोई ऐसा प्रसिद्ध व्यक्ति नहीं था, जिससे मैं भावनाके साथ मिलने दौड़ न जाता था। और ज्यादातर जगहोंपर मैं भी, कलकत्तेके लंबे रास्तोंमें, पैदल ही जाता था। इसमें भक्तिभाव था, रुपया बचानेकी वृत्ति न थी। वैसे मेरे स्वभावमें यह चीज भी हमेशा रही तो है ही।
(म० डा०, १.७.३२)

: १६६ :

वेरस्टेन्ट

'प्रिटोरिया न्यूज' के संपादक वेरस्टेन्ट भी खुले दिलसे भारतीयोंकी सहायता करते थे। एक बार प्रिटोरियाके टाउन हालमें वहांके मेयरकी अध्यक्षतामें गोरोंकी एक विराट सभा हुई थी। उसका हेतु था एशियानिवासियोंकी बुराई और खूनी कानूनकी हिमायत करना। अकेले वेरस्टेन्टने इसका विरोध किया। अध्यक्षने उन्हें बैठ जानेकी आज्ञा दी, पर उन्होंने बैठनेसे साफ इन्कार कर दिया। इस पर गोरोंने उनके बदनपर हाथ डालनेकी धमकी भी दी, तथापि वे टाउन-हालमें उसी प्रकार नरसिंहकी तरह गरजते रहे। आखिर सभाको अपना प्रस्ताव बिना पास किए ही उठना पड़ा। (द० अ० स०, १९२५)

: १६७ :

अल्बर्ट वेस्ट

सबसे पहले अल्बर्ट वेस्टका नाम उल्लेखनीय है। कौमके साथ तो उनका संबंध युद्धके पहले हीसे हो गया; पर मुझसे इससे भी पहले उनका परिचय हुआ था। जब मैंने जोहांसबर्गमें अपना दफ्तर खोला उस समय मेरे साथमें बालबच्चे नहीं थे। पाठकोंको याद होगा कि दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंका तार मिलते ही मैं एकदम रवाना हो गया था और सो भी एक सालमें लौट आनेके विचारसे। जोहांसबर्गमें एक निरामिष भोजन-गृह था। उसमें मैं नियमसे सुबह-शाम भोजनके लिए जाता था।

वेस्ट भी वहीं आते थे। वहीं मेरा उनका परिचय हुआ। वह एक दूसरे गोरेके भागीदार बनकर एक छापाखाना चला रहे थे। सन् १६०४में जोहांसबर्गके भारतीयोंमें भीषण प्लेगका प्रकोप हुआ था। मैं रोगियोंकी सेवा-शुश्रूषामें लगा और उसके कारण उस भोजन-गृहका मेरा जाना अनियमित हो गया। जब कभी जाता तो इस खयालसे कि मेरे संसर्गका भय दूसरे गोरेको न हो, मैं सबके पहले ही भोजन कर लेता था। जब लगातार दो दिन तक उन्होंने मुझे नहीं देखा तो वह घबड़ा गये। तीसरे दिन सुबह जब मैं हाथ-मुंह धो रहा था, वेस्टने मेरे कमरेका दरवाजा खटखटाया। दरवाजा खोलते ही मैंने वेस्टका प्रसन्न चेहरा देखा।

उन्होंने हँसकर कहा—"आपको देखते ही मेरे दिलको तसल्ली हुई। आपको भोजन-गृहमें न देखकर मैं घबरा गया था। अगर मुझसे आपकी कोई सहायता हो सकती हो तो जरूर कहें।"

मैंने हँसते हुए उत्तर दिया—"रोगियों की शुश्रूषा करोगे?"

"क्यों नहीं? जरूर, मैं तैयार हूं।"

इस विनोदके बीच मैंने कुछ सोच लिया। मैंने कहा—"आपसे मैं दूसरे प्रकारके उत्तरकी अपेक्षा ही नहीं करता था। पर इस कामके लिए तो मेरे पास बहुतसे सहायक हैं। आपसे तो मैं इससे भी कठिन काम लेना चाहता हूं। मदनजीत यहींपर रुका हुआ है। 'इंडियन ओपीनियन' और प्रेस निराधार हैं। मदनजीतको मैंने प्लेगके कामके लिए रख छोड़ा है। आप अगर डर्बन जाकर उस कामको संभाल लें तो सचमुच यह बड़ी भारी सहायता होगी। पर मैं आपको अधिक नहीं दे सकूंगा। सिर्फ १० पौंड मासिक वेतन। हां, अगर प्रेसमें कुछ लाभ हो तो उसमें आपका आधा हिस्सा रहेगा।"

"काम अवश्य जरा कठिन है। मुझे अपने भागीदारकी आज्ञा लेनी होगी। कुछ उगाही भी बाकी है। पर कोई चिंताकी बात नहीं। आज शामतककी मोहलत आप मुझे दे सकते हैं?"

"अवश्य, हम लोग छः बजे शामको पार्कमें मिलेंगे।"

"जरूर, मैं भी आ पहुंचूंगा।"

छः बजे शामको हम मिले। भागीदारकी आज्ञा भी मिल गई। उगाही कामको मेरे जिम्मे करके दूसरे दिन शामकी ट्रेनसे मि० वेस्ट रवाना हो गये। एक महीनेके अंदर उनकी यह रिपोर्ट आई—

"इस छापेखानेमें नफा तो नामको भी नहीं है। नुकसान-ही-नुकसान है। उगाही बहुत बाकी है; लेकिन हिसाबका कोई ठिकाना नहीं है। ग्राहकोंके नाम भी पूरे नहीं लिखे गये हैं। मैं यह शिकायत करनेके खयालसे नहीं लिखता। आप विश्वास रखिए, मैं लाभके लालचसे यहां नहीं आया हूं। अतः इस कामको भी नहीं छोड़ूंगा। पर मैं आपको यह तो सूचित किये ही देता हूं कि बहुत दिनतक आपको क्षति-पूर्ति करनी होगी।"

ग्राहकोंको बढ़ाने तथा मेरे साथ कुछ बातचीत करनेके लिए मदनजीत जोहांसबर्ग आये थे। मैं हर महीने थोड़े-बहुत पैसे देकर घाटेकी पूर्ति किया ही करता था। इसलिए मैं निश्चय रूपसे यह जानना चाहता हूं कि और कितना गहरा इस काममें मुझे उतरना होगा? पाठकोंसे मैं यह तो पहले ही कह चुका हूं कि मदनजीतको छापेखानेका कोई अनुभव नहीं था। इसलिए मैं इस बातके विचार ही में था कि किसी अनुभवी आदमीको उनके साथमें रख दिया जाय तो बड़ा अच्छा हो। यह विचार मैं कर रहा था कि इधर प्लेगका प्रकोप शुरू हो गया। इस काममें तो मदनजीत बड़े कुशल और निर्भय आदमी थे, इसलिए मैंने उनको यहीं रख लिया। इस-लिए वेस्टके स्वाभाविक प्रश्नका उपयोग मैंने कर लिया और उन्हें समझा दिया कि प्लेगके कारण ही नहीं; बल्कि स्थायी रूपसे उन्हें यहां रखना होगा। इसलिए उन्होंने उपर्युक्त रिपोर्ट भेजी। पाठक जानते ही हैं कि इसलिए छापेखानेको तथा पत्रको भी फिनिक्स ले जाना पड़ा। वेस्टके १० पौंड मासिक वेतनके बदले फिनिक्समें तीन पौंड हो गये। पर इन परिवर्तनोंमें वेस्टकी पूरी सम्मति थी। मुझे तो एक दिन भी ऐसा अनुभव

नहीं हुआ कि उन्हें कभी यह विचार ही पैदा हुआ हो कि मेरी आजीविका कैसे चलेगी। धर्मका अभ्यास न होनेपर भी वह एक अत्यंत धार्मिक मनुष्य हैं। वह बड़े ही स्वतंत्र स्वभावके मनुष्य हैं। जो वस्तु उन्हें जैसी दीखे उसे वैसी ही कहनेवाले हैं। कालेको कृष्णवर्णी नहीं, काला ही कहेंगे। उनकी रहन-सहन बड़ी सीधी-सादी थी। हमारे परिचयके समय वह ब्रह्मचारी थे। मैं जानता हूं कि वह ब्रह्मचर्यका पालन भी करते थे। कितने ही साल बाद वह इंग्लैंड गये और अपने माता-पिताका क्रिया-कर्म करके अपनी शादी भी कर लाए। मेरी सलाहसे अपने साथमें स्त्री, सास और कुंवारी बहनको भी ले आये। वे सब फिनिक्समें ही बड़ी सादगीके साथ रहते थे और हर प्रकारसे भारतीयोंमें मिल जाते थे। मिस वेस्ट अब ३५ वर्षकी हुई होंगी। पर अब भी कुमारी हैं। वह अपना जीवन बड़ी पवित्रता-के साथ व्यतीत कर रही हैं। उन्होंने कोई कम सेवा नहीं की। फिनिक्समें रहनेवाले शिष्योंको रखना उन्हें अंग्रेजी पढ़ाना, सार्वजनिक पाकशालामें रसोई करना, मकानोंको साफ रखना, किताबें संभालना, छापाखानेमें टाइप जमाना (कम्पोज करना) तथा छापेखानेका अन्य काम करना आदि सब काम वे करती थीं। इन कामोंमेंसे कभी एक कामके लिए भी इस महिलाने आनाकानी नहीं की। आजकल वह फिनिक्समें नहीं है; पर इसका कारण यह है कि मेरे भारतवर्ष लौट आनेपर उनका हल्का-सा भार भी छापाखाना नहीं उठा सकता था। वेस्टकी सासकी अवस्था इस समय ८० वर्षसे भी अधिककी होगी। वह सिलाईका काम बहुत अच्छा जानती है। और ऐसे काममें इतनी वयोवृद्धा महिला भी पूरी सहायता करती थी। फिनिक्समें उन्हें सब दादी (ग्रैनी) कहते थे और उनका बड़ा सम्मान करते थे। [illegible] भी कहनेकी आवश्यकता नहीं है। जब [illegible] चले गये तब वेस्ट कुटुंबने मगनलाल गांधीके साथ मिलकर फिनिक्सका सब कामकाज संभाल लिया था। पत्र और छापेखानेका बहुत-सा काम वेस्ट करते थे। मेरी तथा

अन्य लोगोंकी अनुपस्थितिमें गोखलेको तार वगैरह भेजना होता तो वेस्ट ही भेजते। अंतमें वेस्ट भी पकड़े गये (पर वे फौरन ही छोड़ दिये गये थे) तब गोखले घबराये और एन्ड्रयूज तथा पियर्सनको उन्होंने भेजा। (द० अ० स०, १९२५)

... ...

वेस्टका जन्म विलायतके लाउथ नामक गांवमें एक किसान कुटुंबमें हुआ था। पाठशालामें उन्होंने बहुत मामूली शिक्षा प्राप्त की थी। वह अपने ही परिश्रमसे अनुभवकी पाठशालामें पढ़कर और तालीम पाकर होशियार हुए थे। मेरी दृष्टिमें वह एक शुद्ध, संयमी, ईश्वर-भीरु साहसी और परोपकारी अंग्रेज थे। (आ० क०, १९२७)

... ...

अब, वेस्टका विवाह भी यहीं क्यों न मना लूं ? उस समय ब्रह्मचर्य विषयक मेरे विचार परिपक्व नहीं हुए थे। इसलिए कुंवारे मित्रोंका विवाह करा देना उन दिनों मेरा एक पेशा हो बैठा था। वेस्ट जब अपनी जन्मभूमिमें माता-पितासे मिलनेके लिए गये तो मैंने उन्हें सलाह दी थी कि जहां तक हो सके विवाह करके ही लौटना; क्योंकि फिनिक्स हम सबका घर हो गया था और हम सब किसान बन बैठे थे, इसलिए विवाह या वंश-वृद्धि हमारे लिए भयका विषय नहीं था।

वेस्ट लेस्टरकी एक सुंदरी विवाह लाए। इस कुमारिकाके परिवारके लोग लेस्टरके जूतेके एक बड़े कारखानेमें काम करते थे। श्रीमती वेस्ट भी कुछ समयतक उस जूतेके कारखानेमें काम कर चुकी थीं। उसे मैंने सुंदरी कहा है, क्योंकि मैं उसके गुणोंका पुजारी हूं और सच्चा सौंदर्य तो मनुष्यका गुण ही होता है। वेस्ट अपनी सासको भी साथ लाये थे। यह भली बुढ़िया अभी जिंदा है। अपनी उद्यमशीलता और हँसमुख स्वभावसे वह हम सबको शर्माया करती थी। (आ० क०, १९२७)

: १६८ :

स्वामी श्रद्धानन्द

पहाड़-जैसे दीखनेवाले महात्मा मुंशीरामके दर्शन करने और उनके गुरुकुलको देखने जब मैं गया तब मुझे बहुत शांति मिली। हरद्वारके कोलाहल और गुरुकुलकी शांतिका भेद स्पष्ट दिखाई देता था। महात्माजीने मुझपर भरपूर प्रेमकी वृष्टि की। (आ० क०)

... ...

स्वामी श्रद्धानंदजी पर भी लोग विश्वास नहीं करते हैं। मैं जानता हूं कि उनकी तकरीरें ऐसी होती हैं, जिनपर कई बार बहुतोंको गुस्सा आ जाता है। परंतु वे भी हिंदू-मुस्लिम एकताको जरूर चाहते हैं; पर दुर्भाग्यसे वे यह मानते हैं कि हरएक मुसलमान आर्यसमाजी बनाया जा सकता है, जैसे कि शायद बहुतेरे मुसलमान मानते हैं कि हरएक गैर मुस्लिम किसी-न-किसी दिन इस्लामको कबूल कर लेगा। श्रद्धानंदजी निडर और बहादुर आदमी हैं। अकेले हाथों उन्होंने गंगाजीके किनारेपर तराईके जंगलको एक जगमगाते गुरुकुलके रूपमें बदल दिया। उन्हें अपने तथा अपने कामपर श्रद्धा है; पर वे जल्दबाज हैं और थोड़ी-सी बातपर जोशमें आ जाते हैं। पर इन तमाम दोषोंके होते हुए मैं उन्हें ऐसा नहीं मानता जो समझाए न समझे। स्वामीजीको तो मैं उन्हीं दिनोंसे चाहने लगा हूं जब मैं दक्षिण अफ्रीकामें था। हां, अब मैं उन्हें ज्यादा अच्छी तरह पहचानने लगा हूं, पर इससे मेरा प्रेम उनके प्रति कम नहीं हो पाया। मेरा प्रेम ही मुझसे यह कहला रहा है। (हिं० न०, १.६.२४)

... ...

जिसकी उम्मीद थी वह हो गुजरा। कोई छः महीने हुए स्वामी श्रद्धानंदजी सत्याग्रहाश्रममें आ कर दो-एक दिन ठहरे थे। बातचीतमें उन्होंने

मुझसे कहा था कि उनके पास जब-तब ऐसे पत्र आया करते थे जिनमें उन्हें मार डालनेकी धमकी दी जाती थी। किस सुधारकके सिरपर बोली नहीं बोली गई है ? इसलिए उनके ऐसे पत्र पानेमें अचंभेकी कोई बात नहीं थी। उनका मारा जाना कुछ अनोखी बात नहीं है।

स्वामीजी सुधारक थे। वे कर्मवीर थे, वचनवीर नहीं। जिसमें उनका विश्वास था, उसका वे पालन करते थे। उन विश्वासोंके लिए उन्हें कष्ट झेलने पड़े। वे वीरताके अवतार थे। भयके सामने उन्होंने कभी सिर नहीं झुकाया। वे योद्धा थे और योद्धा रोग-शैय्या पर मरना नहीं चाहता। वह तो युद्धभूमिका मरण चाहता है।

कोई एक महीना हुआ कि स्वामी श्रद्धानंदजी बहुत बीमार पड़े। डाक्टर अंसारी उनकी चिकित्सा करते थे। जितने अनुरागसे उनसे संभव था, डाक्टर अंसारी उनकी सेवा करते थे। इस महीनेके शुरूमें मेरे पूछनेपर उनके पुत्र प्रो० इंद्रने तार दिया था कि स्वामीजी अब अच्छे हैं और मेरा प्रेम और दुआ मांगते हैं। मैं उनके बिना मांगे ही उनपर प्रेम और उनके लिए भगवानसे प्रार्थना करता ही रहता था।

भगवानको उन्हें शहीदकी मौत देनी थी। इसलिए जब वे बीमार ही थे तभी उस हत्यारेके हाथ मारे गये, जो इस्लामपर धार्मिक चर्चाके नामपर उनसे मिलना चाहता था, जो स्वामीजीकी प्रेरणासे आने दिया गया, जिसने प्यास मिटानेको पानी मांगनेके बहाने स्वामीजीके ईमानदार नौकर धर्मसिंहको पानी लेनेको बाहर हटा दिया और जिसने नौकरकी गैरहाजिरीमें बिस्तर पर पड़े हुए रोगीकी छातीमें दो प्राणघातक चोटें कीं। स्वामीजीके अंतिम शब्दोंकी हमें खबर नहीं। लेकिन अगर मैं उन्हें कुछ भी पहचानता था तो मुझे बिलकुल संदेह नहीं है कि उन्होंने अपने परमात्मासे उसके लिए क्षमायाचना की होगी जो यह नहीं जानता था कि वह पाप कर रहा है। इसलिए गीताकी भाषामें वह योद्धा धन्य है जिसे ऐसी मृत्यु प्राप्त होती है।

मृत्यु तो हमेशा ही धन्य होती है मगर उस योद्धाके लिए तो और भी अधिक जो अपने धर्मके लिए यानी सत्यके लिए मरता है। मृत्यु कोई शैतान नहीं है। वह तो सबसे बड़ी मित्र है। वह हमें कष्टोंसे मुक्ति देती है। हमारी इच्छाके विरुद्ध भी हमें छुटकारा देती है। हमें बराबर ही नई आशाएं, नए रूप देती है। वह नींदके समान मीठी है; किंतु तो भी किसी मित्रके मरनेपर शोक करनेकी चाल है। अगर कोई शहीद मरता है तो यह रिवाज नहीं रहता। अतएव इस मृत्युपर मैं शोक नहीं कर सकता। स्वामीजी और उनके संबंधी ईर्ष्याके पात्र हैं; क्योंकि श्रद्धानंदजी मर जानेपर भी अभी जीते हैं। उससे भी अधिक सच्चे रूपमें वे जीते हैं, जब वे हमारे बीच अपने विशाल शरीरको लेकर घूमा करते थे। ऐसी महिमामय मृत्युपर जिस कुलमें उनका जन्म हुआ था, जिस जातिके वे थे, वे सभी धन्यताके पात्र हैं। वे वीर पुरुष थे। उन्होंने वीरगति पाई। (हिं० न०, २३.१२.२६)

... ...

मेरे पास अखबारवाला आया था और कुछ जाहिर करनेका आग्रह उसने दो बार किया। मैंने उसे कह दिया कि मुझसे कुछ कहना पार लगे मेरी ऐसी हालत नहीं है। श्रीमती नायडूने भी मुझे यही कहा कि कुछ संदेशा दो। उनसे भी मैंने इन्कार कर दिया। अब फिर मुझे यही आज्ञा होती है। इसलिए अपने उद्‌गार प्रकट करनेकी कोशिश करता हूं; किंतु मेरी ऐसी दशा नहीं है कि मैं कुछ कह सकूं। हां, तत्काल मेरे मनपर कैसा असर हुआ यह मैं कह सकता हूं सही। लालाजीका तार मेरे पास पहुंचते ही तुरंत मैंने मालवीयजी आदिको खबर भेजी और लालाजी और स्वामी-जीके सुपुत्र इंद्रको तार भेजा। इस तारमें दुख या शोक प्रकट न करके मैंने तो जनाया कि यह सामान्य मृत्यु नहीं है। इस मृत्युपर मैं रो नहीं सकता। अगर्चे कि यह मृत्यु असह्य है तो भी मेरा दिल शोक करनेको नहीं कहता। वह तो कहता है कि यह मृत्यु हम सबको मिले तो क्या ही अच्छा हो?

स्वामी श्रद्धानंदकी दृष्टिसे इस प्रसंगको धर्म प्रसंग कहेंगे। वे बीमार थे। मुझे तो कुछ खबर न थी; किंतु एक मित्रने खबर दी कि स्वामीजी भाग्यसे ही बच जायं तो बच जायं। पीछेसे मेरे तार के उत्तरमें उनके लड़केका तार मिला कि उन्हें धीरे-धीरे आराम हो रहा है। यह भी मालूम हुआ कि डाक्टर अंसारी बहुत अच्छी तरह सेवा-शुश्रूषा कर रहे हैं। इस प्रकारकी गंभीर बीमारीमें वे बिछौनेपर पड़े थे और उस बिछौनेपर ही उनके प्राण लिए गये। मरना तो सबको है, किंतु यों मरना किस कामका! सारे हिंदुस्तानमें और पृथ्वी पर जहां-जहां हिंदुस्तानी लोग होंगे, वहां-वहां स्वामीजीके, स्वाभाविक बीमारी से, मरनेसे जो असर होता उसकी अपेक्षा इस अपूर्व मरणसे अजीब ही असर होगा। मैंने भाई इंद्रको समवेदनाका एक भी तार या पत्र नहीं लिखा है। उन्हें और कुछ दूसरा कह ही नहीं सकता। इतना ही कह सकता हूं कि तुम्हारे पिताको जो मृत्यु मिली है वह धन्य मृत्यु है।

किंतु यह सब बात तो मैंने स्वामीजीकी दृष्टिसे, मेरी अपनी दृष्टिसे की है। मैं अनेक बार कह चुका हूं कि मेरे लेखे हिंदू और मुसलमान दोनों ही एक हैं। मैं जन्मसे हिंदू हूं और हिंदू धर्ममें मुझे शांति मिलती है। जब-जब मुझे अशांति हुई, हिंदू धर्ममेंसे ही मुझे शांति मिली है। मैंने दूसरे धर्मोंका भी निरीक्षण किया है और इसमें चाहे जितनी कमियां और त्रुटियां होवें तो भी मेरे लिए यही धर्म उत्तम है। मुझे ऐसा लगता है और इसीसे मैं अपनेको सनातनी हिंदू मानता हूं। कितने सनातनियोंको मेरे इस दावेसे दुःख होता है कि विलायतसे आकर यह सुधरा हुआ आदमी हिंदू कैसा! किंतु मेरा हिंदू होनेका दावा इससे कुछ कम नहीं होता और यह धर्म मुझे कहता है कि मैं सबके साथ मित्रतासे रहूं। इसीसे मुझे मुसलमानोंकी दृष्टि भी देखनी है।

मुसलमानकी दृष्टिसे जब इस बातका विचार करता हूं तो मुझे दूसरी ही बात मालूम पड़ती है। यह कांड मुसलमानके हाथ बन पड़ा धर्म-

चर्चाके बहाने घरमें प्रवेश करके उसने यह कृत्य किया। नौकरने तो कहा, "स्वामीजी बीमार हैं। आज नहीं मिल सकते।" दरवाजेपर हुज्जत हुई। स्वामीजीने सुनकर कहा, "अच्छा है, आ जाने दो।" और स्वामीजीमें उससे बात करनेकी शक्ति न रहनेपर भी उन्होंने बातें कीं। बात करनेकी तो उनमें ताकत ही नहीं थी। स्वामीजीको तो उसे समझाकर बिदा कर देनेको था, इसलिए बुलाकर कहा, "भाई, अच्छे हो जानेपर तुम्हें जितनी बहस करनी हो कर लेना; किंतु आज तो बिछौनेपर पड़ा हूं।" इस पर उसने पानी मांगा। धर्मसिंहको स्वामीजीने आज्ञा दी, "इनको पानी पिला दो।" आज्ञाकारी नौकर पानी लेने जाता है तबतक तो यहां उसने रिवाल्वर निकाल ली। एकसे संतोष न हुआ तो दो गोली मारीं। स्वामीजी-ने उसी समय प्राण खोए। धर्मसिंह आवाज सुनकर अपने मालिकको बचाने दौड़ा; किंतु बचावे कौन ? ईश्वरको स्वामीजीके शरीरकी रक्षा नहीं करनी थी। धर्मसिंहके ऊपर भी वार हुआ। उसे चोट लगी। वह अस्पतालमें है। मारनेवाला अब्दुल रशीद हिरासतमें है। ऐसे संयोगोंके बीच किए गये इस खूनसे मुसलमानोंके लिए हिंदुओंमें कैसा भाव पैदा होगा, इसका मुझे बहुत दुःख है और इसमें भी शंका नहीं है कि हिंदू जनताका मुसलमानोंके प्रति उलटा ख्याल होगा; क्योंकि आज दोनों जातियोंमें प्रेम नहीं है, विश्वास नहीं है।....

हमारे लिए यह एक अच्छा शिक्षा-पाठ बनना चाहिए कि स्वामीजीका खून अब्दुल रशीदके हाथों हो। इससे हम एक-दूसरेको समझ लें।....

श्रद्धानंदजी और मेरे बीच कैसा संबंध था, वह तो आज मैं यहां नहीं कहूंगा। मेरे सामने वे अपने दिलकी बातें कहा करते थे। कोई छः महीने हुए जब वे आश्रममें आये थे तब कहते थे, "मेरे पास धमकीके कितने पत्र आते हैं। लोग धमकी देते हैं कि तुम्हारी जान ले ली जायगी; पर मुझे उनकी कुछ परवा नहीं।" वह तो बहादुर आदमी थे। उनसे बढ़कर बहादुर आदमी मैंने संसारमें नहीं देखा। मरनेका उन्हें डर नहीं था; क्योंकि

वे सच्चे आस्तिक, ईश्वरवादी आदमी थे। इसीसे उन्होंने कहा मेरी जान अगर ले ही ली जाय तो उसमें होना ही क्या है। (हिं० न०, ६.१.२७)

... ...

यह उचित ही है कि हिंदू महासभाकी ओरसे स्वामी श्रद्धानंदके स्मरणके लिए धनकी सहायता मांगी जाय। स्वामीजी संन्यास-धारणके बाद जिन कामोंके लिए जीते थे, उनके लिए चंदा इकट्ठा करनेका हिंदू महासभाने निश्चय किया है। इस निश्चयके लिए मैं उसे साधुवाद देता हूं। वे काम हैं, अस्पृश्यता-निवारण, शुद्धि और संगठन। ५ लाखकी अपील की गई है। 'अस्पृश्यता' के लिए और शुद्धि और संगठनके लिए भी उतनेकी ही।....जिनका शुद्धिमें विश्वास है उन्हें इस अपीलपर सहायता देनेका पूरा अधिकार है।

...मेरे लिए अछूतोद्धारके ही कोषकी कीमत है। इसकी अपनी निराली ही शक्ति है। हिंदू-धर्मके सुधार और इसकी सच्ची रक्षाके लिए अछूतोद्धार सबसे बड़ी वस्तु है। इसमें सब कुछ शामिल है और इसलिए हिंदूधर्मका यह सबसे काला दाग है। अगर यह मिट जाय तो शुद्धि और संगठनसे जो कुछ मिल सकेगा, वह सब हमें इससे अपने आपही मिल जायगा। और मैं यह इसलिए नहीं कहता कि अछूतोंकी, जिन्हें हरएक हिंदूको गले लगाना चाहिए, बहुत बड़ी संख्या है; किंतु इसलिए, कि एक पुराने और असभ्य रिवाजको तोड़ डालनेके ज्ञान और उससे होनेवाली शुद्धिसे इतनी ताकत मिलेगी जो रोकी न जा सकेगी। इसलिए अस्पृश्यता-निवारण एक आध्यात्मिक क्रिया है। स्वामीजी उस सुधारके जीवित मूर्त्ति थे; क्योंकि वे इसमें आधासाझा सुधार नहीं चाहते थे। वे समझौता नहीं कर सकते, दब नहीं सकते थे। अगर उनकी चलती तो वे बात-की-बातमें हिंदू धर्मसे 'अस्पृश्यता' को निकाल बाहर करते। वे हरएक मंदिरको, हरएक कुएंको, सबकी बराबरीके हकके साथ अछूतोंके लिए खोल देते और इसका फल भुगत लेते। स्वामी श्रद्धानंदजी-

के लिए मैं इससे अच्छा कोई स्मारक नहीं सोच सकता कि हरएक हिंदू आजसे अपने दिलोंसे 'अस्पृश्यता' की अपवित्रता निकाल दे और उनके साथ सगोंके समान बर्ताव करे। उस आदमीकी पैसाकी सहायता तो, मेरी समझमें, अस्पृश्यताको हिंदूधर्मसे सदाके लिए निकाल डालनेकी उसके दृढ़ निश्चयका चिह्न भर होगी।

स्वामीजीको सामुदायिक और धार्मिक रूपसे सम्मान प्रदर्शन करनेके लिए जनवरी, सोमवारका दिन, निश्चय किया गया है। मुझे आशा है कि हर शहर-गांवमें यह होगा। मगर इस प्रदर्शनका असल मतलब ही गायब हो जायगा अगर उसमें भाग लेनेवाले अपनेमेंसे उसीके साथ 'अस्पृश्यता' की अपवित्रताको दूर न करें। हरएक अछूतको उसमें शामिल होना चाहिए और क्या ही अच्छी बात होती अगर उसी दिन अछूतोंके लिए सभी मंदिर खोल दिए जाते। अगर संगठित रूपसे उद्योग किया जाय तो उस दिन सूर्यास्तके पहले ही कोष भरा जा सकता है।

स्वामीजीसे मेरा पहला परिचय तब हुआ जब वे महात्मा मुंशीरामके नामसे प्रसिद्ध थे। वह परिचय भी पत्रोंसे हुआ। उस समय वे कांगड़ी गुरुकुलके प्रधान थे जो कि उनका सबसे पहला और बड़ा शिक्षा-क्षेत्रका काम है। वे सिर्फ पश्चिमी शिक्षापद्धतिसे ही संतुष्ट न थे। लड़कोंमें वे वेद-शिक्षाका प्रचार करना चाहते थे और वे पढ़ाते थे हिंदीके जरिए, अंग्रेजीके नहीं। शिक्षा-कालमें वे उन्हें ब्रह्मचारी रखना चाहते थे। दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहियोंके लिए उस समय जो धन इकट्ठा किया जा रहा था, उसमें चंदा देनेके लिए लड़कोंको उन्होंने उत्साहित किया था। वे चाहते थे कि लड़के खुद कुली बन कर, मजदूरी कर के चंदा दें; क्योंकि वह युद्ध क्या कुलियोंका नहीं था? लड़कोंने यह सब पूरा कर दिखाया और पूरी मजदूरी कमाकर मेरे पास भेजी। इस विषयमें स्वामीजीने मुझे जो पत्र भेजा था, वह हिंदीमें था। उन्होंने मुझे 'मेरे प्रिय भाई' कहकर लिखा था।

इसने मुझे महात्मा मुंशीरामका प्रिय बना दिया। इससे पहले हम दोनों कभी मिले नहीं थे।

हम लोगोंके बीचके सूत्र ऐन्ड्रयूज थे। उनकी इच्छा थी कि जब कभी मैं देश लौटूं, उनके तीनों मित्रों, कवि ठाकुर, प्रिन्सीपल रुद्र और महात्मा मुंशीराम से परिचय प्राप्त करूं।

वह पत्र पानेके बाद से हम दोनों एक ही सेनाके सैनिक बन गये। उनके प्रिय गुरुकुलमें हम १९१५में मिले और उसके बाद से हरएक मुलाकातमें हम दोनों परस्पर निकट आते गये और एक दूसरेको ज्यादा अच्छी तरह समझने लगे। प्राचीन भारत, संस्कृत और हिंदीके प्रति उनका प्रेम असीम था। बेशक, असहयोगके पैदा होनेके बहुत पहले से ही वे असहयोगी थे। स्वराजके लिए वे अधीर थे। अस्पृश्यतासे वे नफरत करते थे और अस्पृश्योंकी स्थिति ऊंची करना चाहते थे। उनकी स्वाधीनता पर कोई बंधन लगाना वे नहीं सह सकते थे।

जब 'रौलट ऐक्ट' का आन्दोलन शुरू हुआ तो उसे सबसे पहले शुरू करनेवालोंमें से वे थे। उन्होंने मुझे बहुत ही प्रेमसे भरा हुआ एक पत्र भेजा। किन्तु वीरमगाम और अमृतसर कांडके बाद सत्याग्रहको स्थगित किया जाना वे नहीं समझ सके। उस समयसे हमारे बीच मतभेद शुरू हुए; किंतु उससे हम लोगोंके भाई-भाईके संबंधमें कभी कोई अंतर नहीं पड़ा। उस मतभेदसे मुझपर उनका बाल-सुलभ स्वभाव प्रकट हुआ। परिणामका विचार किए बिना ही, उन्हें जैसा मालूम था मुझसे सच्ची बात कह दी। वे अतिसाहसिक थे। समय बीतनेके साथ-साथ हम दोनोंमें जो स्वभावका अंतर था, उसे मैं देखता गया; किंतु उससे तो उनकी आत्माकी शुद्धता ही सिद्ध हुई। सबको सुनाकर विचार करना कुछ पाप नहीं है। यह तो एक गुण है। यह सत्यप्रियताका सर्वप्रधान लक्षण है। स्वामीजीने अपने विचार गुप्त रक्खे ही नहीं।

बारडोलीके निश्चयसे उनका दिल टूट गया। मुझसे वे निराश हो

गए। उनका प्रकट विरोध बहुत जबर्दस्त था। मेरे नाम उनके निजी पत्रोंमें और भी विरोध होता था; किंतु हमारे मतभेद पर जितना वे जोर देते थे, प्रेमपर भी उतना ही। प्रेमका विश्वास केवल पत्रोंमें ही दिला देनेसे वे संतुष्ट न थे। मौका मिलनेपर उन्होंने मुझे ढूंढ़ निकाला और मुझे अपनी स्थिति समझाई और मेरी समझनेकी कोशिश की। मगर मुझे मालूम होता है कि मुझे ढूंढ़नेका असल कारण यह था कि अगर जरूरत हो तो मुझे वे विश्वास दिला सकें कि एक छोटे भाईके समान मुझपर उनकी प्रीति जैसी-की-तैसी बनी हुई है।

आर्य समाज और उसके संस्थापक पर मेरे मतोंसे और उनके नामका उल्लेख करनेसे उन्हें बहुत कष्ट हुआ; परन्तु इस धक्केको सह लेनेकी शक्ति हमारी मित्रतामें थी। वे यह नहीं समझ सकते थे कि महर्षिके विषयमें मेरे मतों और अपने व्यक्तिगत शत्रुओंके प्रति ऋषिकी असीम क्षमाका एक साथ कैसे मेल बैठ सकता है। महर्षिमें उनकी इतनी अधिक श्रद्धा थी कि उन पर या उनकी शिक्षाओं पर कोई भी टीका वे सह नहीं सकते थे।

शुद्धि आन्दोलनके लिए मुसलमान पत्रोंमें उनकी बड़ी कड़ी आलोचनाएं और निन्दा की गई हैं। मैं स्वयं उनके दृष्टिविन्दुको स्वीकार नहीं कर सका था। अब भी मैं उसे नहीं मानता। किन्तु मेरी नजरमें, अपने दृष्टिविन्दुसे वे, अपनी स्थितिका पूरा बचाव करते थे; जबतक शुद्धि और तबलीग मर्यादाके भीतर रहें, तबतक दोनों ही बराबर छूटके अधिकारी हैं।

. . . . अगर हम हिन्दू और मुसलमान दोनों शुद्धिका आन्तरिक अर्थ समझ सकते तो स्वामीजीकी मृत्युसे भी लाभ उठाया जा सकता था।

एक महान सुधारकके जीवनके स्मरणोंको मैं सत्याग्रहाश्रममें, उनके कुछ महीनों पहलेके आखिरी आगमनकी बातके बिना खतम नहीं कर सकता। मुसलमान मित्रोंको मैं विश्वास दिलाता हूं कि वे मुसलमानोंके दुश्मन

नहीं थे। कुछ मुसलमानोंका विश्वास वे बेशक नहीं करते थे; किन्तु उन लोगोंसे उनका कुछ द्वेष नहीं था। उनका ख्याल था कि हिन्दू दबा दिये गए हैं और उन्हें बहादुर बनकर अपनी और अपनी इज्जतकी रक्षा करने योग्य बनना चाहिए। इस बारेमें उन्होंने मुझसे कहा था कि "मेरे विषयमें बड़ी गलतफहमी फैली हुई है। मेरे विरुद्ध कही जानेवाली कई बातोंमें मैं बिलकुल निर्दोष हूं। मेरे पास धमकीके कितने—एक पत्र आया करते हैं।" मित्रगण उन्हें अकेले चलनेसे मना करते थे। मगर यह परम आस्तिक पुरुष उनका जवाब दिया करता था, "ईश्वरकी रक्षाके सिवाय और किस रक्षाका मैं भरोसा करूं? उसकी आज्ञाके बिना एक तिनका भी नहीं हिलता। मैं जानता हूं कि जबतक वह मुझसे इस देहके द्वारा सेवा लेना चाहता है, मेरा बाल बांका नहीं हो सकता।"

आश्रममें रहते समय उन्होंने आश्रम पाठशालाके लड़के-लड़कियोंसे बातें कीं। उनका कहना था कि हिन्दू-धर्मकी सबसे बड़ी रक्षा आत्मशुद्धिसे ही होगी, भीतरसे ही होगी। चारित्र्य और शरीरके गठनके लिए, ब्रह्मचर्यपर वे बहुत जोर देते थे। (हिं० न०, ६.१.२७)

... ...

स्वामी श्रद्धानन्दके स्वर्गवासके विषयमें महासभाके सामने निम्नलिखित आशयका प्रस्ताव पेश किया गया था :

"स्वामी श्रद्धानंदजीका नामर्दी और दगाबाजीसे खून किया गया है, इसके लिए महासभा अपना तीव्र तिरस्कार प्रकट करती है और स्वदेश तथा स्वधर्मकी सेवामें अपना जीवन और शक्ति अर्पण करनेवाले, अंत्यजों और वैसे ही पतितों और निर्बलोंकी सहायताको निडर होकर दौड़नेवाले इस वीर और महानुभावकी करुणाजनक मृत्युसे उसकी सम्मतिमें देशकी न पूरी होनेवाली हानि हुई है।"

यह प्रस्ताव पेश करनेका भार पहले मौलाना मुहम्मदअलीपर दिया गया था, किंतु अंतमें सभापति महोदयने गांधीजीसे वह प्रस्ताव पेश करनेको

कहा। गांधीजीको लंबा भाषण न करना था, किंतु अनायास ही, अनिच्छासे, अथवा ईश्वरेच्छासे कहिए उन्हें लंबा भाषण करना पड़ा।.... उस भाषणसे सारी सभाके हृदयका तार मानों झनझना रहा था। भाषणोंके बहुतसे उद्गार तो महासमितिके भाषणवाले ही थे। किंतु एक-दो बातें ऐसी थीं जो उस भाषणमें अप्रकट थीं, इस भाषण में उनपर विस्तारसे विवेचन किया गया। महासमितिमें उन्होंने कहा था—"इस खूनके लिए शोक करना भला नहीं मालूम होता। ऐसा खून तो हरएक वीर पुरुष चाहता है।" इस वाक्यको जरा सुधार करके उन्होंने कहा :

वीर पुरुषको जब ऐसी मृत्यु मिलती है तो वह उसे मित्रके समान गले लगाता है। किन्तु इससे कोई यह नहीं चाहता कि उसका कोई खून करे। कोई भी अपने साथ अन्याय करे, गुनहगार बने, कोई भी मनुष्य दुष्कृत्य करे, ऐसी इच्छा ही करना अनुचित है।

स्वामीजी वीरोंके अग्रणी थे। अपनी वीरतासे उन्होंने भारतको आश्चर्य-चकित कर दिया था। इसका साक्षी मैं हूं कि देशके लिए अपना शरीर कुर्बान करनेकी उन्होंने प्रतिज्ञा ली थी। वे अनाथ-बंधु थे। अछूतोंके लिए उन्होंने जितना किया उससे अधिक हिन्दुस्तानमें दूसरे किसीने नहीं किया है। उनकी दूसरी सेवाओंका वर्णन मैं यहां करना नहीं चाहता। स्वामीजीके जैसे वीर, देशभक्त, ईश्वरके अनन्यभक्त और सेवकका खून देशके लिए जैसा लाभदायक है, वैसा ही, उसे दुःख होना भी स्वाभाविक है; क्योंकि हम लोग अपूर्ण मनुष्य हैं।

....हमारे यहां दो जातियां हैं। बदनसीबीसे वे एक-दूसरेको जहरीली नजरोंसे देखती हैं। एक-दूसरेको दुश्मन मानती हैं। इसी कारण यह हत्या हो सकी है। मुसलमान मानते हैं कि स्वामीजी, लालाजी और मालवीयजी मुसलमानोंके दुश्मन हैं। उधर हिन्दू समझते हैं कि सर अबदुर्रहीम तथा दूसरे मुसलमान हिन्दुओंके शत्रु हैं। दोनोंके ख्याल निहायत खोटे

हैं। स्वामीजी इस्लामके दुश्मन न थे, मालवीयजी और लालाजी नहीं हैं। लालाजी और मालवीयजीको अपने विचार प्रकट करनेका पूरा अधिकार है और उनके विचार जिन्हें गलत मालूम हों, उन लोगोंको उन्हें गाली देनेका अधिकार नहीं है। हिन्दुस्तानके नम्र सेवककी हैसियतसे मेरी यह सम्मति है। जब कभी हम अखबार देखें, भाग्यसे ही ऐसा कोई मुसलमान अखबार मिलता हो जिसमें इन देश-सेवकोंको गाली न दी गई हो। उन्होंने क्या गुनाह किया है? वे जिस रीतिसे काम करना चाहते हैं, उसमें हम भले ही शामिल न हों; किन्तु मेरा मत है कि मालवीयजी अपनी सेवाओंसे भारत-भूषण बने हुए हैं। (तालियां) तालियोंसे आप देश-सेवा नहीं कर सकते। मैं आज जो कुछ बोल रहा हूं वह ईश्वरको सामने रखकर। मेरे हृदयके भीतर आग जल रही है। उसकी दो-चार चिनगारियां ही मैं तुम्हें दे रहा हूं, जिसमें हम उनकी आत्मबलिसे पूरा लाभ उठावें और उनके पवित्र रुधिरसे अपना दिल शुद्ध करें। सच्ची दृष्टिसे मैं आज वही शुद्धि चाहता हूं जो श्रद्धानन्दजी चाहते थे। मालवीयजीको मैंने भारत-भूषण कहा है; किन्तु लालाजी भी जो मानते हैं उसे ही कहनेवाले हैं। उनकी भी देश-सेवा कुछ कम नहीं है। सर अबदुर्रहीम मानते हैं कि मुसलमानोंको बंगालमें अधिक नौकरियां मिलनी चाहिए। उनकी राय हमें भले ही न रुचे मगर इसके लिए हम क्या उन्हें गाली देंगे? मुहम्मदअली कहते हैं कि गांधीके लिए मुझे मान है, आदर है मगर जो मुसलमान कुरानशरीफपर ईमान लाता है, उसका ईमान गांधीके ईमानसे कहीं अच्छा है। इसपर हम बुरा क्यों मानें? .... स्वामीजी आत्म-बलिदानसे दूसरा ही धर्म बतला गये हैं। उन्होंने एक बार मुझसे पूछा था कि आर्यसमाज उदार कैसे नहीं? आप क्या जानते हैं कि महर्षि दयानन्दने अपनेको जहर देनेवालेके साथ क्या किया था। मैंने जवाब दिया कि मैं महर्षिकी क्षमाशीलताको जानता हूं। मगर स्वामीजी तो महर्षिके भक्त थे। उन्होंने सारी कथा कह सुनाई। महर्षि क्षमाशील थे; क्योंकि

उनके आगे युधिष्ठिरका उज्ज्वल उदाहरण था। वे उपनिषदोंके भक्त थे। श्रद्धानन्दजी भी वैसे ही क्षमाशील थे। शुद्धिपर बातें करते समय उन्होंने एक बार कहा था कि "मैं मुसलमानोंको हिन्दुओंका दुश्मन नहीं मानता।" 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के सिद्धान्तका उपदेश करनेवाले और गीताके भक्त श्रद्धानन्दजी किसीको दुश्मन क्योंकर मान सकते थे? उन्होंने कहा, "मैं मुसलमानको भाई मानता हूं, मित्र मानता हूं; किन्तु हिन्दूको भी भाई मानता हूं और उसकी सेवा करना चाहता हूं।"

मेरा धर्म मुझे बतलाता है कि कोई मुसलमान मेरे मुंहपर थूके तो भी मैं उसे भाई और मित्र समझूं। मैं बतलाता हूं कि इन तीनोंमेंसे कोई मुसलमानोंका दुश्मन नहीं है। वैसे ही सर अबदुर्रहीम या मियां फजली-हुसैन हिन्दुओंके शत्रु नहीं। मियां फजलीहुसैनने मुझसे कहा था कि मैं कांग्रेसवाला हूं और मुझे हिन्दुओंसे मुहब्बत है, मगर इससे मुसलमानों-की सेवा क्यों न करूं? वे कहते हैं कि आधी नौकरियां मुसलमानोंको मिलनी चाहिए। इसपर तुम कहो कि एक भी नहीं देनी चाहिए। मगर इसपरसे हिन्दुओंका दुश्मन उन्हें क्योंकर माना जायगा? हम अपनी कल्पनाशक्तिका दुरुपयोग करके काल्पनिक दुश्मन बना लेते हैं। मैं फिर कहता हूं कि सर अबदुर्रहीम, जिन्ना, अलीभाई हिन्दुओंके शत्रु नहीं और मालवीयजी तथा लालाजी मुसलमानोंके दुश्मन नहीं हैं।....मुसलमान भी आज इकरार करते हैं कि श्रद्धानन्दजीमें बुराई न थी, वे मैले दिलके आदमी न थे, उनके वे दुश्मन न थे।

रशीदको मैंने भाई क्यों कहा है, यह तुम अब समझ सके होंगे। मैं तो उसे गुनहगार भी नहीं मानता। गुनहगार तो मैं हूं, लालाजी हैं, मालवीयजी हैं, अलीभाई हैं। गीतामें कहा है 'समत्वं योग उच्यते'। इन्सान इन्सानके बीचमें फर्क न करो। ब्राह्मण और चांडाल, हाथी और गायके बीच अन्तर न रक्खो। इससे मैंने कहा कि रशीद मेरा भाई है और वह गुनहगार भी नहीं है।

आज श्रद्धानन्दजीके लिए आंसू बहानेका समय नहीं है। आज तो क्षत्रियता बतानेका अवसर है। क्षत्रियता क्षत्रियका खास गुण भले ही न हो मगर ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र सभी उसे दिखा सकते हैं। खासकर आजका 'स्वराज युग' हम सबके लिए क्षत्रियताका युग है। इसलिए रोनेकी बात छोड़ दें और श्रद्धानन्दजीके बलिदानसे, रशीदके किये खूनसे जो पाठ मिले उसे हृदयमें धरें। (हि० न०, १३.१.२७)

. . . .

स्वामीजीका देहांत हुआ ही नहीं है। देहांत तो तब होगा जब हम उनकी सच्ची देहको मिटानेकी कोशिश करेंगे, अगर्चे कि सच्ची बात तो यह है कि हमारी कोशिशसे भी उनकी देहका नाश होनेको नहीं है। जबतक यह गुरुकुल कायम है, जबतक एक भी स्नातक गुरुकुलकी सेवा करता है, तबतक स्वामीजी जीते ही हैं। स्वामीजीका शरीर तो किसी दिन गिरनेको था ही। पर स्वामीजीका सबसे बड़ा काम गुरुकुल है, उन्होंने अपनी सारी शक्ति इसमें लगा दी थी, इसे पैदा करनेमें उन्होंने अधिक-से-अधिक तपश्चर्या की थी। तुमने सत्यकी प्रतिज्ञा ली है। अगर तुम अपने वचन का पालन करोगे तो किसीकी शक्ति नहीं कि वह गुरुकुलको मिटा दे।

पर गुरुकुलको चिरस्थायी रखनेके लिए उस वीरता, ब्रह्मचर्य और क्षमा की जरूरत है, जो हमने उनके जीवनमें देखी। वीरताका लक्षण क्षमा, और ब्रह्मचर्य और वीर्यका संयम है। वीरता और वीर्यकी रक्षासे तुम देश और धर्मकी पूरी-पूरी रक्षा कर सकोगे। मैं जानता हूं कि यह काम मुश्किल है। तुम्हारे यहांके बहुतसे विद्यार्थियोंके पत्र मेरे पास पड़े हुए हैं। कोई मेरी स्तुति करता है तो कोई गाली देते हैं। स्तुति तो नाकाम चीज है उसका असर मेरे ऊपर नहीं होता। परंतु जब विद्यार्थी चिढ़कर गाली देते हैं तो मुझे चिंता होती है क्योंकि क्रोधसे वीर्यका नाश होता है। स्वामीजीके सामने मैंने ब्रह्मचर्यकी अपनी व्याख्या रक्खी थी और वे मेरे साथ सम्मत थे। किसी स्त्रीका मलिन स्पर्श न करनेमें ही ब्रह्मचर्य नहीं होता। हां, ब्रह्मचर्य

वहांसे शुरू जरूर होता है। पर क्षमाकी पराकाष्ठा ब्रह्मचर्यका लक्षण है। पिछले साल स्वामीजी जब टंकारियासे पीछे लौटते समय मुझसे मिलने गये थे तो उन्होंने मुझसे कहा कि 'हिंदूधर्मकी रक्षा नीतिसे ही संभव है।' अगर तुम वैदिक आचार और विचारकी रक्षा करना चाहते हो तो तुम यह वस्तु याद रक्खो कि तुम्हें पग-पगपर रुपये मिल जायंगे, मगर ब्रह्मचर्यका, नीतिका पाया यहांपर न होगा तो तुम्हारा गुरुकुल मिट्टीमें मिल जायगा। इस भूमिके तो आत्मा नहीं है। इसकी आत्मा तुम्हीं हो। अगर तुम आत्म-बल खो दोगे और 'उदरनिमित्तं बहुकृतवेष:' जैसे बन जाओगे तो तुम्हारी सारी शिक्षा बेकार जायगी।

मैं आज तुम्हारे आगे चर्खा और खादीकी बात करने नहीं आया हूं। तुम्हारा पहला काम ब्रह्मचर्य और वीरताका—क्षमाका है। उसे भूल जाओगे तो स्वामीजीका काम कायम नहीं रहेगा। रशीदकी गोलीसे स्वामीजीका क्या हुआ? वे तो उस गोलीसे ही अमर हुए।

स्वामीजीका दूसरा काम अछूतोद्धार था। जिन शब्दोंमें मालवीयजीने खादीकी वकालत की, मैं नहीं कर सकता। पर इतना जरूर कहूंगा कि अगर हम हमेशा गरीबों और अछूतोंकी फिक्र रक्खेंगे तो खादी से अलग नहीं रह सकते।

ईश्वर तुम सबके ब्रह्मचर्य, सत्य और तुम्हारी प्रतिज्ञाओंकी रक्षा करे, गुरुकुलका कल्याण करे और स्वामीजीका हरएक काम परमात्मा चालू रक्खे! (हि० न०, ३१.३.२७)

* * *

अगर कोई मुझे 'महात्मा' के नामसे पुकारते भी थे तो मैं यही सोच लेता था कि महात्मा मुंशीरामजीके बदले भूलसे मुझे किसीने पुकार लिया होगा। उनकी कीर्ति तो मैंने दक्षिण अफ्रीकामें ही सुन ली थी। हिंदुस्तानसे धन्यवाद और सहानुभूतिका संदेश भेजनेवालोंमें एक वे भी थे और मैं

जानता था कि हिंदुस्तानकी जनताने उन्हें उनकी देश-सेवाओंके लिए महात्माकी उपाधि दी थी। (२१.१.४२)

: १९९ :

कुमारी श्लेजीन

अब एक पवित्र बालाका परिचय देता हूं। गोखलेने उसे जो प्रमाणपत्र दिया उसको पाठकोंके सामने रक्खे बिना मैं नहीं रह सकता। इस बालाका नाम मिस श्लेजीन है। मनुष्योंको पहचाननेकी गोखलेकी शक्ति अद्भुत थी। डेलागोआबेसे जंजीबार तक बातचीत करनेके लिए हमें अच्छा शांत समय मिल गया था। दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय तथा अंग्रेज नेताओं-से उनका अच्छा परिचय हो गया था। इनमेंसे मुख्य पात्रोंका आपने सूक्ष्म चरित्र-चित्रण कर बताया और मुझे बराबर याद है कि उन्होंने मिस श्लेजीनको भारतीय तथा गोरोंमें भी सबसे पहला स्थान दिया।

"इसका जैसा निर्मल अंतःकरण, कामके वक्त एकाग्रता, दृढ़ता मैंने बहुत थोड़े लोगोंमें देखी है। और बिना किसी आशा-प्रलोभनके इसे भारतीय आंदोलनमें इस तरह सर्वार्पण करते हुए देखकर तो मैं आश्चर्य-चकित हो गया हूं। इन सभी गुणोंके साथ-साथ उसकी होशियारी और फुर्तीलापन उसे इस युद्धमें एक अमूल्य सेविका बना रहा है। मेरे कहनेकी आवश्यकता तो नहीं, पर फिर भी कहे देता हूं कि तुम इसे मत छोड़ना।"

मेरे पास एक स्काचकुमारी शार्टहैंड और टाइपिस्टका काम करती थी। उसकी भी प्रामाणिकता और नीतिशीलता बेहद थी। मुझे अपने जीवनमें यों तो कई कटु अनुभव हुए हैं, पर इतने सुंदर चारित्र्यवान् अंग्रेज तथा भारतीयोंसे मेरा संबंध हुआ है कि मैं तो उसे सदा अपना अहोभाग्य

ही मानता आया हूं। इस स्काच कुमारी मिस डिकके विवाहका अवसर आया और उसका वियोग हुआ। मि० कैलनबेक मिस श्लेजीनको लाए और मुझे कहने लगे,

"इस बालाको इसकी मांने मुझे सौंपा है। यह चतुर है, प्रामाणिक है, पर इसमें मजाककी आदत और स्वाधीनता हदसे ज्यादा है। शायद इसे उद्धत भी कह सकते हैं। आप संभाल सकें तो इसे आप अपने पास रक्खें। मैं इसे आपके पास तनखाहके लिए नहीं रखता।"

मैं तो अच्छे शार्टहैंड टाइपिस्टको २० पौंड मासिक वेतन तक देनेके लिए तैयार था। मिस श्लेजीनकी योग्यता और शक्तिका मुझे कुछ पता नहीं था। मि० कैलनबेकने कहा :

"अभी तो इसे महीनेके छः पौंड दीजिएगा।"

मैंने फौरन मंजूर कर लिया। शीघ्र ही मुझे उसके विनोदी स्वभाव-का अनुभव हुआ। पर एक महीनेके अंदर तो मुझे उसने अपने वशमें कर लिया। रात और दिन जिस समय चाहो काम देती। उसके लिए कोई बात असंभव या मुश्किल तो थी ही नहीं। इस समय उसकी उम्र १६ वर्षकी थी। मवक्किल तथा सत्याग्रहियोंको भी उसने अपनी निस्पृहता तथा सेवाभावसे वशमें कर लिया था। यह कुमारी आफिस और युद्धकी एक चौकीदार बन गई। किसी भी कार्यकी नीतिके विषयमें उसके हृदयमें शंका उत्पन्न होते ही वह स्वतंत्रता-पूर्वक मुझसे वाद-विवाद करती और जबतक मैं उसकी नीतिके विषयमें उसे कायल न कर देता तबतक उसे कभी सन्तोष नहीं होता था। जब हम सब लोग गिरफ्तार हो गए और अगुआओं में से लगभग अकेले काछलिया बाहर रह गए तब इस कुमारिकाने लाखोंका हिसाब संभाला था। भिन्न-भिन्न प्रकृतिके मनुष्योंसे काम लिया था। काछलिया भी उसीका आश्रय लेते, उसीकी सलाह लेते थे। हम लोगोंके जेलमें चले जानेपर डोकने 'इंडियन ओपीनियन' की जिम्मे-दारी अपने हाथोंमें ली; पर वह वृद्ध पुरुष भी 'इंडियन ओपीनियन'के

लिए लिखे हुए लेख मिस श्लेजीनसे पहले पास करा लेते ! और मुझसे उन्होंने कहा,

"अगर मिस श्लेजीन नहीं होती तो मैं कह नहीं सकता कि अपने कामसे मुझे खुद भी संतोष होता या नहीं। उसकी सहायता और सूचनाओंकी सच्ची कीमत आंकना बहुत मुश्किल है।"

और कई बार उसकी सूचनाएं उचित ही होंगी, यह समझकर मैं उन्हें मंजूर भी कर लिया करता। पठान, पटेल, गिरमिटिया, आदि सब जातिके और सभी उम्रके भारतीयोंसे वह सदा घिरी हुई रहती थी। वे उसकी सलाह लेते और वह जैसा कहती वैसा ही करते। दक्षिण अफ्रीकामें अक्सर गोरे लोग भारतीयोंके साथ एक ही डिब्बेमें नहीं बैठते। ट्रान्सवालमें तो उनको एक जगह बैठनेकी मनाही भी करते हैं। वहां तो यह भी कानून था कि सत्याग्रही तीसरे ही दर्जेमें सफर करें। इतना होते हुए भी मिस श्लेजीन जानबूझ कर भारतीयोंके डब्बेमें बैठती और गार्डके साथ झगड़ा भी करती। मुझे भय था और श्लेजीनको भी इस बातकी शंका थी कि वह कहीं गिरफ्तार न हो जाय। पर यद्यपि सरकारको उसकी शक्ति, उसका युद्ध-विषयक ज्ञान और सत्याग्रहियोंके हृदयपर उसने जो अधिकार प्राप्त कर लिया था उसका पता था, तथापि उसने मिस श्लेजीनको गिरफ्तार नहीं किया। और इसमें उसने सचमुच बुद्धि और विवेकसे ही काम लिया। मिस श्लेजीनने कभी अपने छः के सवा छः पौंड होनेकी न तो इच्छा ही की और न कुछ कहा ही। उनकी कितनी ही आवश्यकताओंका जब मुझे पता लगा तब मैंने उनके दस पौंड कर दिए। उन्होंने बड़ी हिचकिचाहटके साथ उसको स्वीकार किया; पर उससे आगे बढ़ानेसे तो उन्होंने साफ इन्कार कर दिया। उन्होंने कहा :

"इससे अधिककी मुझे आवश्यकता ही नहीं और यदि इतनेपर भी ले लूं तो जिस उद्देश्यसे मैं आपके पास आई हूं वही व्यर्थ हो जाय।"

इस उत्तरके आगे मैं चुप हो गया। पाठक शायद यह जाननेके लिए उत्सुक हो रहे होंगे कि मिस श्लेजीनने कहां तक शिक्षा पाई थी? वे केप यूनीवर्सिटीकी इन्टरमीजिएट परीक्षामें उत्तीर्ण हो चुकी थीं। शार्टहैंड वगैरामें पहले दर्जेके प्रमाणपत्र प्राप्त किए थे। युद्धसे मुक्त होनेपर वे उसी यूनीवर्सिटीकी ग्रेजुएट हुई और इस समय ट्रान्सवालकी किसी कन्या पाठशालामें प्रधानाध्यापिका हैं। (द० अ० स० १६२५)

. . . .

. . . . यह बहन आज ट्रांसवालमें किसी हाईस्कूलमें शिक्षिका-का काम करती है। जब मेरे पास यह आई थी तब उसकी उम्र १७ वर्षकी होगी। उसकी कितनी ही विचित्रताओंके आगे मैं और मि० कैलेनबेक हार खा जाते। वह नौकरी करने नहीं आई थी। उसे तो अनुभव प्राप्त करना था। उसके रगो-रेशेमें कहीं रंग-द्वेषका नाम न था। न उसे किसीकी परवाह ही थी। वह किसीका अपमान करनेसे भी नहीं हिचकती थी। अपने मनमें जिसके संबंधमें जो विचार आते हों वह कह डालनेमें जरा संकोच न करती थी। अपने इस स्वभावके कारण वह कई बार मुझे कठिनाइयोंमें डाल देती थी; परंतु उसका हृदय शुद्ध था, इससे कठिनाइयां दूर भी हो जाती थीं। उसका अंग्रेजी ज्ञान मैंने अपनेसे हमेशा अच्छा माना था, फिर उसकी वफादारीपर भी मेरा पूर्ण विश्वास था। इससे उसके टाइप किए हुए कितने ही पत्रोंपर बिना दोहराए दस्तखत कर दिया करता था।

उसके त्याग-भावकी सीमा न थी। बहुत समय तक तो उसने मुझसे सिर्फ ६ पौंड महीना ही लिया और अंतमें जाकर १० पौंडसे अधिक लेनेसे साफ इन्कार कर दिया। यदि मैं कहता कि ज्यादा ले लो तो मुझे डांट देती और कहती :

"मैं यहां वेतन लेने नहीं आई हूं। मुझे तो आपके आदर्श प्रिय हैं। इस कारण मैं आपके साथ रह रही हूं।"

एक बार आवश्यकता पड़नेपर मुझसे उसने ४० पौंड उधार लिए थे और पिछले साल सारी रकम उसने मुझे लौटा दी।

त्याग-भाव उसका जैसा तीव्र था वैसी ही उसकी हिम्मत भी जबरदस्त थी। मुझे स्फटिककी तरह पवित्र और वीरतामें क्षत्रियको भी लज्जित करनेवाली जिन महिलाओंसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है उनमें मैं इस बालिकाकी गिनती करता हूं। आज तो वह प्रौढ़ कुमारिका है। उसकी वर्तमान मानसिक स्थितिसे मैं परिचित नहीं हूं; परंतु इस बालिकाका अनुभव मेरे लिए सदा एक पुण्य-स्मरण रहेगा और यदि मैं उसके संबंधमें अपना अनुभव न प्रकाशित करूं तो मैं सत्यका द्रोही बनूंगा।

काम करनेमें वह न दिन देखती थी, न रात। रातमें जब भी कभी हो, अकेली चली जाती और यदि मैं किसीको साथ भेजना चाहता तो लाल-पीली आंखें दिखाती। हजारों जवांमर्द भारतीय उसे आदरकी दृष्टिसे देखते थे और उसकी बात मानते थे। जब हम सब जेलमें थे, जबकि जिम्मेदार आदमी शायद ही कोई बाहर रहा था, तब उस अकेलीने सारी लड़ाईका काम सम्हाल लिया था। लाखोंका हिसाब उसके हाथमें, सारा पत्र-व्यवहार उसके हाथमें और 'इंडियन ओपीनियन' भी उसी हाथमें—ऐसी स्थिति आ पहुंची थी; पर वह थकना नहीं जानती थी।

मिस श्लेज़ीनके बारेमें लिखते हुए मैं थक नहीं सकता; पर यहां तो सिर्फ गोखलेका प्रमाण-पत्र देकर समाप्त करता हूं। गोखलेने मेरे तमाम साथियोंसे परिचय कर लिया और इस परिचयसे उन्हें बहुतोंसे बहुत संतोष हुआ था। उन्हें सबके चरित्रके बारेमें अंदाज लगानेका शौक था। मेरे तमाम भारतीय और यूरोपीय साथियोंमें उन्होंने मिस श्लेज़ीनको पहला नंबर दिया था:

"इतना त्याग, इतनी पवित्रता, इतनी निर्भयता और इतनी कुशलता मैंने बहुत कम लोगोंमें देखी है। मेरी नजरमें तो मिस श्लेज़ीनका नंबर तुम्हारे सब साथियोंमें पहला है।" (आ० क०, १९२७)

: २०० :

आईन्नर

मेरा तो खयाल है कि संसारमें ऐसा एक भी स्थान और जाति नहीं, जिससे यथा समय और संस्कृति मिलनेपर बढ़िया-से-बढ़िया मनुष्य-पुष्प न पैदा होते हों। दक्षिण अफ्रीकामें सभी स्थानोंपर मैं इसके उदाहरण सौभाग्यवश देख चुका हूं। पर केपकालोनी में मुझे इसके उदाहरण अधिक संख्यामें मिले। उनमें सबसे अधिक विद्वान् और विख्यात् हैं श्री मेरीमैन। इन्हें लोग दक्षिण अफ्रीकाके ग्लैडस्टन कहते। केपकालोनी में आप अध्यक्ष भी रह चुके हैं। यदि श्री०मेरीमैनके जैसे श्रेष्ठ नहीं तो उनसे दूसरे नंबरमें वहांके आईनर और मोल्टोनोके परिवार हैं। कानून के विख्यात हिमायती श्री, डब्ल्यू० पी, आईनर इसी आईनर-परिवार-में हो गये हैं। केपकालोनीके प्रधान मण्डलमें भी वे रह चुके हैं। श्री मेरीमैन और ये दोनों परिवार हमेशा हबशियोंका पक्ष लेते और जब-जब उनके हकोंपर हमला होता तब-तब उसके लिए वे झगड़ते। और यद्यपि वे सब भारतीयों और हबशी लोगोंको भिन्न-भिन्न दृष्टिसे देखते तथापि उनकी प्रेमधारा भारतीयोंकी ओर भी अवश्य बहती। उनकी दलील यह थी कि हबशी लोग गोरोंके पहलेसे यहां रह रहे हैं और उनकी यह मातृभूमि है। इसलिए उनका स्वाभाविक अधिकार गोरोंसे नहीं छीना जा सकता। किंतु प्रतिस्पर्धाके भयसे बचनेके लिए यदि भारतीयोंके खिलाफ कुछ कानून बनाए जाएं तो वह बिलकुल अन्यायपूर्ण नहीं कहा जा सकता। पर इतनेपर भी उनका हृदय तो हमेशा भारतीयोंकी ओर ही झुकता। स्वर्गीय गोपालकृष्ण गोखले जब दक्षिण अफ्रीका पधारे थे तब उनके सम्मानमें केपटाउन हालमें जो सभा बुलाई गई थी उसके अध्यक्ष श्री आईनर ही थे। श्रीमेरीमैन ने भी उनसे बड़े प्रेम और विनय-

पूर्वक बातचीत की और भारतीयोंके प्रति अपना प्रेम-भाव दर्शाया। केपटाउनके समाचार-पत्रोंमें भी पक्षपातकी मात्रा इधर-उधर समाचार पत्रोंकी अपेक्षा सदा कम रहती। (द० अ० स० १९२५)

: २०१ :

ओलिव श्राईनर

दूसरी महिला हैं ओलिव श्राईनर। दक्षिण अफ्रीकाके विख्यात श्राईनर-कुटुंबमें उनका जन्म हुआ था। वे बड़ी विदुषी थीं। श्राईनर नाम इतना विख्यात है कि जब उनकी शादी हुई तब उनके पतिको श्राईनर नाम ग्रहण करना पड़ा, जिससे ओलिवका श्राईनर कुटुंबके साथ संबंध दक्षिण अफ्रीकाके गोरोंसे लुप्त न हो जाय। यह कोई उनका वृथाभिमान नहीं था। मेरा विश्वास है कि उन महिलाके साथ मेरा अच्छा परिचय था। उनकी सादगी और नम्रता उनकी विद्वत्ताके समान ही उनका आभूषण थी। कभी एक दिन भी उनके दिमागमें यह खयाल नहीं आया कि उनके हबशी नौकर और स्वयं उनके बीच कोई अंतर है। जहां-जहां अंग्रेजी भाषा बोली जाती है, तहां-तहां उनकी 'ड्रीम्स' नामक पुस्तक आदरके साथ पढ़ी जाती है। वह गद्य है, पर काव्यकी पंक्तिमें रखने योग्य है। और भी उन्होंने बहुत-कुछ लिखा है। इतनी विदुषी, इतनी बड़ी लेखिका होनेपर भी अपने घरमें रसोई करना, घर साफ-सुथरा रखना तथा बर्तन आदि साफ करना आदि कामोंसे न तो वह कभी शर्माती और न कभी परहेज करती थीं। उनका यह खयाल था कि वह उपयोगी मेहनत उनकी लेखन-शक्ति को मंद करनेके बदले उत्तेजित ही करती थी और उनके प्रभावसे भाषामें एक प्रकार की मर्यादा और व्यवस्थितता आ जाती थी। इस महिला ने भी

दक्षिण अफ्रीकाके गोरोंमें उनका जो कुछ भी वजन था, उसका उपयोग भारतीयोंके पक्षमें किया था। (द० अ० स०)

. . . .

ओलिव आईनर दक्षिण अफ्रीकामें बड़ी लोकप्रिय महिला हैं। जहां-जहां तक अंग्रेजी भाषा बोली जाती है वहां-वहां तक उनका नाम विख्यात है। मनुष्यमात्रपर उनका असीम प्रेम था। जब देखिए तब यही मालूम होता कि उनकी आंखोंसे अविरल प्रेमकी धारा बह रही है। इसी देवीने 'ड्रीम्स' नामक पुस्तक लिखी है। 'ड्रीम्स'की लेखिकाके नामसे उनकी कीर्ति चारों ओर तभीसे है। उनका स्वभाव इतना सरस और सीधा-सादा था कि इतने बड़े खान्दानमें पैदा होकर और इतनी बड़ी विदुषी होनेपर भी घरपर वे अपने बर्तन खुद ही साफ करती। (द० अ० स०)

: २०२ :

सुल्तान शहरियार

शहरियार साधारण आदमी नहीं है। वह काफी बड़ा आदमी है। लेकिन उसकी भी नजर आप लोगोंपर यानी हिंदुस्तानपर ही है (प्रा० प्र०, ३.५.४७)

: २०३ :

जॉर्ज बर्नार्ड शा

बर्नार्ड शा अंग्रेजोंको ऊंचा समझते हैं। अंग्रेज समझते हैं कि उनके-जैसा खूबसूरत कौन है। वे बहुत अच्छा मजाक करते हैं। कहते हैं कि अंग्रेज कुछ गलती नहीं करते। वे धर्मके लिए ही सब-कुछ करते हैं। वे कहते हैं कि अंग्रेज धर्मके लिए लड़ाई करता है। लूट करता है तो भी वह धर्मके नामपर, क्योंकि किसीके पास अधिक पैसा क्यों रहे। हमें गुलाम बनाता है तो भी धर्मके नामपर—अच्छा बनानेके लिए। राजाका खून करता है तो वह भी धर्मके लिए अर्थात् जनमतके लिए। वे सब काम धर्मके नामपर करते हैं! (प्रा० प्र०, ८.७.४७)

: २०४ :

श्रीनिवास शास्त्री

मेरे लिए वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री सदृश सच्चे आदमी बहुत कम हैं, पर उनके आचरणोंसे मुझे विस्मय होता है। उनका विश्वास है कि मैं भारतवर्षको अंधकार-पूर्ण गढ़ेमें लिए चला जा रहा हूं, पर इससे मेरे प्रति उनका अनुराग कम नहीं हो गया होगा। मुझे पूर्ण आशा है कि इस असहयोग आंदोलनने हजारों व्यक्तियोंको यह बात सुझा दी होगी कि हम लोग व्यक्ति-विशेषकी अप्रतिष्ठा और अनादर न करके भी उसके आचरण, कार्यवाही और कार्यप्रणालीकी आलोचना और विरोध कर

सकते हैं। मनुष्य सदा अपूर्ण होता है, इससे हमें दूसरोंकी ओर सदा नर्म रहना चाहिए और जहांतक हो एकाएक किसी तरहका दोषारोपण नहीं करना चाहिए। (यं० इं०, २५.५.२१)

. . . .

दक्षिण अफ्रीका निवासी भारतीयोंको यह सुनकर बड़ी तसल्ली होगी कि माननीय शास्त्रीने पहला भारतीय राजदूत बनकर अफ्रीकामें रहना स्वीकार कर लिया है, बशर्ते कि सरकार वह स्थान ग्रहण करनेके प्रस्तावको आखिरी बार उनके सामने रक्खे। भारत सेवक-समिति और शास्त्रीजीने यह बड़ा ही त्याग किया है, जो वे इस निर्णयपर पहुंचे हैं। यह तो एक प्रकट रहस्य है कि यदि यह प्रस्ताव नहीं किया जाता तो वे भारतमें अपना काम छोड़कर इस जिम्मेदारीको अपने सिरपर लेनेके जरा भी इच्छुक नहीं थे। परंतु जब उनसे साग्रह यह अनुरोध किया गया कि वे ही एक ऐसे आदमी हैं, जो उस समझौतेके अनुसार कार्य शुरू कर सकते हैं, जिसको स्वीकृत करानेमें उनका बहुत भारी हाथ रहा है, तो उन्हें इस प्रार्थना और आग्रहको मंजूर करना ही पड़ा। दक्षिण अफ्रीकासे समय-समयपर जो तार भेजे गये थे उनसे हमें पता चलता है कि वहांके अंग्रेज भी इस बातके लिए कितने उत्सुक थे कि शास्त्रीजी ही इस सम्माननीय पदको ग्रहण करें। शास्त्रीजीकी वक्तृत्व-शक्ति, निस्पृहता, मधुर विवेकशीलता और असीम सचाईने यूनियन सरकार और वहांके यूरोपीय लोगोंके हृदयमें उनके लिए चाह और आदर उत्पन्न कर दिया, जब वे हबीबुल्ला शिष्ट मंडलके साथ कुछ दिनके लिए दक्षिण अफ्रीका गये थे। मैं खुद जानता हूं कि हमारे दक्षिण अफ्रीका-निवासी भाई इस बातके लिए कैसे असीम चिंतातुर थे कि किस प्रकार शास्त्रीजी ही, वहां भारतके पहले राजदूत बनकर जायं। और श्रीयुत श्रीनिवास शास्त्रीजीके लिए भी तो जिन्हें परमात्माने ऐसे उदार हृदयसे भूषित किया है, ऐसे सर्वसम्मत अनुरोधको अस्वीकार करना असंभव था। अब यह प्रायः निश्चित है कि शीघ्र ही

उनकी बाकायदा नियुक्ति होकर, उसकी खबर प्रकाशित कर दी जायगी।

इन पहले राजदूतका काम भी उनके लिए निश्चित कर दिया जायगा। निःसंदेह, यूनियन सरकार और हमारे दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय भाई भी भारतके इस पहले राजदूतसे बड़ी-बड़ी आशाएं तो करते ही होंगे। चूंकि शास्त्रीजी स्वयं भारतीय और एक विख्यात पुरुष हैं, निःसंदेह यूनियन सरकार जरूर यह सोचती होगी कि जहां तक भारतीयोंसे संबंध है, उन्हें समझा-बुझाकर शास्त्रीजी सरकारके प्रस्तावों आदिका काम सरल कर देंगे। दूसरे शब्दोंमें यों कहिए कि यूनियन सरकार उनसे आशा करती है कि शास्त्रीजी उसकी बातोंको भारतीय समाज तथा भारत सरकारके सामने सहानुभूति-पूर्वक रक्खेंगे। इधर भारतीय समाज भी आशा करता है कि शास्त्रीजी इस बातका जरूर आग्रह करेंगे कि समझौतेका सम्मानयुक्त, बल्कि उदारता-पूर्वक पालन हो। दो प्रतिस्पर्धी उम्मीदवारोंको संतुष्ट करना यों कठिन तो है ही; पर दक्षिण अफ्रीकामें, जहां कि जातियों और दलोंके स्वार्थोंमें आश्चर्यजनक पारस्परिक विरोध है, यह काम कहीं अधिक मुश्किल है। किंतु मैं जानता हूं कि अगर इस सूक्ष्म तराजूको अपने हाथमें कोई उठा सकता है और दक्षिण अफ्रीकासे संबंध रखनेवाले सभी दलोंको संतुष्ट कर सकता है तो अकेले शास्त्रीजी ही एक ऐसे आदमी हैं। मेरा खयाल है कि यूनियन सरकारके मंत्री यह तो अपेक्षा नहीं रखते होंगे कि भारतीय समाजको उसके न्याय्य स्वत्वोंको दिलानेमें शास्त्रीजी एक इंच भर भी पीछे हट जायं। हां, अधिक-से-अधिक शास्त्रीजी यह कर सकते हैं कि वे भारतीयोंको १९१४ के समझौतेका उल्लंघन करके आगे बढ़नेसे रोकें, कम-से-कम तबतक तो जरूर रोकें, जबतक कि वहांके भारतीय अनुकरणीय आत्मसंयम और अपने अन्य व्यवहार द्वारा १९१४ में प्राप्त किए समझौतेसे आगे बढ़नेकी अपनी पात्रताको सिद्ध नहीं कर देते। अतः यदि हमारे दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय

भाई इस भारतके प्रतिनिधिके कामको सरल और अपनी परिस्थितिको सुरक्षित कर लेना चाहें तो वे उनसे बड़े-बड़े चमत्कारोंकी आशाएं करना छोड़ दें। उनका यह अनुमान गलत होगा कि "चूंकि हम अभी एक सम्माननीय समझौता करा चुके हैं और उसपर अमल करानेके लिए भारतका एक महान पुरुष हमारे यहां आ रहा है, इसलिए अब तो हमारी परिस्थितिमें एकदम कायापलट हो जायगा।" उन्हें याद रखना चाहिए कि माननीय शास्त्रीजी वहां उनके वकील बनकर, उनके प्रत्येक व्यक्तिगत शिकायतके लिए लड़नेको नहीं जा रहे हैं। उनको मामूली व्यक्तिगत शिकायतें सुना-सुनाकर परेशान करना उस सोनेके अंडे देनेवाले पक्षीकी हत्या करनेके समान है। वे तो वहां भारतीय सम्मानके रक्षक बन कर जा रहे हैं। सर्वसाधारण भारतीय समाजके स्वत्व और स्वाधीनताकी रक्षाके लिए वे वहां जा रहे हैं। शास्त्रीजी वहां यह देखनेके लिए जा रहे हैं कि यूनियन सरकार कहीं कोई नवीन रुकावटी कानून न बनाने पाए। अलावा इसके वे देखेंगे कि वर्तमान कानूनोंका पालन उदारता-पूर्वक तो हो रहा है। उनके पालनमें भारतीयोंके स्वत्वोंको कोई हानि तो नहीं हो रही है, आदि। अतः यदि उनसे कोई व्यक्तिगत शिकायत की भी जाय तो वह किसी व्यापक सर्वसाधारण नियमका उदाहरण-स्वरूप हो। इसलिए यदि व्यक्तिगत मामलोंमें शास्त्रीजीकी सहायता मांगनेमें दक्षिण अफ्रीकाका भारतीय समाज दूरदर्शी संयमसे काम न लेगा तो वह उनकी परिस्थितिको असह्य और उस महान् उद्देश्यके लिए उन्हें असमर्थ बना देगा जिसके लिए वे वहां विशेष रूपसे भेजे गये हैं। और सचमुच एक राजदूतकी उपयोगिता केवल यहीं समाप्त नहीं हो जाती कि वह केवल सरकारी पदसे संबंध रखनेवाले अपने कर्तव्यका पालन भर कर ले; बल्कि उसकी वह अप्रत्यक्ष सेवा कहीं अधिक उपयोगी है जो सरकारी तथा गैरसरकारी कामोंको लेकर उससे मिलने-जुलनेवाले लोगोंपर उसके मिलनसार स्वभाव और सच्चरित्रके प्रभाव द्वारा होती है। अतः यदि हमारे देशभाई शास्त्री-

जीकी दिमागी और हृदयके महान् गुणोंका उपयोग करना चाहें तो वे मेरी बताई उपर्युक्त मर्यादाओंका जरूर खयाल रक्खें।

मैं समझता हूं कि यदि श्री शास्त्रीजी जावेंगे तो श्रीमती शास्त्री भी उनके साथ दक्षिण अफ्रीका जावेंगी। दक्षिण अफ्रीकामें रहनेवाले भारतीयोंके लिए यह बड़े ही लाभकी बात है। भारतीय बहनें प्रेमसे श्रीमती शास्त्रीको वहां घेर लें। उन्हें वे समाज-सेवाका एक अमूल्य साधन पावेंगी; क्योंकि दक्षिण अफ्रीकामें फैली हुई हजारों बहनोंका जीवन ऊंचा उठानेमें वे बहुत सहायक होंगी। (हिं० न०, २८.४.२७)

... ...

इस सप्ताहमें मिले एक पत्रमें एक सज्जनने क्लर्कसड्रॉपकी प्रसिद्ध घटना का, जिसके बारेमें दक्षिण अफ्रीकाके अखबारोंके पन्ने-के-पन्ने भरे रहते हैं, आंखों देखा सच्चा वर्णन किया है। यूनियन सरकारके निःसंकोच पूरी और स्पष्ट माफी मांग लेनेसे यद्यपि इस घटनापर राजनैतिक दृष्टिसे अब कुछ भी कहना बाकी नहीं रह जाता है और न कुछ कहनेकी जरूरत ही है तो भी इस षड्यंत्रके सामने जिसका कि परिणाम श्रीशास्त्रीके लिए प्राणांतक भी हो सकता था, उन्होंने जो उदारता और हिम्मतका व्यवहार किया है उसकी प्रशंसा कितनी ही क्यों न की जाय वह कम ही होगी। मेरे सामने जो पत्र है उससे मालूम होता है कि जिस सभामें वे व्याख्यान दे रहे थे, उसको तोड़ देनेके लिए डेप्युटिमेयरके नेतृत्वमें जो दल आया था उसने बत्तियां बुझा दीं, फिर भी वह भारतमाताका सच्चा सपूत और प्रतिनिधि अपने स्थानपर यत्किंचित भी घबड़ाए बिना डटा रहा, जरा भी न हटा और जब भड़ाका होनेके कारण सभाके हालमें श्रोताओंको सांस लेना भी मुश्किल हो गया तब वे बाहर गए और वहां, जैसे कोई बात ही नहीं हुई हो, इस घटनाके प्रति इशारा तक न करते हुए उन्होंने अपना व्याख्यान पूरा किया। यों तो इस घटनाके पहले ही दक्षिण अफ्रीकाके यूरोपियनोंमें वे प्रिय हो गये थे; परंतु शास्त्रीजीके इस धीर हिम्मतभरे

और उदार आचरणने वहांके यूरोपियनोंके विचारमें उन्हें और भी अधिक गौरवान्वित कर दिया है। और क्योंकि उन्हें अपने लिए यश नहीं चाहिए था (शास्त्रीजीसे अधिक कीर्तिसे लजानेवाले मनुष्य कदाचित ही मिल सकेंगे) उन्होंने जिस कामके वे प्रतिनिधि थे, उसके लाभमें अपनी लोकप्रियताका बड़ी योग्यता और सफलता-पूर्वक उपयोग किया। दक्षिण अफ्रीकामें उनके बहुत ही थोड़े समयके निवासमें उन्होंने अपने देश-वासियोंका गौरव बहुत बढ़ा दिया है। हम यह आशा करें कि वहांके भारतीय अपने आदर्श व्यवहारसे अपनेको उस गौरवके योग्य प्रमाणित करेंगे।

परंतु दक्षिण अफ्रीकाके मुश्किल और नाजुक प्रश्नको हल करनेमें उनके कार्यका महत्व केवल इसी पर, जो एक घटना-मात्र है, निर्भर नहीं है। हम उनके दफ्तरकी भीतरी कार्रवाईके विषयमें, सिवा उनके परिणामोंके कुछ नहीं जानते। पर इसमें उन्हें उस सारी राजनीतिकला-का उपयोग करना पड़ता था जो अपने पक्षके सत्य होनेके विश्वाससे प्राप्त होती है तथा जो झूठ, कपट तथा नीचताको कभी बरदाश्त नहीं कर सकती। परंतु हम यह जरूर जानते हैं कि संस्कृत और अंग्रेजीकी अपार विद्वत्ता और जुदा-जुदा विषयोंका ज्ञान, वाक्यपटुता इत्यादि कुदरतसे प्रचुरता-में मिली हुई बख्शिशोंको अपने कार्यके लिए उपयोग करनेमें, उन्होंने कोई कसर नहीं की है। चुनंदा यूरोपियनोंके बड़े श्रोतृ-समूहके आगे वे भारतीय तत्त्वज्ञान और संस्कृतिपर व्याख्यान देते थे, जिससे उनके दिलोंपर बड़ा असर होता था और उस पक्षपातके परदेको, जिसके कारण यूरोपियनोंका बड़ा समूह अबतक भारतीयोंमें कोई गुण ही नहीं देख सकता था, उन्होंने पतला कर दिया है। दक्षिण अफ्रीकामें भारतीयोंके प्रश्न में, ये व्याख्यान ही शायद उनका सबसे बड़ा और अधिक स्थायी हिस्सा है।

शास्त्रीजीकी जगहके लिए योग्य व्यक्ति चुनना भारत सरकारके

लिए एक बड़ा गंभीर प्रश्न होना चाहिए। दक्षिण अफ्रीकामें और भी अधिक ठहरनेके लिए उनपर जितना भी दबाव डाला गया उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया है। दक्षिण अफ्रीकासे आये पत्रोंसे मालूम होता है कि वहांके भारतीय श्री शास्त्रीके आनेकी तैयारीके कारण कितने चिंतित हैं। श्रीशास्त्रीने जिस कार्यको सफलता-पूर्वक आरंभ किया है और जिसके वे प्रतिनिधि रहे हैं उसको जारी रखनेके लिए यदि कोई लायक व्यक्ति न मिला तो यह बड़े ही दुःखकी बात होगी। मुझे आशा है कि दक्षिण अफ्रीकामें भारतके एजेन्टके पदको सरकार और प्रजाकीय दल, दोनोंहीके लिए खुला रखनेका अब वायसरायके आफिसमें रिवाज पड़ गया है। यह आशा की जाती है कि इसके लिए जो कोई भी चुना जाय वह सरकार और प्रजा दोनोंको समान रूपसे मान्य होगा और जो केवल भारत सरकारका ही नहीं, किंतु भारतके लोगोंका भी प्रतिनिधि होगा। (हि० न०, १८.१०.२८)

. . . .

श्री श्रीनिवास शास्त्री भारतके एक सर्वश्रेष्ठ विद्वान हैं। शिक्षकके रूपमें उनकी तभीसे ख्याति रही है, जबकि इनमेंसे बहुतेरे विद्यार्थी या तो पैदा ही नहीं हुए थे या अपनी किशोरावस्थामें ही थे। उनकी महान् विद्वत्ता और उनके चरित्रकी श्रेष्ठता दोनों ही ऐसी चीजें हैं, जिनके कारण संसारकी कोई भी यूनीवर्सिटी उन्हें अपना वाइस चांसलर बनानेमें गौरव ही अनुभव करेगी। ('विद्यार्थियोंसे')

. . . .

मौतने न सिर्फ हमारे बीचसे, बल्कि समूची दुनियाके बीचसे भारत-माताके एक बड़े-से-बड़े सपूतको उठा लिया है। उनके परिचयमें आने-वाला हर कोई देख सकता था कि वे हिंदुस्तानको बहुत ही प्यार करते थे। पिछले दिनों जब मैं उनसे मद्रासमें मिला था, उन्होंने सिवा हिंदुस्तान और उसकी संस्कृतिके, जिनके लिए वे जीए और मरे, दूसरी किसी बातकी

चर्चा ही नहीं की । जब वे मृत्युशय्यापर पड़े दीखते थे, तब भी मुझे विश्वास है कि उनको अपनी कोई चिंता नहीं थी । उनका संस्कृत-ज्ञान अंग्रेजीके उनके अगाध ज्ञानसे ज्यादा नहीं तो कम भी न था । मुझे एक ही बात और कहनी है और वह यह कि अगरचे राजनीतिमें हमारे खयाल एक-दूसरेसे मिलते नहीं थे, तो भी हमारे दिल एक ही थे और मैं यह कभी सोच नहीं सकता कि उनकी देशभक्ति हमारे किसी बड़े-से-बड़े देशभक्तसे कम थी । शास्त्रीजी जिंदा हैं, यद्यपि उनका नामधारी शरीर भस्म हो चुका है ।
(ह० से०, २१.४.४६)

: २०५ :

खुशालशाह

ब्रिटेन और भारतके परस्परके देन राष्ट्रीय ऋणके संबंधमें जांच करनेके लिए कांग्रेस महासमितिने जो समिति नियत की थी, उसकी रिपोर्ट विशेषकर वर्तमान अवसरपर एक अत्यंत महत्वकाका लेख है। राष्ट्रीय महासभाका कोई भी सेवक उसकी एक प्रति रखे बिना न रहेगा । श्री बहादुरजी, भूलाभाई देसाई, खुशालशाह और श्री कुमारप्पा अपने इस प्रेमके परिश्रमके लिए राष्ट्रके साभार अभिनंदनके अधिकारी हैं । 'यंगइंडिया'के विदेशी पाठक जानते हैं कि श्री बहादुरजी और उसी तरह श्री भूलाभाई देसाई, दोनों ही एक बार एडवोकेट-जन[illegible] भारत प्रख्यात अर्थशास्त्री हैं, कितनी ही बहुमूल्य [illegible] र बहुत वर्ष तक (आज अभी तक) बंबई यूनीवर्सिटीके अर्थशास्त्रके अध्यापक थे । ये तीनों सज्जन सदैव काममें घिरे रहते हैं, इसलिए राष्ट्रीय महासभाके सौंपे हुए इस उत्तरदायि-

त्वपूर्ण कार्यके लिए समय देना उनके लिए कुछ ऐसा-वैसा साधारण त्याग नहीं था। रिपोर्टके लेखकोंका यह परिचय मैंने इस लिए दिया है कि विदेशी पाठक जान सकें कि यह रिपोर्ट उथले राजनीतिज्ञोंका लिखा हुआ लेख नहीं, वरन् जो लोग प्रचुर प्रतिष्ठावाले हैं, और जो धांधलीबाज उपदेशक नहीं, वरन् स्वयं जिस विषयके ज्ञाता हैं, उसीपर लिखने वाले और अपने शब्दोंको तौल-तौलकर व्यवहारमें लानेवालोंकी यह कृति है। (हि० न०, ६.८.३१)

: २०६ :

पीर महबूबशाह

पीर महबूबशाह गिरफ्तार हो गए। वे बड़े ही बहादुर आदमी थे। मुझे उनके दोष तथा निर्दोषिताके बारेमें कुछ नहीं कहना है। पर जो अभियोग उनपर चलाया गया था यदि वह ठीक है तो वह स्वीकार करना पड़ेगा कि उनकी भाषामें उत्तेजना फैलाने और शांति भंग करनेके भाव थे और इस अवस्थामें उन्हें जो दंड दिया गया है अर्थात् दो वर्षके लिए साधारण कारावास, बहुत ही हलका है। यदि अपराध साबित हो गया तो कोई भी दंडसे बच नहीं सकता, चाहे वह कितना ही बड़ा आदमी क्यों न हो और चाहे वह कितना ही बड़ा सरकारी पदाधिकारी क्यों न हो। जिस बातके लिए मैं उनकी प्रशंसा करने बैठा हूं वह उनकी वीरता, धीरता और उदासीनता है। उन्होंने वीरता तथा धीरताके साथ अपने मुकदमेकी पैरवी करने तथा सफाई देनेसे इन्कार कर दिया और उदासीनताके साथ कानून-नियुक्त अदालतके निर्णयको स्वीकार करना तय किया। इससे मुझे विदित होता है कि उन्हें इस असहयोग संग्रामका तत्व मिल गया है। उनके अनु-

थायियोंने उनकी इस दंडाज्ञाको जिस प्रकार सहन किया है उससे भी अतिशय संतोष होता है।

बादको समाचार मिला कि पीरसाहबने माफी मांग ली और वे रिहा कर दिये गए। इससे तो हमारी प्रत्यक्ष दुर्बलता प्रकट होती है। दासताकी कमजोर हवामें पालित तथा पोषित होनेके कारण कभी-कभी हम लोगों-मेंसे बड़े लोग भी साधारण झंझावातसे कांप उठते हैं और उसके सामने सिर झुका देते हैं। हम लोगोंने पश्चिमी सभ्यताका अनुकरण अवश्य किया; पर उसके अन्तर्गत जो शिक्षा लेनी पड़ती है उसके अभ्यस्त न होकर हमने अपनी अवस्था इतनी खराब कर डाली है कि सादी सजाकी साधारण कठिनाइयां भी हमसे नहीं झेली जातीं। पर पीर महबूबशाहकी माफीसे हमें हताश नहीं होना चाहिए। मान लीजिए कि एक आदमी कई घोड़ोंपर असबाब लादे चला जा रहा है। मार्गमें एक घोड़ा थक गया। तो क्या अन्य घोड़ोंका यह कर्तव्य नहीं है कि वे अपने साथीके भारको आपसमें बांट लें? इसी तरह हमें थोड़ा और प्रयास करके यह बोझ अपने ऊपर ले लेना चाहिए। हम लोग मनुष्य हैं, समझदार जीव हैं, यह समझ लिया जा सकता है कि जब हमारा एक साथी फिसल पड़ता है तो उसका बोझ संभालनेके लिए हमें कितना प्रयास करना चाहिए। (यं० इं०, १२.६.२०)

: २०७ :

जनरल शाहनवाज

जनरल शाहनवाज आज आए थे। बिहारसे मेरे चले जानेपर भी वे वहांपर काम करते हैं। वेतन नहीं लेते। फिर भी बाकायदा

पंद्रह दिनकी छुट्टी लेकर घर जा रहे हैं। उन्होंने बताया कि बिहारमें जो मुसलमान लौटकर नहीं आते थे और जिन्हें हिंदू पहले डराते थे वे भी अब लौट आये हैं; क्योंकि समझानेपर हिंदू अपना धर्म समझ गए और उन्होंने मुसलमानोंके स्वागतके लिए लगातार दो दिनतक परिश्रम करके उनका रास्ता साफ किया और जो झोपड़ियां ढह गई थीं उनके बनानेमें भी योग दिया। दूसरे देहातोंमें भी ऐसा ही अच्छा काम हुआ है। (प्रा० प्र०, ५.५.४७)

: २०८ :

राजकुमार शुक्ल

राजकुमार शुक्ल नामके एक किसान चंपारनमें रहते थे। उनपर नीलकी खेतीके सिलसिलेमें बड़ी बुरी बीती थी। वह दुःख उन्हें खल रहा था और उसीके फलस्वरूप सबके लिए इस नीलके दागको धो डालने का उत्साह उनमें पैदा हुआ था।

जब मैं कांग्रेसमें लखनऊ गया था तब इस किसानने मेरा पल्ला पकड़ा।

"**वकीलबाबू, आपको सब हाल बताएंगे।**"

कहते हुए चंपारन चलनेका निमंत्रण मुझे देते जाते थे।

यह वकीलबाबू और कोई नहीं, मेरे चंपारनके प्रिय साथी, बिहारके सेवा-जीवनके प्राण, बृजकिशोरबाबू ही थे। उन्हें राजकुमार शुक्ल मेरे डेरेमें लाए। वह काले अलपकेका अचकन, पतलून वगैरा पहने हुए थे। मेरे दिलपर उनकी कोई अच्छी छाप नहीं पड़ी। मैंने समझा कि ये इस भोले किसानको लूटनेवाले कोई वकील होंगे।

मैंने उनसे चंपारनकी थोड़ी-सी कथा सुन ली और अपने रिवाजके मुताबिक जवाब दिया, "जबतक मैं खुद जाकर सब हाल न देख लूं तब-तक मैं कोई राय नहीं दे सकता। आप कांग्रेसमें इस विषयपर बोलें; किंतु मुझे तो अभी छोड़ ही दीजिए।" राजकुमार शुक्ल तो चाहते थे कि कांग्रेसकी मदद मिले। चंपारनके विषयमें कांग्रेसमें बृजकिशोरबाबू बोले और सहानुभूतिका एक प्रस्ताव पास हुआ।

राजकुमार शुक्लको इससे खुशी हुई; परंतु इतने ही से उन्हें संतोष न हुआ। वह तो खुद चंपारनके किसानोंके दुःख दिखाना चाहते थे। मैंने कहा, "मैं अपने भ्रमणमें चंपारनको भी ले लूंगा और एक-दो दिन वहांके लिए दे दूंगा।" उन्होंने कहा—"एक दिन काफी होगा, अपनी नजरोंसे देखिए तो सही।"

लखनऊसे मैं कानपुर गया था। वहां भी देखा तो राजकुमार शुक्ल मौजूद।

"यहांसे चंपारन बहुत नजदीक है। एक दिन दे दीजिए।"

"अभी तो मुझे माफ कीजिए; पर मैं यह वचन देता हूं कि मैं आऊंगा जरूर।" यह कहकर वहां जानेके लिए मैं और भी बंध गया।

मैं आश्रममें पहुंचा तो वहां भी राजकुमार शुक्ल मेरे पीछे-पीछे मौजूद।

"अब तो दिन मुकर्रर कर दीजिए।"

मैंने कहा—"अच्छा, अमुक तारीखको मुझे कलकत्ते जाना है, वहां आकर मुझे ले जाना।" कहां जाना, क्या करना, क्या देखना, मुझे इसका कुछ पता न था। कलकत्तेमें भूपेनबाबूके यहां मेरे पहुंचनेके पहले ही राजकुमार शुक्लका पड़ाव पड़ चुका था। अब तो इस अपढ़-अनघढ़ परंतु निश्चयी किसानने मुझे जीत लिया।

१९१७ के आरंभमें कलकत्तेसे हम दोनों रवाना हुए। हम दोनोंकी एक-सी जोड़ी—दोनों किसान-से दीखते थे। राजकुमार शुक्ल और मैं—हम दोनों एक ही गाड़ीमें बैठे। सुबह पटना उतरे।

पटनेकी यह मेरी पहली यात्रा थी। वहां मेरी किसीसे इतनी पहचान नहीं थी कि कहीं ठहर सकूं।

मैंने मनमें सोचा था कि राजकुमार शुक्ल हैं तो अनपढ़ किसान, परंतु यहां उनका कुछ-न-कुछ जरिया जरूर होगा। ट्रेनमें उनका मुझे अधिक हाल मालूम हुआ। पटनेमें जाकर उनकी कलई खुल गई। राजकुमार शुक्लका भाव तो निर्दोष था, परंतु जिन वकीलोंको उन्होंने मित्र माना था वे मित्र न थे; बल्कि राजकुमार शुक्ल उनके आश्रितकी तरह थे। इस किसान मवक्किल और उन वकीलोंके बीच उतना ही अंतर था, जितना कि बरसातमें गंगाजीका पाट चौड़ा हो जाता है।

मुझे वह राजेंद्रबाबूके यहां ले गये। राजेंद्रबाबू पुरी या और कहीं गये थे। बंगलेपर एक-दो नौकर थे। खानेके लिए कुछ तो मेरे साथ था; परंतु मुझे खजूरकी जरूरत थी, सो बेचारे राजकुमार शुक्लने बाजारसे ला दी।

परंतु बिहारमें छुआछूतका बड़ा सख्त रिवाज था। मेरे डोलके पानीके छींटेसे नौकरको छूत लगती थी। नौकर बेचारा क्या जानता कि मैं किस जातिका था? अंदरके पाखानेका उपयोग करनेके लिए राजकुमारने कहा तो नौकरने बाहरके पाखानेकी तरफ उंगली उठाई। मेरे लिए इसमें असमंजसकी या रोषकी कोई बात न थी; क्योंकि ऐसे अनुभवोंसे मैं पक्का हो गया था। नौकर तो बेचारा अपने धर्मका पालन कर रहा था और राजेंद्रबाबूके प्रति अपना फर्ज अदा करता था। इन मजेदार अनुभवोंसे राजकुमार शुक्लके प्रति जहां एक ओर मेरा मान बढ़ा, तहां उनके संबंधमें मेरा ज्ञान भी बढ़ा। अब पटनासे लगाम मैंने अपने हाथमें ले ली। (आ० क०)

: २०९ :

स्टोक्स

मिस्टर स्टोक्स ईसाई हैं। वह परमात्माके प्रकाशके सहारे चलना चाहते हैं। उन्होंने भारतवर्षको अपना घर बना लिया है। उन्होंने कोटा-गिरिमें अपना निवासस्थान बनाया है और एकांतमें रहकर पहाड़ी जातियोंके उद्धारमें ही वे अपनी सारी शक्ति लगा रहे हैं। वहींसे निरपेक्ष होकर वे असहयोगकी गति भी देख रहे हैं। उन्होंने कलकत्ताके 'सर्वेन्ट' तथा अन्य पत्रोंमें असहयोगपर तीन लेख लिखे हैं। जिस समय मैं बंगालमें दौरा कर रहा था मैंने इन लेखोंको पढ़ा था। मिस्टर स्टोक्स असहयोग आंदोलनके पक्षमें हैं; पर पूर्ण स्वाधीनताके परिणामको सोचकर वे डर जाते हैं अर्थात् उन्हें इस बातकी आशंका है कि यदि अंग्रेज भारतको एकदम छोड़कर चले जायंगे तो यहां अनेक तरहके उपद्रव उठ खड़े होंगे। उन्हें भय लगता है कि तुरंत ही विदेशियोंके आक्रमण होने लगेंगे, जैसे उत्तर पश्चिमसे अफगान और पहाड़ी गुर्खे भारतपर एक साथ ही टूट पड़ेंगे। पर कार्डिनल न्यूमनके शब्दोंमें मैं उस भविष्यकी बातकी चिंता नहीं करता। (यं० इं०, २९.१२.२०)

: २१० :

जनरल स्मट्स

मैंने जनरल स्मट्सको इस आशयका पत्र लिखा कि उनका नवीन वक्तव्य सुलहका भंग करता है। अपने पत्रमें मैंने उनके उस भाषणकी

ओर भी उनका ध्यान आकर्षित किया, जो सुलहके बाद एक सप्ताहके अंदर ही उन्होंने दिया था। उस भाषणमें उन्होंने ये शब्द कहे थे : "ये लोग (एशियावासी) मुझे एशियाटिक कानून रद करनेके लिए कह रहे हैं। जबतक ऐच्छिक परवाने वे नहीं ले लेते तबतक उस कानूनको रद करनेसे मैंने इन्कार किया है।" अधिकारी लोग प्रायः ऐसी बातोंका जवाब नहीं देते जो उन्हें उलझनमें डालती है। अगर देते भी हैं तो गोल-मोल। जनरल स्मट्स इस कलामें सिद्धहस्त हैं। उन्हें आप चाहे जितना लिखें, उनके विरुद्ध चाहे जितने भाषण करें, पर यदि वे उत्तर देना नहीं चाहेंगे तो उत्तरमें उनके मुंहसे एक शब्द भी निकलवाना असंभव है। सभ्यताका यह सामान्य नियम उनके लिए बंधनकारक नहीं हो सकता था कि प्राप्त पत्रोंका उत्तर देना ही चाहिए। इसलिए अपने पत्रके उत्तरमें मुझे किसी प्रकारका संतोष प्राप्त नहीं हो सका।

अल्बर्ट कार्ट राईट हमारे मध्यस्थ थे। मैं उनसे मिला। वह स्तब्ध हो गए और मुझसे कहने लगे, "सचमुच मैं इस आदमीको समझा ही नहीं सकता। एशियाटिक कानूनको रद करनेवाली बात मुझे बिल्कुल ठीक-ठीक तरहसे याद है। मुझसे जो बन पड़ेगा मैं जरूर करूंगा। पर आप जानते हैं कि जहां यह आदमी किसी एक बातको पकड़ लेता है तहां फिर दूसरेकी नहीं चलती। अखबारोंके लेखोंकी तो वह जरा भी परवाह नहीं करता। इसलिए मुझे पूरा डर है कि मेरी सहायताका आपको कोई उप-योग न होगा।" हास्किन वगैरासे भी मैं मिला। उन्होंने जनरल स्मट्स-को एक पत्र लिखा। उन्हें भी बड़ा ही असंतोषकारक उत्तर मिला। मैंने 'इंडियन ओपीनियन'में भी 'विश्वासघात' शीर्षक कई लेख लिखे; पर जनरल स्मट्स क्यों इन बातोंकी परवाह करते? तत्त्ववेत्ता अथवा निष्ठुर मनुष्यके लिए आप चाहे जितने कड़ुवे विशेषणोंका प्रयोग करें, उनपर कोई असर न होगा। वे तो अपना निश्चित काम करनेमें मस्त रहते हैं। मैं नहीं जानता कि जनरल स्मट्सके लिए इन दो विशेषणोंमेंसे

किस विशेषणका उपयोग ठीक हो सकता है । यह तो मुझे जरूर कबूल करना होगा कि उनकी वृत्तिमें एक तरहकी 'फिलासफी'---सिद्धांत-निष्ठा है । मुझे याद है कि जिस समय हमारा पत्र-व्यवहार जारी था, अखबारोंमें लेख लिखे जा रहे थे, तब तो मैं उन्हें निष्ठुर ही समझता था। पर अभी तो यह युद्धका पूर्वार्ध---केवल दूसरा वर्ष था। युद्ध तो आठ वर्ष तक जारी रहा । इस बीचमें मैं उनसे कई वार मिला। बादकी हमारी बातोंसे मेरा यह खयाल कुछ बदल गया और मैंने महसूस किया कि जनरल स्मट्सकी धूर्तताके विषयमें दक्षिण अफ्रीकामें बनी हुई सामान्य धारणामें कुछ परिवर्तन होना जरूरी है। दो बातें मैं पूरी तरह समझ गया। एक तो यह कि उन्होंने अपनी राजनीतिके विषयमें एक मार्ग निश्चित कर लिया है और वह केवल अनीतिमय तो हरगिज नहीं । पर साथ ही मैंने यह भी देख लिया कि उनके राजनीति-शास्त्रमें चालाकीके लिए और मौका पड़नेपर सत्याभासके लिए भी स्थान है ।[1] (द० अ० स०, १६२५)

. . . .

उसके बाद जनरल स्मट्सका उदाहरण लीजिए । वह अकेला जनरल नहीं है । उसका पेशा तो वकालतका है । वकीलोंमें अटर्नी जनरल होनेके साथ ही वह कुशल किसान भी था। प्रिटोरियाके पास उसकी बहुत बड़ी जमींदारी है । वहां जैसे फलके वृक्ष हैं, वैसे आसपासके प्रदेशोंमें कहीं नहीं पाए जाते । ये सब ऐसे लोगोंके उदाहरण हैं, जो संसारके विख्यात सेनानायक थे और साथही जो रचनात्मक कार्यके महत्वको जानते थे । ('विजयी बारडोली' पृष्ठ ३६०)

---

[1] यह छपते हुए हम यह जान गए कि जनरल स्मट्सकी सरदारीका भी अंत हो सकता है ।---मो० क० गांधी

: २११ :

सापुरजी सकलातवाला

'बंधु' सकलातवालाकी आतुरताका पार नहीं। उनकी बातोंमें सच्चाई झलकती है। उनके त्याग बहुत बड़े हैं। गरीबोंके लिए उनके प्रेमका लोहा सभी मानते हैं। इसलिए मेरे नाम उनकी खुली भावुक अपीलपर मैंने उतनी ही गंभीरतासे विचार किया है, जितनी ऐसे सच्चे देशभक्त और विश्वप्रेमीके पत्रके लिए चाहिए। अगर मुझे सच्चाईके जवाबमें सच्चाईका व्यवहार करना है, या अपने धर्मका सच्चा बने रहना है तो 'हां' कहनेकी मेरी लाख इच्छा रहनेपर भी मुझे 'नहीं' ही कहना होगा। मगर मैं अपने खास ढंगपर उनकी अपीलके जवाबमें 'हां' कह सकता हूं। उनकी शर्तोंपर मैं उनसे सहयोग करूं---इसकी उनकी अतिशय बलवती इच्छाके नीचे यह बड़ी शर्त मानी हुई है ही कि मैं 'हां' तो तभी कहूं जब उनकी दलीलसे मेरे दिल और दिमागको संतोष हो जाय। सच्चे विश्वासके कारण 'नहीं' कहना, उस 'हां' से लाख दर्जे अच्छा और बड़ा है, जो किसीको महज खुश करनेके लिए या जो उससे भी बुरी बात है, चितासे बचनेके लिए कहा जाय।

उनके साथ हार्दिक सहयोग करनेकी पूरी इच्छा होते हुए भी मैं अपना रास्ता बंद देखता हूं। उनकी वास्तविकताएं कपोल-कल्पित हैं और उनके आधारपर निकाले गये नतीजे जरूर ही निराधार हैं। जहां कहीं वे वास्तविकताएं सच हैं, मेरी सारी शक्ति उनके जहरीले असर (मेरे प्रति) को ही दूर करनेमें लग जाती है। मुझे इसका खेद है। मगर हम जरूर दुनियाके दो छोरोंपर हैं। मगर खैर, एक बड़ी चीज हम दोनोंमें समान है। दोनोंका ही कहना है कि देश और विश्वका भला ही हमारे एकमात्र उद्देश्य हैं। इसलिए इस समय हम लोग उलटी दिशाओंमें

जाते हुए भले ही मालूम पड़ते हों, मगर मेरी आशा है कि एक दिन हम मिलेंगे जरूर। मैं वचन देता हूं कि अपनी भूल समझते ही मैं काफी क्षति-पूर्ति करूंगा। इस बीचमें मेरी भूल ही, चूंकि मैं उसे भूल नहीं मानता, मेरा अवलंब और तसल्ली होगी। (हि० न०, १७.३.२०)

: २१ :
सत्यपाल

डॉ० सत्यपालने सार्वजनिक जीवनसे हटनेके लिए नाहक ही मेरा उल्लेख किया है। अगर अंतरात्माकी प्रेरणासे उन्होंने सार्वजनिक जीवनसे हटनेका निश्चय किया है तब तो उनका निर्णय ठीक है; लेकिन अगर लाला दुनीचंदको लिखे हुए मेरे निर्दोषपत्र के कारण ऐसा किया है तो उन्होंने बहुत बड़ी गलती की है। अव्वल तो वह पोस्टकार्ड पंजाबके उस सारे वातावरणके संबंधमें था, जिसके फलस्वरूप न केवल इस या उस व्यक्तिके बल्कि खुद मेरे खिलाफ अविश्वासकी भावना पैदा हुई है। कोई आलोचक चाहे तो इसे कायरता कह सकता है, लेकिन यह चाहे कायरता हो या आत्मविश्वासका अभाव हो, पर जबतक मुझमें यह चीज मौजूद है तबतक मैं मध्यस्थताके लिए बेकार हूं। इसलिए डॉ० सत्यपाल-की प्रेरणासे जब सरदार मंगलसिंह और लुधियानाके दूसरे मित्र वर्धा आये तो मैंने उनसे कहा कि मैं तो इस कामके लिए बेकार हूं, लेकिन राष्ट्रपतिकी हैसियतसे राजेंद्रबाबू पंजाब जानेके लिए उपयुक्त व्यक्ति हैं। उन्होंने यह मंजूर भी कर लिया है कि स्वास्थ्य ठीक रहा और दूसरे काम-काज आड़े न आए तो जल्दी-से-जल्दी वह वहां जायंगे। लेकिन मैंने तो इन मित्रोंको सुझाया है कि अपने-आप अपनी मदद करनेके बराबर कोई मदद नहीं

है। अतः उन्हें अपनी खुदकी मेहनतसे ही अपने घरको व्यवस्थित करना चाहिए। डा० सत्यपाल अगर अपनी अंतरात्माकी प्रेरणासे सार्वजनिक जीवनमें नहीं हटे हैं तो बहुत देरतक वह अपनेको उससे बाहर नहीं रख सकेंगे। खुद उनकी प्रकृति ही इस कृत्रिम आत्मसंयमके विरुद्ध विद्रोह करेगी। इसलिए मैं इससे अच्छा एक तरीका सुझाता हूं। वह यह कि वह दलबंदीसे अलग हो जायं। पुराने झगड़े-टंटोंको भूल जायं और पंजाबमें सच्ची एकता पैदा करनेके काममें जुट पड़ें। यह कैसे किया जा सकता है, यह मैं नहीं कह सकता। मेरे पास ऐसी कोई सामग्री भी नहीं है जो इसके लिए कोई कार्यक्रम बना सकूं। अतः खुद उन्हींको यह सोचना चाहिए। मैं तो सिर्फ यही कह सकता हूं कि अगर वह सचमुच चाहते हैं तो ऐसा कर सकते हैं। यह तो हरएक जानता है कि पंजाबमें उनके अनुयायी हैं, वह एक अथक कार्यकर्त्ता हैं और उन्होंने काफी कुर्बानी की है इसलिए पंजाबके कांग्रेसियोंमें अगर कोई एकता पैदा कर सकता है, तो निश्चय ही वह डा० सत्यपाल हैं। लेकिन चाहे वह हों या कोई और, जो कोई ऐसा करे उसे अपनेको भूलकर अपने या अपने दलके हितसे जनताके हितको तरजीह देनी चाहिए, क्योंकि वही वास्तवमें कांग्रेसका भी हित है। मेरी हिदायतके पीछे मेरी जो यह तीव्र भावना है उसपर भी ध्यान रखना जरूरी है कि पंजाबके कांग्रेसियोंको मनमें कोई गांठ रखे बगैर आपसमें हिलमिल जाना चाहिए और एक होकर काम करना चाहिए। (ह० से०, १९.८.३९)

: २१३ :

तोताराम सनाढ्य

वयोवृद्ध तोतारामजी किसीकी सेवा लिए बगैर गए। वे साबरमती आश्रमके भूषण थे। वे विद्वान् नहीं थे। मगर ज्ञानी थे, भजनोंके भंडार होते हुए भी वे गायनाचार्य न थे। वे अपने इकतारेसे और भजनोंसे आश्रमके लोगोंको मुग्ध कर देते थे। जैसे वे थे, वैसी ही उनकी पत्नी थीं। वह तो तोतारामजीसे पहले ही चली गई।

जहां बहुतसे आदमी एक साथ रहते हों, वहां कई प्रकारके झगड़े होते ही हैं। मुझे ऐसा एक भी प्रसंग याद नहीं है कि जब तोतारामजी या उनकी पत्नीने उनमें भाग लिया हो, या किसी झगड़ेके कभी कारण बने हों। तोतारामजीको धरती प्यारी थी, खेती उनका प्राण थी। आश्रममें वर्षों पहले वे आये और उसे कभी नहीं छोड़ा। छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष उनकी रहनुमाईके भूखे रहते और उनके पाससे अचूक आश्वासन पाते।

वे पक्के हिंदू थे। मगर उनके मनमें हिंदू, मुसलमान और दूसरे सब धर्म बराबर थे। उनमें छुआछूतकी गंध न थी। किसी किस्मका व्यसन न था।

राजनीति में उन्होंने भाग नहीं लिया था, फिर भी उनका देश-प्रेम इतना उज्ज्वल था कि वह किसीके भी मुकाबले खड़ा रह सकता था। त्याग उनमें स्वाभाविक था। उसे वे सुशोभित करते थे।

ये सज्जन फिजी द्वीपमें गिरमिटिए मजदूरकी तरह गए थे। और दीनबंधु एन्ड्रूज उन्हें ढूंढ लाए थे। उन्हें आश्रममें लानेका यश श्री बनारसीदास चतुर्वेदीको है।

उनकी अंतिम घड़ी तक उनकी जो कुछ सेवा हो सकती थी, वह भाई

गुलाम रसूल कुरैशीकी पत्नी और इमाम साहबकी लड़की अमीना बहनने की थी।

परोपकाय सतां विभूतयः (सज्जन पुरुष परोपकारके लिए ही जीते हैं) यह उक्ति तोतारामजीके बारेमें अक्षर-अक्षर सच थी। (ह० से०, १८.१.४८)

: २१४ :

तेजबहादुर सप्रू

आज सप्रूकी राय आई। उन्हें वैधानिक प्रश्नके सामने इस सवालका महत्व तुच्छ लगता है। इस निर्णयके देनेमें उन्हें साफ नीयत और ईमानदारीकी कोशिश दिखाई देती है। बापूने जरा सी आलोचना की :

सप्रूका काम मुंजेसे उलटा है। जातीय मांग पूरी हो जाय तो मुंजेको विधानकी परवाह नहीं, सप्रूको विधान मिल जाय तो कुछ भी हो जाय उसकी परवाह नहीं। (म० डा०, १९.८.३२)

...   .

आज सुबह फिर निर्णयपर बातें हुईं। जयकर, सप्रू और चिंतामणिकी रायोंपर चर्चा हुई। बापू कहने लगे :

यह आशा रख सकते हैं कि जयकर सप्रूसे यहां अलग हो जायंगे।

वल्लभभाई—बहुत आशा रखने जैसी बात नहीं है।

बापू : आशा इस लिए रख सकते हैं कि विलायतमें भी इस मामलेमें इनके विचार अलग ही रहे थे। वैसे तो क्या पता ?

वल्लभभाई—चिंतामणिने इस बार अच्छी तरह शोभा बढ़ाई।

बापू : क्योंकि चिंतामणि हिंदुस्तानी हैं, जब कि सप्रूका मानस यूरोपियन

है ! चिंतामणि समझते हैं कि इस निर्णयमें ही बहुत कुछ विधान आ जाता है। सप्रू यह मानते हैं कि विधान मिल गया तो फिर इन बातोंकी चिंता ही नहीं। (म० डा०, २१.८.३२)

: २१५ :

सम्पूर्णानन्द

श्री जयप्रकाशनारायण और श्री संपूर्णानंदजीने साफ शब्दोंमें कह दिया है कि हम २६ जनवरी को ली जानेवाली प्रतिज्ञामें जो भाग जोड़ा गया है उसके खिलाफ हैं। मुझे उनका बड़ा लिहाज है। वे योग्य हैं, वीर हैं और उन्होंने देशके खातिर कष्ट उठाए हैं। लड़ाईमें वे मेरे साथी बन सकें तो इसे मैं अपना सौभाग्य समझूं। मैं उन्हें अपने विचारका बना सकूं तो मुझे कितनी खुशी हो। लड़ाई आनी ही है और मुझे उसका नायक बनना है तो यह काम मैं ऐसे सहायकोंके भरोसे नहीं कर सकता जिनका कि कार्यक्रमपर अधूरा विश्वास हो या जिनके दिलमें उसके बारेमें शंकाएं हों। (ह० से०, २०.१.४०)

: २१६ :

साकरबाई

महासभा-सप्ताहमें मुझे बंबईके श्रीगोविंदजी वसनजी मिठाईवाला की माताके पत्र मिले थे, पर उसी समय मैं उनका उपयोग 'नवजीवन'में

न कर सका । श्रीगोविंदजीपर बंबईकी अदालतमें एक फौजदारी मुकदमा चल रहा है। उसकी बातें बंबईके अखबारोंमें आगई हैं । उनकी चर्चा मैं यहां नहीं करना चाहता । इस मुकदमेमें श्रीगोविंदजीकी माता श्रीमती साकरबाईकी जो वीरता दिखाई देती है उसीकी तरफ मैं पाठकोंका ध्यान दिलाना चाहता हूं । साकरबाई बड़ी हिम्मतके साथ पुलिसके पास गई। अदालतमें भी अपने बेटेके पास कैदियोंके कटरेके सामने खड़ी रहीं, जिससे अपने बेटेके चित्तमें किसी तरहकी कमजोरी न आने पावे । श्री गोविंदजी का लालन-पालन बड़े ऐशोआराममें हुआ है । बंबईके दंगेके समय उन्हें जो चोटें आई थी वे तो अभी ठीक ही नहीं हुई हैं । उन्हें जेलकी यातनाएं सहनेका कभी अवसर नहीं हुआ । मित्र लोग उनको जमानतपर छुड़वाने-का प्रयत्न करते हैं । यह कहकर कि यह मुकदमा तो निजी है, राजनैतिक नहीं, सफाई पेश करनेकी प्रेरणा करते हैं । इन सब भयोंसे बचानेके लिए तथा सत्यकी रक्षाके लिए साकरबाई अपने बेटेके पिंजड़ेके सामने खड़ी रहीं । अपनी उपस्थितिसे मानों उसको सुरक्षित कर दिया । साकरबाई-की हिम्मत तो देखिए, उन्होंने स्वयं ही श्री गोविंदजीको जमानतपर छुड़ानेसे मना कर दिया । वे बहुत जानती थीं कि असहयोगकी प्रतिज्ञा करनेवाला मनुष्य अदालतमें अपनी सफाई दे ही नहीं सकता, फिर मुकदमा चाहे खानगी हो चाहे सार्वजनिक, सच्चा हो या बनावटी । सो उन्होंने इस प्रतिज्ञाकी रक्षा करनेके लिए अदालतमें जानेका साहस किया । (हिं० न०, ८.१.२२)

: २१७ :

सांडर्स

'स्टेट्समैन' और 'इंग्लिशमैन' दोनों दक्षिण अफ्रीकाके प्रश्नका महत्त्व समझते थे। उन्होंने मेरी लंबी-लंबी बातचीत छापी, 'इंग्लिशमैन' के मि० सांडर्सने मुझे अपनाया। उनका दफ्तर मेरे लिए खुला था, उनका अखबार मेरे लिए खुला था। अपने अग्रलेखमें कमी-बेशी करनेकी भी छूट उन्होंने मुझे दे दी। यह भी कहूं तो अत्युक्ति नहीं कि उनका-मेरा खासा स्नेह हो गया। उन्होंने भरसक मदद देनेका वचन दिया। मुझसे कहा कि दक्षिण अफ्रीका जानेके बाद भी मुझे पत्र लिखिएगा और वचन दिया कि मुझसे जो-कुछ हो सकेगा करूंगा। मैंने देखा कि उन्होंने अपना यह वचन अक्षरशः पाला और जबतक उनकी तबीयत खराब न हो गई, उन्होंने मेरे साथ चिट्ठी-पत्री जारी रखी। मेरी जिंदगीमें ऐसे अकल्पित मीठे संबंध अनेक हुए हैं। मि० सांडर्सको मेरे अंदर जो सबसे अच्छी बात लगी वह थी अत्युक्तिका अभाव और सत्यपरायणता। उन्होंने मुझसे जिरह करनेमें कोई कसर न रखी थी उसमें उन्होंने अनुभव किया कि दक्षिण अफ्रीकाके गोरोंके पक्षको निष्पक्ष होकर पेश करनेमें तथा उनकी तुलना करनेमें मैंने कोई कमी नहीं रखी थी। (आ० क०)

: २१८ :

वी० डी० सावरकर

गांधीजीने बतलाया कि लोकमान्यकी यह जन्मभूमि सारे भारतवर्षके लिए तीर्थ-भूमि है। यह भी याद दिलाया कि श्री सावरकर भी

यहीं रहते हैं और सावरकरके साथ अपने परिचय, इंग्लैंडमें उनके साथ वार्तालापकी बात की, उनके स्वार्थ-त्याग और देशसेवाका उल्लेख करके बतलाया कि उनके साथ जबर्दस्त मतभेद होते हुए भी मित्रता तो पहले ही जैसी बनी हुई है।

"मतभेद चाहे जितना हो, तो भी प्रेमभाव तो चलता रहना चाहिए। अगर ऐसा न हो तो मुझे मेरी पत्नीका भी दुश्मन बनना चाहिए। इस दुनियामें ऐसे दो व्यक्तियोंको मैं नहीं जानता जिनमें मतभेद कतई न हो। गीताका समदृष्टिका उपदेश माननेवाला होकर मैंने तो अपनी जिंदगीमें ऐसा प्रयत्न किया है कि जिसके साथ मतभेद हो, उसके साथ भी उतना स्नेह रखना जितना अपने माता, पिता, भाई-बहन, या पत्नीके साथ।"

सभामें जानेसे पहले गांधीजीने, काले पानीसे तपश्चर्या करके लौटे हुए भाई सावरकरके घर जाकर उनसे भेंट कर ली थी। पांच-दस मिनटमें बहुत बात क्या हो सकती थी? गांधीजीको यहां पर इसका पता चला कि अस्पृश्यता और शुद्धिके संबंधमें उनके विचारोंको उल्टा स्वरूप दिया जाता है। पर और अधिक चर्चाके लिए उन्होंने सावरकरसे पत्र-व्यवहार करनेका आग्रह किया:

आप जानते हैं कि सत्यके प्रेमीके तौरपर, सत्यके लिए मरणपर्यंत लड़नेवालेके तौरपर, मेरे मनमें आपका कितना आदर है। आखिर हम दोनोंका ध्येय तो एक ही है। इसलिए आप जिस-जिस विषयमें मेरे साथ चर्चा करना चाहें उस विषयमें खूब पत्र-व्यवहार चलाइए और अगर आपकी इच्छा हो तो शुद्धि, खादी वगैरहके विषयमें खुलासा कर लेनेके लिए मैं दो-तीन दिन निकालकर आपके साथ रत्नागिरिमें रहनेको तैयार हूं।"

श्री सावरकरने कहा, "आप जैसे मुक्तको मैं बंदी बनाना नहीं

चाहता।" पत्र लिखनेकी सलाह उन्होंने खुशीसे स्वीकार कर ली।
(हि० न०, १७.३.२७)

: २१९ :

अप्टन सिंक्लेयर

आजकल तो The Wet Parade (दि वेट परेड) पढ़ रहे हैं और बड़ी दिलचस्पीके साथ। सिंक्लेयरके बारेमें कहा :

यह आदमी तो अद्‌भुत सेवा कर रहा दीखता है। समाजकी एक-एक गंदगीको लेकर बैठा है और उसका खुले आम भंडाफोड़ करता है। (म० डा०, १२.३.३२)

... ...

अमरीकाके लेखकोंके बारेमें राजाजीको कुछ भ्रम हो गया है। हार्डीका साहित्य मैंने पढ़ा नहीं है। जोलाका भी नहीं पढ़ा है। इसका मुझे हमेशा दुःख रहा है। मगर सिंक्लेयरका बिलकुल तिरस्कार नहीं किया जा सकता। प्रचारकी दृष्टिसे लिखे हुए उपन्यासोंमें प्रचारका ही दोष मानकर उन्हें हरगिज हलका नहीं बनाया जा सकता। प्रचारकके लिए तो उसकी सारी कला उसीमें भर दी जाती है। अपने खयालको वह छिपाता नहीं। और फिर भी कहानीमें रसको आंच नहीं आने देता। Uncle Tom's Cabin (टामकाकाकी कुटिया) साफ तौरपर प्रचारके लिए लिखी गई चीज है। मगर उसकी कलाकी बराबरी कौन कर सकता है? सिंक्लेयर एक जबरदस्त सुधारक है और सुधारके प्रचारके लिए उसने अलग-अलग उपन्यास लिखे हैं और यह कहा

जाता है कि सब रसरो भरे हैं। समय मिला तो मैं उन्हें पढ़ूंगा। (ग० डा०, २९.६.३२)

: २२० :

सिंह

भारतवर्षके इस सम्मानित सेवकके सम्मानमें औरोंकी अंजलियोंके साथ-साथ मैं भी अपनी श्रद्धांजलि अर्पण करता हूं। जब कभी भारतवर्षके सेवकोंकी सेवाओंका मूल्य आंका जायगा, लार्ड सिंहकी सेवाएं बहुमूल्य गिनी जायंगी। सभी राजनैतिक बातोंमें उनकी सलाह पूछी जाती थी। उसकी कीमत भी बड़ी समझी जाती थी। लार्ड सिंहकी मौतसे देश गरीब ही हुआ है। (हि० न०, ८.३.२८)

: २२१ :

श्रीकृष्ण सिन्हा

मुसलमानोंको वहां (बिहारमें) डरनेका क्या कारण है? दो अच्छे मुसलमान-सेवक उनकी सेवा कर रहे हैं। फिर वहांके मंत्रि-मंडल में श्रीकृष्ण सिन्हा हैं, जो पूरे सजग हैं। (प्रा० प्र०, २८.५.४७)

: २२२ :

सिमंडज

मुझे इतना तो जरूर ही कह देना चाहिए कि विलायतमें हमने एक क्षण भी बेकाम नहीं जाने दिया। बहुतसे गश्ती-पत्र वगैरा भेजना तथा इसी प्रकारके अन्य सब काम एक आदमीसे कभी नहीं बन सकते। उनमें बड़ी मददकी जरूरत होती है। बहुत-सी सहायता तो ऐसी है जो पैसे खर्च करनेपर मिल सकती है; पर मेरा ४० साल का अनुभव यह है कि वह उतनी गहरी और फलशील नहीं होती जैसी कि शुद्ध स्वयंसेवकोंकी होती है। सौभाग्यवश हमें वहां ऐसी ही सहायता मिली थी। बहुतसे भारतीय नौजवान जो वहां अध्ययन कर रहे थे वे हमारे आसपास बने रहते और उनमें से कितने ही बिना किसी प्रकारके लोभके सुबह-शाम हमें हमेशा सहायता करते रहते। पते लिखना, नकलें करना, टिकिट चिपकाना या डाकघरमें जाना, आदि। किसी भी कामके लिए मुझे यह याद नहीं आता कि उन्होंने यह कहा हो कि यह काम हमारे दर्जेको शोभा नहीं देता, इसलिए हम नहीं कर सकते। पर इन सबको एक तरफ बैठा देनेवाला और मदद करनेवाला एक अंग्रेज मित्र दक्षिण अफ्रीकामें था। वह भारतमें रह चुका था। इसका नाम था सिमंडज। अंग्रेजीमें एक कहावत है जिसका अर्थ यह है कि जिन्हें परमात्मा चाहता है उन्हें वह जल्दी उठा लेता है। भरजवानीमें इस परदुःखभंजन अंग्रेजको यमदूत ले गये। 'परदुःखभंजन' विशेषण किसी खास उद्देश्य से ही लगाया गया है। यह भला भाई जब बंबईमें था तब, अर्थात् १८९७में, प्लेगके भारतीय बीमारोंके बीच बेधड़क होकर उसने काम किया था और उनकी उसने सहायता की थी। छूतके रोगके रोगियोंकी सहायता करते समय मृत्युसे जरा भी न डरना यह भाव तो मानो उसके खूनमें भर दिया गया था।

जाति अथवा रंगद्वेष उसे छू तक न गया था। उसका स्वभाव बड़ा ही स्वतंत्र था। उसने अपना एक सिद्धांत बना रखा था कि माइनॉरिटी अर्थात् अल्पसंख्यकोंके साथ ही हमेशा सत्य रहता है। इसी सिद्धांतके अनुरूप वह जोहांसबर्गमें मेरी ओर आकर्षित हुआ। वह कई बार विनोदमें कहता कि याद रखिए आपका पक्ष बड़ा हुआ नहीं कि मैंने इसे छोड़ा नहीं, क्योंकि मैं यह माननेवाला हूं कि बहुमतके हाथमें सत्य भी असत्यका रूप धारण कर लेता है। उसने बहुत कुछ पढ़ा था। जोहांसबर्गके एक करोड़पति सर जॉर्ज फेररका वह खास विश्वस्त मंत्री था। शोर्टहैंड लिखनेमें बांका था। विलायतमें हम पहुंचे तब वह अनायास कहींसे आ मिला। मुझे तो उसके घरबारकी कोई खबर नहीं थी। पर हम तो जनताके सेवक अर्थात् अखबारोंकी चर्चाके विषय ठहरे। इसलिए उस भले अंग्रेजने हमें फौरन ढूंढ़ लिया और जो कुछ सहायता हो सकती थी वह करनेकी तैयारी बताई। उसने कहा, "अगर चपरासीका काम भी कहोगे तो जरूर करूंगा। पर यदि शोर्टहैंडकी आवश्यकता हो तो आप जानते ही हैं कि मेरे जैसा कुशल लेखक आपको कभी नहीं मिल सकता।" हमें तो दोनों सहायताओं-की आवश्यकता थी। और इस अंग्रेजने रात-दिन एक भी पैसा न लेते हुए हमारा काम कर दिया, यह कहते हुए मैं लेशमात्र भी अतिशयोक्ति नहीं कर रहा हूं। रातके बारह-बारह और एक-एक बजे तक तो वह हमेशा टाइप-राइटरपर ही डटा रहता। समाचार पहुंचाना, डाकखाने जाना यह सब सिमंडज करता और सब हँसते-हँसते। मुझे याद है कि इसकी मासिक आय लगभग ४५ पौंड थी। पर यह सब वह अपने मित्रों वगैराकी सहायतामें लगा देता। उसकी उम्र उस समय करीब ३० सालकी होगी। पर अबतक अविवाहित ही था और आजीवन वैसे ही रहना भी चाहता था। मैंने इसे कुछ तो लेनेके लिए बहुत आग्रह किया; पर उसने साफ इन्कार कर दिया। वह कहता, "यदि मैं इस सेवाके लिए मजदूरी लूं तो अपने धर्मसे भ्रष्ट हो जाऊं।" मुझे याद है कि आखिरी रातको हमें

अपना काम समेटते, असबाब बांधते सुबहके तीन बज गए थे। पर तबतक भी वह जागता ही रहा। हमें दूसरे दिन स्टीमरपर बैठाकर ही वह हमसे जुदा हुआ। वह वियोग बड़ा दुःखदाई था। मैंने तो यह कई बार अनुभव किया है कि 'परोपकार' केवल गेहुंए रंगके लोगोंकी ही विरासत नहीं है। (द० अ० स०)

: २२३ :

सुखदेव

'अनेकोंमेंसे एक' का लिखा हुआ पत्र स्वर्गीय सुखदेवका पत्र है। श्री सुखदेव भगतसिंहके साथी थे। यह पत्र उनकी मृत्युके बाद मुझे दिया गया था। समयाभावके कारण मैं इसे जल्दी ही प्रकाशित न कर सका।

लेखक 'अनेकोंमेंसे एक' नहीं है। राजनैतिक स्वतंत्रताके लिए फांसीको गले लगानेवाले अनेक नहीं होते। राजनैतिक खून चाहे जितने निंद्य हों तो भी जिस देश-प्रेम और साहसके कारण ऐसे भयानक काम किए जाते हैं, उनकी कद्र किए बिना रहा नहीं जा सकता। और हम आशा रखें कि राजनैतिक खूनियोंका संप्रदाय बढ़ नहीं रहा है। यदि भारतवर्षका प्रयोग सफल हुआ, और होना ही चाहिए, तो राजनैतिक खूनियोंका पेशा सदाके लिए बंद हो जायगा। मैं स्वयं तो इसी श्रद्धासे काम कर रहा हूं। (हि० न०, ३०.४.३१)

: २२४ :

उमर सुभानी

श्री उमर सुभानीजीकी बड़ी अचानक और अकाल मृत्यु हो गई। हमारे बीचसे एक महान देशभक्त और कार्यकर्ता उठ गया। एक समय बंबईमें श्री उमर सुभानीकी तूती बोलती थी। बंबईका कोई सार्वजनिक कार्य, उमर सुभानीके दिन बिगड़नेसे पहले ऐसा न होता था जिसमें उनका हाथ न हो। फिर भी वह कभी सामने मंचपर नहीं आते थे। मंचको तैयार कर देते थे। बंबईके सौदागरोंमें वे बहुत प्रिय थे। उनकी सूझ प्रायः बहुत तीक्ष्ण और बेलाग होती थी। उनकी उदारता दोषकी हद तक पहुंच जाती थी। पात्र-कुपात्र सब हीको वह दान दिया करते थे। प्रत्येक सार्वजनिक कार्यके लिए उनकी थैलीका मुंह खुला रहता था। जैसा उन्होंने कमाया वैसा ही खर्च भी किया। उमर सुभानी हर कामकी हद कर देते थे। उन्होंने आढ़तके काममें भी हद कर दी और इसीसे उनपर तबाही आ गई। एक महीनेमें ही उन्होंने अपनी आमदनीको कुगुना कर लिया और दूसरेही महीनेमें दिवाला पीट लिया। परंतु उन्होंने अपनी हानिको तो बहादुरीसे सह लिया; परंतु उनके अभिमानने उन्हें सार्वजनिक कार्योंसे हटा लिया; क्योंकि अब उनपर इन कामोंमें लाखों रुपया खर्च करनेको नहीं था। वह माध्यमिक रास्तेपर चलना जानते ही नहीं थे। यदि चंदेकी फेहरिस्तमें सबसे पहले वह नहीं रह सकते तो बस फिर वह उस फेहरिस्त-की तरफ मुंह मोड़कर भी न देखेंगे। इसलिए गरीब होते ही वह सार्व-जनिक कार्योंसे हाथ खींचकर बैठ गए। जहां कहीं और जब भी कोई सार्वजनिक कार्य होगा उमर सुभानीका नाम बिना याद आये न रहेगा और न उनकी देशकी सेवा ही कोई भूल सकता है। उनका जीवन हर अमीर नौजवानके लिए आदर्श और चेतावनी दोनों हैं। उनका जोश-

भरा देशभक्तिका कार्य आदर्श योग्य है। उनका जीवन हमें बताता है कि रुपया रखकर भी एक मनुष्य काबिल हो सकता है और उस रुपएको सार्वजनिक कार्योंकी भेंट कर सकता है। उनका जीवन अमीर नौजवानोंको, जो बड़े-बड़े काम करनेकी धुनमें रहते हैं, चेतावनी भी देता है।

उमर सुभानी कोई निर्बुद्ध सौदागर नहीं था। जिस समय उनको हानि हुई उस समय और भी बहुतसे सौदागरोंको हानि हुई थी। उन्होंने जो बहुत-सी रुई भर ली थी उसको हम मूर्खता नहीं कह सकते। वह बंबईके सौदागरोंमें अच्छा स्थान रखते थे, फिर भी उन्होंने इस प्रकार और लाभके ध्यानसे रुपया क्यों लगाया ? परंतु वह तो देशभक्तकी हैसियतसे हौसला बढ़ाए रखना अपना कर्तव्य समझते थे। उनका जीवन और नाम जनताकी जागीर था और उन्हें बहुत सोच-समझकर काम करना चाहिए था। मैं समझता हूं कि काम बिगड़ जानेके बाद सब लोग अक्लमंदीकी बातें बताया करते हैं; परंतु मैं उनके दोष ढूंढ़नेके अभिप्रायसे कुछ नहीं कह रहा हूं। मैं तो चाहता हूं कि हम सब इस देशभक्तके जीवनसे शिक्षा लें। आनेवाली संतानको किसी कामके बिगड़ जानेसे शिक्षा लेनी ही चाहिए। दूसरोंकी गलतियोंसे भी हमें कुछ सीखना ही चाहिए। हम सबको उमर सुभानीकी तरह अपने हृदयमें देशप्रेम रखना चाहिए। हम सबको दान देनेमें उमर सुभानी होना चाहिए। हम सबको उमर सुभानीकी तरह धार्मिक द्वेषसे दूर रहना चाहिए। परंतु हम सबको उमर सुभानीकी तरह लापरवाह और असावधान होनेसे बचना चाहिए। यही इस देशभक्तने हम सबके लिए वसीयत छोड़ी है और हम सबको उस वसीयतसे लाभ उठाना चाहिए।

मेरी उनके वृद्ध पिता और उनके परिवारके साथ अत्यंत सहानुभूति है और मैं उनके साथ उनके शोकमें सम्मिलित हूं। (हि० न०, १५.७.२६)

: २२५ :

हसन शहीद सुहरावर्दी

यहांपर मैं कैसे भूल सकता हूं कि शहीदसाहबने कलकत्तेमें बड़ा काम किया। अगर वह नहीं करते तो मैं ठहरनेवाला नहीं था। शहीदसाहबके लिए हम लोगोंके दिलमें बहुत संदेह थे। अभी भी हैं। उससे हमको क्या? आज हम सीखें कि कोई भी इन्सान हो, कैसा भी हो, उससे हमको दोस्ताना तौरसे काम करना है। हम किसीके साथ किसी हालतमें दुश्मनी नहीं करेंगे, दोस्ती ही करेंगे। शहीदसाहब और दूसरे चार करोड़ मुसलमान पड़े हैं। वे सब-के-सब फरिश्ते तो हैं ही नहीं। ऐसे ही सब हिंदू और सिख भी फरिश्ते थोड़े ही हैं! अच्छे और बुरे हममें हैं; लेकिन बुरे कम हैं। (प्रा० प्र०, १८.१.४८)

: २२६ :

अब्दुल्ला सेठ

नेटालका बंदर यों तो डरबन कहलाता है, पर नेटालको भी बंदर कहते हैं। मुझे बंदरपर लिवाने अब्दुल्ला सेठ आए थे। जहाज धक्केपर आया। नेटालके जो लोग जहाजपर अपने मित्रोंको लेने आए थे, उनके रंग-ढंगको देखकर मैं समझ गया कि यहां हिंदुस्तानियोंका विशेष आदर नहीं। अब्दुल्ला सेठकी जान-पहचानके लोग उनके साथ जैसा बरताव करते थे उसमें एक प्रकारकी क्षुद्रता दिखाई देती थी, और वह मुझे चुभ रही थी। अब्दुल्ला सेठ इस दुर्दशाके आदी हो गए थे। मुझपर जिनकी

दृष्टि पड़ती जाती वे मुझे कुतूहलसे देखते थे; क्योंकि मेरा लिबास ऐसा था कि मैं दूसरे भारतवासियोंसे कुछ निराला मालूम होता था। उस समय फ्रॉक कोट आदि पहने था और सिरपर बंगाली ढंगकी पगड़ी दिए था।

मुझे घर लिवा ले गए। वहां अब्दुल्ला सेठके कमरेके पासका कमरा मुझे दिया गया। अभी वह मुझे नहीं समझ पाए थे, मैं भी उन्हें नहीं समझ पाया था। उनके भाईकी दी हुई चिट्ठी उन्होंने पढ़ी और बेचारे पसोपेशमें पड़ गए। उन्होंने तो समझ लिया कि भाईने तो यह सफेद हाथी घर बंधवा दिया। मेरा साहबी ठाट-बाट उन्हें बड़ा खर्चीला मालूम हुआ; क्योंकि मेरे लिए उस समय उनके यहां कोई खास काम तो था नहीं। मामला उनका चल रहा था ट्रांसवालमें। सो तुरंत ही वहां भेजकर वह क्या करते? फिर यह भी एक सवाल था कि मेरी योग्यता और ईमानदारीका विश्वास भी किस हदतक किया जाय? और प्रिटोरियामें खुद मेरे साथ वह रह नहीं सकते थे। मुदालेह प्रिटोरियामें रहते थे। कहीं उनका बुरा असर मुझपर होने लगे तो? और यदि वह मामलेका काम मुझे न दें तो और काम तो उनके कर्मचारी मुझसे भी अच्छा कर सकते थे। फिर कर्मचारीसे यदि भूल हो जाय तो कुछ कह-सुन भी सकते थे। मुझसे तो कहनेसे रहे। काम या तो कारकुनीका था या मुकदमेका—तीसरा था नहीं। ऐसी हालतमें यदि मुकदमेका काम मुझे नहीं सौंपते हैं तो घर बैठे मेरा खर्च उठाना पड़ता था।

अब्दुल्ला सेठ पढ़े-लिखे बहुत कम थे। अक्षर-ज्ञान कम था; पर अनुभव-ज्ञान बहुत बड़ा था। उनकी बुद्धि तेज थी और वह खुद भी इस बातको जानते थे। अभ्याससे अंग्रेजी इतनी जान ली कि बोलचालका काम चला लेते। परंतु इतनी अंग्रेजीके बलपर वह अपना सारा काम चला लेते थे। बैंकमें मैनेजरोंसे बातें कर लेते, यूरोपियन व्यापारियोंसे सौदा कर लेते, वकीलोंको अपना मामला समझा देते। हिंदुस्तानियोंमें उनका

काफी मान था। उनकी पेढ़ी उस समय हिंदुस्तानियोंमें सबसे बड़ी नहीं तो, बड़ी पेढ़ियोंमें अवश्य थी। उनका स्वभाव वहमी था।

वह इस्लामका बड़ा अभिमान रखते थे। तत्त्वज्ञानकी बातोंके शौकीन थे। अरबी नहीं जानते थे; फिर भी कुरान-शरीफ तथा आम तौरपर इस्लामी-धर्म-साहित्यकी वाकफियत उन्हें अच्छी थी। दृष्टांत तो जबानपर हाजिर रहते थे। उनके सहवाससे मुझे इस्लामका अच्छा व्यावहारिक ज्ञान हुआ। जब हम एक-दूसरेको जान-पहचान गए तब वह मेरे साथ बहुत धर्म-चर्चा किया करते।

दूसरे या तीसरे दिन मुझे डरबन अदालत दिखाने ले गये। वहां कितने ही लोगोंसे परिचय कराया। अदालतमें अपने वकीलके पास मुझे बिठाया। मजिस्ट्रेट मेरे मुंहकी ओर देखता रहा। उसने कहा—"अपनी पगड़ी उतार लो।"

मैंने इन्कार किया और अदालतसे बाहर चला आया।

मेरे नसीबमें तो यहां भी लड़ाई लिखी थी।

पगड़ी उतरवानेका रहस्य मुझे अब्दुल्ला सेठने समझाया। मुसलमानी लिबास पहननेवाला अपनी मुसलमानी पगड़ी यहां पहन सकता है। दूसरे भारतवासियोंको अदालतमें जाते हुए अपनी पगड़ी उतार लेनी चाहिए।

....पगड़ी उतार देनेका अर्थ था मान-भंग सहन करना। सो मैंने तो यह तरकीब सोची कि हिंदुस्तानी पगड़ीको उतारकर अंग्रेजी टोप पहना करूं, जिससे उसे उतारनेमें मान-भंगका भी सवाल न रह जाय और मैं इस झगड़ेसे भी बच जाऊं।

पर अब्दुल्ला सेठको यह तरकीब पसंद न आई। उन्होंने कहा—

"यदि आप इस समय ऐसा परिवर्तन करेंगे तो उसका उलटा अर्थ होगा। जो लोग देशी पगड़ी पहने रहना चाहते होंगे उनकी स्थिति विषम हो जायगी। फिर आपके सिरपर अपने ही देशकी पगड़ी

शोभा देती है। आप यदि अंग्रेजी टोपी लगावेंगे तो लोग 'वेटर' समझेंगे।"

इन वचनोंमें दुनियवी समझदारी थी, देशाभिमान था और कुछ संकुचितता भी थी। समझदारी तो स्पष्ट ही है। देशाभिमानके बिना पगड़ी पहननेका आग्रह नहीं हो सकता था। संकुचितताके बिना 'वेटर' की उपमा न सूझती। गिरमिटिया भारतीयोंमें हिंदू, मुसलमान और ईसाई तीन विभाग थे। जो गिरमिटिया ईसाई हो गए, उनकी संतति ईसाई थी। १८९३ ई०में भी उनकी संख्या बड़ी थी। वे सब अंग्रेजी लिबासमें रहते। उनका अच्छा हिस्सा होटलमें नौकरी करके जीविका उपार्जन करता। इसी समुदायको लक्ष्य करके अंग्रेजी टोपीपर अब्दुल्ला सेठने यह टीका की थी। उसके अंदर वह भाव था कि होटलमें 'वेटर' बनकर रहना हलका काम है। आज भी यह विश्वास बहुतोंके मनमें कायम है।

कुल मिलाकर अब्दुल्ला सेठकी बात मुझे अच्छी मालूम हुई। मैंने पगड़ीवाली घटनापर पगड़ीका तथा अपने पक्षका समर्थन अखबारोंमें किया। अखबारोंमें उसपर खूब चर्चा चली। 'अनवेलकम विजिटर'—अनचाहा अतिथि—के नामसे मेरा नाम अखबारोंमें आया और तीन ही चार दिनके अंदर अनायास ही दक्षिण अफ्रीकामें मेरी ख्याति हो गई। किसीने मेरा पक्ष-समर्थन किया, किसीने मेरी गुस्ताखीकी भरपेट निंदा की।

मेरी पगड़ी तो लगभग अंततक कायम रही। वह कब उतरी, यह बात हमें अंतिम भागमें मालूम होगी। (आ० क० १९२७)

: २२७ :

विलियम विल्सन हंटर

दक्षिण अफ्रीकाके सवालके महत्वको भारतीयोंसे भी पहले समझने-वाले और वैसी ही कीमती सहायता करनेवाले सज्जन सर विलियम विल्सन हंटर थे। वे 'टाइम्स'के भारतीय विभागके संपादक थे। इनके पास ज्योंही पहला पत्र पहुंचा त्योंही उन्होंने उसमें दक्षिण अफ्रीकाकी स्थितिको यथार्थ स्वरूपमें जनताके सामने रख दिया। जहां-जहां उचित मालूम हुआ वहां-वहां उन्होंने खानगी पत्र भी लिखे। अगर कोई महत्वपूर्ण प्रश्न छिड़ जाता तो इनकी डाक बराबर नियमसे हर सप्ताह आती। अपने पहले ही पत्रमें उन्होंने लिखा था—"आपने वहांकी स्थितिका जो हाल लिखा है उसे पढ़कर मैं दुःखित हूं। आप अपना काम निःसन्देह विनय-पूर्वक, शांतिके साथ और संयमसे ले रहे हैं। इस प्रश्नमें मैं पूरी तरहसे आपके साथ हूं और न्याय प्राप्त करनेके लिए मुझसे जो कुछ बन पड़ेगा सब करना चाहता हूं। मुझे तो निश्चय है कि इस विषयमें हम एक इंचभर भी पीछे पैर नहीं रख सकते। आपकी मांग तो ऐसी है कि कोई भी निष्पक्ष मनुष्य उसमें तिलमात्र रद्दो-बदल नहीं कर सकता।" करीब-करीब यही शब्द उन्होंने 'टाइम्स' के अपने पहले लेखमें लिखे थे और आखिर तक उसी बातपर कायम रहे। लेडी हंटरने अपने एक पत्रमें लिखा था कि जब उनकी मृत्युका समय आया तब उन दिनोंमें भी उन्होंने भारतीयोंके प्रश्नपर एक लेखमाला लिखनेके लिए एक ढांचा तैयार कर रखा था। (द० अ० स०)

: २२८ :

हरबत सिंह

कुछ दिन तो वाक्सरेस्टकी जेलमें हमने सुख-पूर्वक बिताए। यहां हमेशा नए कैदी आते रहते थे, इसलिए नित्य नई खबरें भी मिलती रहती थीं। इन सत्याग्रही कैदियोंमें हरबतसिंह नामका एक बूढ़ा था। उसकी अवस्था ७५ वर्षसे भी अधिक होगी। वह कहीं खानोंमें नौकरी नहीं करता था। उसने तो बरसों पहले अपना गिरमिट पूरा कर दिया था। इसलिए वह हड़तालिया नहीं था। मेरे गिरफ्तार हो जानेपर लोगोंमें जोश खूब बढ़ गया था और वे नेटालसे ट्रान्सवालमें प्रवेश कर अपनेको गिरफ्तार करा दिया करते थे। हरबतसिंहने भी इनके साथ-साथ ट्रान्सवाल जानेका निश्चय किया।

एक दिन हरबतसिंहसे मैंने पूछा, "आप क्यों जेलमें आए? आप जैसे बूढ़ोंको मैंने जेलमें आनेका निमंत्रण नहीं दिया है।"

हरबतसिंहने उत्तर दिया:

"मैं कैसे रह सकता था, जब आप, आपकी धर्मपत्नी और आपके लड़के तक हम लोगोंके लिए जेल चले गए?"

"लेकिन आप जेलके दुःखोंको बर्दाश्त नहीं कर सकेंगे। आप जेल छोड़कर चले जावें। क्या मैं आपके छूटनेके लिए कोशिश करूं?"

"मैं जेल हरगिज नहीं छोड़ूंगा। मुझे एक दिन मरना तो हई है। फिर ऐसा दिन कहां, जो मेरी मौत यहीं हो जाय!"

इस दृढ़ताको मैं कैसे विचलित कर सकता था? वह तो इतनी विकट थी कि विचलित करने पर भी डिग नहीं सकती थी। हरबतसिंह की जो भावना थी, ठीक वही हुआ। उसने जेल ही में अपनेको मृत्युके हाथोंमें सौंप दिया। उसका शव वॉक्सरेस्टसे डरबन मंगवाया गया था। सम्मान-

पूर्वक सैकड़ों भारतीयोंकी उपस्थितिमें हरबतसिंहका अग्नि-संस्कार किया गया। पर इस युद्धमें ऐसे एक नहीं, अनेकों हरबतसिंह थे। हां, जेलमें मरनेका सौभाग्य जरूर अकेले हरबतसिंहको ही प्राप्त हुआ और इसी लिए दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहके इतिहासमें उसका नाम उल्लेखनीय भी हो गया। (द० अ० स० १९२५)

: २२९ :

एमिली हाबहाउस

मिस हाबहाउस लार्ड हाबहाउसकी पुत्री हैं। बोअर युद्ध शुरू हुआ तब यह महिला लार्ड मिल्नरके सामनेसे होकर ट्रान्सवाल पहुंची थी। जब लार्ड किचनरने अपनी जगतप्रसिद्ध कांसेन्ट्रेशन कैंप ट्रान्सवाल और फ्रीस्टेटमें बैठाई उस समय यह महिला अकेली बोअर औरतोंमें घूमती और उन्हें दृढ़ रहने, धीरज रखनेके लिए उपदेश करती और उत्साह देती। वह स्वयं मानती थी कि इस युद्धमें अंग्रेजोंकी ओर न्याय नहीं है, इसलिए स्वर्गीय स्टेडकी तरह परमात्मासे प्रार्थना करती थी कि इस युद्धमें अंग्रेजोंका पराभव हो जाय। इस प्रकार बोअरोंकी सेवा करनेपर जब उसने देखा कि जिस अन्यायके खिलाफ बोअर लोग लड़े थे, वैसा ही अन्याय अज्ञानके कारण वे ही अब भारतीयोंके प्रति कर रहे हैं तब उससे नहीं रहा गया। बोअर जनता उसका बड़ा सम्मान करती थी और उनपर बहुत प्रेम रखती थी। जनरल बोथाके साथ उसका बहुत निकट संबंध था। उन्हींके यहां वह ठहरती थी। खूनी कानून रद करवानेके लिए उसने अपनी ओरसे कुछ उठा न रक्खा। (द० अ० स० १९२५)

* * *

समाचारपत्रोंसे हमें विदित हुआ है कि कुमारी एमिली हाबहाउस-की मृत्यु हो गई है। वह एक बहुत शरीफ और बड़ी बहादुर स्त्री थीं। वे पुरस्कारका कभी न ख्याल करते हुए सेवा किया करती थीं। उनकी सेवा ईश्वरार्पण की हुई मानव-समाजकी सेवा थी। वे शरीफ अंग्रेजी कुलमें उत्पन्न हुई थीं। वे अपने देशके प्रति प्रेम रखती थीं और इसी कारण वे उसके द्वारा किए गये किसी अन्यायको सहन नहीं कर सकती थीं। उन्होंने बोअर-युद्धके घोर अत्याचारको समझ लिया था। उन्होंने विचार-किया कि उस युद्धके सुलगानेमें इंगलैंडका सरासर कसूर है। उन्होंने ऐसे समयमें उस युद्धकी निंदा अत्यंत कड़ी भाषामें की थी, जब कि इंगलैंड उसके पीछे दीवाना हो रहा था। वे दक्षिण अफ्रीका गईं और वहां उनकी आत्माने उन शिविर-कारागारोंके खड़े किए जाने तथा उनमें पराजित वीरोंके बालबच्चोंको जबर्दस्ती लाकर रखनेकी पशुताका घोर विरोध किया, जिन शिविर-कारागारोंको लार्ड किचनरने युद्धमें विजय प्राप्त करने-के लिए आवश्यक ठहराया था। यह उसी समयकी बात है जब कि विलि-यम स्टेडने, अंग्रेजोंकी पराजयके लिए, ईश्वर-प्रार्थना करवाई थी। एमिली हाबहाउस, यद्यपि वे दुर्बल थीं, तथापि शारीरिक असुविधाओंका कुछ भी ख्याल न करके दक्षिण अफ्रीका फिर गईं और वहां उन्होंने अपने प्रति अपमान तथा उससे गए-गुजरे बर्तावका आह्वान किया। वे वहां कैद कर ली गईं और वापस लौटा दी गईं। उन्होंने इन सबको एक सच्ची बहा-दुर स्त्रीकी भांति सहन किया। उन्होंने बोअर-जातियोंके दिल मजबूत किए और उनसे कहा कि आशाको कदापि न त्यागो। उन्होंने उनसे यह भी कहा कि यद्यपि इंगलैंड मदमें चूर है, तथापि इंगलैंडके अनेक पुरुषों तथा स्त्रियोंमें बोअर लोगोंके प्रति सहानुभूति है और किसी-न-किसी दिन उनकी बात सुनी जायगी। और यही हुआ। सर हैनरी कैम्पबल बैनरमैन जन-साधारण चुनावमें बड़े बहुमतसे लिबरल दलके नेता चुने गए और उन बोअर लोगोंके नुकसानकी पूर्त्ति यथासंभव की गई, जिन्होंने युद्धमें क्षति

उठाई थी। युद्धके समाप्त होजानेपर उस अवसरपर जबकि दक्षिण अफ्रीका-का सत्याग्रह जारी था मुझे मिस हावहाउससे परिचित होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। जो जान-पहचान हुई थी, वह क्रमशः जीवनपर्यंतकी मैत्री बन गई। हिंदुस्तानियों तथा दक्षिण अफ्रीकाकी सरकारके बीच सन् १९१४ ई० वाले समझौतेमें उनका भाग कोई मामूली भाग न था। वे जनरल बोथाकी मेहमान थीं। उस समय जनरल बोथाने कई बार मुलाकात-विषयक मेरे प्रस्तावोंपर टालमटूलकी थी, उन्होंने हर मर्तबा 'गृहसचिव'के सामने अपनी बात पेश करनेको कहा था, परंतु मिस हावहाउसने जनरल बोथाके साथ यह आग्रह किया कि वे मुझसे अवश्य मिलें। इसलिए उन्होंने 'केपटाउन' में जनरल साहबके निवास-स्थानपर जनरल तथा उनकी पत्नी, स्वयं वे तथा मैं इनके बीचमें वार्तालापके निमित्त एकत्रित होनेका प्रबंध कराया। उनका नाम बोअर-लोगोंमें एक ऐसा नाम था जिसके लेने-मात्रसे उन लोगोंमें विश्वासका सिक्का जम जाता था और उन्होंने अपने सारे प्रभावको हिंदुस्तानी मामलेमें लगाकर मेरा मार्ग सरल बना दिया था। जब मैं हिंदुस्तानमें आया (और जबकि) रौलेट ऐक्टका आंदोलन चल रहा था—उन्होंने मुझे यह लिखा कि मुझे यदि फांसीके तख्तेपर नहीं तो कारागारमें अपना जीवन अंत करना पड़ेगा, और मैं इस बातसे चिंतित नहीं हूं। उनमें इस त्यागकी शक्ति पूर्ण रूपसे मौजूद थी। यह तो उनकी अटल धारणा थी ही कि कोई भी आंदोलन, बिना उसके पोषकके बलिदानके सफल नहीं हुआ करता। अभी पारसाल ही उन्होंने मुझे लिखा था कि मैं दक्षिण अफ्रीका निवासी भारतवासियोंके पक्षमें अपने मित्र जनरल हार्टजोगसे खूब लिखा-पढ़ी कर रही हूं। उन्होंने मुझे यह भी लिखा था कि आप उनके (जनरलके) प्रति कुपित न हों और आप उनसे जो आशा रखते हों, उसका ख्याल मुझे दें।

हिंदुस्तानकी स्त्रियोंको चाहिए कि वे इस अंग्रेज महिलाको याद रक्खें।

उन्होंने कभी विवाह नहीं किया। उनका जीवन स्फटिककी भांति स्वच्छ था। उन्होंने अपनेको ईश्वर-सेवाके लिए अर्पित कर रखा था। उनका स्वास्थ्य तो बिलकुल गया-बीता था। उनको लकवेकी बीमारी थी। परंतु उनके उस दुर्बल और रोगग्रसित शरीरमें वह आत्मा दीप्यमान थी, जो कि राजाओं और शाहंशाहोंके ससैन्य बलको भी ललकार सकती थी। वे किसी मनुष्यसे डरती न थीं, क्योंकि उनको केवल ईश्वरका भय था।
(हि० न०, २२.७.२६)

: २३० :

हास्किन

जैसे-जैसे आंदोलन आगे बढ़ता चला वैसे-वैसे अंग्रेज भी उसमें रस लेने लगे। मुझे यह कह देना चाहिए यद्यपि ट्रान्सवालके अंग्रेजी अखबार अक्सर उस खूनी कानूनके पक्षमें ही लिखते और गोरोंके विरोधका समर्थन करते थे, तथापि अगर कोई प्रख्यात भारतीय उनमें कोई लेख भेजते तो उसे वे खुशीसे छापते थे। सरकारके पास भारतीयोंकी जो दरख्वास्तें जाती थीं उन्हें भी वे या तो पूरी छापते थे या उनका सार दे देते थे। बड़ी-बड़ी सभाएं होती थीं। उनमें कभी-कभी वे अपने रिपोर्टर भी भेजते थे। और जहां ऐसा न हो वहां यदि सभाकी रिपोर्ट हम लिखकर भेज देते और वह छोटी होती तो उसे भी छाप देते थे।

गोरोंका यह विवेक भारतीयोंके लिए बहुत उपयोगी साबित हुआ। आंदोलनके बढ़ते ही कितने ही गोरोंका भी मन उसने आकर्षित कर लिया। इस श्रेणीके ऐसे गोरे अगुवा जोहांसबर्गके एक लखपति मि० हास्किन थे। उनमें रंगद्वेषका तो पहले ही से अभाव था। पर आंदोलन शुरू होने-

पर भारतीयोंकी हलचलमें उन्होंने अधिक दिलचस्पी दिखाई। (द० अ० स०)

: २३१ :

नारायण हेमचंद्र

लगभग इसी दरमियान स्वर्गीय नारायण हेमचंद्र विलायत आए थे। मैं सुन चुका था कि वह एक अच्छे लेखक हैं। नेशनल इंडियन एसोसिएशनवाली मिस मैनिंगके यहां उनसे मिला। मिस मैनिंग जानती थीं कि सबसे हिल-मिल जाना मैं नहीं जानता। जब कभी मैं उनके यहां जाता तब चुपचाप बैठा रहता। तभी बोलता, जब कोई बातचीत छेड़ता।

उन्होंने नारायण हेमचंद्रसे मेरा परिचय कराया।

नारायण हेमचंद्र अंग्रेजी नहीं जानते थे। उनका पहनावा विचित्र था। बेढंगी पतलून पहने थे। उसपर था एक बादामी रंगका मैला कुचैला-सा पारसी काटका बेडौल कोट। न नेकटाई, न कालर। सिरपर ऊनकी गुंथी हुई टोपी और नीचे लंबी दाढ़ी।

बदन इकहरा, कद नाटा कह सकते हैं। चेहरा गोल था, उसपर चेचकके दाग थे। नाक न नोकदार थी, न चपटी। हाथ दाढ़ीपर फिरा करता था।

वहांके लाल-गुलाल फैशनेबल लोगोंमें नारायण हेमचंद्र विचित्र मालूम होते थे। वह औरोंसे अलग छटक पड़ते थे।

"आपका नाम तो मैंने बहुत सुना है। आपके कुछ लेख भी पढ़े हैं। आप मेरे घर चलिए न ?"

नारायण हेमचंद्रकी आवाज जरा भर्राई हुई थी। उन्होंने हँसते हुए जवाब दिया—

"आप कहां रहते हैं ?"

"स्टोर स्ट्रीटमें।"

"तब तो हम पड़ोसी हैं। मुझे अंग्रेजी सीखना है। आप सिखा देंगे ?"

मैंने जवाब दिया—"यदि मैं किसी प्रकार भी आपकी सहायता कर सकूं तो मुझे बड़ी खुशी होगी। मैं अपनी शक्ति भर कोशिश करूंगा। यदि आप चाहें तो मैं आपके यहां भी आ सकता हूं।"

"जी नहीं, मैं खुद ही आपके पास आऊंगा। मेरे पास पाठमाला भी है। उसे लेता आऊंगा।"

समय निश्चित हुआ। आगे चलकर हम दोनोंमें बड़ा स्नेह हो गया।

नारायण हेमचंद्र व्याकरण जरा भी नहीं जानते थे। 'घोड़ा' क्रिया और 'दौड़ना' संज्ञा बन जाती है। ऐसे मजेदार उदाहरण तो मुझे कई याद हैं। परंतु नारायण हेमचंद्र ऐसे थे, जो मुझे भी हजम कर जायं। वह मेरे अल्प व्याकरण-ज्ञानसे अपनेको भुला देनेवाले जीव न थे। व्याकरण न जाननेपर वह किसी प्रकार लज्जित न होते थे।

"मैं आपकी तरह किसी पाठशालामें नहीं पढ़ा हूं। मुझे अपने विचार प्रकट करनेमें कहीं व्याकरणकी सहायताकी जरूरत नहीं दिखाई दी। अच्छा, आप बंगला जानते हैं ? मैं तो बंगला भी जानता हूं। मैं बंगालमें भी घूमा हूं। महर्षि देवेंद्रनाथ टैगोरकी पुस्तकोंका अनुवाद तो गुजराती जनताको मैंने ही दिया है। अभी कई भाषाओंके सुंदर ग्रंथोंके अनुवाद करने हैं। अनुवाद करनेमें भी शब्दार्थपर नहीं चिपटा रहता। भाव-मात्र दे देनेसे मुझे संतोष हो जाता है। मेरे बाद दूसरे लोग चाहे भले ही सुंदर वस्तु दिया करें। मैं तो बिना व्याकरण पढ़े मराठी भी जानता हूं, हिंदी भी जानता हूं और अब अंग्रेजी भी जानने लग गया हूं। मुझे तो

सिर्फ शब्द-भंडारकी जरूरत है। आप यह न समझ लें कि अकेली अंग्रेजी जान लेनेभरसे मुझे संतोष हो जायगा। मुझे तो फ्रांस जाकर फ्रेंच भी सीख लेनी है। मैं जानता हूं कि फ्रेंच साहित्य बहुत विशाल है। यदि हो सका तो जर्मन जाकर जर्मन भाषा भी सीख लूंगा।"

इस तरह नारायण हेमचंद्रकी वाग्धारा बे-रोक बहती रही। देश-देशांतरोंमें जाने व भिन्न-भिन्न भाषा सीखनेका उन्हें असीम शौक था।

"तब तो आप अमेरिका भी जरूर ही जावेंगे?"

"भला इसमें भी कोई संदेह हो सकता है? इस नवीन दुनियाको देखे बिना कहीं वापस लौट सकता हूं?"

"पर आपके पास इतना धन कहां है?"

"मुझे धनकी क्या जरूरत पड़ी है? मुझे आपकी तरह तड़क-भड़क तो रखना है ही नहीं। मेरा खाना कितना और पहनना क्या? मेरी पुस्तकोंसे कुछ मिल जाता है और थोड़ा-बहुत मित्र लोग दे दिया करते हैं, वह काफी है। मैं तो सर्वत्र तीसरे दर्जेमें ही सफर करता हूं। अमेरिका तो डेकमें जाऊंगा।"

नारायण हेमचंद्रकी सादगी बस उनकी अपनी थी। हृदय भी उनका वैसा ही निर्मल था। अभिमान छूतक नहीं गया था। लेखकके नाते अपनी क्षमतापर उन्हें आवश्यकतासे भी अधिक विश्वास था।

हम रोज मिलते। हमारे बीच विचार तथा आचार-साम्य भी काफी था। दोनों अन्नाहारी थे। दोपहरको कई बार साथ ही भोजन करते। यह मेरा वह समय था, जब मैं प्रति सप्ताह सत्रह शिलिंगमें ही अपना गुजर करता और खाना खुद पकाया करता था। कभी मैं उनके मकानपर जाता तो कभी वह मेरे मकानपर आते। मैं अंग्रेजी ढंगका खाना पकाता था, उन्हें देशी ढंगके बिना संतोष नहीं होता था। उन्हें दाल जरूरी थी। मैं गाजर इत्यादिका रसा बनाता। इसपर उन्हें मुझपर बड़ी दया आती। कहींसे वह मूंग ढूंढ़ लाए थे। एक दिन मेरे लिए मूंग पकाकर लाए, जो

मैंने बड़ी रुचि-पूर्वक खाए। फिर तो हमारा इस तरहका देने-लेनेका व्यवहार बहुत बढ़ गया। मैं अपनी चीजोंका नमूना उन्हें चखाता और वह मुझे चखाते।

इस समय कार्डिनल मैनिंगका नाम सबकी जबानपर था। डाकके मजदूरोंने हड़ताल कर दी थी। जॉनबर्न्स और कार्डिनल मैनिंगके प्रयत्नोंसे हड़ताल जल्दी बंद हो गई। कार्डिनल मैनिंगकी सादगीके विषयमें जो डिसरैलीने लिखा था, वह मैंने नारायण हेमचंद्रको सुनाया।

"तब तो मुझे उस साधु पुरुषसे जरूर मिलना चाहिए!"

"वह तो बहुत बड़े आदमी हैं। आपसे क्योंकर मिलेंगे?"

"इसका रास्ता मैं बता देता हूं। आप उन्हें मेरे नामसे एक पत्र लिखिए कि मैं एक लेखक हूं। आपके परोपकारी कार्योंपर आपको धन्य-वाद देनेके लिए प्रत्यक्ष मिलना चाहता हूं। उसमें यह भी लिख दीजिएगा कि मैं अंग्रेजी नहीं जानता। इसलिए---अपना नाम लिखिए---बतौर दुभाषियाके मेरे साथ रहेंगे।"

मैंने इस मजमूनका पत्र लिख दिया। दो-तीन दिनमें कार्डिनल मैनिंगका कार्ड आया। उन्होंने मिलनेका समय दे दिया था।

हम दोनों गये। मैंने तो, जैसा कि रिवाज था, मुलाकाती कपड़े पहन लिए। नारायण हेमचंद्र तो ज्यों-के-त्यों, सनातन! वही कोट और वही पतलून। मैंने जरा मजाक किया, पर उन्होंने उसे साफ हँसीमें उड़ा दिया और बोले---

"तुम सब सुधारप्रिय लोग डरपोक हो। महापुरुष किसीकी पोशाककी तरफ नहीं देखते। वे तो उसके हृदयको देखते हैं।"

कार्डिनलके महलमें हमने प्रवेश किया। मकान महल ही था। हम बैठे ही थे कि एक दुबलेसे ऊंचे कदवाले वृद्ध पुरुषने प्रवेश किया। हम दोनोंसे हाथ मिलाया। उन्होंने नारायण हेमचंद्रका स्वागत किया।

"मैं आपका अधिक समय लेना नहीं चाहता। मैंने आपकी कीर्ति

सुन रखी थी। आपने हड़तालमें जो शुभ काम किया है, उसके लिए आपका उपकार मानना था। संसारके साथ पुरुषोंके दर्शन करनेका मेरा अपना रिवाज है। इसलिए आपको आज यह कष्ट दिया है।"

इन वाक्योंका तरजुमा करके उन्हें सुनानेके लिए हेमचंद्रने मुझसे कहा।

"आपके आगमनसे मैं बड़ा प्रसन्न हुआ हूं। मैं आशा करता हूं कि आपको यहांका निवास अनुकूल होगा और यहां के लोगोंसे आप अधिक परिचय करेंगे। परमात्मा आपका भला करे!" यों कहकर कार्डिनल उठ खड़े हुए।

एक दिन नारायण हेमचंद्र मेरे यहां धोती और कुरता पहनकर आए। भली मकान-मालकिनने दरवाजा खोला और देखा तो डर गई। दौड़कर मेरे पास आई (पाठक यह तो जानते ही हैं कि मैं बार-बार मकान बदलता ही रहता था) और बोली—"एक पागल-सा आदमी आपसे मिलना चाहता है।" मैं दरवाजेपर गया और नारायण हेमचंद्रको देखकर दंग रह गया। उनके चेहरेपर वही नित्यका हास्य चमक रहा था।

"पर आपको लड़कोंने नहीं सताया?"

"हां, मेरे पीछे पड़े जरूर थे, लेकिन मैंने कोई ध्यान नहीं दिया तो वापस लौट गए।"

नारायण हेमचंद्र कुछ महीने इंग्लैंडमें रहकर पेरिस चले गए। वहां फ्रेंचका अध्ययन किया और फ्रेंच पुस्तकोंका अनुवाद करना शुरू कर दिया। मैं इतनी फ्रेंच जान गया था कि उनके अनुवादोंको जांच लूं। मैंने देखा कि वह तर्जुमा नहीं, भावार्थ था।

अंतमें उन्होंने अमेरिका जानेका अपना निश्चय भी निबाहा। बड़ी मुश्किलसे डेक या तीसरे दर्जेका टिकट प्राप्त कर सके थे। अमेरिकामें जब वह धोती और कुरता पहनकर निकले तो असभ्य पोशाक पहननेका

जुर्म लगाकर वह गिरफ्तार कर लिए गये थे। पर जहांतक मुझे याद है, बादमें वह छूट गए। (आ० क० १९२७)

: २३२ :

अकबर हैदरी

स्व० सर अकबर हैदरी अपूर्व गुणोंकी राशि थे। वे एक बड़े विद्वान, दार्शनिक और सुधारक थे। वे एक चुस्त मुसलमान थे, परंतु इस्लाम और हिंदू धर्ममें वह परस्पर विरोध नहीं पाते थे। उन्होंने अन्य धर्मोंका भी अभ्यास किया था। उनकी मित्रमंडलीकी विविधता ही उनकी उदारवृत्तिकी द्योतक थी। दूसरी गोलमेज कान्फ्रेंससे हम इकट्ठे एक ही जहाज में लौटे थे। जहाजपर संध्याकी जो हमारी प्रार्थना होती थी उसमें वे नियमित आते थे। गीताके श्लोक और हम जो भजन गाते थे उनमें वह इतना रस लेते थे कि उन्होंने महादेव देसाईसे उन सबका अनुवाद अपने लिए करा लिया था। उन्होंने मुझसे प्रतिज्ञा की थी कि हिंदुस्तान पहुंचनेपर साम्प्रदायिक ऐक्यके लिए हम दोनों साथ दौरा करेंगे; परंतु ईश्वरने कुछ और ही सोच रखा था। स्व० लार्ड विलिंग्डनने मेरे लिए दूसरा ही कार्यक्रम तय्यार कर रखा था। मुझे सत्याग्रह आंदोलनमें कूदना पड़ा और सर अकबर और मेरे बीच तय किया हुआ प्रोग्राम लटकता ही रह गया। वे श्री अरविंदसे प्रभावित हुए थे। जिस समय पांडीचेरीके ऋषि श्री अरविंद अपने भक्तोंको त्रैमासिक दर्शन देते हैं उस समय वे अचूक तौर पर वहां रहते थे।

सर अकबरकी मृत्युसे देशकी भारी हानि हुई है। उनके दुःखी कुटुंबके प्रति मेरी हार्दिक समवेदना है। (ह० से०, १८.१.४२)

: २३३ :

सेम्युअल होर

सेम्युअल होरके भाषणके शब्द बापूको फिरसे सुनाने पर बापू बोले :

इसकी बात मुझे अच्छी लगती है। इसे एक भी बीच-बचाव करने वालेकी गरज नहीं है, क्योंकि इसका कोई विश्वस्त आदमी नहीं है। ऐसोंके साथ लड़नेमें मजा आता है। ऐसे आदमीके हाथसे ही भला होगा। सेंकीसे यह आदमी हजार गुना अच्छा है। वह तो सोचे कुछ और कहे कुछ। यह आदमी जो सोचता है, वही कहता है। एक बार मैंने उससे पूछा—आप यह मानते हैं न कि यहां जो इतने सारे आदमी हैं, उनमेंसे किसीकी शक्तिपर भी आपका विश्वास नहीं है? वह बोला—

"अगर सच्चे दिलसे कहा जाय तो मुझे कहना चाहिए कि यह बात सच है, मुझे विश्वास नहीं है।"

मैंने इसी बात पर उसे बधाई दी थी कि मुझे आपकी ईमानदारी बहुत पसंद है।

ग्रीवाने 'टाइम्स'में होरको जवाब दिया है। बापू कहने लगे :

बड़ा गौरवपूर्ण पत्र कहा जायगा और 'टाइम्स'का इसे छापना यही जाहिर करता है कि खुद 'टाइम्स'को भी सेम्युअल होरका वर्णन पसंद नहीं आया। यह आदमी बेहया हो गया दीखता है। सच्चा तो था ही, मगर इसकी सच्चाईमें भी बेहयाई थी। जब उसने कहा कि उसे किसी भी हिंदुस्तानीकी बुद्धि या शक्तिपर विश्वास नहीं है। (म० डा० ३.५.३२)

. . . .

सर सेम्युअल होरसे तो बहुत बार मिलता था। इतना मुझे कहना

चाहिए कि वह मेरे साथ साफ दिलसे बात करता था। यह नहीं था कि मेरे साथ एक बात और दूसरेके साथ दूसरी बात। सबके साथ उसने एक ही बात की। वह साफ कहता था, "सत्ता तो हमारे हाथोंमें है। तुम लोग मुझे सलाह दे सकते हो। उसपर अमल करना न करना हमारे हाथकी बात है। वह तुम्हें हमपर ही छोड़ना होगा।" मैंने कहा, "आजादी तो जब आवेगी तब, मगर आज इतना तो हो कि उस आनेवाली आजादीकी कुछ झलक आपके कामोंमें दिखाई दे। कानून चाहे कुछ भी हो; लेकिन प्रथा तो ऐसी बने कि हमारे कामोंमें हमारी सलाहसे आप चलें। अभी घनश्यामदास और पुरुषोत्तमदास हमारे अर्थशास्त्री हैं। अर्थशास्त्रमें वे हमारे नुमाइंदे हैं। हिंदके अर्थशास्त्रके मामलोंमें आप उनकी सलाहसे चलें।" मगर वह कहने लगा, "यह तो हो नहीं सकता।" (का०क०, ३.१२.४२)

: २३४ :

हार्निमैन

इतनेमें प्रजाको सोता छोड़कर सरकार मि० हार्निमैनको चुरा ले गई। मि० हार्निमैनने 'बंबई क्रानिकल' को एक प्रचंड शक्ति बना दिया था। इस चोरीमें जो गंदगी थी उसकी बदबू मुझे अबतक आया करती है। मैं जानता हूं कि मि० हार्निमैन अंधाधुंधी नहीं चाहते थे। मैंने सत्याग्रह कमेटीकी सलाहके बिना ही पंजाब सरकारके हुक्मको तोड़ा था सो उन्हें पसंद नहीं था। मैंने सविनय-भंगको जो मुल्तवी किया, उससे वह पूरे सहमत थे। मेरे सत्याग्रह मुल्तवी रखनेका इरादा प्रकट करनेके पहले ही पत्र द्वारा उन्होंने मुझे मुल्तवी रखनेकी सलाह दी थी

और वह पत्र बंबई और अहमदाबादके फासलेके कारण, मेरा इरादा जाहिर कर चुकनेके बाद मुझे मिला था। इसलिए उनके देश-निकालेपर मुझे जितना आश्चर्य हुआ, उतना ही दुःख भी हुआ। (आ० क० १९२७)

. . . .

बंबई सरकार और मेरे खयालसे भारत सरकार भी अपनेको इसलिए बधाई दे सकती है; क्योंकि उन्होंने हिंदुस्तानके और एक बहादुर अंग्रेजके साथ जो अन्याय किया था उसे बड़ी आनाकानीके साथ आज हटाकर दूर किया है। उन्होंने हार्निमैनको भारतमें, जिस देशपर उन्हें बड़ा प्रेम है और जिसके लिए वे बड़ा प्रयत्न कर रहे हैं, आनेसे न रोकनेकी बड़ी हिम्मत की है। यह कोई भी नहीं जानता है कि हार्निमैनको अकस्मात यहांसे देशनिकाला देनेका सच्चा कारण क्या था। उनपर कोई मुकद्दमा न चलाया गया था और न उन्हें उन पर लगाए गये अपराधोंसे इन्कार करनेका अवसर ही दिया गया था।

इस प्रकार अपनी ही इच्छासे जबरदस्ती समुद्रपार भेज देनेके ऐसे दृष्टांतोंसे यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत सरकारका कैसा अनुत्तरदायी अधिकार है। हार्निमैनके बनिस्बत और किसीने भी ऐसे अधिकारको रोकनेके लिए अधिक कोशिश और बहस न की थी और आखिर वे ही उसके बलि हो गए थे। श्री हार्निमैनके स्वागतमें मैं भी अपना नम्र हिस्सा देता हूं। उनके लौट आनेसे स्वराज्यके लिए जो शक्तियां युद्ध कर रही हैं उनमें सामर्थ्य और उत्साहकी वृद्धि होगी और उससे जो लोग ऐसे यशस्वी युद्धमें लगे हुए हैं उनके हृदयमें बड़ा ही आनंद होगा। उनके सामने जो कठिन कार्य पड़ा हुआ है उसे करनेके लिए श्री हार्निमैनको तंदुरुस्ती और दीर्घ आयुष्य प्राप्त हों! (हि० न०, १४.१.२६)

हार्निमैन अब गधे हांकने लगे हैं। बापू कहने लगे:

यह हार्निमैनका दूसरा पहलू है। (म० डा०, ८.८.३२)

. . . .

आज अखबारोंमें पहलेकी पूर्तिमें और नरम दलके लोगोंके जवाबमें हुआ होरका भाषण आया।

शामको इसी भाषणपर हार्निमैनका लेख पढ़ा। बापूको यह लेख बहुत पसंद आया। इसमें हार्निमैन होरको राजनैतिक नीति-से शून्य और बेशर्म कहा है। बापूने कहा—यह ठीक है। सारा लेख पढ़कर कहने लगे:

यह आदमी आजकल जोरदार लेख लिख रहा है।—(म० डा०, भाग २)

× × ×

हार्निमैन समझनेकी शक्ति रखता है, इसलिए सारा लेख बढ़िया लिखा है। (म० डा०, भाग २)